श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितः

समयसार

समय देशना

भाग - 14



देशनाकार

आचार्य विशुद्धसागर मुनिराज

दिगम्बराचार्य श्री कुन्दकुन्द कृत समयपाहुड पर

समय देशना

भाग-14

(गाथा-345 से 382)

देशनाकार

दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर मुनिराज

प्रकाशक

श्रमण संस्कृति सेवा समिति

पूज्यश्री के साहित्य प्रकाशन हेतु कटिबद्ध संस्था

संपर्क : 94253-21151, 98930-63710, 98262-10189

❖ मूलकृति – **'समय पाहुड' आचार्यश्री कुन्दकुन्द कृत**

❖ प्रस्तुत कृति – **''समय देशना'' भाग-14**
(सर्वविशुद्ध ज्ञानाधिकार की गाथा 345 से 382 तक आगरा (उ.प्र.) में, सन् 2012 में किए गए टीकात्मक प्रवचन)

❖ **देशनाकार** – **दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर मुनिराज**

❖ **संकलन** – **श्रमण सुव्रतसागर मुनि**

❖ संपादक – डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फर नगर

❖ प्रस्तुति – इंजी. जिनेन्द्र जैन, भोपाल
ब्र. किरण जैन (टीकमगढ़), इंजी. दिनेश जैन (भिलाई)

❖ संस्करण – प्रथम / सन् - 2016 / 1100 प्रतियाँ

❖ न्यौछावर – रु. 150/- (पुनः प्रकाशन हेतु)

❖ पुण्यार्जक –
- श्री आजाद कुमार रवि देवी जैन, इंदौर
- श्री अनिल कासलीवाल जी, अनिल बुक डिपो/परिधान, भिलाई

❖ प्राप्ति स्थान –
- श्री आजादकुमार जैन, इंदौर, मो. 09425321151
- श्री मनीष जैन मोना, इंदौर, मो. 09826210189
- महावीर पाटनी, भिलाई, मो. 08959990000
- नेमीचंद जैन बड़कुल, इन्दौर मो. 09425053171
- श्री नंदीश्वर जिनालय, लालघाटी, भोपाल, मो. 09425374897
- मनोज झांझरी, जयपुर, मो. 09829063426
- नमोस्तु शासन संघ, मुंबई, मो. 09892297204

❖ वेब लॉग-इन – www.shramansanskriti.com

❖ मुद्रक – विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
फोन : 0755-2601952, 9425005624

अनुक्रमणिका

विषय		*पृष्ठ क्रमांक*
सम्पादकीय	डॉ. श्रेयांसकुमार जैन	iv
सम्पादकीय	डॉ. जयकुमार जैन	vi
अध्यात्मविद्या की समृद्धि में....	प्रो. नलिन के. शास्त्रि	xxvii
'समयदेशना' की देशना शैली	श्री सुरेश जैन 'सरल'	xxxvii
समयदेशना : एक अमृत कलश	प्रा. नरेन्द्र प्रकाश जैन	xli
प्रारम्भिक मंगलाचरण		xlvi
मंगलाचरण		1
अनेकान्त का प्रकटीकरण एवं क्षणिकवाद का निषेध	गाथा 345-348	2 - 36
जीव कर्म करते हुए भी तन्मय नहीं होता है	गाथा 349-355	37 - 93
दृष्टान्तपूर्वक निश्चय-व्यवहार का कथन	गाथा 356-365	94 - 217
राग-द्वेष-मोह जीव के ही अनन्य परिणाम	गाथा 366-371	218 - 261
सर्व द्रव्य स्व-स्वभाव से उत्पन्न होते हैं	गाथा 372	262 - 294
अज्ञानी की प्रवृत्ति / जीव-अजीव भिन्नत्व	गाथा 373-374	295 - 310
वस्तु स्वतंत्रतया स्व-स्वभाव से ही परिणमित है	गाथा 375	311 - 321
आत्मा और पुद्गल का भिन्नत्व	गाथा 376-377	322 - 328
आत्मा पर के प्रति उदासीन है	गाथा 378-382	329 - 353
संदर्भ शास्त्र सूची		354

सम्पादकीय

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन
(अध्यक्ष-अ.भा.दि.जैन शास्त्रि परिषद्)

अध्यात्मविद्यान्वेषी आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव की लोकोत्तर कृति का सम्पूर्ण ज्ञानाराधकों की दृष्टि में बहुमान है। समयसार श्रमण-संस्कृति और वैदिक-संस्कृति के ग्रंथों में अध्यात्म को उजागर करनेवाला श्रेष्ठ ग्रंथ है।

'समय पाहुड' ग्रंथ पर सर्वप्रथम आचार्य श्री अमृतचन्द्र स्वामी ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी। अनन्तर आचार्य श्री जयसेन स्वामी ने 'तात्पर्यवृत्ति' लिखकर जन-जन को आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द देव के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित कराया। उक्त दोनों टीकाओं की विशेषता रही कि समयसार का हार्द स्फुट हुआ। इन टीकाओं के साथ मूल 'समय पाहुड' को जन-जन तक पहुँचाने हेतु अनेक हिन्दी रूपान्तर करने वाले आचार्य, मुनि, आर्यिका, त्यागी-व्रती विद्वानों ने उपक्रम किया।

वर्तमान आचार्यपरम्परा के लोकप्रिय देशनाकार आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज ने समयसार रूपी सागर में डुबकी लगा-लगाकर मोतियों को निकाल-निकालकर अध्यात्म विद्याभिलाषी जनों को सौंपकर जैनशासन का महा उपकार किया है। समयसार की एक एक गाथा की विषयवस्तु को दृष्टान्तों के माध्यम से सविस्तार रूप से समझाया है। परिणामतः समयसार की 415 गाथाओं की देशना का इतना विस्तार हुआ कि आचार्य श्री की उक्त देशना को भव्य-श्रावकों द्वारा सत्रह भागों में लगभग 7000 पृष्ठों में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

श्रीमत्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित एक-एक अधिकार पर दी गई देशना को क्रमशः प्रकाशन किया जा रहा है, क्योंकि आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज द्वारा की गई तत्त्व-प्ररूपणा अद्भुत है। शुद्धात्म तत्त्व की निरूपणा की धारा में अवगाहन करते हुए आचार्य श्री स्वयं आत्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान् कराने में सहकारी हैं, इसीलिए उनकी सभाओं में बैठे हुए श्रोता मंत्रमुग्ध होकर इनके वचनों को सुनते ही नहीं हैं, अपितु एक-एक शब्द की अवधारणा करते हैं।

एक-एक शब्द में जिनशासन को समाते हुए आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज ने समयसार को देशना के रूप में विस्तार दिया है। आचार्यश्री ने महत्त्वपूर्ण देशना देकर मोक्षमार्गियों को कर्मास्रव रोकने की विधि बताकर जगत् को चमत्कृत किया है।

आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज स्वयं 'समयसार' की महिमा को गाते हुए लिखते हैं कि 'वह भूमि धन्य है, जिस भूमि पर बैठकर आचार्य श्री कुन्दकुन्द भगवन्त ने अलौकिक अशरीरी आत्मा

के स्वरूप के कहने वाला 'समयसार' ग्रंथ लिखा है। तन्मयभूत हो करके चिन्तन किया है। एकत्व-विभक्त चिद्रूप दशा की अनुभूति को ग्रंथ 'समयसार' लिखने के पहले स्वानुभूति में लिखा है।'

इस प्रकार के ग्रंथराज 'समयसार' के संबंध में देशना करने वाले **आचार्य श्री विशुद्धसागर जी ने 'समयसार' को आत्मसात् करके अध्यात्म की धारा को अविरल बनाये रखने का जो उपक्रम किया है, वह स्तुत्य है। यही कारण है कि-अध्यात्मविद्या प्रवीण मनीषी आचार्य श्री विशुद्धसागर जी की देशना को गवेषणा का विषय बनाये हुए हैं।**

समयसार 'समयदेशना' का शब्द-शब्द उपादेय है। ज्ञानीजीव निरन्तर इसी का आश्रय लेकर चर्चा में निरत रहते हैं, उसी मार्ग से तत्त्वज्ञ भी संचार करता रहता है, फिर भी अज्ञानी जीव अपने को कर्म से सम्बद्ध करता है।

समयसार का बोध ज्ञानी को ही सम्भव है, अज्ञानी तो समयसार के निकट भी नहीं पहुँच पाता है। आचार्यभगवन् स्वयं लिखते हैं कि-समयसार का बोध किसे प्राप्त नहीं हो सकता है?

पासंडी-लिंगेसुवगिहि-लिंगेसु व बहुप्प यारेसु।
कुर्वंति ये ममत्वं तैर्न ज्ञातः समयसारः ।। 413।।

जो श्रमण और श्रमणोपासक इन बाह्य वेषों के ममकार एवं मिथ्या अहंकार करते हैं, उन्होंने समयसार को किंचित् भी नहीं जाना है।

समयसार तो समस्त विकल्पों से रहित अवस्था है, अतः पक्षपाती या पक्षग्राही समयसार का न तो कथन कर सकता है और न ही समयसार को समझ सकता है।

आचार्यभगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी 'समयसार' को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि-

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं।
पक्खादिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो।। 142।।

जीव में कर्म बंधे हुए हैं अथवा नहीं बंधे हैं, ये दोनों प्रकार के पक्ष हैं, नयों की अपेक्षा से ही द्विविध कथन है। पुनः जो दोनों पक्षों से अतिक्रान्त (आगे बढ़ चुका) है, निर्विकल्प ध्यान में स्थित है, वही समयसार है।

सम्पूर्ण नयपक्षों से रहित समयसार की सम्यक् व्याख्या रूप 'समयदेशना' के माध्यम से समयसार का प्रत्येक अधिकार तत्त्व-जिज्ञासुओं के ज्ञान का विषय बना है। जिससे तत्त्व-तत्त्व का सम्यक् बोध हो, इसी भावना से जिनेन्द्र प्रभु से कामना करता हूँ कि- आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज की इस प्रकार की देशना अविरल रूप से चलती रहे।

सम्पादकीय

डॉ. जय कुमार जैन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यौ, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

(भगवान् महावीर मंगलस्वरूप हैं। गौतम नाम के गणधर मंगलस्वरूप हैं। आचार्य कुन्दकुन्द मंगलस्वरूप हैं। जैन धर्म मंगलस्वरूप है।)

किसी भी मंगल कार्य के पूर्व जैनधर्मावलम्बियों में उक्त श्लोक पढ़ने की परम्परा है। स्पष्ट है कि भगवान् महावीर और उनकी दिव्य वाणी के धारक एवं द्वादशांग आगम प्रणेता गौतम गणधर के बाद जैनधर्म में कुन्दकुन्दाचार्य को प्रधानता दी गई है। कुन्दकुन्दाचार्य श्रमण-संस्कृति के उन्नायक, प्राकृतसाहित्य के अग्रणी प्रतीभू, तर्कप्रधान दृष्टान्तिक शैली में लिखे गये अध्यात्मविषयक साहित्य के युगप्रधान आचार्य हैं। अध्यात्म जैन वाङ्मय एवं प्राकृतसाहित्य के विकास में उनका अप्रतिम योगदान रहा है। उनकी महत्ता इसी से जानी जा सकती है कि उनके पश्चातवर्ती आचार्यों की परम्परा अपने को कुन्दकुन्दान्वयी या कुन्दकुन्दाम्नायी मानकर गौरवान्वित समझती है।

खेद की बात है कि कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत विशाल साहित्य उपलब्ध होने पर भी विशेष अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के अभाव में उनका प्रामाणिक परिचय नहीं मिलता है; किन्तु आलोचन-प्रत्यालोचन पद्धति से उनके विषय में जो भी सामग्री उपलब्ध हुई है, वह इस प्रकार है।

स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने ग्रंथों में किंचित् भी परिचय नहीं दिया है। केवल बारस अणुवेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा) की अन्तिम गाथा में उन्होंने अपने नाम (कुन्दकुन्द) का उल्लेख किया है।

इदि णिच्छयववहारं, जं भणियं कुन्दकुन्दमुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परम णिव्वाहं ।।(गाथा 91)

(इस प्रकार मुनियों के नाथ आचार्य कुन्दकुन्द ने निश्चय और व्यवहारनय से जो कथन किया है, जो शुद्ध मन से उसकी भावना करता है, वह परमपद निर्वाण को प्राप्त करता है।)

इसके अतिरिक्त कुन्दकुन्द ने अपने बोधपाहुड (बोधप्राभृत) नामक ग्रंथ कीअन्तिम दो गाथाओं में अपने को भद्रबाहु का गमक शिष्य बतलाते हुए श्रुतकेवली भद्रबाहु की जयकार की है अर्थात् उन्हें सर्वश्रेष्ठ घोषित किया है।

सद्दपियारों हूआ भासासुत्तेसु जं जिणं कहियं।
सो जह कहियं णयं सीसेण य भद्दबाहुस्स।।

बारस अंग विणायं चउदसपुव्वंगविउल वित्थरणं।
सयणाणि भद्द गमयगुरु भपवओ जयउ।।(गाथा 60-61)

इस प्रकार कुन्दकुन्द साहित्य के अनुशीलन से केवल इतना ही पता चला है कि ग्रंथकार का नाम कुन्दकुन्द था और श्रुतकेवली भद्रबाहु उनके गमक गुरु थे।

आचार्य कुन्दकुन्द केग्रंथों के प्रमुख दो संस्कृत टीकाकारों अमृतचन्द्र सूरि और जयसेनाचार्य में से अमृतचन्द्रसूरि द्वारा ग्रंथकार का नामोल्लेख तक न किया जाना अपने आप में कम आश्चर्यजनक नहीं है। जयसेनाचार्य ने अवश्य ही समयसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में ग्रंथकार कानाम पद्मनन्दि उल्लिखित किया है-

जयउ रिसि पउमणंदी जेण महातच्चपाहुडसेलो।
बुद्धि सिरेणुद्धरिओ समप्पिओ भव्वलोयस्स।।(अन्तिम पद्य)

(वे श्री पद्मनन्दि उत्कृष्ट हैं, जिन्होंने महातत्त्वों का विवेचन करनेवाले प्राभृत (समयप्राभृत) रूपी पर्वत को अपनी बुद्धि रूपी सिर से उठा करके भव्य जीवों के लिए समर्पित कर दिया।) जयसेनाचार्य ने पंचत्थिकाय (पंचास्तिकाय) की टीका में उन्हें कुमारनन्दि सिद्धांतदेव का शिष्य कहा है, तब कुन्दकुन्द का ही अपरनाम पद्मनन्दि बताया है -

''अथश्री कुमारनन्दिसिद्धांतदेवशिष्यैः.....कुण्डकुण्डाचार्यदेवैः पद्मनन्द्याद्यपराभिधेयौः.... विचरिते पंचास्तिकायप्राभृतशास्त्रे.....;''

इस प्रकार टीकाकार जयसेनाचार्य के अनुसार कुन्दकुन्द के पद्मनन्दि आदि अपर नाम थे और वे श्री कुमारनन्दि सिद्धांतदेव के शिष्य थे। जयसेनाचार्य ने अपनी टीका के इसी स्थल में लिखा है कि प्रसिद्ध कथा के अनुसार कुन्दकुन्द ने पूर्व विदेह को जाकर वीतराग सर्वज्ञ सीमंदर स्वामी से दिव्यध्वनि को सुना था एवं आत्मतत्त्व का सार समझकर वे वापिस लौट आये थे। उन्होंने महाराज शिवकुमार आदि शिष्यों के बोध पंचत्थिकाय (पंचास्तिकाय) की रचना की थी।

श्रुतावतार नामक ग्रंथ में इन्द्रनन्दि ने लिखा है कि षट्खण्डागम और कषायपाहुड (कषायप्राभृत) के प्रारंभिक तीन खण्डों पर 12000 श्लोक परिणाम परिकर्म ग्रंथ की रचना की थी -

एवं द्विविधो द्रव्यभावपुस्कगतः समागच्छन्।
गुरुपरिपाट्या ज्ञातः सिद्धांत कुण्डकुन्दपुरे।।

श्रीपद्मनन्दिमुनिना सोऽपि द्वारदशसहस्त्रपरिणामः।
ग्रन्थपरिकर्मकर्ता षट्खण्डाद्यत्रिखण्डास्य।।(160-161)

दर्शनसार के रचयिता देवसेनाचार्य ने कुन्दकुन्दाचार्य की विदेहगमन सम्बंधी घटना की ओर संकेत करते हुए उनकी प्रशंसा में निम्नलिखित गाथा लिखी है -

जइ पउमणंदिणाहो सीमन्धरसामिदिव्वणाणेण।
ण बिबोहइ तो समणा कहा सुमग्गं पयणंति।।(गाथा 43)

कालान्तर में वे अपने जीवन में ही कुन्दकुन्द नाम से प्रसिद्ध हो गये होंगे। इसी कारण उन्होंने अपना उल्लेख 'बारस अणुवेक्खा' में पद्मनन्दि नाम से न करके कुन्दकुन्द नाम से किया। आज भी दक्षिण भारत में कहीं-कहीं अपने नाम के पूर्व ग्राम के नाम लिखने की परम्परा विद्यमान है। हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति स्व.डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के नाम से सर्वपल्ली उनके ग्राम का ही नाम उल्लिखित है। अब रही शेष वक्रग्रीव, एलाचार्य और गृद्धपिच्छ नामों का विचार। ये तीनों ही नाम चिन्त्य हैं।

यद्यपि वक्रग्रीव का नाम विभिन्न दक्षिण भारतीय शिलालेखों में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु कुन्दकुन्दाचार्य के लिए नहीं। श्रवणवेलगुल के एक शिलालेख में कौण्डकुन्द -समन्तभद्र और तत्पश्चात् वक्रग्रीव का नाम आया है। वहाँ वक्रग्रीव मुनि कीअत्यंत प्रशंसा की गई है और उन्हें महान् बताया गया है। अन्य 12 वीं शताब्दी के शिलालेखों में भी वक्रग्रीव का नाम आया है, किन्तु किसी भी उल्लेख से कुन्दकुन्द और वक्रग्रीव की एकता सिद्ध नहीं होती है।

1100 ई. के आसपास उत्कीर्ण एक शिलालेख में एलाचार्य नाम का उल्लेख हुआ है। इन्द्रनन्दि ने भी श्रुतावतार में सिद्धांतशास्त्रों के ज्ञाता चित्रकूटवासी एलाचार्य का उल्लेख किया है, किन्तु ये धवला और जयधवला के रचयिता आचार्य वीरसेन के गुरु हैं। कुन्दकुन्द के समय से भी इन एलाचार्य की एकता मानना, सर्वथा भ्रान्त प्रमाणाभाव में कुन्दकुन्द का नाम एलाचार्य मानना उचित प्रतीत नहीं होता है।

अब रही गृद्धपिच्छ की बात, तो यह नाम विभिन्न शिलालेखों एवं ग्रन्थों में 'तत्त्वार्थसूत्र' के रचयिता उमास्वामी के लिए प्रयुक्त हुआ है। कुन्दकुन्द के गृद्धपिच्छ नाम मानने में किंवदन्ती कारण जान पड़ती है, जिसके अनुसार विदेहक्षेत्र जाते समय आकाशमार्ग से कुन्दकुन्द की मयूरपिच्छि नीचे गिर

गयी थी। बाद में उन्होंने मयूरपिच्छि के न मिलने पर गृद्धपिच्छि धारण कर ली थी। सामान्यतः जैनमुनि मयूरपिच्छि धारण करते हैं, किन्तु किंवदन्ती के अनुसार उन्होंने गृद्धपिच्छि धारण कर ली थी, अतः वे गृद्धपिच्छ नाम से प्रसिद्ध हो गये। किंवदन्ती में कोई दम नहीं है और कल्पित जान पड़ती है, क्योंकि **शास्त्रीय मान्यता के अनुसार प्रमत्तसंयत मुनि औदारिक शरीर से दूसरे क्षेत्र में गमन नहीं कर सकता है।** केवल जिनभगवान् के दर्शनार्थ वह आहारक शरीर ही दूसरे क्षेत्र में जा सकता है। कुन्दकुन्द के आहारक शरीर होने का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। अतः कुन्दकुन्द की विदेहगमन विषयक घटना ही अविश्वसनीय होने से उस पर आश्रित गृद्धपिच्छ नामकरण भी कल्पित जान पड़ता है।

'अभिधानराजेन्द्रकोश' में मदननन्दि नाम का उल्लेख हुआ है, वह संभवतः भ्रांतिवश पद्मनन्दि की जगह लिखा गया है, क्योंकि इस नाम का अन्यत्र कहीं भी उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।

आचार्य कुन्दकुन्द के गुरु एवं माता-पिता

दूसरा विचारणीय प्रश्न कुन्दकुन्दाचार्य के गुरु के नाम का है। 'बोधपाहुड' में कुन्दकुन्द ने अपने गुरु का नाम भद्रबाहु बताते हुए उन्हें सर्वश्रेष्ठ घोषित किया है। जबकि समयसार के संस्कृत टीकाकार जयसेनाचार्य ने कुन्दकुन्द (अपरनाम पद्मनन्दि) को श्री कुमारनन्दि सिद्धान्तदेव का शिष्य कहा है। **नन्दिसंघ की पट्टावली से पता चलता है कि कुन्दकुन्दाचार्य के गुरु का नाम जिनचन्द्र था।**

भद्रबाहु को कुन्दकुन्दाचार्य ने अपना गमक गुरु कहा है। गमक के अनेक अर्थ संभव हैं, किन्तु यहाँ गमक शब्द का प्रयोग परम्परा के अर्थ में जान पड़ता है। इस प्रकार भद्रबाहु को कुन्दकुन्दाचार्य का परम्परा गुरु माना जा सकता है। आज भी साधुओं में अपनी परम्परा (आम्नाय) विशेष से सम्बंध मानने की परम्परा विद्यमान है। अब प्रश्न है कि कुमारनन्दि सिद्धांतदेव और जिनचन्द्र में से इनका साक्षात् गुरु कौन है? मथुरा से प्राप्त एक शिलालेख में कुमारनन्दि का नामनिर्देश हुआ है। वहाँ इन्हें उच्चनागर शाखा का बताया है। किन्तु कुन्दकुन्द का उच्चनागर शाखा से संबंध होने की कोई जानकारी नहीं मिलती है। अन्यत्र कुमारनन्दि सिद्धांतदेव का नामोल्लेख नहीं मिलता है। अतः प्रमाणाभाव में कुमारनन्दि सिद्धांतदेव को कुन्दकुन्दाचार्य का गुरु नहीं माना जा सकता है। नन्दिसंघ की पट्टावली में क्रमशः माघनन्दि, जिनचन्द्र और कुन्दकुन्द का उल्लेख हुआ है। यदि इस पट्टावली के उल्लेख को प्रमाणिक मान लिया जाए तो **कुन्दकुन्दाचार्य के गुरु का नाम जिनचन्द्र और परमगुरु (गुरु के गुरु) का नाम माघनन्दि सिद्ध होता है,** किन्तु इस पट्टावली को प्रमाणिक स्वीकार करने के लिए अभी तक पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए हैं। अतएव उनके साक्षात् गुरु का नाम विवादस्पद ही है। भद्रबाहु को परम्परा गुरु स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि विभिन्न शिलालेख एवं अन्य प्रमाणों से इस बात की

सिद्धि होती है कि महाराज चन्द्रगुप्त के साथ भद्रबाहु उत्तर भारत में पड़े अकाल के समय दक्षिण भारत की ओर चले गये थे तथा उन्होंने वहीं रहकर श्रवणबेलगुल में समाधिमरणपूर्वक प्राण त्याग किये थे। अतः कुन्दकुन्द को भी उसी परम्परा का मान सकते हैं।

ज्ञानप्रबोध नामक ग्रन्थ में प्रदत्त कथानक अनुसार कुन्दकुन्दाचार्य के पिता का नाम कुन्दश्रेष्ठी और माता का नाम कुन्दलता था। ये वारांपुर के राजा कुमुदचन्द्र के राज्य में निवास करते थे, किन्तु यह कथानक कविकल्पनाप्रसूत मालूम पड़ता है। कुन्दश्रेष्ठी तथा कुन्दलता के साथ कुन्दकुन्द का आनुप्रासिक सम्बंध बनाने के लिए संभवतः कवि ने ऐसा किया हो। जम्बूदीवपण्णत्ती (जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति) के प्रणेता का नाम पद्मनन्दि वारांपुर है तथा कुन्दकुन्द का भी अपरनाम पद्मनन्दि है। जम्बूदीवपण्णत्ती के रचयिता पद्मनन्दि वारांपुर के निवासी थे। इसी आधार पर 'ज्ञानप्रबोध' में कुन्दकुन्द (अपरनाम पद्मनन्दि) को भी वारांपुर का निवासी बताया गया है। दोनों पद्मनन्दि नामक विद्वानों को अभिन्न मानने के कारण ज्ञानप्रबोधकार ने विदेहगमन की घटना को भी पद्मनन्दि के साथ जोड़ दिया है। अतः 'ज्ञानप्रबोध' का कथन प्रामाणिक नहीं है।

कुन्दकुन्द का जन्मस्थान

जैसे कि संकेत किया जा चुका है कि **पद्मनन्दि मुनि कौण्डकुण्ड नगर के निवासी थे** और इसी आधार पर वे कौण्डकुण्ड-कुण्डकुण्ड-कुन्दकुन्द (कौण्डकुण्ड या कुण्डकुण्ड का मधुर उच्चारण) के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। इन्द्रनन्दि आचार्य का 'श्रुतावतार' में किया गया उल्लेख भी इस बात का समर्थन करता है। श्री पी.बी. देसाई ने "Jainism in South India" में गुण्टकल रेलवे स्टेशन से लगभग 4 मील की दूरी पर अन्नतपुर जिले के gooty तालुके में कोनकुण्डल नामक स्थान का विवरण दिया है। स्वयं देखने पर श्री देसाई ने इसे अत्यंत प्राचीन बताते हुए विभिन्न शिलालेखों के आधार पर कोनकुण्डल का प्राचीन नाम कोण्डकुण्डे स्वीकार किया है। इस नगर में प्राप्त प्रस्तरलेखों में भग्नाक्षरों में पद्मनन्दि नाम भी पढ़ने में आता है। कन्नड़ भाषा में 'कुण्ड' शब्द का अर्थ 'पर्वत' है। स्थान विशेष के लिए प्रयुक्त होने पर कुण्ड का अर्थ 'पहाड़ी घर' होता है। कोनकुण्डल ग्राम आज भी पर्वतश्रृंखलाओं से परिवृत्त है। अतः कुण्डकुण्ड (कौण्डकुण्ड या कौण्डकुण्डे) नामक प्राचीन ग्राम के साथ इसकी अभिन्नता स्वीकार करने में कोई परेशानी नहीं है। यह आंध्रप्रदेश में कर्नाटक और आंध्रप्रदेश के सीमाप्रान्त पर स्थित है। श्री देसाई के इस मत में पर्याप्त बल है। इस प्रकार कोनकुण्डल नामक ग्राम कुन्दकुन्दाचार्य का जन्मस्थान माना जा सकता है। श्री पं. कैलाशचन्द्र ने भी श्री देसाई के इस मत का समर्थन किया है।

कुन्दकुन्द के विषय में प्रचलित अनुश्रुतियाँ

आचार्य कुन्दकुन्द के विषय में अनेक अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं। विन्ध्यगिरि के एक शिलालेख के अनुसार उनके विषय में प्रसिद्ध है कि वे अतिशय ज्ञानसम्पन्न तपस्वी थे। चारणऋद्धि के प्रभाव से वे पृथ्वी से चार अङ्गुल ऊपर गमन करते थे। इनके अतिरिक्त कुन्दकुन्द के जीवन में घटित दो घटनाओं का प्रमुख रूप से उल्लेख मिलता है - (1) विदेहगमन और(2) गिरनार पर्वत पर दिगम्बर-श्वेताम्बर विवाद।

(1) विदेहगमन - विदेहगमन विषयक घटना का सर्वप्रथम उल्लेख देवसेन कृत 'दर्शनसार' में मिलता है। देवसेन ने दर्शनसार की रचना ईसा की 9-10 वीं शताब्दी में की थी। अतः अन्य अभिलेखीय एवं ऐतिहासिक प्रमाण न मिलने पर भी इसकी प्राचीनता विश्वस्त है। इसके बाद जयसेनाचार्य 'पंचास्तिकाय' की टीका में 'प्रसिद्धकथान्यायेन पूर्वदेह गत्वा वीतरागसर्वज्ञ श्री मंदरस्वामि तीर्थकर परमदेव दृष्टवानन्मुखकमलविनिर्गतदिव्यवाणीश्रमणावधारितपदार्थच्छुद्धात्मतत्त वादिसारार्थं गृहीत्वा.....' (पंचास्तिकाय टीका) कहकर उनकी विदेहगमन विषयक घटना का उल्लेख किया है उन्होंने इस घटना को प्रसिद्धकथान्यायेन बतलाया है, जिससे पता चलता है कि उनके समय में यह घटना अत्यंत प्रसिद्ध थी। टीकाकार जयसेनाचार्य का समय ईसा की 12 वीं शताब्दी माना जाता है। इसके बाद 15-16 वीं शताब्दी के षट् प्राभृत के संस्कृत टीकाकार श्रुतसागरसूरि ने तथा पश्चाद्वर्ती अन्य विद्वानों ने भी इस घटना का भी उल्लेख किया है। शुभचन्द्र (1516-1556 ई.) की पट्टावली में भी इसका उल्लेख है। उक्त उल्लेखों के आधार पर यह प्रसिद्ध है कि कुन्दकुन्दाचार्य विदेहक्षेत्र गये थे और वहाँ समवसरण में विराजमान तीर्थंकर श्रीमंदर (सीमंधर) स्वामी से उन्होंने दिव्यध्वनि का श्रवण किया था। सामान्यतः यह नियम है कि कोई भी प्रमत्तसंयत मुनि अपने औदारिक शरीर से दूसरे क्षेत्र में नहीं जा सकता है। आहारक शरीरधारी मुनि के लिए असंयम के निवारणार्थ यह नियम लागू नहीं होता है। किंतु इस तरह का उल्लेख नहीं मिलता है कि कुन्दकुन्दाचार्य आहारक शरीरधारी थे। अतः कथा की विश्वसनीयता में सन्देह होने पर भी इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है।

(2) गिरनार विवाद - शुभचन्द्राचार्य ने पाण्डवपुराण में गिरनार पर्वत पर दिगम्बर और श्वेताम्बरों के विवाद का उल्लेख करते हुए कुन्दकुन्दाचार्य का स्मरण इस प्रकार किया है-

कुंदकुंदगणी येनोर्जयन्तगिरिमस्तके।
सोऽवतात् वादिता ब्राह्मी पाषाणघटिता कलौ॥ (पूर्व प्रशस्ति)

वे कुंदकुंद गणी रक्षा करें, जिन्होंने कलियुग में उर्जयन्त (गिरनार) पर्वत पर पाषाण से बनी हुई ब्राह्मी देवी को बुलवा दिया।) इसी प्रकार शुभचन्द्राचार्य की गुर्वावली में उल्लेख हुआ है। कवि वृन्दावन ने इस घटना का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि एक बार कुन्दकुन्दाचार्य ससंघ गिरनारपर्वत गये। वहाँ पर श्वेताम्बरों से उनका विवाद हो गया। दिगम्बर और श्वेताम्बरों ने अंबिका नामक देवी को अपना मध्यस्थ बनाया। देवी ने प्रगट होकर दिगम्बरों का समर्थन किया। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही के ग्रन्थों में यद्यपि गिरनार पर्वत पर विवाद होने के विवरण मिलते हैं, किन्तु कुन्दकुन्द के समय में कभी इस प्रकार के विवाद होने का उल्लेख नहीं मिलता है। शुभचन्द्र की गुर्वावली के अंतिम श्लोकों में बलात्कारगणीय के प्रधान पद्मनन्दि मुनि को नमस्कार करते हुए कहा गया है कि उन्होंने ऊर्जयन्त पर्वत पर सरस्वती की मूर्ति को बुलवा दिया था। ऐसा लगता है कि शुभचन्द्राचार्य ने भी कुन्दकुन्द-पद्मनन्दि और बलात्कारगणीय पद्मनन्दि को भ्रांतिवश एक समझ लिया और इस घटना का उल्लेख कर दिया है। पश्चाद्वर्ती कवि भी उसे लिखते रहे।

इस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य के विषय में प्रचलित दोनों ही अनुश्रुतियाँ-विदेहगमन और गिरनार विवाद, सत्य प्रतीत नहीं होती हैं। फिर भी विदेहगमन विषयक अनुश्रुति के प्राचीन उल्लेख होने के कारण वह चिन्त्य है।

कुन्दकुन्द का समय

अन्तः साक्ष्यों के अभाव में आचार्य कुन्दकुन्द के समय का अब तक निर्विवाद अवधारण नहीं हो सका। अद्यावधि आचार्य कुन्दकुन्द के समय के विषय में नाथूराम प्रेमी, श्री जुगलकिशोर, डॉ के.बी. पाठक, प्रो.ए.चक्रवर्ती, डॉ.ए.एन. उपाध्ये, डॉ.ज्योतिप्रसाद जैन, सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश शास्त्री आदि विद्वानों ने विचार- विमर्श किया है। यहाँ पर इन इतिहासवेत्ताओं के मतों का संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है।

(1) श्री नाथूराम प्रेमी: श्री प्रेमी जी ने इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार के आधार पर विभिन्न आचार्य की परम्परा को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि वी.नि.सं.683 (156 ई.) के बाद ही कुन्दकुन्दाचार्य हुए हैं। श्री प्रेमी जी ने गिरनार पर कुन्दकुन्द के साथ श्वेताम्बरों के विवाद की घटना को सत्य मानते हुए श्वेताम्बर-दिगम्बर सम्प्रदाय के भेद को ईसा की तृतीय शताब्दी के प्रारंभ में स्वीकार किया है। इस आधार पर कुन्दकुन्द का समय ईसा की तृतीय शताब्दी मानते हैं। उनके मतानुसार 156 ई. के पूर्व किसी भी परिस्थिति में कुन्दकुन्द को विद्यमान नहीं माना जा सकता है।

(2) श्री जुगलकिशोर मुख्तार - श्री मुख्तार ने स्वयं कुन्दकुन्द द्वारा निर्दिष्ट अपने गुरु भद्रबाहु

को द्वितीय भद्रबाहु स्वीकार करते हुए कुन्दकुन्द का समय वी.नि.सं. 608-692 (81-165 ई.) माना है।

(3) डॉ. के.बी. पाठक-डॉ. पाठक ने कुन्दकुन्दाचार्य के समय पर विभिन्न ऊहापोह करते हुए कुन्दकुन्द का समय शक सं. 450 (528 ई.) माना गया है। उन्होंने जयसेनाचार्य द्वारा पंचास्तिकाय की संस्कृत टीका में तथा बालचन्द्र द्वारा कंनड़ी टीका में निर्दिष्ट कुन्दकुन्द के समकालीन शिवकुमार महाराज के कदम्ब रायवंशीय शिवमृगेश वर्मा से अभिन्न माना है। शिवमृगेश वर्मा के समय को शक सं. 450 (528 ई.) के आसपास मानते हुए उन्होंने कुन्दकुन्द के समय को भी इसी के लगभग स्वीकार किया है।

(4) प्रो.ए.चक्रवर्ती - प्रो.चक्रवर्ती ने कुन्दकुन्द का जन्म ई.पू. 52 में तथा आचार्यपद की प्राप्ति ई.पू. 8 में स्वीकार की है। उन्होंने शिवकुमार महाराज को शिवमृगेश वर्मा से भिन्न मानकर पल्लववंशी शिवस्कंद को शिवकुमार माना है, क्योंकि स्कन्द शब्द का पर्यायवाची कुमार है और इस तरह के प्रयोग अन्यत्र भी देखने को मिलते हैं।

(5) डॉ. ए.एन. उपाध्ये - डॉ.उपाध्ये ने कुन्दकुन्द की स्थिति दिगम्बर-श्वेताम्बर संघभेद के बाद मानी है, क्योंकि कुन्दकुन्द ने स्त्रीमुक्ति का निषेध किया है। वे डॉ. पाठक के इस मत को संभाव्य मानते हैं कि शिवकुमार महाराज पल्लववंशीय शिवस्कंद हैं। इस प्रकार उन्होंने कुंदकुंद का समय ईसा की प्रथम शताब्दी अनुमित किया है।

(6) डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन - ज्योतिप्रसाद जी ने "Jaina sources of the History of Ancient India में कुन्दकुन्द के समय-विषयक विभिन्न मतों पर विचार करते हुए कुंदकुंद का समय 8 ई.पू. 44 ई. के मध्य स्वीकार किया है

(7) सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री - शास्त्री जी ने विभिन्न मत-मतान्तरों पर विचार करने के बाद ईसा की द्वितीय शताब्दी का समय निश्चित किया है।

(8) तिलोयपण्णत्ति में भगवान् महावीर की पश्चात्कालीन आचार्य परम्परा दी गई है, जो इस प्रकार है-

तीन केवलज्ञानी:	गौतम गणधर	12 वर्ष
	सुधर्मा स्वामी	12 वर्ष

	जम्बूस्वामी	38 वर्ष कुल 62 वर्ष
पाँच श्रुतकेवली:	विष्णुनन्दि	14 वर्ष
	नन्दिमित्र	16 वर्ष
	अपराजित	22 वर्ष
	गोवर्धन	19 वर्ष
	भद्रबाहु	29 वर्ष कुल वर्ष 100 वर्ष
	11 अंग 10पूर्व केधारी	कुल वर्ष 183 वर्ष
	पाँच एक देशधारी	कुल वर्ष 220 वर्ष
	चार आचारांग के धारी	कुल 118 वर्ष
		683 वर्ष

प्रो. हार्नले ने विभिन्न शास्त्रों, पट्टावली एवं अन्य पुरातात्त्विक सामग्री का अध्ययन अनुसंधान करके आचार्य कुन्दकुन्द का जन्म समय ई.पू. 108 निर्धारित किया है। नन्दीसंघ की पट्टावली के अनुसार कुन्दकुन्द ने 95 वर्ष 10 माह 15 दिन की दीर्घायु पायी थी। उन्होंने 11 वर्ष की आयु में दीक्षा धारण की एवं 33 वर्ष तक मुनिपद पर आसीन रहे। तदन्तर 44 वर्ष की आयु में आचार्य पद पर विराजमान हुए। 51 वर्ष 10.5 माह तक वे इस पद को सुशोभित करते रहे और 12-13 ई.पू. में समाधिमरण किया। इस प्रकार अद्यावधि आचार्य कुन्दकुन्द को दिवंगत हुए दो हजार वर्ष से अधिक हो चुके हैं।

कुन्दकुन्दाचार्यप्रणीत ग्रन्थ

विपुल साहित्यनिर्माण की दृष्टि से न केवल प्राकृत भाषा में ही, अपितु सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में कुन्दकुन्दाचार्य अग्रणी हैं। कुन्दकुन्द ने अध्यात्म विषयक और तत्त्व विषयक दोनों प्रकार के साहित्य की रचना की है। निम्नलिखित ग्रन्थ निर्विवादरूप से कुन्दकुन्द प्रणीत माने जाते हैं।

पवयणसार, समयसार, पंचत्थिकाय, नियमसार, बारस अणुवेक्खा, दंसणपाहुड, चरित्तपाहुड, सुत्तपाहुड, बोधपाहुड, भावपाहुड, मोक्खपाहुड, लिंगपाहुड,सिद्धभत्ति, चरितभत्ति, जोइभत्ति, अयरियभत्ति, णिव्वाणभत्ति, पंचगुरुभत्ति और तित्थयरभत्ति।

(1) पवयणसार (प्रवचनसार)– यह ज्ञान, ज्ञेय और चारित्र तीन अधिकारों में विभक्त है। ज्ञानाधिकार में आत्मा, सर्वज्ञ, अतीन्द्रिय सुख, शुद्धोपयोग, मोहक्षय आदि का वर्णन है। ज्ञेयाधिकार में द्रव्य, गुण पर्याय का स्वरूप, जीव का स्वरूप, पुद्गल और जीव का सम्बंध एवं निश्चय और व्यवहारनय के अविरोधी होने का वर्णन है। चारित्राधिकार में श्रमणधर्म के लक्षण, आगमज्ञान का लक्षण, मोक्षतत्त्व आदि का विवेचन है। पवयणसार में अमृतचन्द्र की टीकानुसार 275 और जयसेन की टीकानुसार 317 गाथाएँ हैं।

(2) समयसार और समयपाहुड (समयप्राभृत)– कुन्दकुन्द साहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थ है। यह 10 अधिकारों में विभक्त है। इनमें अमृतचन्द्र की टीकानुसार 415 और जयसेन की टीकानुसार 439 गाथाएँ हैं। इसमें जीव, अजीव, आस्रव, बंध,संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इन नव– पदार्थों का विवेचन हुआ है।

(3) पंचत्थिकाय (पंचास्तिकाय)– यह दो अधिकारों में विभक्त है। इसमें पाँच अस्तिकायों–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश का वर्णन हुआ है। अमृतचन्द्र की टीकानुसार इस ग्रन्थ में 173 और जयसेनाचार्य के अनुसार 181 गाथायें हैं। द्रव्य के स्वरूप ज्ञान के लिए इसका अप्रतिम महत्त्व है।

(4) णियमसार (नियमसार)– यह 12 अधिकारों में विभक्त है। इस पर पद्मप्रभमलधारिदेव की एकमात्र संस्कृत टीका मिलती है। इस ग्रंथ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को मोक्षप्राप्ति का उपाय प्रतिपादित किया गया है। आर्यिका ज्ञानमतीकृत संस्कृतटीका आधुनिक है।

(5) बारस अणुवेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा)– 91 गाथात्मक इस ग्रंथ में अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार, लोक, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, धर्म और बोधिदुर्लभ नाम द्वादश भावनाओं का सुन्दर विवेचन हुआ है।

(6) दंसणपाहुड (दर्शनप्राभृत)– 36 गाथात्मक इस ग्रंथ में सम्यग्दर्शन के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की अपेक्षा सम्यग्दर्शन को अधिक प्रधान माना गया है।

(7) चारित्तपाहुड (चारित्रप्राभृत)– 44 गाथात्मक इस ग्रंथ में सम्यक्चारित्र की विवेचना की गई है। संक्षेप में गृहस्थ धर्म और मुनिधर्म का भी वर्णन हुआ है।

(8) सुत्तपाहुड (सूत्रप्राभृत)– सूत्र शब्द का अर्थ है आगम। 27 गाथात्मक इस ग्रंथ में सूत्र (आगम)

का महात्म्य बतलाते हुए, आगम निर्दिष्ट मार्ग पर चलने का उपदेश दिया है।

(9) बोध पाहुड (बोधप्राभृत)- 62 गाथात्मक इस ग्रंथ में आयतन, चैत्य, प्रतिमा, दर्शन, जिनबिम्ब, जिनमुद्रा, आत्मज्ञान, देव अर्हन्त और प्रव्रज्या आदि बातों का आगमानुसार बोध कराया गया है।

(10)भावपाहुड (भावप्राभृत)- चित्तशुद्धि की महत्ता का ज्ञापक 163 गाथात्मक यह ग्रंथ अनेक महत्त्वपूर्ण बातों से भरा हुआ है। इसमें कहा गया है कि भावों की शुद्धि के बिना धारण किया गया दिगम्बररूप भी व्यर्थ है।

(11)मोक्खपाहुड (मोक्षप्राभृत)- 106 गाथात्मक इस ग्रंथ में आत्मा एवं मुक्तिप्राप्ति के उपायों का निर्देश किया गया है। दंसणपाहुड से लेकर मोक्खपाहुड तक 6 प्राभृतों पर श्रुतसागर सूरि की संस्कृत टीका उपलब्ध है।

(12)लिंगपाहुड (लिङ्गपाहुड)- 22 गाथात्मक इस प्राभृत ग्रंथ में जैन साधु के लिए निषिद्ध आचारों और उनके फलों का वर्णन किया गया है।

(13)सील पाहुड (शील पाहुड)- 40 गाथा वाले इस ग्रंथ में शील का महत्त्व बतलाते हुए शील के परिवार- दया, इन्द्रियजय, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और तप का वर्णन किया गया है।

(14)सिद्धभत्ति (सिद्धभक्ति)- इस लघु ग्रंथ में सिद्ध के गुण, सुख, स्थान, आकार आदि का निरूपण किया गया है।

(15)सुदभत्ति (श्रुतभक्ति)- भक्तिप्रधान 11 गाथात्मक इस ग्रंथ में आचारांग आदि द्वादश अंगों का सप्रभेद उल्लेख किया गया है।

(16)चारितभत्ति (चारित्रभक्ति)- 10 अनुष्टुप् वृत्तात्मक इस भक्तिपाठ में सामायिक आदि पाँच चारित्रों, अहिंसा आदि 28 मुलगुणों और 10 धर्म, 3 गुप्ति आदि की सिद्धि को मुक्ति का साधन बताया गया है।

(17)जोइभत्ति (योगिभक्ति)- 23 गाथात्मक इस भक्तिपाठ में योगियों की ऋद्धि-सिद्धि एवम् गुणों का वर्णन करते हुए उन्हें नमस्कार किया है।

(18)आयरियभत्ति (आचार्यभक्ति)- इसमें 10 गाथाएँ हैं, जिनमें आचार्य के गुणों की स्तुति करते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है।

(19)णिव्वाणभत्ति (निर्वाणभक्ति)- इस भक्तिपाठ में 27 गाथाएँ हैं। इसमें तीर्थंकरों एवं पुण्यात्माओं के निर्वाणस्थलों और कुछ अतिशयक्षेत्रों की नामोल्लेखपूर्वक वन्दना की गई है।

(20)पंचगुरुभत्ति (पंचगुरुभक्ति)-इस भक्तिपाठ में 65 गाथाएँ हैं। प्रारंभिक पाँच गाथाओं में क्रमशः अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँच परमेष्ठियों की वंदना की गई है तथा अन्तिम गाथा में इसका फलनिर्देश किया गया है।

(21)तित्थयरभत्ति (तीर्थंकरभक्ति) - इस 8 गाथात्मक स्तुतिपाठ में नामोल्लेखपूर्वक चौबीसों तीर्थंकरों की स्तुति की गई है। इसकी प्रारंभिक गाथा 'थोस्सामि' पद से प्रारंभ होती है। अतः इसका उल्लेख 'थोस्सामि भत्ति' नाम से भी मिलता है।

इस प्रकार ये कुन्दकुन्द की प्रामाणिक कृतियाँ हैं। इसके अतिरिक्त रयणसार (रत्नसार) भी कुन्दकुन्द कृत ही माना जाता है, किन्तु भाषाशैली आदि में अन्तर होने से कुछ विद्वान् इसके कुन्दकुन्दप्रणीत होने में संदेहास्पद स्थिति में है। इसमें (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र) का वर्णन है। उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त डॉ.ए.एन. उपाध्ये ने प्रवचनसार की प्रस्तावना में 43 और कुन्दकुन्दप्रणीत कहे जाने वाले ग्रन्थों की सूची दी है, किन्तु ये सभी अनुपलब्ध हैं। ऊपर वर्णित सभी ग्रंथों में प्रवचनसार, नियमसार और पंचास्तिकाय को अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। जैनधर्म में तात्त्विक ज्ञान के लिए इन ग्रंथों का अध्ययन अत्यावश्यक है।

समयसार विचार

नाम : 'वोच्छामि समयपाहुड' की सर्वप्रथम गाथा के इस वाक्य से स्पष्ट है कि ग्रन्थकार आचार्य कुन्दकुन्द ने प्राकृत ग्रन्थ का नाम समयपाहुड (समयप्राभृत) कहा है। सर्वप्रथम आचार्य अमृतचन्द्र सूरि (10वीं शताब्दी) ने आत्मख्याति नामक संस्कृत टीका में 'समयसाराय' कहकर इस ग्रन्थ का समयसार नाम उल्लेख किया है। जयसेनाचार्य (12 वीं शताब्दी) ने भी अपनी तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में इसका समयसार नाम से ही उल्लेख किया तथा पश्चाद्वर्ती सभी विद्वान् इसी नाम से इसका उल्लेख करते रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य अमृतचन्द्र ने कुन्दकुन्द के तीन प्रधान ग्रन्थों में से दो-पवयणसार (प्रवचनसार) और णियमसार (नियमसार) के आधार पर समयपाहुड (समयप्राभृत) का भी उल्लेख समयसार नाम से कर दिया है। वस्तुतः इसका नाम समयपाहुड ही है।

समयसार का अर्थः कुन्दकुन्दाचार्य ने समयपाहुड (समयप्राभृत) या समयसार में जीव या आत्मा को समय कहा है तथा समय के भेद किये हैं- स्वसमय और परसमय। दोनों का स्वरूप इस प्रकार कहा है-

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदं तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं।।(गाथा 2)

(जो आत्मा या जीव दर्शन, ज्ञान और चारित्र में स्थित है, उसे स्वसमय और जो पुद्गलकर्मप्रदेशों में स्थित है, उसे परसमय जानना चाहिए।) पंचात्थिकाय (पंचास्तिकाय) में कुन्दकुन्द ने 'समवायो पंचण्हं समउत्ति'- (गाथा-3) कहते हुए पाँच अस्तिकाओं (जीव, पुद्गल, आकाश, धर्म एवं अधर्म) को समय कहा है तथा समय पर्याय लोक दिया है। किन्तु समयपाहुड और पंचत्थिकाय के इन उल्लेखों में कोई विरोध नहीं समझना चाहिये, क्योंकि समयसार में जीव की मुख्यता से जीव समय कहा गया है और पंचास्तिकाय में पाँच अस्तिकायों का वर्णन होने से उन्हें समय कहा गया है। अमृतचन्द्र समयसार की टीका में समय पद की व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग पूर्वक अप् गतौ धातु से मानते हुए सभी द्रव्यों का समयपदवाच्य माना है- 'समयशब्देनात्र सामान्येन सर्व एवार्थोऽभिधीयते। समयतः एकीभावेन स्वगुण-पर्याययान् गच्छतीति निरुक्ते :' (आत्मख्याति, गाथा-3। अमृतचन्द्राचार्य की इस व्युत्पत्ति से कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा समयसार और पंचास्तिकाय में कृत दोनों अर्थ भी घटित हो जाते हैं।

जयसेनाचार्य ने तात्पर्यवृत्ति टीका में 'सम्यग् अयः बोधो यस्य भवति स समय आत्मा अथवा 'समय एकाभावेनायं गमनं समयः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार समय शब्द का अर्थ आत्मा और 'प्राभृतं सारं, सार : शुद्धावस्था' के अनुसार प्राभृत का अर्थ सार एवं सार का अर्थ शुद्धावस्था किया है।

उक्त व्युत्पत्तियों के अनुसार समयप्राभृत या समयसार का अर्थ हुआ आत्मा की शुद्धावस्था जीवादि पदार्थों का सार प्रतिपादित करने वाला ग्रन्थ। सार का अर्थ शास्त्र भी किया जाता है। इस ग्रंथ या शास्त्र में आत्मा या जीवादि नवपदार्थों का वर्णन है, अतः इसका नाम समयप्राभृत या समयसार किया गया है।

समयसार का महत्त्व

अध्यात्म जैन ग्रन्थों में समयसार का अद्वितीय महत्त्व है। प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में आत्मा के ऊपर विशेष रूप से विचार हुआ है, क्योंकि धर्म की नीति आत्मा के ऊपर ही टिकी है। परपदार्थों से भिन्न आत्मा के वास्तविक स्वरूप का परिचय कराना ही ग्रन्थकार का इस ग्रन्थ के निर्माण में मूल उद्देश्य रहा है। आचार्य भगवन् ने स्वयं कहा है-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं।।(गाथा 4-5)

अर्थात् कामभोगों एवं बंध की कहानी श्रुत, परिचित और अनुभूत है, अतएव सुलभ है, किन्तु परद्रव्यों से भिन्न एकाकी आत्मा के विषय में अपनी सामर्थ्य के अनुसार वर्णन करने का मैं (कुन्दकुन्द) प्रयत्न कर रहा हूँ। यदि मैं सफल हो जाऊँ तो इसे प्रमाण मान लेना और यदि किसी कारणवश अपने उद्देश्य से चूक जाऊँ तो प्रवंचना मत समझना अथवा विपरीत अर्थ को ग्रहण मत करना।

समयसार अध्यात्म-प्रधान आगमिक शास्त्र होने पर भी प्रभुसम्मित उपदेश के समान नहीं है, अपितु वह स्वानुभूति को प्रधानता देता है। कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं आत्मा की अनुभूति की और श्रुतकेवलियों की परम्परा से प्राप्त ज्ञान को अनुभूति द्वारा परखकर समयसार में प्रस्तुत किया है। शुद्धात्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाला जैन वाङ्मय में इतना सरल और सहज ज्ञेय ग्रन्थ नहीं है।

प्रमादी श्रमणों की स्पष्ट शब्दों में आलोचना कुन्दकुन्दाचार्य जैसे सशक्त ग्रन्थकार द्वारा ही समयसार में संभव हो सकी है। **श्रमणों का जैनधर्म में अत्यंत महत्त्व है। वे परम्परा से श्रुत की रक्षा करते रहे और आत्मकल्याण भी। अतः उनका प्रमादी होना किसी भी परिस्थिति में क्षम्य नहीं माना जा सकता।** कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में प्रमत्त श्रमणों की तीव्र निन्दा की है।

समयसार के आन्तरिक परिशीलन से उसमें वर्णित सांख्य, वेदान्त तथा बौद्धों के शून्यवाद और विज्ञानाद्वैतवाद का भी पता चलता है। यह ग्रंथ दार्शनिक एवं आध्यात्मिक होने पर भी दृष्टान्तिक शैली में लिखित होने के कारण अत्यंत रोचक एवं सहजगम्य है।

समयसार में नयव्यवस्था

जैनदर्शन के अनुसार वस्तुज्ञान के दो साधन माने गये हैं-प्रमाण और नय। धर्म और धर्मी के भेद के बिना वस्तु की अखण्ड प्रतीति 'प्रमाण' का विषय है तथा धर्म और धर्मी के भेदपूर्वक वस्तु का ज्ञान (नय) का विषय है। इस प्रकार नय, प्रमाण का, एकदेश है। नय भी दो तरह का होता है-द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। दार्शनिक ग्रन्थों में इनके अनेक भेद-प्रभेद किये गये हैं। अध्यात्मविषयक ग्रन्थों में विशेष रूप से इनके शुद्ध या निश्चयनय और व्यवहारनय नाम मिलते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में शुद्ध और व्यवहारनय का विवेचन किया है। शुद्ध या **निश्चयनय राग-द्वेष रहित चिदानन्दरूप निर्मल आत्मा को अपना विषय बनाता है और व्यवहारनय परपदार्थजन्य आत्मा की बद्ध दशा**

को अपना विषय बनाता है। अतएव आचार्य कुन्दकुन्द ने निश्चय (शुद्ध) नय को भूतार्थ (सत्य) और व्यवहारनय को अभूतार्थ (असत्य) कहा है। **अभूतार्थ होने पर भी व्यवहारनय पूर्णतया हेय नहीं है, क्योंकि साधक अवस्था (अपरमभाव) में स्थित जीव के लिए व्यवहारनय द्वारा ही उपदेश संभव है।** आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है-

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे।।(गाथा 12)

अर्थात् परमभावदृष्टाओं के द्वारा शुद्धनय द्वारा तत्त्वकथन करणीय है, किन्तु जो अपरमभाव (साधक अवस्था) में विद्यमान है, उनके लिए तो व्यवहारनय का उपदेश ही योग्य है।

प्रमाण के अतिरिक्त नयों का कथन भारतीय दर्शनों में केवल जैन दर्शन में ही मिलता है। अतः वस्तु अनेकात्मक है, अतः वस्तु के अनन्त धर्मों में एक धर्म को ग्रहण करने के लिए नय आवश्यक है। वस्तु के विभिन्न धर्मों में से जब हम किसी एक धर्म का कथन अन्य धर्मों के साथ सापेक्षभाव रखकर करते हैं, तब नय सुनय अन्यथा दुर्नय या मिथ्यानय है। नयों की व्यवस्था का समयसार में सुन्दर प्रतिपादन हुआ है।

समयसार की टीकायें

(1) **अमृतचन्द्रसूरि रचित आत्मख्याति** - संस्कृत भाषा में लिखित यह टीका अत्यंत प्रांजल, किन्तु पाण्डित्यपूर्ण शैली में है। टीका में शब्दों के जाल में न फँसकर गाथा के अभिप्राय को प्रकट करने में टीकाकार को पर्याप्त सफलता मिली है। आत्मख्याति नाम्नी इस टीका के अनुसार समयसार में 415 गाथायें हैं। टीका गद्यपद्यात्मक है। पद्यों को 'कलश' संज्ञा दी गई है। अमृतचन्द्र सूरि का समय ईसा की 10वीं शताब्दी है।

(2) **जयसेनाचार्य रचित तात्पर्यवृत्ति** - संस्कृत भाषा में लिखित इस टीका में अत्यंत सरल भाषा में समयसार का हृदय खोल दिया गया है। अध्यात्मग्रन्थों में वस्तुतः ऐसी ही सरल एवं स्पष्ट टीकाओं का प्रयोग होना चाहिए। अमृतचन्द्रसूरि की तरह जयसेनाचार्य ने पाण्डित्य प्रदर्शन बिल्कुल नहीं किया है। जयसेनाचार्य कृत तात्पर्यवृत्ति की टीका के अनुसार समयसार में 439 गाथायें हैं। अमृतचन्द्र सूरि ने कुछ द्विरुक्त जैसी गाथाओं को संभवतः छोड़ किया था, जबकि जयसेनाचार्य ने उन सब पर टीका लिखी है। जयसेन का समय ईसा की 12 वीं शताब्दी है।

उक्त दो प्रसिद्ध संस्कृत टीकाओं के अतिरिक्त देश की विभिन्न भाषाओं में समयसार की टीकायें

लिखी गई। हिन्दी भाषा में सर्वप्रथम टीका पं. जयचन्द्रजी छावड़ा ने लिखी। श्री छावड़ा फागई जिला रायपुर (राजस्थान) के निवासी थे। संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं पर उनका अनुपम अधिकार था। उन्होंने अपनी हिन्दी टीकाओं को भाषावचनिका कहा है। समयसार पर भाषावचनिका का निर्माण कार्तिकवदी 10 वि.सं. 1864 (1807 ई.) में सम्पन्न हुआ था। इस टीका की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी में समयसार पर श्री गणेशप्रसाद वर्णी, श्री मनोहरलाल वर्णी आदि द्वारा लिखित आधुनिक टीकायें भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

समयसार की भाषा

समयसार प्राकृत भाषा में निबद्ध है। विद्वानों ने प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की है - (1) 'प्रकृत्या स्वभावेन सिद्धं प्राकृतम्' अथवा 'प्रकृतीनां साधारणजनानामिदं प्राकृतम्'। अर्थात् साधारणजनों की बोलचाल की भाषा का नाम प्राकृत है और (2) 'प्रकृतिः संस्कृतं तत आगतं तत्र भवं वा प्राकृतम्।' अर्थात् संस्कृत प्रकृति है तथा उससे जो भाषा उत्पन्न हुई है उसे प्राकृत कहते हैं। यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रथम व्युत्पत्ति ही अधिक समीचीन मालूम पड़ती है तथा इस बात को अधिकांश निष्पक्ष विद्वानों ने स्वीकार भी किया है, किंतु प्राकृत के वैयाकरणों ने प्रायः प्राकृत शब्दों की सिद्धि संस्कृत को प्रकृति मानकर की है, अतः अध्ययन-अध्यापनार्थ द्वितीय व्युत्पत्ति का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

विभिन्न विद्वानों ने प्राकृत भाषाओं का वर्गीकरण देशभेद के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। सर्वप्रथम भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में प्राकृतों का वर्गीकरण किया और उसे 7 भागों में विभक्त किया- शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी, दाक्षिणात्य, प्राच्या, आवन्ती और वाल्हीकी। प्राकृत के सुप्रसिद्ध वैयाकरण वररुचि ने प्राकृत के 4 भेदों का 'प्राकृत प्रकाश' में विवेचन किया है। वे हैं - महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में उक्त चार भेदों के अतिरिक्त चूलिकापैशाची नामक एक प्राकृत को और स्वीकार किया है। संस्कृतसाहित्यशास्त्री विश्वनाथ ने तो प्राकृत के शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी, दक्षिणात्य, प्राच्या, आवन्ती, शाकारी, वाल्हीकी, द्राविडी, आभीरी और चाण्डाली - ये बारह भेद माने हैं। डॉ. आर. पिशल ने कुंदकुंदाचार्य के समयसारप्रभृति ग्रंथों की भाषा की स्थिति पर विचार करते हुए उसे जैन शौरसेनी की संज्ञा दी है। यह भाषा वस्तुतः शौरसेनी की पृष्ठभूमि में विकसित हुई है, किन्तु इसमें श्वेताम्बर जैन आगमों की भाषा अर्धमागधी और संस्कृत का गंभीर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। डॉ. आर. पिशल द्वारा प्रस्तुत 'जैन शौरसेनी' नाम का डॉ. ए.एन. उपाध्ये प्रभृति आधुनिक विद्वानों ने भी समर्थन किया है। कुंदकुंद की प्राकृत के लिये इससे उपयुक्त नाम नहीं हो सकता है। जैन शौरसेनी की तरह ही जैकोबी आदि विद्वानों ने आगमेतर जैन साहित्य की भाषा

का नाम महाराष्ट्री दिया है।

डॉ. कोमलचंद्र जैन ने प्राकृत-प्रवेशिका में भाषागत रूप को ध्यान में रखते हुए प्राकृत को महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, जैन महाराष्ट्री, जैन शौरसेनी और अर्धमागधी इन 6 भागों में विभक्त किया है। साहित्यिक प्राकृतों के वर्गीकरण के लिए डॉ. जैन का यह वर्गीकरण उपयुक्त प्रतीत होता है। इन छहों में संरचित साहित्य की स्थिति इस प्रकार है-

(1) महाराष्ट्री - राणवहो, गउडवहो, वज्जालग आदि काव्यों की भाषा।

(2) शौरसेनी - आंशिक रूप से भास, कालिदास, शूद्रक आदि नाटककारों के संस्कृत रूपकों की एवं प्राकृत सट्टक कर्पूरमंजरी आदि की भाषा।

(3) मागधी - वेणीसंहार संस्कृत नाटक, अभिज्ञानशाकुन्तल एवं मृगच्छकटिक की आंशिक भाषा।

(4) जैन महाराष्ट्री - आगमेतर जैन साहित्य की भाषा।

(5) जैन शौरसेनी - दिगम्बर जैन आगमों की भाषा।

(6) अर्धमागधी - श्वेताम्बर जैन आगमों की भाषा।

जैन शौरसेनी प्राकृत की विशेषाताएँ

(1) इसकी मूल पृष्ठभूमि शौरसेनी प्राकृत है, किन्तु इसमें श्वेताम्बर जैनों के आगमसाहित्य की भाषा अर्धमागधी और संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव देखा जाता है।

(2) जब अनादि सरल व्यंजन 'क,ग,च,त,द,' का लोप हो जाता है तो अवशिष्ट 'अ' होने पर यश्रुति होती है। सामान्यतः प्राकृत में मूल 'य' नहीं होता है, किन्तु उक्त व्यंजनों के स्थान पर 'अ' के पढ़ते समय 'य' जैसी ध्वनि सुनाई पड़ती है, इसे ही यश्रुति कहते हैं। यथा - णअरं>णयरं (नगरम्) एअत्तं>एयत्तं (एकत्वम्), तित्थअरो>तित्थयरो (तीर्थकरः), विआणीहि>वियाणीहि (विजानीहि) आदि।

(3) अगर 'क' 'ग' आदि लोप को प्राप्त वर्णों के पूर्व उकार का प्रयोग है तो फिर यश्रुति न होकर वश्रुति देखी जाती है। यथा - मणवो >मणुवो (मनुजः), उअरं >उवरं (उदरम्) आदि।

(4) वर्ग के पंचम वर्णों में केवल 'ट' वर्ग और 'प' वर्ग के अंतिम वर्ण 'ण्' और 'म्' ही पाये जाते हैं। जैन शौरसेनी में 'ङ' 'ञ्' 'न्' का 'ण' हो जाता है तथा अपने वर्ग के पूर्व आने वाले पाँचों पंचम् वर्णों का अनुस्वार हो जाता है। यथा भूयंगो (भुजंग), किंचि खंडो (खण्डः), सुंदरो

(सुन्दर), संबंधो (सम्बंधः), णियमा (नियामत्), अण्ण (अन्नम्) आदि।

(5) पूर्वकालिन क्रिया के अर्थ संस्कृत के क्त्वा औ ल्यप् प्रत्यय के स्थान पर ऊण, दूण, दूणं, त्तु, दुं, त्ता प्रत्यय होते हैं। यथा- जाणिऊण (ज्ञात्वा), परिसदूण (दृष्टवा), णादूणं (ज्ञात्वा), वंदित्तु (वन्दित्वा), थुणित्तु (स्तुत्वा), जाणिदु (ज्ञात्वा), जिणित्ता (जित्वा)आदि।

(6) सप्तमी विभक्ति एकवचन में ङि स्थान पर म्हि कहीं-कहीं होता है। यथा-णोकम्मम्हि (णोकर्मणि), लोयम्हि (लोके) आदि।

(7) कभी-कभी 'त' का 'द' और 'क' का 'ग' में परिवर्तन हो जाता है यथा-होदि (भवति), परिचिदा (परिचिताः), एगं (एकं) आदि।

(8) जैन शौरसेनी भाषा के सभी ग्रन्थ पद्यात्मक हैं।

(9) जैन महाराष्ट्री की अपेक्षा जैन शौरसेनी आंशिक रूप में अधिक प्राचीन है। डॉ. आर.पिशल अपने 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' में लिखते हैं कि 'अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और जैन शौरसेनी में विशुद्ध 'न' शब्दों के आरंभ में और द्वित्व 'न' (न्न) शब्दों के मध्य में ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। किन्तु पिशल का यह कथन भ्रामक है। जैन शौरसेनी में विशुद्ध 'न' द्वित्व (न्न) दोनों ही क्रमशः 'ण' और 'ण्ण' में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे - नाम > णाम, निर्गतः >णिग्गदो, नित्यं > णिच्चं, निश्यस्य > णिच्छयस्स, निर्वाणम् > णिव्वाणं आदि (देखें क्रमशः समयसार गाथा 17, 47, 16, 27, 64,)। इसी प्रकार भिन्न > भिण्णं, अन्नं >अण्णं आदि।

समयसार का प्रतिपाद्य विषय :

समयसार विषयविवेचन की दृष्टि से नौ अधिकारों में विभक्त है। इनके नाम और इनमें प्रतिपादित विषय इस प्रकार हैं-

(1) जीवाजीवाधिकार - टीकाकारों ने जीवाजीवाधिकार को दो भागों में विभक्त किया है -

(क) पूर्वरंग या जीवाधिकार और (ख)अजीवाधिकार।

(क) पूर्वरंग या जीवाधिकार - प्रारम्भिक 28 गाथाओं तक पूर्वरंग या जीवाधिकार है। इसमें मूलरूप से आत्मा के शुद्धस्वरूप का वर्णन एवं निश्चय और व्यवहारनय का विवेचन है।

(ख) अजीवाधिकार - आगे की 30 गाथाओं में अजीवाधिकार है। इसमें अजीव (पुद्गल) रूप परपदार्थों से जीव की भिन्नता सिद्ध की गई है।

(2) **कर्तृकर्माधिकार** - इसमें आत्मा के परिणामों के कर्त्ता होने पर पुद्गलों का कर्मरूप में परिणमन का वर्णन है। अज्ञान, अविरति और मिथ्यात्व परिणामी आत्मा के ही कर्मबद्ध होता है।

(3) **पुण्यपापाधिकार**- इस अधिकार में बतलाया गया है कि अज्ञानपूर्वक किये गये व्रत, नियम आदि मुक्ति के कारण नहीं हैं। पुण्य और पाप दोनों संसार के कारण हैं। ज्ञान ही परमार्थ है।

(4) **आस्रवाधिकार** - इसमें आस्रव के कारणरूप मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग, राग, द्वेष, मोह आदि का वर्णन किया गया है।

(5) **संवराधिकार** - इस अधिकार में भेदविज्ञान को संवर का मूल कारण बताते हुए संवर के क्रम का वर्णन किया गया है।

(6) **निर्जराधिकार**- इसमें द्रव्य और भाव उभयविध निर्जरा का विवेचन किया गया है।

(7) **बंधाधिकार**- इस अधिकार में बंध के कारणों का विवेचन किया गया है।

(8) **मोक्षाधिकार** - इसमें मोक्ष का स्वरूप, मोक्ष का उपाय आदि वर्णित है।

(9) **सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार** - इस अधिकार में अनेकान्तवाद की दृष्टि से जीव का निरूपण एवं जीव के कर्तृत्व-भोक्तृत्व के विषय में विचार किया गया है।

इस विभाजन से स्पष्ट है कि समयसार में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन 9 पदार्थों का वर्णन हुआ है। मुक्ति की प्राप्ति के लिए इन पदार्थों का ज्ञान और श्रद्धान आवश्यक माना जाता है। समयसार के माध्यम से इन पदार्थों का ज्ञान और श्रद्धान सहज ही संभव है। अतः वास्तव में समयसार मुक्तिप्रतिपादक ग्रन्थ है।

समयसार में छन्द-अलंकार :

जीवाजीवाधिकार के सभी पद्यों में गाथा (गाहा) छन्द है। संस्कृत के आर्या छन्द को ही प्राकृत में गाथा कहा जाता है। आर्या का लक्षण इस प्रकार किया गया है।

यस्याः पादेप्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टदश द्वितीये चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या।।

(जिसके प्रथम और तृतीय चरण में 12 मात्रायें, द्वितीय चरण में 18 मात्रायें और चतुर्थ चरण में 15 मात्रायें होती हैं, वह आर्या छन्द है।)

समयसार - जीवाजीवाधिकार में अनेक शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का प्रयोग हुआ है। अर्थालंकारों में विशेष रूप से दृष्टांत का प्रयोग अधिक दृष्टिगोचर होता है।

आचार्य विशुद्धसागरकृत समय-देशना :

इक्कीसवीं शताब्दी के जिन जैनाचार्यों का प्रभाव जैन श्रमणपरम्परा में अमिट एवं चिरस्थायी होगा, उनमें उत्कृष्ट क्षयोपशमज्ञानी आचार्य विशुद्धसागर जी महाराज का नाम भी कनिष्ठिकाधिष्ठित होना असंदिग्ध है। उन्होंने समयसार पर उभयनयाश्रित एवं उपादान-निमित्त आधारित जो महत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, उनका संकलितरूप ही 'समय-देशना' है। यह समयसार की मात्र द्रव्यानुयोगी देशना नहीं है, अपितु यह प्रसंगतः उपस्थापित समस्त जैन सिद्धांतों की देशना है। इसमें क्वचित् प्रथमानुयोग भी है, तो क्वचित् चरणानुयोग और करणानुयोग भी विद्यमान है। इस देशना में आचार्यश्री के अनुभव पर तुलित तर्क हैं। सतसैया के दोहों की तरह उनके छोटे-छोटे वाक्य भी जो कथ्य प्रस्तुत करने में समर्थ हैं, वह बड़े-बड़े ग्रन्थ भी प्रस्तुत करने में असमर्थ दृष्टिगोचर होते हैं। उनके द्वारा दिये गये उदाहरण / दृष्टान्त / घटनाक्रम इतने मार्मिक हैं कि सहसा ही पाठक के हृदय को प्रभावित करने में समर्थ हैं यथा-

'जीव का परिणमन स्वतंत्र है, कर्म का परिणमन स्वतंत्र है। यह जो कथन है कि कर्म से ऐसा हुआ, ये निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध तो है, लेकिन कर्ता-कर्मभाव नहीं है।'

'बंध सहित आत्मा मुक्त नहीं, मुक्त आत्मा बद्ध नहीं, पर बद्ध आत्मा मुक्तस्वभावी है'

'जो मठ बनाते रहते हैं, वो सत्य नहीं बोल पाते, क्योंकि उन्हें मठ की चिंता रहती है।..... तुम अमुकसागर बन गये और मठ बनाकर बैठ गये और यह कहा कि मेरे मठ का यह पता है, तो इतना समझना कि तू जैनधर्म की अप्रभावना कर रहा है, यह धर्म की प्रभावना नहीं है।'

'कुन्दकुन्द को समझना है तो आचार्य समन्तभद्र को भी समझना पड़ेगा।.... मैं तो इस बात को अच्छा नियोग मानता हूँ कि गुरुमहाराज ने मुझे द्रव्यानुयोग नहीं पढ़ाया। सबसे पहले उन्होंने चरणानुयोग से लेकर करणानुयोग पढ़ाया, प्रथमानुयोग पढ़ाया।'

'एक ज्ञानी हमारे पास आये, बोले कि कहाँ बनाऊँ मानस्तंभ? मैंने कहा, पण्डित जी को ले जाओ, मुझे यह कार्य नहीं कराना है। यह ईंट की दीवार उसमें बनेगी और जीवों की हिंसा होगी। एक ईंट के पकने में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती है। इसलिए साधुओं को इसमें मौन रहना चाहिए। आशीर्वाद इस बात का है कि धर्म का कार्य करो, लेकिन यह बात पूछने मत आना कि ईंट कहाँ की मँगाऊँ।'

'सोलापुर में चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग मानने वाले लोग अधिक हैं। लेकिन उन्होंने प्रवचन सुना तो बोले, 'महाराज जो बोल रहे हैं वह सिद्धांत से बराबर बोल रहें हैं। कोई गड़बड़ी नहीं है, वे आगम से बोल रहे हैं।' मुझे अच्छा लगा कि कम-से-कम जीव शुद्धोपयोग के राग में तत्त्व सुनने से दूर तो नहीं हुआ। ....काना से काना मत कहो, भैया! आपकी बात में दम तो होगी तो जीव धीरे-धीरे स्वीकारेगा।'

' निश्चय - व्यवहार से अतिक्रान्त जो है, समयसार है। व्यवहारपक्ष समयसार नहीं है। निश्चयपक्ष भी समयसार नहीं है। भ्रम को निकाल दो।'

उपर्युक्त वाक्यों में जो अर्थगौरव भरा हुआ है, वह अन्यत्र उपदेशों में क्वचित् -क्वचित् ही दृष्टिगत होता है। इतना ही नहीं, **आचार्य विशुद्धसागर जी का ज्ञान चारित्ररूप फलवान् है। जैसी उनकी आध्यात्मिक पकड़ है, वैसी-ही श्रमणोचित चर्या भी। आपकी विषयवस्तु को समझाने की ऐसी अद्भुत शैली है कि गूढ़-से-गूढ़ विषय भी हस्तामलकवत् सुस्पष्ट हो जाता है।** भाषा पर आपकी असाधारण पकड़ है। आवश्यकता पड़ने पर वे वाग्योगों (मुहावरों) का भी प्रयोग करते हैं। पापानुबंधी पाप को दर्शाने के लिए असाता में असाता के साथ 'गरीबी में आटा गीला' का प्रयोग सहज ही आकर्षण उत्पन्न कर हार्द को स्पष्ट कर देता है।

आचार्य श्री उत्कृष्ट क्षयोपशमज्ञानी, उत्कृष्ट चर्या के पालक साधु होने पर भी निरभिमानता की तो साक्षात् प्रतिमा हैं। वे अपनी विनम्रता प्रकट करते हुए कहते हैं- भगवती सरस्वती! व्याख्यान काल में अक्षर, पद, मात्रा की किंचित् भी हानि हुई हो तो वह विशुद्धसागर की समझना। जो भी आपको मिला है, आचार्यभगवन् अमृतचन्द्र स्वामी, जयसेन स्वामी, कुन्दकुन्द स्वामी का समझना और जो सीखकर आया हूँ, वह विरागसागर का समझना। लेकिन जो गलती हुई हों, विशुद्धसागर की समझना।'

समयदेशना में समयसार की गाथाओं पर आचार्यश्री के प्रवचन हैं। इन प्रवचनों को लिपिबद्ध पढ़कर भोला-भाला भटकता मिथ्यादृष्टि भी सम्यक्त्व की प्राप्ति से आत्मकल्याण कर सकेगा।

यह मेरा अहोभाग्य है कि पूज्यश्री की समयदेशना के सम्पादन के साथ उसकी सम्पादकीय लिखने का भी मुझे प्राप्त हुआ है। मैं पूज्य आचार्यश्री के पावन पादपद्मों में कोटिशः नमोऽस्तु निवेदन करता हुआ भावना भाता हूँ कि 'समयदेशना' श्रावकों को एकान्त के पंक से निकालकर उनके मोक्षमार्ग को प्रशस्त करने में निमित्त बने।

डॉ. जयकुमार जैन
मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
अध्यक्ष, अखिल भार.दिग.जैन शास्त्रिपरिषद्

अध्यात्म विद्या की समृद्धि में आचार्य विशुद्धसागर जी का योगदान

प्रो.नलिन के.शास्त्रि
बोधगया

व्यक्ति के मन में तीन जिज्ञासाएँ होती हैं, जिनका वह समाधान चाहता है। तीन प्रकार के प्रश्न उसके मानस में घुमड़ते रहते हैं। मैं कौन हूँ, यह जगत् क्या है तथा इसका स्वरूप क्या है? मेरा संसार के साथ सम्बंध क्या है? और इन्हीं जिज्ञासाओं के कारण अस्तित्व में आए विविध दर्शन आचार, अर्थात् आचरण और क्रिया तथा विचार, अर्थात् सोचना। ये दो अंग हैं किसी भी दर्शन के। धर्म विविध दर्शनों के बाह्य रूप से कहे जा सकते हैं। यद्यपि आजकल इस 'धर्म' अर्थात् सम्प्रदाय को ही दर्शन की संज्ञा दी जाने लगी है और उसके प्रमुख कारण आज का **मनुष्य भौतिकता की अंधी दौड़ में इस हद तक व्यस्त हो चुका है कि उसके पास चिन्तन-मनन के लिये अवकाश ही नहीं रह गया है। अतः धर्म के रूप में उसे जो कुछ भी ठोस अथवा व्यवहारिक दीख पड़ता है, उसी का पालन करके वह सन्तोष अनुभव कर लेता है।** धर्मों की प्रवृत्ति का मूल स्रोत दार्शनिक होते हुए भी हम इस उस सद्गुरु की खोज में लगे ही रहते हैं। आत्मा की ज्ञानपिपासा दार्शनिक विचार से शांत होती है कि किसी एक ही ध्येय की खोज में एक ही निर्विवादित और सर्वजनानुभूत मार्ग- सत्य, दया, मैत्री आदि - का अनुसरण करने वाले इन समस्त धर्म सम्प्रदायों को मूलधार एक ही है। समस्त ज्ञानों का पर्यवसान, समस्त ज्ञानों का निष्कर्ष, ज्ञान, विवेक, विचार, आदि का निष्कर्ष उनका परिणाम जहाँ किसी प्रकार के द्वन्द्व के लिए स्थान ही नहीं होता।

मनुष्य-देह भौतिक तत्त्वों से बनी है, परंतु उसमें निहित चेतनाशक्ति का स्रोत आत्मा है। समस्त जगत् को देखना ही वास्तविक दर्शन है तथा किसी भी धर्म का मूलधार भी है, जिसके अनुसार प्रत्येक प्राणी की आत्मा में एकत्व व्याप्त है। व्यष्टि को समष्टि में विलीन कर देने की वृत्ति अर्थात् समष्टि और व्यष्टि के मध्य किसी प्रकार के भेद ही नहीं रह जाय, वहीं स्थापित होता है आत्मतत्त्व का चिंतन। **पूज्य गुरुदेव विशुद्धसागर जी महाराज ने देशना की आख्याओं के जरिये अध्यात्म को इस नये युग की भाषा के रूप में प्रवर्तित किया है। जहाँ उनके चिंतन का प्रकर्ष अध्यात्म के माध्यम से सबको जोड़ना है।** उन्होंने अध्यात्म का अर्थ समझाया है अध्ययन करना आत्मा का, स्वयं का, देह और विदेह के बीच फर्क समझ कर, ताकि परमात्मा का पता चल सके। पूज्य गुरुदेव मानते हैं कि जो आपका

उत्थान करे, वह आध्यात्मिकता है। उसके दृष्टि-पथ में आध्यात्मिकता अपने भीतर की यात्रा है।

अलग-अलग दार्शनिक मान्यताएँ व्याप्त हैं, पर अध्यात्म इन सबको एक सूत्र में बांधता है। कोई वैष्णव हो सकता है, कोई सिक्ख हो सकता है। **अध्यात्म पारलौकिक विश्लेषण या कोई शास्त्र का अध्ययन नहीं है। अध्यात्म का शाब्दिक अर्थ है-आत्म-अध्ययन। यह एक कला है, जिससे मनुष्य यह जानता है कि उसको शाश्वत सुख कैसे मिल सकता है? मनुष्य का मूल स्वभाव आनन्दमय जीवन जीना है,** जिसके लिए जीवनपर्यन्त प्रयास करता है। इतने प्रयासों के बाद भी निराशा ही हाथ लगती है। मतलब कला सीखने का प्रयास ही नहीं किया गया और येन-केन-प्रकारेण आनन्द प्राप्त करने में लग गये। बाजार से सुख खरीदने में लग गये। भूल गये कि **साधनों से क्षणिक सुख, लेकिन दीर्घकालिक दुःख की प्राप्ति होती है।** तात्पर्य यह कि हम भूलवश दुःख खरीद - खरीद कर लाते हैं, जब तथाकथित खरीदा गया सुख हमें दुःख का एहसास कराता है तो उसको दूर करने के लिए दूसरा दुःख खरीद कर लाते हैं। पूज्य गुरुदेव के चिंतन का अभिप्रेत है कि न तो हम शरीर हैं और न मन या बुद्धि। हमारी पहचान तो विशुद्ध चेतना है, जो हमारी आत्मिक पहचान भी है। हमें उस आस्था को संबोधित करना है जहाँ शुद्ध चैतन्य है। **सम्यक्त्व की आराधना से जब हम अपने भीतर जाएँगे और आत्मा से साक्षात्कार करेंगे तो सच्चे अध्यात्म की अनुभूति होगी।**

आत्मज्ञान का केन्द्र हृदय से ही सारे निर्णय लिये जाने चाहिए। हृदय गलती नहीं करता, क्योंकि वहाँ वास्तविक ज्ञान-आत्मज्ञान का वास है। आडम्बरों के विरोधी क्रांतिकारी कबीर साहब के अनुसार 'ज्ञान सोई जो आतम चीन्हे और ज्ञान कुछ नाहि। चार दिशा छोड़ आसरा, मगन रहे मन माही।' **आत्मज्ञान के अभाव में दूसरे सभी ज्ञान के प्रकार अधूरे हैं, अपर्याप्त हैं। आत्मज्ञान मूलज्ञान है। मूलज्ञान की अवहेलना मानवता को भारी पड़ेगी।**

श्रमणसंस्कृति के मुकुटमणि, आचार्य कुन्दकुन्द, दिगम्बर मूल परंपरा के वज्रकवच हैं। दो हजार वर्षों से जैन-क्षितिज पर चमकते दिनकर आचार्यश्री ने अपनी प्रभा से जिनशासन की धवल कीर्ति को जीवित रखकर इसका शीर्ष ऊँचा किया है। वे सिद्धि प्राप्त महामुनि थे, बाल दीक्षित थे और विलक्षण प्रज्ञा-सम्पन्न थे। उनके व्यक्तित्व का पैमाना मात्र यह ही नहीं है प्रत्युत इसीलिए वे अधिक पूजित हैं क्योंकि उन्होंने जनजीवन के उत्थान हेतु और उसमें शुचिता की संस्थापना हेतु प्रतिष्ठापित किया कि **आगम का सार अध्यात्म में छुपा होता है।** अतः आगम व अध्यात्म के प्राण -चैतन्य को उन्होंने अपने लेखनी का मुख्य बिन्दु चुना। उनके व्यक्तित्व का भावपक्ष धवलधारा-सा स्वच्छ है। द्रव्यपक्ष भी कोमल भावनाओं से आच्छादित, पूर्णमासी के चन्द्र -सा श्वेत है। उनके व्यक्तित्व व साहित्य की गोद में अनेक

निर्ग्रन्थ संतों को आश्रय मिला है। उनके सर्वाधिक गरिमामयी यशस्वी जीवन का प्रबल प्रमाण यह है कि उन्हें भगवान् महावीर और उनके मुख्य गणधर गौतम स्वामी के तत्काल बाद मंगल के रूप में स्मरण किया जाता है मंगल प्रबोधन के स्तुत्य रूप में :

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुंदाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

यह एक अबाधित सत्य है कि आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बर जैनधर्म की मुद्रा अथवा पहचान ही बन गए हैं। अध्यात्म श्रुत-शिखर की नींव के पत्थर, भरतक्षेत्र के जन-मन को आत्मविद्या का पाठ पढ़ाने वाले आचार्य कुन्दकुन्द के ज्ञानसिन्धु से प्रवाहित अध्यात्म की अजस्र धारा आज भी इस धरती को समृद्ध बना लोक-मांगल्य की ओर बढ़ रही है। समयसार जिनवाणी एवं श्रुतगंगा का सारभूत तत्त्व धन अध्यात्म रसपूर्ण ग्रन्थ शिरोमणि के रूप में सुशोभित है। **समयसार केवली-श्रुतकेवली की वाणी का सार है। निज भगवान्-आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादक, यह ग्रंथाधिराज जैनागम का बेजोड़ और अमूल्य रत्न है। उनके अध्ययन-मनन- चिंतन एवं अनुभवन से अपने तथा पर के मोह का नाश होता है।**

लगभग दो हजार साल पहले पूर्व विक्रम की प्रथम शताब्दी में कोण्डकुन्दपुर (कर्नाटक) में आविर्भूत, आचार्य कुन्दकुन्द के कई नाम प्रचलित हैं-वक्रग्रीव, एलाचार्य, पद्मनन्दि, गृद्धपिच्छ इत्यादि। संभव है कि कोण्डकुन्दपुर के निवासी होने के कारण कुन्दकुन्द नाम लोकप्रिय हुआ। काव्यात्मक दृष्टि से देखें तो चन्द्रगिरि के एक शिलालेख के अनुसार, कुन्द पुष्प समान धवल प्रभा होने से इन्हें यह नाम प्राप्त हुआ। विंध्यगिरि शिलालेख में उनका वर्ण और सुन्दर है। यतीश्वर कुंदकुंद मानों धूल से भरी धरती से चार अंगुल ऊपर चलते थे, क्योंकि वे अन्तर-बाह्य धूल से मुक्त थे। चौदहवीं शताब्दी में आचार्य कुन्दकुन्द की महिमा इतनी वृद्धिगत हो गई थी कि उस समय के कवि वृन्दावनदास को कहना पड़ाः हुए हैं, न होहिंगे; मुनिन्द।' कुन्दकुन्द के एक हजार वर्ष बाद 'समयसार' पर आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने संस्कृत में गंभीर टीका लिखी, जिसका नाम है 'आत्मख्याति'। समयसार का मर्म जानने के लिए आज इसी टीका का आश्रय लिया जाता है। समयसार की प्रशंसा करते हुए वे इसे जगत् का अक्षय-चक्षु कहते हैं। उनका मानना है कि समयसार से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। **समयसार एक ऐसा आगम ग्रन्थ है, जिसमें लाखों शास्त्रों का सार सन्निहित है और यही कारण है कि यह जैनसमाज का प्रकाशस्तंभ है, साधकों की कामधेनु है, आत्मफलक पर निर्मित की गयी एक अद्भुत और अनुपम कलाकृति है।**

'समय' शब्द के दो हिस्से हैं - सम्+अय। अयन का अर्थ है गमन करना, जाना। अर्थात् समय का जब भी अनुभव होता है , वह ऐसे होता है, जैसे वह गुजर रहा है। समय का अनुभव स्थिरता की तरह नहीं होता। 'सम्' उपसर्ग है, जिसका अर्थ है एक साथ। जो एकसाथ गतिमान है, वह समय। तथापि अयन का एक और अर्थ भी है : जानना, वेदना। समय को जानता कौन है? जो समय को तानता है, वह भीतर बैठा है। वही तानने वाला है। इसलिए कुन्दकुन्द समय को आत्मा भी कहते हैं और वही अर्थ सम्यक् है, क्योंकि समयसार आत्मा की पूरी यात्रा का सार-निचोड़ है। संक्षेप में देखा जाए तो समयसार वही कहता है जो भारत का हर मुख्य दर्शन कहता है। जीव बंधन में कैसे पड़ा और उससे मुक्त कैसे हो सकता है? सांख्य, वेदान्त या समस्त उपनिषद् जिस प्रक्रिया का ऊहापोह करते हैं, वही समयसार में है, कुछ खास शब्दों और धारणाओं के फर्क के साथ। सृष्टि के जन्म की प्रक्रिया और उससे पार उठने के विषय में हर धर्म की अपनी प्रणाली और शब्दावली होती है, वैसी समयसार की भी है लेकिन मूल प्रतिपादन वही है, इससे अन्यथा हो भी नहीं सकता। क्योंकि मनुष्य का मन जिस ढंग से काम करता है, और अस्तित्व के जो भी मूलभूत तत्त्व हैं, नियम हैं, वे तो एक-जैसे हैं, चाहे हम जैन- दृष्टिकोण से देखें, चाहे बौद्ध, चाहे हिन्दू। उदाहरण के लिए, धर्म कोई भी हो, इंद्रियाँ पाँच होंगी और उनके विषय भी पाँच ही होंगे। उन विषयों के बारे में उठने वाली इच्छाएँ भी समान होंगी। यह तो संभव नहीं है कि बौद्ध व्यक्ति आँख से सुनता हो कान से देखता हो और जैनधर्मी किन्हीं और इंद्रियों से देखता-सुनता हो। **समयसार पढ़ते हुए उन सारे दर्शनशास्त्रों का पुनः स्मरण होता है; जिन्हें प्रत्येक अक्षर-साधक ने कभी-न-कभी पढ़े हैं। आज के अहंकारी युग में यह वक्तव्य चिंतन-मनन करने जैसा है।** इतने महान् ग्रंथ की रचना का प्रारंभ करते हुए, जिसे दो हजार वर्षों का अंतराल धूमिल न कर सका। लेखक इतना विनम्र है कि खुद इस विशाल कार्य का कर्ता बनना नहीं चाहता। वे केवल इस ज्ञान के वाहक हैं। इसकी हर गाथा सातवें-छठवें गुणस्थान में झूलते हुए महामुनि के आत्मानुभव से निकली हुई है। **समयसार की सर्वप्रथम गाथा भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार मंगलाचरण की है। यह एक खूबसूरत रिवाज था जो सभी प्राचीन भारतीय शास्त्रों में पाया जाता है।** अपनी बात शुरू करने से पहले उस विषय में पारंगत पूर्व सिद्धों और ज्ञानीजनों को प्रणाम करके उनके आशीर्वाद की छाया में लेखक मार्गस्थ होते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भी उसी का निर्वाह करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि श्रुतकेवलियों (गणधर) द्वारा कथित समयपाहुड को मैं आप तक पहुँचा रहा हूँ। समयसार के कुल नौ अध्याय हैं, जो क्रमशः जीव-अजीव, कर्तृकर्माधिकार, पुण्यपापाधिकार, आस्रवाधिकार, संवराधिकार, निर्जरा अधिकार, बंध अधिकार, मोक्ष अधिकार और सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार के माध्यम से आत्म-विभूति का जन-जन को साक्षात्कार कराते हैं। ग्रंथ के अंत में आचार्य चेतावनी और एक प्रलोभन भी देते हैं। जो समय पाहुड के वचनों को पढ़कर उसके अर्थ को अनुभव भी करेगा वह उत्तम सौख्य को

प्राप्त होगा।

इस ग्रंथ में जिसे हम जीवन समझते हैं-रंगमंच की उपमा दी गई है जो कि बड़ी अर्थपूर्ण प्रतीत होती है। जीवन के नाटक में हम इसीलिए खो जाते हैं, क्योंकि नाटक को सच मान लेते हैं। 'पाप-पुण्य अधिकार अध्याय में (गाथा नं. 145)कुन्दकुन्दाचार्य प्रश्न करते हैं: तुम अशुभ कर्म को कुशील और शुभ कर्म को सुशील मानते हो, लेकिन वह कर्म सुशील कैसे हो सकता है जो तुम्हें संसार में या रंगमंच में प्रविष्ट कराता है? इसके बाद वे कर्म का रहस्य समझाते हैं।'

'वस्तुतः कोई कृत्य नहीं बाँधता। वह राग में डूबा हुआ मन ही है जो बंध जाता है। विरक्त होकर कुछ भी करो तो नहीं बाँधेंगे; यही जिनोपदेश है। अब यह पूरा कर्मसिद्धांत हर धर्म का, हर दर्शन का आधार है और यहीं से मुक्ति का प्रयास शुरू होता है।''

प्रत्येक प्रकरण का प्रारम्भ आचार्य महाराज ने इस प्रकार किया है मानो वह एक रंगमंच प्रवेश हो। प्रकरण के प्रारंभ में पात्र मंच - प्रविष्ट होता है, अंत में निकल जाता है। यह पात्र कौन है? पाप -पुण्य मंच पर प्रवेश करते हैं और अंतःद्वंद्व समाप्त हो जाता है। इसीलिए वे दोनों एक होकर मंच से बाहर निकल जाते हैं। चौथे अध्याय में आस्रव यानी मनोविकार मंच पर आते हैं और अंत में बाहर निकल जाते हैं, क्योंकि चित्त में ज्ञान का उदय होते ही विकार ओस-कण की तरह विलीन हो जाते हैं। क्योंकि मन की जो विभिन्न अवस्थाएँ हैं- आस्रव या संवर या निर्जरा-ये सब कुन्दकुन्दाचार्य की दृष्टि में विभिन्न स्वांग हैं, जो मन रचता है। कभी वह विकार बनकर आयेगा, कभी निर्विकार बनकर; लेकिन वे सब स्वांग ही हैं, सत्य नहीं। यहाँ तक कि उनकी दृष्टि में मोक्ष तत्त्व भी एक स्वांग ही है। आत्मा की रंगभूमि में जीव-अजीव,कर्ता-अकर्ता,पुण्य-पाप, आस्रव-संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये आठ स्वांग आते हैं। उनका नृत्य होता है और अपना-अपना स्वरूप बताकर वे निकल जाते हैं। अंतिम अध्याय में सब स्वाँगों के विदा होने पर सर्व विशुद्धज्ञान प्रवेश करता है। उसके बाद रंगमंच के पात्र और उनका अभिनय समाप्त हो जाता है। क्योंकि पूरा खेल ही खत्म हो जाता है, आत्मा को अपनी सुधि आ जाती है कि न मैं कर सकता हूँ न ही भोग सकता हूँ। मैं सिर्फ हूँ। वेदांत दर्शन जिसे माया कहते हैं, उसे ही कुन्दकुन्दाचार्य नाटक की उपमा देते हैं और आधुनिक मन के लिए इस दृष्टांत का समझना अधिक सरल है। 'माया शब्द घिस-घिस कर अपना मूल आशय खो बैठा है। वह इतना निन्दित हो चुका है कि अब यह शब्द भी मायावी लगता है।'

वास्तव में समयसार को पुनरुज्जीवित करना हो तो उसके शब्दों की प्राचीनता की धूल झाड़ कर उन्हें सद्यस्नात, तरोताजा बनाना आवश्यक है। जैसे निर्जरा को मनोविज्ञान का सुपरिचित शब्द

''कैथार्सिस'' या रेचन कहा तो उसे समझना अधिक सरल होगा। 'संवर' और कुछ भी नहीं, योगशास्त्र में कथित चित्तवृत्ति निरोध है इस प्रकार निरंतर अन्य शब्दों को भी पुनरुज्जीवित की अग्नि से गुजारा जाये तो इनके आशय कुंदन की भांति निखरेंगे। इससे इनमें निहित अनुभव तो विलीन नहीं होगा, उल्टे नए शब्दों के वस्त्र पहनकर जगमगाने लगेगा। कुन्दकुन्दाचार्य का ही प्रतीक लें तो वे कहते हैं: कि **स्वर्ण को कितना ही तपाओ, उसका स्वर्णत्व खोता नहीं है। उसी प्रकार कर्मों की आग में तपकर भी ज्ञानी अपना ज्ञान खोता नहीं है। ज्ञानी के शब्दों में भी उसके ज्ञान का स्वर्ण भरा हुआ है, उसे आग से क्या भय?**

समयसार के आध्यत्मिक श्रृंगार में संवर अधिकार की प्रतिष्ठा वीतरागता के सौन्दर्य को विस्तीर्ण करती है और देह में रहकर विदेह की साधना की मर्मस्पर्शी व्याख्या भी है। मोक्ष के संदर्भ में जैन-दर्शन अत्यधिक सूक्ष्म व्याख्या करता है। जैनदर्शन के आस्रव, निर्जरा सिद्धांत में कहा गयाा है कि मनुष्य के कर्म मैल की तरह उसके आत्मत्व पर चिपक जाते हैं। **'आस्रव' का अर्थ सांसारिक प्रपंचों का आकार आत्मा में चिपक जाना है।** मगर जब साधक जगता है, तो वह बाह्य प्रभावों को रोकने लगता है। यह स्थिति 'संवर' की स्थिति हुई। इसके बाद कर्मों के क्षय की साधना करनी पड़ती है। कर्मक्षय की यह प्रक्रिया 'निर्जरा' कही जाती है। जब कर्मक्षय पूरा हो जाता है, तो आत्मतत्त्व अत्यधिक निर्मल हो जाता है। इस अत्यधिक सुखकर स्थिति को जैनदर्शन में विलक्षण कहा गया है। इसे निर्व्याख्या भी माना गया है। यह जीव की शुद्धावस्था है। कर्मों की रोक को संवर कहते हैं। मुक्ति या आत्मबोध की ओर पहला कदम। यह सुनिश्चित करना है कि जिन रास्तों से कर्म आत्मा में प्रविष्ट हो रहे हैं, वे बंद किए जाएँ और कर्म इकठ्ठे न हों। कर्मों के अंतर्वाह को आस्रव कहा गया है, उनको रोक देना संवर है। कर्म के द्वार बंद हो जाते हैं तब कर्म आत्मा में प्रवेश नहीं कर सकते। जैसे - सछिद्र जलयान, नाव आदि के छोटे-बड़े सब छिद्र बंद कर देने पर जलयान में जल प्रवेश नहीं होता। संवर नये कर्मों का प्रवेश रोकता है। इसके कई प्रकार हैं। व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र-ये उसके भेद हैं, जो आगत कर्मों को आत्मा में आने नहीं देते। जिन्होंने पुण्य और पाप नहीं किया, शुभ और अशुभ कर्मों के फल में रति और अरति नहीं की, शुभ और अशुभ भाव नहीं किये और आत्मा के अनुभव में मन को लगाया, आत्मस्वभाव में लीन होने पर वह आते हुए कर्मों को आत्मा के प्रदेशों में मिल जाने से रोक लेंगे, कर्मों के आस्रव द्वार को बंद करेंगे,बंध को रोक लेंगे और संवर को प्राप्त करके आकुलतारहित सुख का साक्षात्कार करेंगे, ऐसी भावना संवर भावना है। संवर तो गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र से होता है। संवर दो प्रकार का होता है।

भावसंवर-जिन भावों से संवर हो।

द्रव्यसंवर-कर्मों का रुक जाना।

जैनधर्म और दर्शन का उद्देश्य है आत्मा को प्रकृति में मिश्रण से मुक्त कर उसको कैवल्य (पूर्णतः मुक्त एवं पवित्र) की स्थिति में पहुँचाना। इस कैवल्य की अवस्था में कर्म के बंधन टूट जाते हैं और आत्मा प्रकृति के बंधन से मुक्त करने में समर्थ हो जाता है। इसी अवस्था में समस्त दुःख, भय, कष्ट समाप्त हो जाते हैं और आत्मा स्थाई और अटूट परमानंद की अवस्था में पहुँच जाता है। जैनधर्म एवं दर्शन के अनुसार कैवल्य या मोक्ष की अवस्था में भी आत्मा का अपना निजी अस्तित्व एवं स्वरूप बना रहता है। **जैनदर्शन के अनुसार आत्मा स्वभावतः निर्मल और प्रज्ञ है। प्रकृति के सम्पर्क के कारण ही आत्मा अज्ञानता, माया और कर्म के बंधन में पड़ जाता है।** कैवल्य की प्राप्ति के लिए 'केवल ज्ञान' प्राप्त करना आवश्यक है। इसके उपाय हैं 1. सम्यक् दर्शन (तीर्थंकरों में पूर्ण श्रद्धा), 2. सम्यक् चारित्र (पूर्ण नैतिक आचरण), और सम्यक् ज्ञान (शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान)। जैनधर्म बिना किसी बाहरी सहायता के स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा ही आत्मकल्याण प्राप्त करने का मार्ग बतलाता है। जैनधर्म एवं दर्शन ने भारतीय धर्म एवं दर्शन को भी कई प्रकार से प्रभावित किया है। आचार-शास्त्र में नैतिक आचरण, विशेषकर अहिंसा को इसमें नया बल मिला। जैनदर्शन आस्रव के सिद्धांत में विश्वास करता है, जिसका अर्थ यह कि कर्म के संस्कार क्षण-क्षण प्रवाहित हो रहे हैं। कर्म के इन संस्कारों का प्रभाव जीव पर क्षण-क्षण पड़ता जा रहा है। संस्कारों के इन प्रभावों से बचने का यही एक उपाय है कि मनुष्य चित्तवृत्तियों का निरोध (रोकथाम) करे, मन को विवेक द्वारा काबू में लाए। योग की समाधि का अवलम्बन और तपश्चर्या में लीन रहना। जैनदर्शन की मान्यता है कि आत्म ज्ञान प्राप्ति का मार्ग कैवल्य प्राप्ति की साधना के लिए है। जैनधर्म एवं दर्शन में सात सोपानों (सीढ़ियों) का उल्लेख किया गया है। ये सात सोपान ही जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष नामक सात तत्त्व हैं। जीव आत्मा है। अजीव वह ठोस द्रव्य (शरीर) है, जिसमें आत्मा निवास करती है। **जीव और अजीव का मिलन ही संसार है।** अतएव मोक्ष-साधना का मार्ग यह है कि जीव (आत्मा)को अजीव (शरीर) से पृथक् कर दिया जाए। आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार को गिराकर ही कैवल्य या मोक्ष की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। जीव अजीव से बंधा कैसे है? इसका उत्तर आस्रव है। विभिन्न कर्मों के करने से जो संस्कार प्रगट होते हैं, उसी के कारण जीव अजीव से बंध जाता है। अतएव इस बंधन को नष्ट करने का उपाय यह है कि जीव कर्मों से क्षरित (उत्पन्न) होने वाले संस्कारों से अलिप्त (पृथक्) रहने का प्रयत्न करे। यह प्रक्रिया संवर कहलाती है। पर इतना प्रयास ही पर्याप्त नहीं है। आत्मा को पूर्व जन्मों के संस्कार भी घेर लेते हैं, एवं प्रभावित करते हैं। इन पूर्व जन्मों के संस्कारों से मुक्त होने या छूटने की

साधना का नाम (निर्जरा) है। जीवनरूपी नौका में छेद है जिनसे उसमें पानी भरता जा रहा है। छेदों को बंद करना ही 'संवर' साधना है और जीवनरूपी नाव में पहले से ही जो पानी (पूर्व जन्मों के संस्कार) भरा हुआ है, उसे उलीचने का नाम निर्जरा है। संवर और निर्जरा के द्वारा जिसने अपने को 'आस्रवों' (संस्कारों) से मुक्त कर लिया, वही मोक्ष का अधिकारी है। जैनदर्शन में मोक्ष (कैवल्य) की साधना केवल सन्यासी ही कर सकते है। इन सन्यासियों को जैनधर्म में पाँच श्रेणियों में बाँटा गया है, जिनका समंवित नाम पंचपरमेष्ठी है। यह पंचपरमेष्ठी हैं अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। साधुओं को उपदेश देने वाले उपाध्याय और आचार्य कहलाते हैं। सिद्ध वह हैं जिसने शरीर छोड़कर मोक्ष प्राप्त कर लिया है और अर्हंत् तीर्थंकरों को कहते हैं। अर्हत् तो चौबीस ही होते हैं, किन्तु सिद्ध कोई भी जीव हो सकता है, जिसकी सांसारिक विषय - वासनाएँ, भोग-विलास की लिप्साएँ छूट गई हैं। जो सुख-दुःख से ऊपर उठ गया, जिसकी इंद्रियाँ वशीभूत हैं, वह सिद्ध है। सिद्ध की कोटि परमात्मा की कोटि है। वैदिक दर्शन और जैन दर्शन में यह भेद है कि वैदिक धर्म में परमात्मा मात्र एक ही माना गया है, जबकि जैनधर्म के अनुसार जो भी व्यक्ति सिद्ध हो गया, वह स्वयं परमात्मा है।

पहले जो जैसा कर्म किया है, भविष्य में वह उसी रूप में उपस्थित होता है। लकड़ी की गेंद को यदि पानी में डाल दिया जाये तो वह डूबेगी नहीं, तैरेगी। आत्मा उससे अधिक हल्की है, बहुत हल्की, फिर भी वह संसार में डूबी हुई है। ऐसा क्यों? लकड़ी की उस गेंद को यदि गीली मिट्टी से लपेटा जाये, फिर कपड़ा लपेटा जाये और फिर से उस पर गीली मिट्टी की परत चढ़ाई जाये-इस प्रकार यदिआठ बार उस पर परतें चढ़ाई जायें, तो वह पानी में डूब जायेगी। यही बात आत्मा के लिए है। वह भी पूर्वजन्म में किये गये आठ कर्मों के आवरणों से लिपटी हुई होने से संसार में डूबी हुई है। जन्म लेने के बाद कर्म क्रमशः उदय में आते रहते हैं। उनके अनुसार शुभाशुभ फल उपस्थित होते रहते हैं और प्राणी सुख-दुःख का अनुभव करता रहता है।

पूज्यपाद गुरुदेव तत्त्वज्ञान, विवेक और शुद्ध सम्यक्त्वोन्मुखी चेतना के प्रतीक हैं। वे योगी ही नहीं, पूर्ण चेतना के प्रतीक भी हैं। वो जो भी कहते हैं, अर्थ पीछे भागता है। जब ज्ञानी के संबोधन से वे बोलते हैं तो वे केवल दिमाग के स्तर पर जन को संबोधित नहीं करते हैं। उन शब्दों में गहराई होती है, साधना-संप्रेरित अनुभव होता है, जो कम ज्ञान के अनुभव को जगाने के लिए अभिप्रेरित करता है। वे अपने शब्दों से कहीं ज्यादा अपने दिगंबर अस्तित्व से व्यक्त करते हैं। हमारे पास तक उनके मन की भावनाएँ जल्दी पहुँच जाती हैं। स्वाभाविक आत्मीयता और वात्सल्य के संग आगम का सत्य, आत्मा का सत्य सिर्फ दिमाग से नहीं दिल से निःसृत होता है और श्रोता के मन की गहराइयों तक संप्रेषित होता जाता है।

'समय देशना' के देशनाकार आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज, आचार्य कुन्दकुन्द की समर्थ परम्परा के समर्थतम संवाहकों में से एक हैं, जिनकी चेतना में रचा-बसा है समयसार और जो इस देह में रहकर विदेह की साधना की कला के ज्ञान ही नहीं, मर्मज्ञ भी हैं। शास्त्रीय भाषा के उपयोग से बचते हुए, सरल सहज और सुबोध भाषा में आत्म-तत्त्व की मीमांसा करने के क्रम में आचार्य श्री अपनी और सभी की रत्नत्रय-यात्रा में संवर के कपाट लगाकर आत्म-व्याख्या करते हैं। **एक जीवन-सर्जक और आचारनिष्ठ साधक के रूप में आगम-प्रामाण्य से उद्धृत, निर्मल ज्ञान की परम्परा को विश्वमंच पर संस्थापित करने वाले, 'सूर्यकोटी-समप्रभः' स्वरूपी इस श्रुतधर साधक ने अपनी तपस्या, ज्ञानसाधना, शास्त्रानुशासन और रत्नत्रय अनुयात्रा के समेकन से संकल्पशील आत्मसाधना को स्फूर्त किया है। उनके जगकल्याणी विचार आगम के संबल से उर्जित हो, साधनाशील जीवन की आत्यांतिक गहराइयों, अनुभूतियों और वात्सल्य के संचार के मानवीय चिंतन का परिष्कार करते हैं और उनके जीवन से उस सहज, सरल और संबोध महाकाव्य की सरसता के साथ जनसामान्य में संप्रेषित करते हैं, जिसमें नानापुराण, आगम-सम्मतमत-मतान्तर और जिनागम के शाश्वत दार्शनिक मानदण्डों को गोमुख से निकली गंगा के पवित्र-पावन नीर-क्षीर-सा समवाय है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।** हजारों वर्षों की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परम्पराओं के अनुशीलन के अनंतर उदित हुए, देदीप्यमान मार्तंडमय आचार्यश्री अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के प्रभाव से जहाँ एक ओर अज्ञान-कालुष्य, राग-द्वेष, मोह-ममता की मरीचिका एवं द्वंद्वात्मकता तथा एकांतिकता के निशथान्धकार की इति करते हैं, जीवन में व्याप्त जड़ता का समापन करते हैं और निर्मल ज्ञान की रश्मियों को उद्भासित करते हैं। दूसरी ओर भक्तों के प्रति उनका वात्सल्यभाव-आप्लावित आशीष स्निग्धता से स्थित हो, अंतस् की उदारता , कोमलता तथा पवित्रता के साथ प्रवहमान होता रहता है और बन जाता है एक प्रेरक निमित्त हर जीव के कर्मों के विगलन का भी। **पूज्यश्री का जीवन आत्म-स्वातंत्र्यबोध-जय क्रांति का श्लोक है, साधना से मुक्ति का दिव्य चाँद है तथा मानवीय मूल्यों की वेदना एवं मानसिक ऐश्वर्य के विकास का वह भगीरथ प्रयत्न, जो स्तुत्य है और जाति, धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय भेद से दूर-पूरी इंसानी जमात बेहतरी एवं उसके आत्म-उत्कर्ष की भव-भूमि की स्थापना को समर्पित एक सशक्त कदम।** गुरुदेव तो वीतराग साधनापथ के पथिक हैं, निरामय हैं, निर्ग्रन्थ हैं, दर्शन, ज्ञान और आचार की त्रिवेणी हैं, क्रांतिद्रष्टा हैं और परिष्कृत विचारों के प्रणेता भी। महाव्रतों की साधना में रचे-बसे **पूज्यवर की 'समयदेशना' मानव-मन की गुत्थियों को सहजता के साथ खोलती है और तन्द्रा में डूबे मनुज को आपाद-मस्तक झिंझोड़ने की ताकत रखती है।** उनकी संप्रेरणा जो आह्वान करती है, आध्यात्मिक स्फूरण कराती है और चिंतन का आह्वान भी करती है; कुछ इस तरह से-''

मुझे सुननी है ध्वनि अपने भीतर की आती हुई बहार को।

अनुभव करना है जो बाहर है वह है भीतर।

देखना है स्वयं को जाते हुए विचारशून्यता की ओर स्थिर होते हुए भीतर से।

मुझे अनुभव करना है अपनी शांति का। सुनना है मौन के अनहद नाद को।

बन्द आँखों से देखने हैं चमकते हुए तारे, पर्वत, नदी, वृक्ष, वन, सरिता मिलती हुई सागर में। मुझे नहीं बनने देना है स्वयं को यात्रा। बन जाना है मार्ग जो ले जाता है मिलाने स्व को उस शाश्वत सत्य से।

पूज्यवर के विचारों का नवनीत युगों-युगों तक सम्पूर्ण मानवता का मार्गदर्शन करे, हमारी प्रमाद-मूर्च्छा को तोड़े, हमें अंधकार से दूर प्रकाश के उत्स की ओर जाने का बताता रहे। हमारी जड़ता की इति कर सकारात्मकरूप से गतिशील बनाता रहे। हमें प्रतिपल अधिक चैतन्य, जागरूक, सभ्य और शालीन बनाता रहे, यही हमारे मंगलभाव हैं और हमारे चित्त की अभिव्यक्ति भी-प्रार्थना के, अर्चना के स्वरों के साथ।

卐 卐 卐

'समयदेशना' की देशना शैली

श्री सुरेश जैन 'सरल'

क्या कोई विद्वान् बतला सकता है कि नर्मदा-नदी के प्रवाह की शैली क्या है? क्योंकि नर्मदा का संसर्ग और सरोकार उद्गम - स्थल से लेकर विसर्जन तक, प्राकृतिक बिन्दुओं के स्पर्श से हो रहा है, अतः कुछ कहना/बतलाना टेढ़ी खीर है। कतिपय जन इतना तो कह सकते हैं कि वह पूर्व से पश्चिम की दिशा में बहती है। यही प्रश्न गंगा के विषय में उठाएँ तो वहाँ भी उत्तर मौन ही होगा। बोलने वाले इतना ही कह पाएँगे कि गंगा देश के उत्तर से दक्षिण-पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। अब यह यदि कोई विचारक पूछ बैठे कि नर्मदा और गंगा की प्रवाह शैली में क्या अंतर है? तो ज्ञानीजन सहर्ष बोल पड़ेंगे कि नर्मदा पहाड़ों से होकर बहती है, अतः हिरण की तरह उछलती-कूदती हुई बढ़ती है। गंगा का सुदीर्घ हिस्सा मैदान में से बहता है, अतः वह मंथर-गति से चलती/बहती प्रतीत होती है।

प्रवचन-शैली की बात करते समय हमें गंगा और नर्मदा को ध्यान में रखकर चलना होगा। उच्चारण, कथन, कागज, कलम और लेखक का संगम ही प्रवचन या लेखन कराता है, पर जब उनके विचारों का क्रम शुरू होता है तो कभी लेखनी या वाणी पहाड़ पर चलती प्रतीत होती है तो कभी मैदान पर। उनके विचार और शब्द-संकलन ही शैलियों को जन्म देते हैं। फिर जिस तरह नदियों के किनारे कहीं घाट, कहीं गाँव, कहीं खेत, कहीं शमशान देखने मिलते हैं, ठीक उसी तरह उनके शैली में अनेक उपकरण, अलंकरण और समीकरण जन्म लेते हैं। **आदर्श श्रमणाचार्य परमपूज्य गुरुदेव 108 श्री विशुद्धसागर जी महाराज विरचित ग्रंथ- 'समय-देशना' का अवगाहन करते हैं तो उसमें अनेक प्रकार के भाष्यों से साक्षात्कार होता चला जाता है।** कई बार लगता है कि हमें यदि प्रातःस्मणीय आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी की देशना सुनने का सौभाग्य मिला होता तो वह सिलसिला कुछ इसी तरह होता, जैसा आचार्य श्री विशुद्धसागर का सुनने/पढ़ने/देखने मिला है। उनकी वाणी/लेखनी कुछ इस तरह चलती है कि कतिपय स्थलों पर लगता है कि विषयांतर हो रहा है, मगर जब प्रसंग के आखिरी वाक्य पर पहुँचते हैं तो लाटरी भी खुल जाती है। सबकुछ विषयानुकूल हो जाता है। उनकी शैली का यह है तो 'लाटरी' खुलना, मानो- सबकुछ समझ में आ जाना ही उनकी शैली का प्रमुख प्रस्थान है, श्रृंगार है।

ध्यान रहे, ग्रन्थ में उनका लेखन नहीं है, प्रवचन है, अतः चर्चा लेखन की नहीं की जा सकती, प्रवचन की ही होगी। वे कई बार कहते हैं,- जो लखा, सो लिखा। यह वाक्य भी गहरा रहस्य लेकर उदित है। 'जो देखा, सो लिख दिया' एक सामान्य अर्थ हो सकता है, मगर वे कहते हैं कि पूर्वाचार्यों ने जो अनुभूत किया था, वह उन्होंने लेखनी से उतारा है। उनके इस वाक्य से पूर्ववर्ती समस्त आचार्यों

का अंतरंग अभिनंदन हो जाता है।

मैं कह सकता हूँ कि यदि गुरुदेव पूज्य आचार्य विशुद्धसागर जी को प्रवचन करने और स्वाध्याय करने/कराने से तनिक भी समय निकल आए तो वे बहुत अच्छा लिख सकते हैं, परंतु वे मौलिक-लेखन के लोभी कभी नहीं रहे, वे अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की सुगंध के प्रसारण को ही अपना सर्वश्रेष्ठ-कर्त्तव्य मानकर देशना प्रदान करने में संलग्न हैं। वैसे भी, वे कहते हैं कि **जिनवाणी में इतना अधिक बोध है कि वह जीवन भर कहा जा सकता है, सुना जा सकता है, मगर समाप्त नहीं हो सकता।** अतः वर्तमान में जो लेखक लिखने की बात करते हैं, वे अपने अल्पज्ञान के कारण ऐसा कह देते हैं, क्योंकि लिखते तो वे वही हैं, जो जिनवाणीरूपी रत्नाकर में सदियों से हिलोरें ले रहे हैं। हमने धरती में एक कुआँ खोदकर कह दिया की पानी 'हमारे' कुए का है, मगर सत्य यह है कि धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक ही पानी है, जिसे हम अपनी-अपनी अंजुलि से पीते रहते हैं, इसलिए किसी भी कुए का पानी मौलिक (मात्र उसका) नहीं कहा जा सकता। उसी तरह संपूर्ण अध्यात्म-लेखन की वर्तमान -क्रिया मौलिक नहीं कही जा सकती। गुरुदेव प्रतिदिन जो कह रहे हैं, जो सुन रहे हैं, वह उनका नहीं है, शास्त्रों का प्रसाद है-ऐसा वे स्वतः स्पष्ट करते चलते हैं।

उनकी शैली में विरोध और समर्थन एकसाथ जन्म ले लेते हैं। जब वे कहते हैं- तुम आत्मा हो भी, नहीं भी। कभी कहते हैं-तुम देह भी हो, नहीं भी। उनके ऐसे संबोधन जनसमूह को सोचने के लिए विवश कर देते हैं। कभी पूछ बैठते हैं - मानव है या जानवर? सामने बैठे हजारों श्रोता उत्तर देने आतुर होने लगते हैं कि खड़े होकर कह दें - मानव हैं, परंतु जिसने ऐसा कहा है, वह अगले ही क्षण उनके द्वारा 'पशु' भी सिद्ध कर दिया जाता है, जो शतप्रतिशत श्रोताओं द्वारा मान्य भी होता है। यथा तुम जब पत्नि के साथ पशुता से पेश आते हो, तो जानवर नहीं हो जाते? ऐसे प्रसंगों पर उनकी शैली को विचित्र (अजब) भी कहा जा सकता है। सच यह है कि उनकी प्रवचन/देशना - शैली केवल एक प्रकार की नहीं है कि कह दें- गंगा की तरह मंथर-मंद चलती है या कह दें -नर्मदा की तरह उछलती-कूदती चलती है। वहाँ भी दो नहीं, 3 प्रकार हैं। मंथर-मंद भी, उछलती-कूदती भी और समुद्र की तरह अगाध गंभीरता धारण किये हुए भी। अतः निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उनकी शैली में सभी ढंग हैं। इसीलिए देश में सर्वाधिक ग्राह्य मानी जा रही है श्रावक-समाज द्वारा। सो एक निर्णय तैयार होता है- 'देशना शैली ग्राह्य है, जन-जन को ग्राह्य है।' यही है उसका सर्वश्रेष्ठ मूल्यांकन। कुछ संतों के प्रवचन सुनते-सुनते मन ऊबने लगता है तो किसी संत के द्वारा की जाने वाली पुनरावृत्ति से श्रोतागण परेशान हो उठते हैं। आचार्यश्री के साथ ऐसा नहीं है। वे नित्य नया कहते हैं और सबकुछ आगमिक कहते हैं। आगम का पल्ला क्षणभर को भी नहीं छोड़ते। है न आश्चर्य? कि हजारों साल पुरानी बातें करते हैं मगर

श्रोताओं को नित नवीन लगती हैं। आचार्य विशुद्धसागर जी प्रवचन करते हुए नित नूतन घोषणाएँ भी करते हैं। प्रथम भाग में एक ऐसी ही घोषणा पढ़ने को मिली जो जनमानस के लिए प्रकाश-स्तंभ है। वे सगर्व बतलाते हैं कि कुछ विद्वानों और मुनियों ने 'समयसार' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ पर सोनगढ़ की मोहर (मुद्रा) लगा दी थी, कि यह तो सोनगढ़ियों का है, इसे मंदिर में न रखा जावे। किन्तु पूज्यश्री कहते हैं - यह तो 'आत्मगढ़' का ग्रंथ है। यह जिस मंदिर आत्मा में उपस्थित नहीं होगा वे अधूरे माने जावेंगे। 'स्वतंत्र-भारत' में ऐसी सदाशयता बतलाने और सिद्ध करने वाले देश के प्रथम आचार्य हैं। यों प्रकारान्तर से यही बात, मुनि पद से 41 वर्ष पूर्व, इन्दौर की एक सभा में वर्तमान के श्वेत-पिच्छीधारी पूज्य आचार्य विद्यानंद जी भी कह चुके हैं कि समयसार तो आत्मा-आत्मा के लिए है, हर मंदिर के लिए है।

विद्वानों में मध्य आदर्श कहे जाने वाले प्रो. श्री रतनचंद जैन, भोपाल, समय-देशना की शैली ज्ञापित करते हुए लिखते हैं कि आगम के विभिन्न सूत्रों की तर्कसंगत-व्याख्या इसी ग्रंथ में पढ़ने मिलती है और सटीक अलंकारों का सुप्रयोग भी, जो हर मुनि और विद्वान् के लिए श्लाघनीय है।

आचार्य मुनि विशुद्धसागर जी की शैली का अगला क्रम बतलाते हुए प्रो. साहब लिखते हैं कि सम्पूर्ण ग्रंथ में उन्होंने हृदयतंत्र को झंकृत कर देने वाली, अज्ञानांधकार का विनाश कर, मन को ज्ञान ज्योति से जगमगा देने वाली और चित्त को प्रफुल्लित कर देने वाली सूक्तियों का विन्यास किया है। यथा-पाप में डूबा जीव तो उभर जाता है, पर क्रियाओं में डूबा जीव नहीं उभर पाता। आदि।

प्रो. (डॉ.) जयकुमार जैन, मुजफ्फर नगर ने संपादकीय में लिखा है कि आचार्यश्री ने कहीं तर्क का आश्रय लिया है तो कहीं अनुभव की कसौटी पर कसा है। पदे-पदे छोटे-छोटे वाक्य दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमें अर्थों का सागर समाया हुआ है।

वरिष्ठ मनीषी, साहित्यकार, पत्रकार, प्राचार्यश्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद ने समय-देशना को 'अमृतकलश' कहते हुए लिखा है कि इस **ग्रंथ में हर पृष्ठ पर कुछ वाक्य या वाक्यांश सूक्तियों की तरह हैं, उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनको शीर्षक बनाकर पूरे-पूरे लेख व्याख्यायित किए जा सकते हैं।** यथा-'परमात्मा त्रैकालिक नहीं होता, लेकिन आत्मा त्रैकालिक होता है।' आदि- आदि। मतलब यह कि प्राचार्य महोदय भी बिना कहे, समयदेशना की शैली की सराहना कर गये हैं।

प्रथम भाग में, गणाचार्य श्रीविरागसागरजी, आदर्शश्रमण- आचार्य विशुद्धसागर के लिए लिखते हैं कि वे स्व-पर हित में संलग्न हैं, गहन मेहनत कर जो समयदेशना का सृजन किया है वह प्रशंसनीय है। हर पाठक के लिए मननीय एवं चिंतनीय है।

प्रथम भाग में ही आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज की वाणी के कुछ साक्ष्य प्राप्त हुए हैं कि उन्होंने समय-देशना के माध्यम से प्राणी-मात्र को समयसार जी की भूतार्थता का बोध करा देने एवं समयसार के नाम पर जो लोक में भय व्याप्त रहा है, उसे समाप्त करा देने के उद्देश्य से ग्रंथ को जन्म दिया है।

समय-देशना भाग 2 पर, जब दृष्टि पसारी तो सबसे पहले उसके संपादक प्रो. (डॉ.) श्रेयांस कुमार जैन बड़ौत के संपादकीय को पढ़ना उचित माना, वे लिखते हैं- 'यह अध्यात्मरसिकों के लिए परम पेय है।' इस ग्रंथ को उन्होंने अध्यात्म का सरोवर कहा है। चूंकि उनका ध्यान ग्रंथ में वर्णित तत्त्व-चर्चा पर रहा है , अतः उन्होंने इसकी शैली पर पृथक् से कोई वाक्य नहीं दिया, फिर भी उन्होंने जो ऊपर घोषित किया है वह पाठक के लिए प्रकाश तो देता ही है।

आचार्य श्री विशुद्धसागर जी की कथन-शैली का आनंद पन्ने-पन्ने पर दृष्टिगोचर होता है । वह कहते हैं-' जगत् की भाषाएँ जहाँ विराम लेती हैं, वहाँ से अध्यात्म की भाषा प्रारंभ होती है।' यह घोषणा उनकी शैली को दृढ़ता देती है, कथ्य तो देती ही है। वे तत्त्व पकड़ने के लिए जिस शैली का उपयोग करते हैं वह अद्भुत निरूपित की जावेगी। वे बतलाते हैं कि एक व्यक्ति को सड़क चलते हुए पत्थर से चोट लग गई। सहयोग देने वाले ज्ञानी ने डॉ. से दवा लेकर पत्थर पर लगा दी, पैर पर नहीं। तत्त्वचर्चा भी दवा की तरह उपयोगी है, किन्तु उसे आत्मा से लगाना था जो कि कहीं अन्यत्र लगा दी जाती है। सम्पूर्ण ग्रंथ चमत्कारी शैली से भरा हुआ है। अंतिम पन्नों को ले लें। आदमी के पुरुषार्थ, ज्ञान और उपयोग को झकझोरते हुए कहते हैं 'सिक्का नाली में गिर गया । आदमी झुककर, श्रम से उठाकर, गंदगी सहकर उसे निकाल लेता है, मगर उसकी आत्मा भोगों की नाली में वर्षों से पड़ी है, उसे क्यों नहीं निकालता? आत्मा को सिक्कों से कम महत्त्व क्यों दिया जाता है?'

इस तरह लेख पूर्वार्ध में इस कलम द्वारा किया गया शैली चिंतन एवं शैली - विश्लेषण यहाँ समाप्त करता हूँ। सुधीजन ध्यान देंगे और समय-देशना का पूरा- पूरा रस लेंगे।

सरलकुटी 408, गढ़ाफाटक
जबलपुर मो.942541237

समयदेशना : एक अमृत कलश

'समयो खलु णिम्मलो अप्पा।' (निश्चय से निर्मलआत्मा की समय है) रयणसार।। 158।।

समयसार चिद्ज्योति स्वरूप है। समय का वर्ण करने वाला यह 'समय पाहुड' ग्रन्थ है।

जो निजानंद लवलीन आत्मा है, वह समयसारभूत आत्मा है।

जीव के दो भेद हैं-संसारी और सिद्ध। शरीर सहित सभी जीवों को संसारी कहते हैं। संसारी जीव अनादिकाल से मुहुर्महु जन्म-मरण करते हुए नित्य नये-नये शरीर धारण करते आ रहे हैं। शरीर सन्तति का उच्छेद करने में वे आज तक समर्थ नहीं हो सके हैं। जिनका चित्त मोह-क्षोभ अर्थात् मिथ्यात्व एवं राग-द्वेषादि मल से मलिन होता है, वे संसार-संसरण से मुक्त हो भी नहीं सकते। जो विकार, विभाव या मलिन परिणति से बचने का पुरुषार्थ करते हैं, वे ही एक दिन पंचपरावर्तनरूप श्रृंखला को तोड़कर सिद्धालय में विराजमान हो जाते हैं और उसके बाद वह स्वात्मा के सदाबहार आनंद का सदाकाल अनुभव करते रहते हैं। वे फिर कभी संसार में लौटकर नहीं आते। जन्म-मरण के चक्र से मुक्त जीव ही सिद्ध कहलाते हैं।

इसी बात को संक्षेप में भी कहा जा सकता है कि जीव की अशुद्ध दशा का नाम संसार और शुद्ध दशा का नाम मुक्ति है। जैनदर्शन में संसारी और मुक्त या सिद्ध, इन दोनों ही का वर्णन मिलता है। **जीव की शुद्ध दशा का कथन जिस दृष्टि से होता है, उसे अध्यात्म कहते हैं तथा जिस पद्धति से अशुद्ध दशा का वर्णन किया जाता है, उसे सिद्धांत कहते हैं।** किसी भी भव्यात्मा को अपने दोषों के साथ ही स्वरूप के बारे में जानना आवश्यक है। कहा भी गया है बिन जाने तैं दोष-गुणन को, कैसे तजिए-गहिए। सिद्धांत और अध्यात्म परस्पर विरोधी नहीं, एक-दूसरे के पूरक हैं। सिद्धांत का ज्ञान साधन है तो अध्यात्म का ज्ञान साध्य है। कारणों को मिलाए बिना कार्य की सिद्धि नहीं होती।अशुद्धि को जानकर उसे दूर करने का पुरुषार्थ करेंगे, तभी तो शुद्ध दशा को प्राप्त हो सकेंगे। आत्मा पर मलिनता का कितना ही घना आवरण पड़ा हो, उसे बुद्धिपूर्वक श्रम करते हुए हटाकर विशुद्धात्मा के दर्शन हो सकते हैं। मन में यदि यह विश्वास नहीं होगा, तो भी काम बनने वाला नहीं है।

अध्यात्म के गीत गाने मात्र से कोई आध्यात्मिक नहीं होता। उसे सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त कर जीवन में उसका प्रयोग (संयम या व्यवहार चारित्र का पालन) भी करना अनिवार्य है। आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित समयसार जैनाध्यात्म का एक सिरमौर ग्रंथ है। इसी एक ग्रंथ के कारण आचार्य कुन्दकुन्द को युगप्रवर्तक साधु माना जाता है तथा भगवान् महावीर और गौतम गणधर के बाद सभी लोग उनके नाम का श्रद्धा से स्मरण करते आ रहे हैं। उनके नाम से ही मूलसंघ को कुन्दकुन्दान्वय नाम से उल्लिखित किया जाता है। उनके इसी महत्त्व को देखते हुए ही कविवर वृन्दावन ने लिखा है 'कुन्दकुन्द

से मुनीन्द्र न थे, न हैं, न होयेंगे।' यह **समयसार ग्रंथ केवल वाणी चिवर का विलास नहीं है, बल्कि आचरण-पुष्प का मकरन्द है। भ्रमर-सरीखी जिसकी वृत्ति है, वही इसका आचमन करने का अधिकारी है।** सिद्धांत में वर्णित उपायों का आस्रव का कारण मानने वाले इसे नहीं पचा सकते।

व्यवहारनयाश्रित सिद्धांत के ज्ञान से वंचित अथवा जानते हुए भी उसकी उपेक्षा करने वाले जीव शुद्ध निश्चयनयाश्रित 'समयसार' को पढ़कर कभी-कभी अपने लक्ष्य से भटकते हुए भी देखे जाते हैं। समयदेशना में देशनाकार वाला समयसार बहुत सरल है और करनेवाला समयसार बहुत कठिन है।' उन्होंने यह भी लिखा है-'अन्दर-बाहर का कोलाहल बन्द होने पर ही समयसारस्वरूप की प्राप्ति होगी।' आगरा प्रवासी पं. बनारसीदास जैन एक बहुश्रुत एवं बहुपाठी विद्वान् थे। समयसार की टीका को पढ़कर उनका जो विपरीत परिणमन हुआ, वह मार्मिक उदाहरण के रूप में हमारे सामने है।

यह प्रसंग है विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का। उस समय पण्डितजी आगरा के मोतीकटरा मोहल्ले में रहते थे। स्वाध्याय का क्रम व्यवस्थित नहीं था। अपनी छन्दोबद्ध आत्मकथा 'अर्धकथानक' में वह स्वयं लिखते हैं कि जैनधर्म का व्यवस्थित परिज्ञान न होने से 'समयसार' नामक अध्यात्म शास्त्र को पढ़कर उनकी बुद्धि भ्रमित हो गई थी। समयसार पढ़ने के पूर्व ही उन्होंने अपने मित्र नरोत्तम के साथ णमोकार की एक माला करने का नियम लिया था। व्रत-भंग होने पर घी का त्याग करने की प्रतिज्ञा की थी। हर चतुर्दशी का उपवास करते थे तथा सूचीबद्ध पचास हरी (सब्जी, तरकारी आदि) के सेवन की मर्यादा निश्चित की थी। यह बात आत्मकथा में उन्होंने स्वयं लिखी है, ध्यान से पढ़िए :-

नौकारवाली एक जाप नित कीजिए।
दोष लगे परभात तो घीउ न लीजिए ।।435।।
साखी कीन्ही पास जिन राखी हरी पचास।।436।।

इसी बीच उनके एक मित्र श्री अरथमल्ल ने रायमल्लकृत समयसार की टीका स्वाध्यायपीठ पर विराजमान की। उसका स्वाध्याय वे सभी करने लगे। पढ़ते-पढ़ते बुद्धि चकराने लगी। वह लिखते हैं :-

तब बनारसि बाँचे नित्त, भाषा अरथ विचारै चित्त।
पावै नहिं अध्यातम पेच, मानैं बाहिज किरिया हेच।।504।।

माला फेरना, रसत्यागना, खाना-पीना आदि तो बाह्य क्रियाएँ हैं। आत्मा तो त्रिकाल शुद्ध है। उस पर इन जड़ क्रियाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी विकृत सोच उनकी बुद्धि में आया और उन्होंने लिए हुए सभी नियम तोड़ दिए। उनका जो पतन हुआ, उसका वर्णन उन्होंने इन शब्दों में किया है :-

देव चढ़ाया नेवज खाँही ।।600।।
जिनप्रतिमा निंदहिं मन माहिं,
मुख लो कहहिं जो कहनी नाहिं।

रमाहिं रात-दिन पशु की भाँति,
रहे एकांत मृषामद भाँति ।।612।।

समयसार का अभ्यास अपरिपक्व बुद्धि से करने से उनका यह पतन वि.सं. 1671 से शुरू हुआ, जिसका पटाक्षेप वि.सं. 1692 में तब हुआ, जब पाण्डे रूपचंद ने उन्हें गोम्मटसार का स्वाध्याय कराया। बीस वर्ष तक उनकी यह दुर्दशा रही। उसके बाद उनका सुलटना शुरू हुआ, उनकी बुद्धि में आया -

जो जिय जिस गुणथानक होय,
तैसी क्रिया करें सब कोय ।।632।।
भिन्न-भिन्न विवरण विस्तार,
अन्तर नियत बहुरि व्यवहार।।633।।
सुनि-सुनि रूपचंद के बैन,
बनारसी भयौ दिढ़ जैन।।635।।

आज भी हमारे समाज का एक वर्ग एकान्तवाद के भँवर में झूल रहा है। 'समयदेशना' में आचार्य श्री ने ठीक ही लिखा है - 'पात्र की भूमिका को न देखकर और गुणस्थान - क्रम से कथन न करने के कारण, ज्ञानी! चौदहवें गुणस्थान का कथन चौथे में लगाओगे तो विवाद तो होना ही है।' सच तो यही है कि जिसने पहले आस्रव और बन्ध की प्रक्रिया को समझ लिया है, अध्यात्म की कथनी को वही आत्मसात कर सकता है। कोई अन्य उसे नहीं पचा सकता।

'समयसार' आत्मा के अचिंत्य वैभव की अनुभूति कराने वाला एक अद्‌भुत ग्रन्थ है। शुद्ध आत्मतत्त्व का प्रतिपादक ग्रंथ सम्पूर्ण जैन वाङ्‌मय में दूसरा नहीं है। इस ग्रंथ के स्वाध्याय से जीव की समझ बनती है कि मैं शुद्ध, निरंजन, शाश्वत और अविनाशी तत्त्व हूँ, जानना और देखना मेरा स्वभाव है, पर वर्तमान में पर कर्त्ता या भोक्ता स्वयं को मानता हूँ। यही मेरी भूल है और भूल के कारण मेरी पराधीनता है। जानने और देखने के अतिरिक्त अन्य जितने भी भाव हैं, वे सभी संयोगज भाव हैं, अकेली आत्मा के तो ये भाव हो ही नहीं सकते। उपादान के अशक्त होने से हमारा मन और इंद्रियाँ बहिर्मुखी बनी हुई हैं। **बाहर बहुत भटकने वाला सुविधायें तो पा सकता है, किंतु सुख को कदापि नहीं। सुविधा क्षणभंगुर और सुख शाश्वत होता है। उस शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए हमें अन्तर्मुखी होना होगा। सुख तो हमारी अपनी निधि है, बाहर भटकने से वह कभी प्राप्त नहीं हो सकती।** 'समयसार ' की सीख याद रखनी चाहिए। 'बाहर के पट बंद कर, अन्तर के पट खोल।'

आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी ने ग्रंथ के मंगलाचरण में सिद्ध भगवान् को नमस्कार किया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आदर्श की उपासना करता है। जीव की पूर्ण स्वतंत्र एवं शुद्ध अवस्था उन्हें प्रिय है। चूँकि सिद्ध भगवान् स्वभाव-अवस्था को प्राप्त हैं और 'समयसार' का सूत्रधार भी उसी अवस्था को प्राप्त

करना चाहता है, इसीलिए उन्होंने सर्वप्रथम सिद्ध परमात्मा की वन्दना कर अपने अभिप्रेत को व्यक्त कर दिया है। हम भी तो कर्म से रहित उस सिद्ध परमेष्ठी की उपासना करते हैं, जिसके विषय में कहा गया है- 'सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्द रसलीन।' पर से निर्पेक्ष उनका यह क्षायिक भाव ध्रुव है। कभी पर से प्रभावित नहीं होते, वह अचल हैं, अर्थात् उनका यह भाव कभी नष्ट नहीं होगा। उसका यह स्वभाव से उत्पन्न आनंद अभौतिक है, उसकी भौतिक उपासना नहीं की जा सकती है। ऐसी ध्रुव अचल और अनुपम आत्मा का वर्णन करने वाला ग्रंथ है 'समयसार' और ग्रंथ के रचयिता ने उस निर्मल आत्मा के विषय में यही कहा, जो उन्हें श्रुतकेवली से और आचार्यपरम्परा से प्राप्त हुआ है। अपनी ओर से कुछ नहीं कहा। जो भी कहा, प्रामाणिक महापुरुषों से सुनकर और समझकर कहा है। **यह कोई ग्रंथ या महाग्रंथ नहीं है, यह तो एक अमृतकलश है, जिसकी एक बूँद में भी विकारों के शमन की अपरिमित सामर्थ्य है।**

'समयसार' चिदानन्दरूपोन्मुख शास्त्र है। उसमें आत्मा के शुद्धोपयोग की चर्चा है। शुद्धात्मा शुभ और अशुभ दोनों से ही विरत होती है। परमपारिणामिक भाव ही उसे इष्ट है। मिलावट चाहे शुभ की करें या अशुभ की, उसकी दृष्टि में दोनों ही खोट हैं। जो सोना है, उसी को शुद्ध सोना कहा जा सकता है। एक तोला सोने में यदि एक रत्ती भी ताँबा मिला हुआ है तो द्रव्यदृष्टि में वह शुद्ध नहीं है। समयसार विभाव कर्म का भेद होने से पाप व पुण्य को समान मानता है। एक को लोहे की बेड़ी मानता है तो दूसरे को सोने की। एकान्त दृष्टिवाले इसे पकड़कर बैठ गए हैं। और पुण्य को भी पाप की तरह हेय कहने लगे हैं। यथार्थ में कुन्दकुन्द का अभिप्राय समझने में बड़े-बड़ों की भूल हो जाती है। अपने अन्य ग्रंथों में उन्होंने पुण्य के भी प्रशस्त और अप्रशस्त, ये दो भेद किए हैं। सम्यग्दृष्टि जीव प्रशस्त पुण्य का आश्रय लेता है, जिसका काम पाप से छुड़ाना है, पाप को छुड़ानेवाला हेय कैसे हो सकता है? वह तो शुद्धोपयोग की प्राप्ति में उपायरूप है। जो उपाय उपादेय तक पहुँचाये, वह ग्राह्य है। कौन-सा कथन किस अपेक्षा से कहा गया है, इसे जाने बिना कोई धारणा बना लेना ही एकांत है। **'समयसार' का मर्म समग्र दृष्टि से ही समझा जा सकता है, एकान्तबुद्धि से नहीं।** आचार्य देवसेन ने लिखा है कि सम्यग्दृष्टि का निदान रहित(प्रशस्त)पुण्य नियम से मोक्ष का हेतु है, संसार का नहीं।

'समयसार' में वर्णित एकत्व-विभक्त आत्मा की चर्चा हमने पहले कभी सुनी नहीं, इसलिए अटपटी-सी लगती है और काम-भोग-बंध की कथा हम जन्म-जन्मान्तर से सुनते आए हैं, इसलिए मन को सुहानी लगती है। जो आज तक अपरिचित है, उसका परिचय प्राप्त करते समय मन अटकता है और उलझता है। उसका निरंतर श्रवण या अभ्यास ही हमें समाधान दिला सकता है। नए-नए श्रोताओं या पाठकों के लिए समयसार का पढ़ना पहेलियाँ बुझाने जैसा कार्य है। योग्य वक्ता या व्याख्याकार जब युक्तिसंगत वार्ता या लेखन से ही किसी वस्तु को प्रस्तुत करता है, तो कठिन वस्तु भी सरल लगती है।

आत्मा बद्ध है या अबद्ध, स्पष्ट है या अस्पष्ट, अनन्य है या अन्यरूप भी परिणत होती है-ऐसे अनेकानेक प्रसंग पहेलियाँ जैसे ही तो हैं, किन्तु समयदेशना में पूज्य आचार्यश्री ने उन्हें सोदाहरण जिस तरह से समझाया है, उससे शंका के लिए किसी के मन में कोई अवकाश ही नहीं रह जाता। उन्होंने अपनी देशना में जो भी कहा है, वह अनुभूत है। उन्होंने 'समयसार' को पढ़ा ही नहीं, जिया भी है। ऐसे सन्तों की वचनिका का लाभ मिलना भी प्रशस्त पुण्योदय का सूचक है।

'समयसार' पर लिखी गई टीकाओं या वचनिकाओं में यह अधुनातन होने से अप्रतिम है। जो बाद में सुनी या लिखी जाती है, उसमें पूर्ववर्ती सभी व्याख्याओं का भी सार आ जाता है। इस टीका में भी अब तक की सभी टीकाओं का सार निहित है। पढ़ने में लगता है, चित्त ऊबता नहीं है और बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है। 'दो शब्द' लिखने के बहाने हमें भी इस देशना को आद्यन्त पढ़ने का सुअवसर मिला, इसे हम अपना सौभाग्य मानते हैं। इस ग्रंथ में हर पृष्ठ पर कुछ वाक्य या वाक्यांश सूक्तियों की तरह हैं। कुछ सूक्तियाँ तो ऐसी हैं, जिनको शीर्षक बनाकर पूरे-पूरे लेख लिखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए सूक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

* परमात्मा त्रैकालिक नहीं होता, लेकिन आत्मा त्रैकालिक होता है।
* परमात्मा तो पर्याय है, द्रव्य तो आत्मा है।
* पाप में डूबा जीव तो उबर जाता है, परंतु क्रियाओं में डूबा जीव नहीं उबर पाता।
* इस भ्रम को निकाल देना कि मैं त्रैकालिक शुद्ध हूँ। शक्तिरूप तो हूँ, परंतु अभिव्यक्ति रूप नहीं हूँ।
* जब तक विशेषण चल रहे हैं, तब तक विशिष्ट नहीं हो पाओगे।
* समय को समझना है, तो हे योगीश्वर ! समय को समझना, समय पर समझना, समय के लिए समझना और समय में समझना।
* जो-जो परनिमित्त हैं, वे मेरे आत्मधर्म से परे हैं।
* जितने-जितने व्याख्यान हैं, वे परसमय हैं। जो व्याख्यानातीत है, वह स्वसमय है।
* ये तो नमूने मात्र हैं, अन्यथा तो इस समयदेशना में ऐसी सारगर्भित एवं गूढ़ार्थपोषक सूक्तियों की 'सतसई' तैयार की जा सकती है। पूज्य आचार्यश्री के करुणापूरित हृदय से सृजित ये कृति सबका मंगल करे, इस भावना के साथ पूज्यश्री के चरणों में भाव-विगलित शतशः नमोस्तु।

नरेन्द्र प्रकाश जैन
(गुरुचरण-चंचरिक)
105, नई बस्ती, फीरोजाबाद (उ.प्र.)
मो. 09358581008

प्रारम्भिक मंगलाचरण

ओंकार बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिन :।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः ।।1।।
अविरल शब्दघनौघ-प्रक्षालित-सकलभूतल-कलङ्का।
मुनिभि-रुपासित-तीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ।।2।।
अज्ञान - तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जन - शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ।।3।।

।। श्री परमगुरवे नमः परम्पराचार्य गुरवे नमः ।।

सकलकलुष-विध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसंबंधकं भव्य जीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री 'समय पाहुड' नाम धेयं अस्य मूल ग्रंथकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रंथकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधर देवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव विरचितं तस्य भाषा टीकां आचार्य श्री विशुद्धसागर विरचितं एषः 'समयदेशना' नाम ग्रन्थः।

श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु!

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्।।
सर्वमंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।

मंगलाचरण

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचल मणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड मिणमो सुयकेवलीभणियं॥ [समयपाहुड]

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे॥ [आत्मख्याति]

वीतरागं जिनं नत्वा ज्ञानानन्दैक सम्पदम्।
वक्ष्ये समयसारस्य वृत्तिं तात्पर्य संज्ञिकाम्॥ [तात्पर्यवृत्ति]

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यंती प्रत्यगात्मनः।
अनेकांतमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्॥

उत्थानिका: यहाँ अनेकान्त को प्रगट करके क्षणिकवाद का निषेध करते हैं

गाथा :

केहिंचि दु पज्जएहिं विणस्सए णे व केहिंचि दु जीवो।
जम्हा तम्हा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयंतो ।।345।।
केहिंचि दु पज्जएहिं विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो।
जम्हा तम्हा वेददि सो वा अण्णो व णेयंतो ।।346।।
जो चेव कुणदि सो चिय ण वेदए जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णदव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ।।347।।
अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ।।348।।

संस्कृत छाया :

कैश्चित्तु पर्यायैर्विनश्यति नैव कैश्चित्तु जीवः।
यस्मात्तस्मात्करोति स वा अन्यो वा नैकांतः ।।345।।
कैश्चित्तु पर्यायैर्विनश्यति नैव कैश्चित्तु जीवः।
यस्मात्तस्माद्वेदयते स वा अन्यो वा नैकांतः ।।346।।
यश्चैव करोति स चैव य वेदयते यस्य एष सिद्धांतः।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हत : ।।347।।
अन्यः करोत्यन्यः परिभुङ्क्ते यस्य एष सिद्धांतः।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः ।।348।।

गाथार्थ - (**यस्मात्**) क्योंकि (**जीवः**) जीव (**कैश्चित् पर्यायैःतु**) कितनी ही पर्यायों से (**विनश्यति**) नष्ट होता है (**तु**) और (**कैश्चित्**) कितनी ही पर्यायों से (**न एव**) नष्ट नहीं होता (**तस्मात्**) इसलिए (**सः वा करोति**) जो भोगता है वही करता है (**अन्यः वा**) अथवा दूसरा ही करता है (**न एकान्तः**) ऐसा एकान्त नहीं है (स्याद्वाद है)। (**यस्मात्**) क्योंकि (**जीवः**) जीव (**कैश्चित् पर्यायैः तु**) कितनी ही पर्यायों से (**विनश्यति**) नष्ट होता है (**तु**) और (**कैश्चित्**) कितनी ही पर्यायों से (**न एव**) नष्ट नहीं होता (**तस्मात्**) इसलिए (**सः वा वेदयते**) जो करता है वही भोक्ता है (**अन्यः वा**) अथवा दूसरा ही भोक्ता है(**न एकान्तः**) ऐसा एकान्त नहीं है, स्याद्वाद है। (**यःच एव करोति**)

और जो करता है (**सःच एव न वेदयते**) वह ही नहीं भोगता (**एषः यस्य सिद्धांतः**) ऐसा जिसका सिद्धांत है (**सः जीवः**)वह जीव (**मिथ्यादृष्टिः**) मिथ्यादृष्टि (**अनार्हतः**)अनार्हत, अर्हंत के मत को न मानने वाला (**ज्ञातव्यः**) जानना चाहिए। (**अन्यः करोति**) दूसरा करता है (**अन्यःपरिभुङ्क्ते**) और दूसरा भोगता है (**एष यस्य सिद्धांतः**) ऐसा जिसका सिद्धांत है (**सः जीवः**) वह जीव (**मिथ्यादृष्टिः**) मिथ्यादृष्टि (**अनार्हतः**)अनार्हत, अजैन (**ज्ञातत्वः**) जानना चाहिए।

॥ समय देशना ॥

भव्य बंधुओ। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज 'समयसार' में ध्रुव ज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। नित्यभूत ही मानते हैं और नित्यभूतता के कारण द्रव्य में कूटस्थ नामक दोष खड़ा हो गया। जो कूटस्थ है, वह अपरिणमनशील है और जो अपरिणमनशील है, वह जिस गति में होगा, उसी गति में कूटस्थ हो जायेगा, तब पुण्य और पाप की सारी व्याख्या निष्प्रयोजनभूत हो जायेगी। यदि वह द्रव्य को नित्य ही स्वीकारते हैं तो जीवद्रव्य नित्य हो जायेगा। जीवद्रव्य नित्यता के कारण हर एक व्यक्ति अपने आप में जैसी इच्छा होगी वैसी चेष्टा करेगा। क्यों? मैं तो नित्य हूँ। मनुष्य मनुष्य ही रहेगा, तिर्यन्च तिर्यन्च ही रहेगा, देव देव ही रहेगा, नारकी नारकी ही रहेगा और अपनी पर्यायों में, अपनी-अपनी गति में सारे जीव मस्त हो जायेंगे, यदि यह परिणमनशीलता नहीं मानते हैं तो। परिणमनशीलता जो है, वह पर्यायों की हो रही है। आयुकर्म क्षय होने पर दूसरी पर्याय मिलना नियत है, परंतु नियत पर्याय मिलना नियत नहीं है, कुछ अवस्थाएँ नियत हैं। नियत होने पर भी अनियत है। मरना नियत है, पर्याय मिलना नियत है, परंतु अंतर यह है कि तुम्हें कौन-सी मिलेगी? यह तुम्हारे परिणामों पर है। यदि अमुक पर्याय ही नियत है, तो फिर पुण्य-पाप की व्याख्या ही नष्ट हो जायेगी। कुछ पर्याय नियत हैं, पर्याय का परिणमन नियत है। अर्थ पर्याय का परिणमन प्रतिक्षण चल रहा है द्रव्य में। वह जो परिणमन है वह नियत है; परंतु इस नियत होने पर भी, आपकी असमानजाति पर्याय अनेक रूप में आपको प्राप्त हो रही है। वह पर्याय नियत ही नहीं है, आपके परिणामों पर आलम्बित है। यदि द्रव्य को नियत स्वीकारते हो तो वह अनेक पर्यायवर्ती है। पर्याय का परिणमन नियत है, परंतु हे जीव! अर्थपर्याय का परिणमन नियत नहीं है। अगुरुलघुत्व का परिणमन नियत है। कोई भी पर्याय हो, उससे कोई प्रयोजन नहीं है, उसका परिणमन नियत है। अगुरुलघुत्व का परिणमन नियत है, अर्थपर्याय का परिणमन नियत है।

यह लेखनी। इसमें जो उत्पाद-व्यय चल रहा है, अपने स्वभाव में वह नियत है। अब तू इसको चाहे लिखने के उपयोग में ले चाहे कान खुजाने के उपयोग में ले। तो यह नियत है या अनियत है ? इसका

जो परिणमन चल रहा है अपने चतुष्टय में, लेकिन इसका लेखन का काम था, वो कान खुजलाने में किया, यह कारण-कार्य का विपर्यास किया। यह ज्ञान का उपकरण है, लिखने का उपकरण है, यह किसी के कान खुजाने का उपकरण नहीं है। जो व्यक्ति लेखनी से कान खुजा रहा है, वह व्यक्ति ज्ञानावरणीय कर्म का आस्रव-बंध कर रहा है क्योंकि आपने कारण-कार्य विपर्यास किया। इसमें अर्थ पर्याय का जो परिणमन है, वह तो नियत है। हे जीव! इसको तूने कान खुजाने में प्रयोग किया, यह नियत था क्या? यह नियत नहीं है। हे जीव! तेरे हाथ में आये, दूसरे के हाथ में जाये, यह नियत नहीं है, यह अनियत है। परंतु इसका परिणमन नियत है। मिट्टी का सहज परिणमन अर्थपर्याय रूप नियत है। लेकिन कुम्भकार के द्वारा चाक पर रख करके उसी द्रव्य पिण्ड से कोई मटका बना रहा है, कोई सकोरा बना रहा है, कोई कुल्हड़ बना रहा है, कोई गुल्लक बना रहा है। यह पर्याय उस मिट्टी की नियत है या अनियत है?

हमारे मुमुक्षु भाइयों को इतना समझ में आ जाये तो विसंवाद किस बात का ? एक प्रवचनकार ने 345, 346, 347, 348 नम्बर की गाथाओं पर प्रवचन किये, गाथाकार और टीकाकार दोनों से विशेष हटकर किये और सुनने वाले श्रोता सुधि थे, उन्होंने बीच में प्रश्न कर दिया। लगता है कि उस समय और ज्ञानीजीव बैठे होंगे; सुधि श्रोता ने उनकी रक्षा के लिए प्रश्न किया कि उसे समझ में आया कि पूरा विषय विपरीत हो रहा है, फिर खींचकर लाया उसी स्थान पर। नियत, अनियत। अर्थपर्याय नियत है, लेकिन जो आपकी अशुद्ध पर्याय परिणमन कर रही है, यह नियत ही नहीं है। यदि नियत ही हो गई, तो पुनः द्रव्य गुण, हमारे सिद्धांत, जो जीव जहाँ से आया नहीं रहेगा, तो नियत हो जायेगा। फिर आप हिंसा, झूठ, चोरी कुशील पाँच-पापों से मुक्त होने की बात नहीं कर पाओगे।

स्त्री को स्त्री बनना है, पुरुष को पुरुष बनना है, नपुंसक को नपुंसक बनना है, तो पर्याय बदलने की क्या आवश्यकता ? देव को देव, नारकी को नारकी बनना है, तिर्यञ्च को तिर्यञ्च बनना है, तो मैं प्रयास क्यों करूँ? युवा पीढ़ी को इस विभिन्न प्रकार के दर्शनों की चर्चाएँ चारों ओर गूँज रही हैं, आपको समझने की आवश्यकता है कि आप तत्त्व की मात्र ऊपरी-ऊपरी परिभाषाओं में उलझ करके कहीं नियतवादी मत में प्रवेश मत कर जाना। तीन सौ त्रेसठ मिथ्यामतों में नियतवाद भी मिथ्यामत है गोम्मटसार कर्मकाण्ड में इन सारे मिथ्यामतों का भंग पूर्वक कथन किया है।

सम्यक् नियत मुझे स्वीकार है, परंतु मिथ्या नियत स्वीकार नहीं। बहु आरम्भ परिग्रह करेगा तो नरक आयु का आस्रव होगा या नहीं ? होगा। तो नियत कहाँ गया ? नियत है, तो यह सिद्धांत क्यों? खोटे कर्म करेगा, हिंसा आदि कर्म करेगा, तो दुर्गति में जायेगा। खोटे कर्म करने वालों का दुर्गति में जाना नियत है। लेकिन प्रत्येक जीव का वही अर्थ नियत नहीं है। **खोटा काम किया है, उससे दुर्गति हुई**

है। खोटे कर्म को हेतु बनाया है, दुर्गति कार्य हुई है। बिना कारण के कार्य की सिद्धि कैसे ? जहाँ कार्य है, वहाँ कारण अवश्य है। आपका नियत कैसे ? जहाँ जिसने जाना है, वहाँ उसके कारण नियत हैं। कार्य होना, उसके कारण नियत हैं। कारण नियत है, वह नियत से स्वीकार है। लेकिन बिना कारण के, बिना हेतु के, बिना साधन के यदि वह नियत ही है, तो आपका कथन मिथ्या है।

विषय थोड़ा कठिन है, इसलिए समझने की चेष्टा करो। आज यह विषय फैला कर रख दिया है कि नियत है। पुरुषार्थशून्यता। आप यह कहो कि केवली के ज्ञान में झलकता है कि ऐसा पुरुषार्थ करेगा ही, तो फिर केवली को क्यों पराधीन बनाऊँ ? काम तो मैं करूँगा, पुरुषार्थ मैं करूँगा। परिणमन मेरा हो रहा है। मैं सर्वज्ञ को बार-बार घसीटना पसंद नहीं करता हूँ। वे अपने ज्ञान में ज्ञेयभूत चारों गतियों को सहजरूप में देख रहे हैं। ज्ञाता-दृष्टा हैं, परंतु ध्रुव सत्य है कि निश्चय से तो निज के ही ज्ञाता-दृष्टा हैं। परद्रव्य तो बाद में झलकते हैं। इसीलिए कुछ नियत, कुछ अनियत। इस पर दृष्टिपात करो। जो परिणमन चल रहा है, वह अन्य है। अर्थ पर्याय। अगुरुलघुत्व का जो परिणमन है, अर्थरूप में चल रहा है। उसे रोक नहीं सकते हो। किसी भी काल में हो, किसी भी भाव में हो, परंतु उसका परिणमन अपने सहज स्वरूप में चल रहा है। परिणमन सहजरूप में चलते हुए भी असहज दशा बैठी हुई है। आपके भावों पर, आपके राग-द्वेष पर, जैसा राग-द्वेष भाव होगा, जिस गति के योग्य (अनुरूप) प्रत्ययभूत राग होगा वैसा तेरा भाव बनेगा। मेरे भावों के अनुसार भावों की नियतता है, परंतु भाव की नियत भावों के भाव में नहीं है। यदि भावों की नियत नहीं है, तो भाव की कोई नियत नहीं है। अगले-अगले भावों को कौन प्रदान करेगा? वर्तमान का भाव। स्यात् वर्तमान का भाव भविष्य के भव को प्रदान कर रहा है। हम लोग नित्य अनित्यवादी होने के नाते यह भी कह सकते हैं। वर्तमान का कर्ता कोई है, भविष्य का भोक्ता कोई है, यह भी कहने की शक्ति है मेरे पास में। आपके पास नहीं है, क्योंकि आप द्रव्य का नाश मान रहे हो। पर्याय के नाश की दृष्टि से कहना जानते हैं कि कर्त्ता कोई है, भविष्य में भोक्ता कोई है। कहें द्रव्यदृष्टि से। द्रव्यदृष्टि से कर्ता भी वही है, भोक्ता भी है। नियतता है, अनियत है।

नित्यानियत-अनियत परिणति है द्रव्य में। न नित्य नियतता है, न नित्य अनियतता है। नित्यानित्य दशा है। इस अवस्था में न हमारा पुरुषार्थ का लोप हो रहा है। दोनों धाराएँ युगपद् चल रही हैं। बस, अर्थपर्याय पर ध्यान दीजिए। अर्थपर्याय का परिणमन अन्यभूत से सब बराबर, पर कृत कुछ नहीं है। इसलिए अनियत है नियत है अपने सहजस्वरूप में चल रहा है। लेकिन जो भी चार गतियाँ आपको प्राप्त हो रही हैं, होंगी, हुई थीं, वह सब हे जीव ! नियत ही नहीं थीं, आपके पुरुषार्थगम्य थीं। अशुभ पुरुषार्थ करो तो अशुभ होगी, शुभ पुरुषार्थ करो तो शुभ होगी और पुरुषार्थ करोगे तो संसार के गत्यागत्यपने से समाप्त होकर अशरीरी सिद्ध अवस्था को प्राप्त करोगे। इस भविष्य को अध्यात्म की दृष्टि से क्या समझ

रहे हैं? क्या लौकिक दृष्टि, अलौकिक दृष्टि। जो नियत वा नियत नहीं है। जो अनियत है वह अनियत है। नियत पराधीन है क्या? नहीं। अनियत भी पराधीन है। नियत पर्याय पराधीन नहीं। समझ लो एक बार जीवन में। नियत पर्याय पराधीन नहीं, मैं जीवद्रव्य की दृष्टि से कथन कर रहा हूँ। स्वयं की दृष्टि से कथन करो तो मेरी अगली पर्याय भी पराधीन नहीं है, न कि ईश्वर के अधीन है, न कर्म के अधीन है। मेरी अगली पर्याय न पिता न माँ के अधीन, जगत् के अन्य अधीन नहीं है। मेरी अगली पर्याय भी मेरे स्वपरिणाम के अधीन है। जैसा परिणाम मैं करूँगा , वैसी भविष्य की पर्याय मेरी होगी। इसलिए मैं दोनों पर्यायों में, नियत पर्याय में भी स्वाधीन, अन्य पर्यायों में भी स्वाधीन हूँ। स्व का ही आसरा है, परके आश्रय से मेरी कोई पर्याय होती नहीं। जो बहिर निमित्त दिखाई दे रहे हैं, वे तभी तक तेरे लिए नियत हैं, जब जब उपादन को विकृत करना चाहता है। उपादान को नहीं बिगाड़ना चाहता है, पुण्य निर्मित करके न शुभभूत हैं, न अशुभभूत हैं। अन्तरंग तेरा शुभभूत है तो बहिरंग शुभभूत फलित होंगे। एक जीव परमात्मा की प्रतिमा को आराध्य आराधक भाव से युक्त होकर आराधना कर रहा है, उसको शुभभूत फलित हो रही है। एक जीव परमात्मा की प्रतिमा को भी अशुभ दृष्टि से देख रहा है तो उसे परमात्मा की प्रतिमा अशुभभूत ही फलित होगी, शुभभूत फलित नहीं होगी। इसलिए दोनों अवस्थाएँ नियत अनियत स्वाधीन हैं। चारों गतियों का बंध नियत स्वाधीन है। अनियत इसलिए है कि मैं परिणाम जैसे करूँगा, वैसा होगा। नियत नहीं। ज्ञानी भैया यह कहते हैं कि वो तो सर्वज्ञ के ज्ञान के अनुसार नियत है। तो तेरे परिणामों का क्या होगा ? और केवली के ज्ञान से परिणमन नहीं होता, मेरे स्वयं के मति-श्रुत ज्ञान आदि के माध्यम से परिणमन होता है। विषय को समझो।

अपनी पर्याय को नियत बना लिया, परसापेक्ष बना लिया, तो भी तू भटका और असहज नियत मान लिया, तब भी तू भटका। क्यों ? पापों का रसास्वाद तू लेता रहेगा, अशुभ परिणति से बचेगा नहीं, यह कहेगा कि यह तो केवली ने जाना है वो पर्याय नियत है। हे जीव! केवली से बाद में मिलना। केवली ने बखाना है। केवली ने जाना है, वो तो जाना है। केवली ने बखाना भी तो है, उससे तेरा कल्याण होगा। केवली ने जाना है, उससे तेरा कल्याण नियत नहीं है। केवली ने जो बखाना है, उस पर ध्यान दो। केवली ने यह कहा है, हे जीव! अशुभ मत कर। उपदेश दिया या नहीं ? महाव्रतों का पालन कर अणुव्रतों का पालन कर केवली ने ही कहा या नहीं?

यह जो धर्म की व्याख्या की है, वह केवली भगवान् ने कहा है। जब केवली भगवान् को यह समझ में आ रहा था कि मेरे ज्ञान के अनुसार सारी प्रकृति परिणमित होगी, तो यह कहने की आवश्यकता क्यों पड़ गई, फिर यह क्यों कह दिया कि महाव्रत/अणुव्रत का पालन करके सोलह स्वर्ग तक जा सकता है जीव? महाव्रतों का पालन कर लिया, अभव्य भी होगा, वो भी नौवे ग्रैवेयक तक जा सकता है।

भावलिंगी श्रमण भव्यजीव भावपूर्वक साधना करेगा तो नियम से निर्वाण प्राप्त करेगा। नियतता के साथ अनियतता को भी समझो। जो परिणमन चल रहा है अर्थपर्यायभूत, वो तो प्रत्येक द्रव्य में नियत चल रहा है। असमान जाति पर्याय तुम्हारे चल रही है, वो आपके पुरुषार्थ के अधीन है। समान जाति पर्याय को नाश भी करेगा तो तेरे पुरुषार्थ के अधीन है। पुरुषार्थ नित्यवादी नहीं है। मेरे दर्शनों में दैव दिखता है मेरी दृष्टि में पुरुषार्थ करोगे तो समय पर हुआ कार्य भी दिखता है, होनहार भी दिखती है। परंतु एकांत पक्ष किंचित् भी स्वीकार नहीं है। अन्यथा आपकी निज क्रिया, निज की चर्या, निज का पुरुषार्थ सब निष्फल हो जायेगा।

पूरे 'समयसार' में आज विषय बिलकुल हटकर प्रारम्भ हुआ है। इसलिए इस विषय को पुनः-पुनः समझना।

स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ।।30/भा.द्वा.।।

इस सूत्र पर ध्यान दो, हे जीव! जैसा शुभाशुभ कर्म तुमने पूर्व में किया है, वैसा ही शुभाशुभ फल मिलेगा। यदि पर के द्वारा किया फल मुझे मिलेगा तो स्वयं का किया गया कर्म निरर्थक हो जायेगा। जब नियत ही है, तो कर्म/पुरुषार्थ करने की आवश्यकता ही समाप्त हो जायेगी।

जो सोच चल रहा है, स्वाध्याय करता है, चार बातें अच्छी सुनने को मिल जाती हैं। हे माँ! चार बातें तुम अच्छी मानती हो क्या? क्या संगीत की लहरों को आपने अच्छा स्वीकारा ? क्या कंठ की माधुर्यता को अच्छा स्वीकारा ? यदि आप साँचे को अच्छा स्वीकारते हो तो गुझिया के साँचे में गुझिया का मसाला रखा है, उसमें आप जहर मिला कर रख दोगे तो उसका आकार गुझिया जैसा ही आयेगा। ऐसे-ही भाषा का जो आगम है उसकी भाषा एकत्वभूत हो सकती है, परंतु सिद्धांतों का ध्यान रखना चाहिए। आपने यह सोच लिया कि मैं तो चार अच्छी बातें सुनने जाता हूँ। सुनने जाते हो यह तो अच्छी बात है, लेकिन इतना तो ध्यान रखना कि तत्त्व का निर्णय करने की क्षमता है या नहीं? परिणमनता नियत है, पर्याय का परिणामी कार्य है या नहीं? और मिट्टी में जो सहज परिणमन चल रहा है, वह सब नियत है, लेकिन ईंट बनाना, कितने नं. की बनाना, यह अलग-अलग भट्टों के साँचों में बनती है।

साँचे का नाम इसलिए लिया गया कि कर्म तुम्हारा है, निर्माण नामकर्म, स्थान नामकर्म यह तुम्हारे साँचे हैं। गोत्र कर्म, यह तुम्हारे साँचे हैं जो छोटे-बड़े करा रहे हैं। इन साँचों में संचालन कौन कर रहा है? तत्त्वार्थ सूत्र में छटवाँ, सातवाँ, आठवाँ अध्याय याद हो अच्छी तरह से। यह इन बन्दरों को देखो जो चारों तरफ लाईन में घूम रहे हैं। माया से महामाया का काम किया। मायाचारी में महामायाचारी की

है। आप चाहो कि यह शांति से बैठ जायें, यह संभव नहीं है। इनके मस्तिष्क में कीड़ा जैसा काटता है। वे चाहें तो भी नहीं बैठ सकते। जब पूर्व में चित्त स्थिर नहीं कर पाये, चंचल चलायमान रहे। आँख कहीं घूम रही थी, मन कहीं घूम रहा था, वे आज बंदर पर्याय को प्राप्त हुए हैं। सामायिक में बैठे तो सामायिक नहीं की। प्रतिक्रमण, जाप में पता नहीं कहाँ भ्रमण चल रहा था। वो भ्रमण तेरा जो साधना के काल में तूने मन को कराया था अब तन से भ्रमण करो। मन को भ्रमण कराया था, अब भ्रमण करने की आदत बन ही चुकी है, इसलिए ऐसा मत करो।

कहीं आगम की व्याख्या में धर्म में नियतता ही प्रवेश करा दी है, कहीं अनियतता ही प्रवेश करा दी है। दोनों भिन्न विषय हैं। अभी तक जो व्याख्या की तेरह गाथाओं में, वह नित्य पर चर्चा की है। सांख्य और कर्मवादी। अज्ञानी कहते हैं ईश्वरकर्ता, अज्ञानी कहते हैं कर्मकर्ता। इन दोनों का कथन आचार्य महाराज ने किया है। न कर्म कर्ता न ईश्वर कर्ता। मेरा कर्ता मैं ही हूँ। आत्मा का कर्ता आत्मा, किस अपेक्षा से ? रागादिक भावों की अपेक्षा से आत्मा ही आत्मा का कर्ता है। लेकिन आत्मद्रव्य का कर्ता आत्मा भी नहीं है। चार गाथाओं के माध्यम से क्षणिक एकांतवादी को समझा रहे हैं। निर्णय मोक्षमार्ग का लेना है। जैसे स्कूल, कॉलेज में अध्ययन करते-करते यहाँ तक पहुँच गए, अब आप एक अध्यापक, प्रोफेसर, आचार्य की क्षमता को प्राप्त हो गये। लेकिन उस क्षमता के प्राप्त होने के बाद भी आपसे प्रमाणपत्र लिए ही जायेंगे कि आपने इतनी पढ़ाई की है। आपको इंजीनियर घोषित कर दिया जायेगा, लेकिन सर्विस नहीं मिलेगी। क्यों? यह तो आपकी ऊपर की पढ़ाई की पूर्ति है। नौकरी के समय तुम्हें पुनः परीक्षा देना होगी। अब किसकी परीक्षा?

हे जीव! आपने शब्द मात्र को जाना है। शब्दों में सिद्धांत क्या है यह समझा या नहीं ? इसी प्रकार से यहाँ श्रमणों से कहना है, हे श्रमणो! आपने वैराग्य को तो प्राप्त किया है। वह विषय कषाय से रहित हुआ है। विषय-कषाय की विरक्ति मात्र से नहीं होगी, आपको मिथ्यात्व से विरक्ति होना चाहिए। आपको अनेकांत दृष्टि पर आसक्ति होना चाहिए, एकांत दृष्टि से विरक्ति होना चाहिए। हे ज्ञानी! गहरे तत्त्व निर्णय हैं, कहीं क्षणिक में तो तुम्हारा जीवन नहीं चल रहा है? कहीं नित्य एकांत में तो जीवन नहीं चल रहा है? यह निर्णय तुम्हारा होना चाहिए। अब आपको शुद्धोपयोग की ओर ले जाया जा रहा है। आपको नौकरी प्रदान होगी। भर्ती हो गई, अब सर्विस प्रारंभ हो रही है। जिसके लिए तुम मुनि बने, उसका उद्देश्य क्या है? मस्तिष्क के सारे विचार स्पष्ट हो चुके हैं। बस, कुछ नहीं। जो सर्वज्ञ देव ने कहा है, वह वस्तु का स्वरूप इस तरीके से है। यह मेरे श्रद्धान पर पूर्ण रूप से अवस्थित है। स्वप्न भी आयेगा, तब भी मैं सर्वज्ञ की देशना की व्याख्या करूँगा। कहीं कोई जीव मूर्छित भी हो गया। जो जिस पंथ आम्नाय का पुरुष होता है, जिस देश, राष्ट्र, भाषा का व्यक्ति होता है, यदि पागल भी हो जाता है, अपने

पागलपन में भी अपने देश, प्रांत की भाषा में ही पागलपन करता है।

किसी धर्म से जुड़ा आदमी पागल हो जाता है तो पागलपन में भी वह धर्म की ही बात बोलेगा, अपने ही आम्नाय की बोलेगा। ध्यान दो ! हे जीव ! असाता (अशुभ कर्म) के उदय से तेरे अंदर पागलपन भी आ जाये, जब भी तुम बोलोगे अपनी मान्यता अनुसार ही बोलोगे। सर्वज्ञ का भाषण भी अंदर बैठी हुई आस्था का प्रतीक है, वो भी किंचित् निर्जरा का कारण है। पागलपन में यदि मृत्यु भी हो जाती है, तब भी संस्कार काम में आयेंगे, अगली पर्याय में पुनः पुनः देशना और अर्हन्त की वाणी पर विश्वास वाली पर्याय मिलेगी। इसलिए उठते, चलते, फिरते, सोते-जागते श्रद्धा में किसी अन्य विषय को प्रवेश नहीं देना, जो सर्वज्ञ की तत्त्व-प्ररूपणा है, एक मात्र वही समीचीन है। वही यथार्थ, भूतार्थ है। सम्यक् है। अन्य नहीं, अन्यथा नहीं।

अब आप नित्यपर आओ। कहीं आप क्षणिकवादी तो नहीं हो रहे हो? आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं :-

आदमी जब-जब मिथ्यात्व में जाता है, तब-तब उसकी पकड़ बहुत ऊँची होती है। ऊँची पकड़ में पीछे की ओर घूमकर देखता है तो नीचे की ओर गिर पड़ता है।

टावर पर वायर बांधते समय यह भी ध्यान रखता है कि नीचे किस पर पैर रखना है, किस हाथ से पकड़ा है चढ़ने के लिए। सुधारने के लिए ऊपर जाता है, लेकिन जिन-जिन सामग्री से गुजरेगा उनकी मजबूती पहचान भी लेता है। जब चढ़ता है और वहाँ जाकर बैठ भी जायेगा तब भी अपने स्थान का ध्यान रखेगा, वो सुधरे या नहीं लेकिन मेरा जीवन ना खत्म हो जाये। ऐसे-ही एक सुधारक यदि दृष्टि में स्व रक्षा को भूल गया तो वो सिद्धांत से फिसल गया। रहस्य पकड़िये, क्या कह रहा हूँ। जब मैं एक क्षण की पर्याय को देखता हूँ तब न भूत का दृश्य दिखाई दे रहा है, न भविष्य का कोई विषय दिखाई दे रहा है। अत्यंत निकट वर्तमान ही दिखाई दे रहा है। एक क्षण की पर्याय में अध्यात्म की दृष्टि से देखता है। भूत को सोचने का जितना विकल्प है, दुःख है। भविष्य को सोचूँगा तो दूर है। मैं तो एक क्षण की पर्याय को देख रहा हूँ। ध्यान का विषय है। भूत में मेरे साथ बहुत घट चुका है। या तो पुरुष भूत का सोचकर समय नाश कर रहा है या फिर भविष्य को रोता है। जो नश रहे हैं, नश गये हैं उनके लिए नाश कर रहा है वर्तमान का, नशने वाले हैं, फिर भी नाश कर रहा है वर्तमान पर्याय का।

जो मेरे सम्बंधी कहलाते थे, आज वो यहाँ हैं नहीं, उनकी यादों में हम अपने समय का नाश कर रहे हैं। नशने वालों के राग में नाश क्यों कर रहे हो ?

जो मेरे से सम्बंध रखते थे, वे चाहे चेतन द्रव्य हों, चाहे अचेतन द्रव्य हों, उनकी यादों में हम अपनी यादों को भूल रहे हैं, वर्तमान की। उन नसे हुए लोगों के राग में, नसे हुए द्रव्यों के राग में पर्याय दृष्टि से, हम अपने वर्तमान का नाश क्यों करें? एक दृष्टि। मित्र! जो हैं तेरे सामने, वे नशने वाले द्रव्य हैं, भविष्य में। चाहे माँ, पिता, गुरु, शिष्य हों, वे नशने वाले हैं द्रव्य। पर्याय दृष्टि से। हे जीव! इनके बारे में तू सोच रहा है। कितना ही तू आगे-आगे सोच लेना, बेटे की उन्नति में आगे-आगे सोच लेना। उसकी उन्नति का अंतिम दिन भी कुछ होगा। संसार में दुःखों का मूल है देह में आत्म बुद्धि। एक समय की पर्याय की जो व्याख्या है, उसका उद्देश्य क्या था ?

हे जीव! तू भविष्य को देखेगा तो कष्ट, भूत को देखेगा तो कष्ट। इसलिए तू अपने भगवान् को देख, एक समय के पुरुषार्थ को देख। भूत भविष्य को मत देख, एक समय की पर्याय को देख कि इस समय मैं क्या हूँ। भाव पर्याय देख रहा है, भव पर्याय देख रहा है। भव पर्याय देखेगा तो पुनः परेशान हो जायेगा। भाव पर्याय देख। एक क्षण, एक समय की भाव पर्याय में भाव पर्याय देख। मेरा भाव ईश्वर है। एवंभूत नय से मैं अपने वर्तमान की पर्याय को देख रहा हूँ। मैं अर्हन्त की देशना का पान कर रहा हूँ। मैं श्रोता हूँ। मैं वक्ता हूँ। मैं उसके आगे कुछ भी नहीं हूँ। सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय की दृष्टि से जो पर्याय नष्ट होती है, वो पुनः नहीं आयेगी, निकल गई। जो पर्याय है, वो भी नहीं बचेगी। जो पर्याय नष्ट होने वाली है, उन पर्यायों को क्यों देखूँ ? मैं उसे देखूँगा जो नष्ट नहीं होगा, जो अनन्त काल से मेरा आत्म द्रव्य है।

यह आगम दृष्टि है। इस आगम दृष्टि को पकड़कर, उसे समझ करके, मैं भूत की पर्याय को देखूँगा तो अशुद्ध दशा आ रही है, भविष्य की पर्याय देखूँ तो अशुद्ध दशा आ रही है। अन्य पर्याय में तो अशुद्ध दशा आ रही है।

एक समय की पर्याय को लेकर यह सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय पर दृष्टिपात करो। हे मुमुक्षु! जहाँ तुमने विशेष जोर दिया है तो तू फिसल गया यथार्थ तत्त्वदृष्टि से। एक समय की पर्याय क्यों थी ? और आप उसका उपयोग क्या कर रहे हो ? मस्तिष्क से कुछ भी कर रहे हो, धीरे से कहता है कि पर्याय गई और मैं भी गया, अब किसने पाप किया ? किसने पुण्य किया? झगड़ा बंद करो। ओह ! तू परनारी को निहार कर आ गया और कह रहा है कि वो समय गया।

मित्रो! पर्याय भिन्न थी, द्रव्य भिन्न था। पर्याय निकल गई, द्रव्य भी निकल गया। द्रव्य उसी ने भोगा है उसी पर्याय से, जो आज बैठा है। तुमने भोगा है।

मित्रो! जैसा तू दूल्हा बनकर गया था, बारात थी, पगड़ी थी, कंगन था, कटार भी टंगा था। जब

तू राजा बनकर घूम रहा था, हे ज्ञानी! वो पर्याय तो तेरी गई, तो परिणय किसका होगा ? जिसका परिणय हुआ था, वो भी गया। पुत्र किसमें हुआ? पुत्र का जन्म देने के बाद वो पर्याय गई, पुत्र का सुख कौन भोगेगा ? वो भी पर्याय गई। जो बारात में भीड़ लेकर सिर पर मौर, हाथ में कंगन पहन कर गया था, पटाखे फूट रहे थे, कोटि-कोटि जीवों की हिंसा हो रही थी, वो पर्याय गई। मेरी द्रव्य वही है। जब तू मुस्कुरा रहा था, शादी करने गया, जब बंध किया था, उसका प्रायश्चित ले लेना, नहीं तो नरक चला जायेगा। तुम्हारी शादी हुई थी तब कोटि-कोटि जीवों की हिंसा हुई थी, उस समय मुस्कुराहट हो रही थी। युद्ध सैनिकों के द्वारा चल रहा है, परंतु जय किसकी होगी ? सम्राट की होगी। सैनिक हार गये तो पराजय किसकी होगी? राजा की।

हिंसा बहुत करें, परंतु एक भोगे। हिंसा एक करे, तो अनेक भोगें। जैसे सेवकों के द्वारा होने वाली हिंसा है। प्रधान भोक्ता तो सम्राट होगा, यदि उसके आदेश में काम हो रहा है। इसलिए जो शादी में हिंसा हुई है, सब दूल्हा को लगेगी। तेरे निमित्त से सब हुआ है, चाहे बाजे बजाने वालों ने अशुद्ध भोजन किये होंगे, जो बाजे बजाने वाले थे उन्होंने जीवों के पिण्ड को खाया होगा, उस हिंसा का भी भागी तू ही रहेगा।

जैन समाज को चाहिए कि धार्मिक कार्यों में अपने युवाओं से कहो कि मंगलघोष की घोषणा करो। जैन समाज का द्रव्य किसी अभक्ष्य खाने वाले को मत दो, इन युवाओं को दो, जिससे ये धर्म की और प्रभावना करें। सत्य को नहीं समझोगे तब तक समझ में कुछ नहीं आयेगा। पर्याय तेरी सब निकल गई और अंतिम दिन का समय भी आयेगा। वो भी दिन आयेगा कि जिससे तूने जन्म लिया था वे तो जा चुके हैं। जिसको जन्म दिया है, वे तेरे जन्म की तैयारी नहीं कर रहे, वे तेरे मरण की तैयारी कर रहे हैं। माँ! सास-ससुर बूढ़े हो जायें और तेरे भाव ऐसे हों कि जल्दी मर जायें और जिस दिन मर गये तो रोकर दिखा रही हो। ये तुम्हारी शुद्ध घोर मायाचारी है।

जो एक समय की पर्याय थी, उसमें कैसे मिथ्यात्व प्रारम्भ होता है। मुझे तो विषय परिपूर्ण रूप से झलक रहा है। अहोभाग्य अपना है जो जिनवाणी सुनने मिल रही है, इसलिए द्रव्य मिथ्यात्व से, भाव मिथ्यात्व से, जगत् के सम्पूर्ण मिथ्यात्वों से अपने आप की रक्षा करो। शुद्ध का हल्ला करने वाले भी मिथ्यादृष्टि हैं। मैं सम्यग्दृष्टि हूँ। क्यों ? एक समय की पर्याय जाननेवाला हूँ। मुमुक्षु एक समय की पर्याय में उलझ करके द्रव्यत्व को खो देगा तो तू शुद्ध मिथ्यादृष्टि। यही तो गाथा कह रही है। इसलिए एक समय की पर्याय को कहाँ विषय बनाना ? जहाँ बाह्य विकल्पों से आत्मरक्षा करना है। मुझे मात्र मेरे एक समय का द्रव्य-गुण-पर्याय नजर आ रहा है। वो विषय है। इस विषय को लेकर बौद्ध दर्शन ने क्या किया? एक समय की पर्याय को कहकर, सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय को लेकर जहाँ जिन अर्हत् दर्शन में, दिगम्बर जिन श्रमण दर्शन में, जहाँ सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय की व्याख्या थी वहाँ द्रव्य की नियतता थी, तब

द्रव्य की नियतता को छोड़कर पर्याय की अनित्यता के साथ द्रव्य को ही अनित्य कर दिया और फिर कुछ भी कर गये तो वहाँ पुण्य-पाप आदि की व्याख्या घटित होती नहीं है।

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्य सम्भवः।
प्रत्यभिज्ञानाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलं ।। 41/ आ.मी.।।

आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी कर रहे हैं। यहाँ जो विषय चल रहा है, उसमें बिना तर्क और न्याय के कुछ नहीं आने वाला। क्षणिक एकांत पक्ष स्वीकार करते हैं तो प्रेत्य का भाव असम्भव हो जायेगा। प्रेत्य-पुनर्भव। जब क्षणिक ही हो गया, तो प्रेत्य का अभाव हो गया और कार्य का आरंभ जिसने किया तो फल कौन भोगेगा? क्यों ? आरंभ करने वाला तो नष्ट हो गया। इसलिए जहाँ कर्ता कोई भोक्ता कोई होगा, उसके यहाँ प्रत्यभिज्ञान भी घटित नहीं होता। फिर जिस घर से आया था, उस घर जा ही नहीं सकता। स्मृति, प्रत्यक्ष के दो रूप ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। किसमें स्मृति ? किसमें शोक ? प्रत्यभिज्ञान ही नष्ट हो गया। क्षणिक एकांत में कोई व्यवस्था होती नहीं है। हमारे आचार्यों ने क्षणिक सिद्धांतवादियों के लिए, कितना गहन-गहन अध्ययन करके, गहन-गहन लिखा हुआ है। 'सत्यशासन परीक्षा' ग्रंथ आचार्य भगवन् विद्यानंद स्वामी ने लिखा है और 'समयसार' जैसे कितने अलौकिक ग्रंथ हैं। **व्यापारिक समाज के हाथ में धन का पक्ष है, जिनको व्यापार से समय नहीं मिलता कि तत्त्व की गवेषणा कैसी है? अर्थ ही को सबकुछ मान लिया है। चाहे कितना ही अनर्थ हो जाये। अर्थ के साथ गृहस्थ आत्मार्थी भी बनना चाहिए। यदि आत्मार्थी नहीं हो, तो अर्थ किस काम का ? जब अंतिम समय देखा तो ध्यान आया।**

सिद्धांत पर ध्यान दो। माँ! ज्यादा हाय-हाय मत करो। अपनी सल्लेखना की तैयारी करो। परंतु अचानक लेकर मत बैठ जाना। ऐसा नियम मत लेना कि आज मैं मरूँगी ही। आत्महत्या हो जायेगी। आप यह विचार करना कि जब मेरा अंतिम श्वास का निसर्ग हो तो पंचपरमेष्ठी की आराधना के साथ, समय भाव के साथ हो, उसके लिए आपके परिणाम आज से ही अच्छे होना चाहिए। **पर्याय के विनाश से पर्यायी का विनाश नहीं होता है।**

पर्याय के विनाश से क्या जीव का नाश हो जायेगा ? पर्याय के विनाश होने पर जीव का नाश नहीं होगा, परंतु ऐसे अज्ञानी भी हैं जो पर्याय के विनाश के साथ जीव का ही नाश हो जायेगा ऐसा मान लेते हैं, इसलिए कहते हैं, अन्य-अन्य कर्ता है, अन्य-अन्य भोक्ता है। यहाँ कोई एकांत नहीं है, अनेकांत है। हम स्याद्वादवादी क्या बोल रहे हैं? अनेकांत है पर्याय की दृष्टि से। पर्याय नशती है, जीव नहीं नशता। यह मानते हैं कि करने वाला अन्य है। एक पक्ष सुनो। तात्पर्य समझो। जब पर्याय नश गई, तो पर्याय

दूसरी आयेगी। मनुष्यपर्याय ने पुण्य किया, देवपर्याय ने सुख भोगा, ऐसा नहीं है क्या? तो पर्याय की दृष्टि से करने वाला अन्य और भोगने वाला अन्य है। एकांत में अनेकांत है। लेकिन ऐसा नहीं है कि करने वाला कोई दूसरा जीवद्रव्य है, भोगनेवाला कोई दूसरा जीव द्रव्य है। ऐसा जो मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है, परंतु हम उसे करने वाला मानते हैं जीवत्व की दृष्टि से। वही भोगने वाला है। कोई पर्याय के नाश होने पर 'कोई जीव का नहीं मानता। भाषा का परिवर्तन है, भाव एक ही है। पर्याय के नाश होने पर कोई जीव का विनाश मानते हैं, अथवा जीव विनाश नहीं मानते। तो वेदता कौन? हाँ पूर्व में कहा कि कर्ता कोई है, भोक्ता कोई है। यहाँ कह रहे हैं कि जो वेदता है, वह अन्य ही है। **पर्याय की दृष्टि से वेदने वाली पर्याय भिन्न है, करने वाली पर्याय भिन्न है। छात्र ने पढ़ाई की है शिशु अवस्था से युवावस्था तक। मेहनत की बच्चों ने, भोगेंगे बूढ़े। पूरी विद्या का फल बूढ़े ही भोगेंगे। पर्यायदृष्टि से भेद है। द्रव्यदृष्टि से, जो शिशु था, जो युवा था, वो ही तो वृद्ध हुआ है।** इसलिए कोई दूसरा नहीं होगा। मैंने पढ़ाई की, मैं ही उसका फल भोगूँगा। यह जैनदर्शन का स्याद्वाद अनेकांत है।

विपरीत सिद्धांत की बात कर रहे हैं। जो कर्ता है , वो वेदता नहीं है। ऐसा जिसका सिद्धांत है, '**सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी**' उसे जानना चाहिए मिथ्यादृष्टि जीव। '**अणारिहदो**' अर्हन्त दर्शन में नहीं है, अलग दर्शन का है। अर्हन्त दर्शन में कोई स्थान नहीं है। '**अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ**' अन्य करे अन्य भोगे। करे कोई, भोगे कोई।

अध्ययन खोज/अन्वेषण रूप में करना चाहिए। 'अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ' हिंसा कोई कर रहा है, हिंसा का फल कोई-और भोग रहा है। क्षणिक एकांतवाद। मस्त हो गये। मैंने तो ऐसा किया ही नहीं, हिंसा करने वाला गया। आपको यह देखना है किस ग्रंथ में किस का एकांकी पक्ष चल रहा है, समानाधिकरण चल रहा है। उससे आपके मस्तिष्क में बोध रहेगा। वकील भी एक पोथी पढ़कर वकालत नहीं करते हैं। बहुत पुरानी-पुरानी पुस्तकों को उठाकर देखते हैं। जब भारत का स्वतंत्र संविधान लागू नहीं हुआ था, उसके पहले के भी संविधान देखने पड़ते हैं।

ऐसा नहीं कि किसी शिष्य से अपराध हो गया तो उसे तुरंत संघ से निकाल दिया। अपराध की धार देखी जायेगी और ऐसा अपराध पूर्व में किस संघ में हुआ? उसे क्या प्रायश्चित्त दिये गये थे। यह सारी विधाएँ स्थिविराचार्य जानते हैं उनका काम ही यह होता है। स्थित प्रतिमा। प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन, दण्ड संहिता का अध्ययन और पूर्व आचार्यों का अनुभव और सुख-दुःख के साक्षी दृश्यमान जो दण्ड संहिता है। वह सब सामने होना चाहिए। आपके शिष्य शिक्षित हो गये और आगे ग्रंथ में पड़ेंगे तो आप पर अश्रद्धान हो जायेगा, कि मुझे ऐसा दण्ड दिया। आचार्य श्री विमलसागर जी को मैंने देखा,

सन्मतिसागर जी को मैंने देखा। दस साल का बालक भी धर्म चलाता है। वो अस्सी साल तक चलेगा। सन्मतिसागर ने महावीरकीर्ति महाराज से सुना। महावीर कीर्ति महाराज के सामने आचार्य शांतिसागर, आदिसागर, शांतिसागर तीन आचार्य थे। कोई यह मत कह देना कि उसके पहले मुनियों का अभाव हो गया था। यह कहना चाहिए धर्म की विशेष प्रभावना उन्होंने की है। मुनिपरम्परा का अभाव नहीं हुआ था। मुनिपरम्परा तो आदिनाथ से लेकर आज तक खत्म हुई नहीं है। यह मानता हूँ, कि मृदुल चर्या हो गई हो। यदि आप कहो आचार्य शांतिसागर महाराज से मुनिचर्या प्रारम्भ हुई है। उन्होंने भी तो देवेन्द्र कीर्ति से दीक्षा ली थी। शांतिसागर महाराज जी जब गृहस्थ थे तो आदिसागर महाराज को चर्या के लिए ले जाते थे। आदिसागर अंकलीकर, आदिसागर बोरगाँव नाम के अनेक आदिसागर हुए हैं। सबके नाम आदिसागर हैं। दक्षिण भारत में साधु अल्प थे, परंतु अभाव नहीं था। साधन कम थे आने-जाने के। आज तो आप कहीं भी चले जाओ, कहीं-न-कहीं तो श्रावक आते ही हैं। क्योंकि आज इतने साधन हैं, तुरंत आ जाते हैं। पहले हमारे बुजुर्ग सम्मेदशिखर जी जाया करते थे तो एक निर्णय पर जाते थे। आ गये तो पुनः मिलेंगे, नहीं तो हम जा रहे हैं। आज तो बच्चे भी सम्मेदशिखर की यात्रा कर आते हैं, पहले तो बूढ़े होने पर ही जाते थे। इसलिए जो पूर्व परम्परा है, उस परम्परा का ध्यान तो रखना ही होगा। जो सनातन परम्परा चली आई है, वह संहिता है। वह भी सनातन है। अब अध्ययन और तर्कणा। अध्ययन ग्रंथों से किया जाता है, तर्कणा से प्रज्ञा से यदि प्रज्ञा में तर्कणा शक्ति नहीं है, तो ग्रंथों का अध्ययन कुछ नहीं कर पायेगा।

वकील साहब! कोर्ट के निर्णय पर एक पराजित होता है दूसरा जीतता है। शास्त्र एक जैसे होते हैं। वहाँ शास्त्र काम नहीं आते, वहाँ शास्त्र की तर्कणा शक्ति काम आती है।

अन्य कर्ता अन्य भोक्ता है, ऐसा जिसका सिद्धांत है, उसे क्षणिकवादी मिथ्यादृष्टि जीव जानना चाहिए। वह अर्हन्त दर्शन को स्वीकार करने वाला नहीं है।

जो प्रति समय होने वाले अगुरुलघु गुण के परिणमन के द्वारा तो क्षणिक है और चेतन की दृष्टि से जो अविरल रूप से अचलायमान है। एक ही समय में नित्य भी है, एक ही समय में अनित्य भी है। अगुरुलघुत्व की दृष्टि से क्षणिक है, चेतनदृष्टि से नित्य है। स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य। ऐसा द्वैत स्वभाव है। कुछ पर्याय विनशति है और कुछ नहीं विनशति हैं। द्वैत स्वभाव है। कुछ पर्याय नष्ट हो रही हैं, परंतु अर्थपर्याय सर्वकाल है। अर्थवान द्रव्य है। जीवत्व की बात करें, तो जीवत्व भाव है चेतनत्व भाव है, पुरुषत्व भाव है, जो पुरुष है वह नित्य है।

'**अस्ति पुरुष चिदात्मा**' ग्रहण करना यहाँ।

पुरुष है, वह नित्य है। उस पुरुष में गुण हैं या नहीं ? पर्याय के दो भेद हैं, गुण पर्याय और व्यंजन पर्याय। जो द्रव्य हैं, वो गुणवान हैं। जो गुण हैं, वह द्रव्यमान है। गुण के विकार का नाम ही पर्याय है। द्रव्य के विकार का नाम ही पर्याय है। जो द्रव्य में परिणमन चल रहा है गुणत्वभूत, वह त्रैकालिक है। जो गुण पर्याय है वह नित्य है, जो व्यंजन पर्याय है वह अनित्य है। जो गुण द्रव्य है, वह पर्यायवान है। अब असमान जाति पर्याय की बात कर रहे हो, अगुरुलघुत्व की बात कर रहे हो, वह नाशवान पर्याय है। लेकिन जो मेरे ज्ञान में ज्ञायकत्व भाव है, वो अविचल है। उसमें परिणमन है या नहीं ? चेतन का चेतन भूत परिणमन नित्य है। इसलिए पर्याय स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य। पुद्गल में लगाओगे तो अनित्य। पुद्गल की पर्याय नित्य है। वहाँ भी अर्थपर्याय लगाओगे तो अनित्य है। तद् आयु प्रमाणिक आयु को ग्रहण करोगे तो नित्य है और सूत्र में ग्रहण करोगे तो व्यंजन पर्याय भी अनित्य है। जो सिद्ध पर्याय है, वह जीवद्रव्य की सादि नित्य पर्याय है। व्यंजन सादि नित्य पर्याय है। लेकिन वहाँ भी भूत पर्याय की दृष्टि से देखोगे तो नित्य ही है। जैसा ज्ञायकत्व भाव निगोद में था, ज्ञायकत्व में पर्याय को गौण करके देखोगे तो गुण नित्यस्वभाव, ज्ञायकत्व स्वभाव। गुणत्व सामान्य।

जो कर्ता है, वही भोक्ता है। हमारे यहाँ दो धाराएँ चल रही हैं। जो कर्ता है, वही भोगता है, अथवा अन्य भोगता है। जो कर्ता है, वही भोगता है, द्रव्यदृष्टि। जो कर्ता है, अन्य भोगता है, पर्यायदृष्टि। दोनों मानना, नहीं-तो पुण्य-पाप व्यर्थ हो जायेगा। वेदता है वही कर्ता है या अन्य कर्ता है? जो भोगता है वही कर्ता है। एकांत है। द्रव्यदृष्टि से जो कर्ता है वही भोगता है। जो भोक्ता है वही कर्ता है, पर्यायदृष्टि से जो भोक्ता है अन्य करता है स्यात्। इस प्रकार से जिस क्षण में पर्याय होती है, उसी क्षण में परमार्थ से वस्तु की सत्ता भी है। जिस क्षण में पर्याय का विनाश है उसी समय वस्तु की सत्ता भी है। ऐसा हमारा अनेकांत धर्म है। अब यहाँ क्या कह रहे हैं। वस्तु के समय भी वस्तुत्व पाया जाता है। जो जीव शुद्धनय के लोभ से सूत्र अनेकांत से, शुद्धनय के रूप से ऋजु सूत्र नय के एकांत से युक्त होकर 'जो कर्ता है वह वहीं भोक्ता, अन्य ही करते हैं अन्य ही भोगते हैं। ऐसा जो कहता है, बोलता है,उसे मिथ्यादृष्टि ही जानना चाहिए। क्षणिक एकांत पक्ष में भी जो द्रव्य का अंश है, वृद्धमान है। पर्याय है वह पर्यायी है। वृद्धि-पर्याय वृद्धिमान पर्यायी है। जो पर्याय है, वह पर्यायी से भिन्न होकर परिणमन नहीं करती है। पर्याय पर्यायी से भिन्न होकर गमन नहीं करती है। पर्याय व्यय को विनाश को प्राप्त हो रही है, उसी धाराप्रवाह में दूसरी पर्याय आ रही है। परंतु पर्यायी वही है। संतान की दृष्टि से पर्याय पर्यायी में अनन्य भाव है। पर्याय पर्यायी में तुच्छाभाव नहीं है। इसलिए चेतन स्वरूप आत्मा है वह अंतरंग में प्रकाशमान है। पर्यायी से रहित पर्याय नहीं है और पर्याय व पर्यायी से रहित गुण भी नहीं है। इसलिए द्रव्य कैसा है?

गुणपर्ययवद् द्रव्यम्।।4/38 त.सू.।।

गुणों से और पर्यायों ये युक्त है, उसका नाम द्रव्य है।

ज्ञानी! जितने काले लोग होंगे, वे ही ज्यादा अपने शरीर को सुगंधित करना चाहते हैं और जितने जिनके शील भंग होंगे, वो ही शरीर का उतना शृंगार करना चाहते हैं। एक साबुन को धोकर रख रहा है कि कोई दूसरा उपयोग न कर ले। भाई! अपने साबुन को तो छुपाकर रख रहा है कि कोई उपयोग न कर सके, परंतु हे अभागे! तू अपने ज्ञान-उपयोग को अपने वीर्यान्तराय कर्म को अपने शेष इंद्रियों के क्षयोपशम को पर के देखने में, पर के सोचने में पर के बारे में कितना व्यर्थ नष्ट कर कर रहा है, तो तेरी पर्याय साबुन से भी खोटी है क्या? शुद्ध अज्ञानी लोग हैं जो इस बात में डूबे हुए हैं कि अमुक सागर क्या कर रहे हैं? अरे! कौन क्या कर रहा है? वो बच्चा ज्यादा अच्छा है अपनी माँ से कहता है माँ ! जल्दी साबुन छुपा दो, दूसरे लोग आ रहे हैं। तू इतना भोला है कि बच्चा से भी गया-बीता है बच्चे-जैसा भी ज्ञान नहीं है तुझे जो कि अपने जीवन के निषेकों को परके सोचने में लगा रहा है? धिक्कार हो तेरी अज्ञान बुद्धि को। 'जो है, सो है।' नहीं लगना चाहिए बुरा? लगना ही चाहिए बुरा। ज्ञानी! यह ध्रुवधाम दशा की व्याख्या है। शीतल लहर चल रही है निर्ग्रन्थ तपोधन के भीतर। एक समय की पर्याय को देख रहे हैं गुण की। एक समय की पर्याय को देख रहे हैं द्रव्य की। मेरा ज्ञानगुण श्रुतमय है। मेरा द्रव्य श्रुत की अनुभूति ले रहा है। यही श्रुत तुमको कैवल्य प्रकट करायेगा। कैवल्य का जनक दूसरा है ही नहीं। न मनःपर्ययज्ञान, न मतिज्ञान, न अवधिज्ञान। कोई ज्ञान कैवल्य प्रकट नहीं करायेगा। जब भी कैवल्य प्रकट होगा तो श्रुत से ही होगा। बिना शुक्लध्यान के कैवल्य प्रकट होगा क्या? नहीं होगा। तो बिना श्रुत के शुक्लध्यान होगा क्या? **शुक्ले चाद्ये पूर्व विदः** (त.सू.) आदि के दो शुक्लध्यान पूर्वविद के होते हैं और **वितर्कः श्रुतम्**। वितर्क होते हैं, यह सब क्या है? श्रुत है। इसलिए कभी भी जीवन में यह मत सोचकर बैठ जाना कि मैं तो ध्यान कर लूँगा। ज्ञान ही नहीं होगा तो ध्यान किसका करेगा ?

ज्ञान से ध्यान की सिद्धि, ध्यान से निर्वाण की सिद्धि। बिना ज्ञान के ध्यान नहीं होगा, दुर्ध्यान करेगा। जितना गहरा ज्ञान होगा, उतना गहरा ध्यान होगा। जितने त्यागीगण हैं, उनको तो बाहर की पुस्तकें पेटी में बंद करके अलग रख देनी चाहिए। मात्र जिनवाणी पढ़ना चाहिए। जो पढ़ोगे, वो निकलता है मुख से। जो पढ़ोगे, वो निकलता है सोच में। यदि जीव करणानुयोग पढ़ेगा तो मुख से वही तो निकलेगा। तुम दुनिया की पोथी लेकर बैठ जाओगे तो वही निकलेगी मुख से। इसलिये मात्र जिनवाणी पढ़ो।

सुन्दर शैली, सुन्दर साहित्य, जिनवाणी पढ़ोगे तो विश्वास रखो, वाणीशुद्धि होगी। तो वचनशुद्धि भी होगी। जिसकी मन शुद्धि, वचन शुद्धि चल रही है, उसकी काय शुद्धि भी होगी। कहीं चित्त नहीं

लगाना, मात्र सर्वज्ञ की सुनो, सर्वज्ञ पर सोचो, सर्वज्ञ को जानो। सर्वज्ञ बनना है तो असर्वज्ञाभासों के बारे में क्या सोचना?

सर्वज्ञ की सुनो। अब आप प्रश्न करो कि आप भी तो बोल रहे हो, आप सर्वज्ञ नहीं हो?

मैं जो कह रहा हूँ, असर्वज्ञ होकर भी असर्वज्ञ की नहीं कर रहा हूँ। जो सर्वज्ञ ने कहा है, उसे कह रहा हूँ। इसलिए सर्वज्ञ की नहीं कह रहा हूँ। मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ। परंतु सर्वज्ञ बनने के लिए सर्वज्ञ की ही कहना पड़ेगा, सर्वज्ञ की ही सुनना पड़ेगा, सर्वज्ञ की ही सोचना पड़ेगा।

''सर्वज्ञभाषित'' जो सर्वज्ञ ने भाषित किया है। उसे ही मैं कह रहा हूँ। इसलिए मैं सर्वज्ञ को जब **''जिनाः देवः यस्य जैनाः''** जिन जिसके देव हों, वह जैन हो जाता है। तो सर्वज्ञ की सोचने वाला भी भविष्य का सर्वज्ञ हो जायेगा। तर्क बुद्धि होना चाहिए। सर्वज्ञ की सुनो, **अर्हन्त के द्वारा भाषित है, गणधरों के द्वारा गुंथित है और आचार्यों के द्वारा लिखित है। वो सर्वज्ञ वाणी जयंवत हो।** यदि आपने वीतरागी सर्वज्ञ निर्ग्रंथ गुरु की बात का विपरीत भी श्रद्धान कर लिया, तब भी सम्यक्त्व रहेगा। असर्वज्ञभासों की सभी बातों को श्रद्धान करके समझ रहे हो तो तुम्हारा मिथ्यात्व ही है। वीतरागियों की सही बात आपने विपरीत समझ कर समझ ली है, तब भी तुम्हारा सम्यक्त्व है। लेकिन तब-तक जब तक तुम्हें किसी ज्ञानी ने आगम खोलकर नहीं दिखाया। आगम खोलकर दिखा दिया कि भाई! आप अशुभ सुन पाये होंगे, अशुभ सोच पाये हो, लेकिन उन्होंने सही कहा होगा, आपके सोचने में, सुनने में विपरीतता आ गई है ऐसा समझ लीजिए। आपको स्वीकार कर लेना चाहिए, नहीं स्वीकार करते हो तो उसी क्षण से आप भी मिथ्यादृष्टि। यहाँ नहीं चलता कि चलता है, डॉक्टर साहब! मुक्तापिष्ठी बेंच रहे हैं। मोती भस्म। जब यहाँ मोती होते नहीं, तो मोती की भस्म कहाँ से आ गई? आज बाजार में खूब मुक्तापिष्ठी बिक रही है, लेकिन कार्य सिद्ध नहीं हो रहा है, क्योंकि केमिकल से मोती बन रहे हैं। केमिकल के मोती की पिष्ठी बनेगी, वो मुक्तापिष्ठी क्या करेगी? क्या समुद्र के शुद्ध मोती तुमको मिल रहे हैं? नहीं। एक वैद्य जी मोती रखे थे। कह रहे थे कहीं किसी के पास नहीं है, शुद्ध मोती यह है। हे ज्ञानी! तुम्हारी औषधि तुम्हारी निरोगता कैसे करेगी ? जब तुम्हारे सोच का साधन ही उल्टा है, उससे तुम्हारा सोच सीधा कैसा होगा? चिंतवन देने वाला ही उल्टा है, तुम्हारा चिंतवन कैसे बनेगा। इसलिए तत्त्व का सुन्दर शब्द बाद में सुनना चाहिए, तत्त्वज्ञ का सुन्दर निर्णयात्मक ज्ञान पहले देखना चाहिए। प्रवचनकार की सुन्दर भाषा बाद में सुनना चाहिए, प्रवचनकार प्रवक्ता स्वयं श्रद्धावान् है या नहीं ? वक्ता स्वयं विवेकवान है या नहीं? वक्ता स्वयं चर्यावान् है या नहीं? जिसकी बात कर रहा है, उस बात पर श्रद्धान् उसका कितना है? कि मात्र मुझे सुना रहा है? शुद्धोपयोग की भूमिका की बात मुख से हो,

शुद्धोपयोग में होने के लिए भेष और संयम तेरे पास न हो, तो वहीं तू मुझे असंतुष्ट कर देगा। कहाँ? अपनी वर्तमान की तेरी पर्याय जैसी चल रही है सवस्त्र अवस्था में, वह तुझे संतुष्ट कर देगा, इसी में सबकुछ हो जाता है। सम्यक् होते ही सारा निर्णय हो गया। चौदहवें गुणस्थान की भूमिका तू चौथे गुणस्थान में ही लागू कर देगा। ऐसा ही हुआ है इसलिए जीव जो चौदहवें गुणस्थान की व्याख्या को चौथे गुणस्थान में ही पूर्ण मान बैठा है, ऐसा जीव न कपड़े, न डण्डा, न लोटा, न सोटा छोड़ेगा। वही सबकुछ मान लेगा। तेरे मानने से हाथी कभी श्वान होता नहीं, हाथी कभी मूषक होता नहीं। हाथी तो हाथी ही होगा, मूषक तो मूषक होगा, श्वान तो श्वान होगा।

एक समय की पर्याय न समझने के कारण कषाय ने वस्त्र धारण कर लिये। जिसके वस्त्र ही कषायले हैं, उसकी वासना कितनी कषायली होगी। एक क्षण की पर्याय को सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय को पकड़कर, द्रव्य की अशुद्धि न हो जाये, सो द्रव्य का नाश कर दिया और पूरे विश्व में क्षणिकम् क्षणिकम् सिद्धांत खड़ा कर दिया। इसलिए एक समय की पर्याय के राग में उलझकर कहीं द्रव्य को तुम भी क्षणिकम् करने मत बैठ जाना। क्या उद्देश्य था? इन कलशों में देख लो। उद्देश्य-निर्देश। उद्देश्य जैसा होना चाहिए, उतना पवित्र निर्देश भी होना चाहिए। उद्देश्य तुम्हारा पवित्र है। निर्देश तुम्हारा उल्टा हो गया तो उद्देश्य तुम्हारा उल्टा ही हो जायेगा। क्या मुख से कहने मात्र से अच्छा हो जायेगा? क्या मन में अच्छा सोचने मात्र से अच्छा हो जायेगा ? तो श्रावक तुम सोच लो -

'' अहं शुद्धस्वरूपोऽहम्''

विश्वास रखना, तुम यह कहने के ही इस समय कर्ता हो, अभी तुम कुछ स्वरूप में नहीं हो। शुद्ध स्वरूप कहकर कोई अपने आपको शुद्ध मान रहा है, तो वह स्वयं के द्वारा स्वयं को छल कर रहा है। भावनाओं को भावना स्वीकारिये, भावना को भाव मत स्वीकारिये। भावना के मुनि तो यहाँ बहुत सारे बैठे हुए हैं, भाव के मुनि तो विश्व में अंगुलियों पर गिनने लायक हैं। बस, भूल यहीं कर गये। भावना के मुनि का प्रमाणपत्र दे गये। ज्ञानी! भावना और भाव में महान् अंतर है। द्रव्यलिङ्ग, भाव लिङ्ग, भावना और भाव में महान् अंतर है। जो मुनि बनने के परिणाम हो रहे हैं आपके, वह भाव मुनि नहीं है, यह मुनि बनने की भावना है। आगरा में किले के अंदर बाँझ का बेटा भूख से बिलख रहा था, इन मुमुक्षुओं को दया आ गई, वे आकाश के फूलों के दोने बना कर लाये, गाय के सींग से दूध निचोड़कर लाये, बाँझ के बिलखते हुए बेटे को पिला दिया। ठीक है? मुमुक्षु! सारी सारी व्यवस्था असम्भव। जैसे यह असम्भव है, ऐसे-ही भावना करने मात्र से भव का नाश भी असम्भव है। भव का नाश चाहिए तो भावनापूर्वक द्रव्यसंयम स्वीकारो, द्रव्यसंयम की एकाग्रता में जब लीन हो जाओगे, तब संयम का भाव प्रगट होगा। जब अनंतानुबंधी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान इन सर्वघाति प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय

और देशघाति प्रकृति संज्वलन के उदय होने पर जो परिणाम होंगे, तब तेरे भावलिङ्गी श्रमण के परिणाम होंगे। ऐसे संज्वलन के मन्द उदय में विराजे, तीव्र उदय से विराजे उन भावलिङ्गी श्रमणों को कोटि-कोटि नमोऽस्तु।

जब साधु साधुता में उतर जायेगा, तब जगत् की कोई भी बात न उसे नापसंद होगी, न पसंद होगी। यदि पसंद है तो साधुता नहीं है, नापसंद है तो साधुता नहीं है। पसंद-नापसंद दोनों शब्द उनके शब्दकोष से समाप्त हो जायेंगे। न मनोज्ञ, न अमनोज्ञ। यह पाँच-इंद्रिय के विषय हैं, राग-द्वेष का अभाव जहाँ से हो जायेगा, वहीं योगी जिनयोगी होगा। उसकी साधना करो। सारी साधना उसी के लिए है। उसकी साधना नहीं हो रही है तो मात्र चित्रमुनि। जैसे सर्वज्ञ की तस्वीर लगी है दीवार पर, ऐसे-ही चित्र मुनि। वो कागज पर है, पौद्गलिक है। यह देह पर है, वो भी पौद्गलिक है। सहन कर पाना कठिन है। सुन लो, अच्छे से। न सुन पाओगे, न सुना पाओगे।

शक्ति नहीं है लोगों में। न सुनायें, न सुन पायें। यह है समयसार, समयसार की प्राप्ति के लिए ही सारी साधना है। बाकी ठीक है। स्वर्ग जाने के लिए तो ज्यादा कुछ नहीं करना पड़ता है। सिद्ध बनने के लिए और भी कुछ नहीं करना पड़ता। वो तो भाव से ही पाप छूट जाते हैं। भव का भाव नहीं आता है। कुछ नहीं करना पड़ता। क्यों कर दिया है विपर्याय उसके लिए, आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कितने बड़े निर्णयात्मकाचार्य थे। शैली सगुण का परिणमन है। सिद्धांतागम है। आध्यात्मिक शैली थी, सिद्धांत जिन देव का था। अमृतचन्द्र स्वामी ने क्या किया? अध्यात्म शैली में पूरे न्याय दर्शन को रख दिया। दर्शन शास्त्र। पूर्व में सांख्य की चर्चा की। अब बौद्ध की चर्चा कर रहे हैं। कहने की शैली चल रही है। खण्डन भी होता है और किसी को पता भी नहीं चल रहा है।

तात्पर्य समझिये, तत्त्वज्ञानीजीव कितने अच्छे से बैठते हैं सभा में। अज्ञानी जीव पैर उठा कर बैठते हैं। वस्तुस्वरूप समझो। ज्ञानी का बैठना, उठना, चलना सब ज्ञानीभूत है। अज्ञानी का खाना, बैठना, चलना सब अज्ञानभूत होता है। मैं तो प्रवचन कर रहा हूँ, इसमें से कितने लोग अव्यवस्थित बैठे थे, वे ठीक से बैठ गये। पता चला नहीं, पता चल ही गया। अभी मैं मंच से बोलता कि हे भाई ! कैसे बैठा है? ठीक से बैठ जा। क्या तुम साधु हो, बेचारे की सबके सामने उतार दी? देखा, बहुत सारे लोग तिरछे बैठे थे, वे धीरे-से अपना पैर ठीक करके बैठ गये। परंतु मैंने तो किसी का नाम भी नहीं लिया, किसी से कुछ बोला भी नहीं है। बस, साधुपुरुषों की यही शैली होनी चाहिए।

काम से प्रयोजन है, व्यक्ति से प्रयोजन नहीं होना चाहिए। तुम्हारा जाता क्या है? उतारने की जगह चढ़ा दो। हमारी उतारने वाली संस्कृति नहीं है, चढ़ाने वाली संस्कृति है। आरोहण करो। गुणस्थान

आरोहण करो। वे अज्ञानी हैं जो माताएँ भजन गाती हैं, 'वर्धमान बनके, महावीर बनके चले आना।' इतना सुन रहे हैं, तब भी गाना नहीं छोड़ रहे हैं। चले आना। अपने घर में रखो। वे गये सो गये, वे उतरने वाले नहीं हैं। चारित्र को भी आरोहण करते हैं। गुणस्थान आरोहण करते हैं। **हमारे यहाँ झण्डा फहराया नहीं जाता, ध्वजा-आरोहण होता है। कलशारोहण होता है। यहाँ सब आरोहण की क्रियाएँ हैं। उतरने की क्रिया हमारे यहाँ है ही नहीं। इसलिए आरोहण करो। ज्ञानी वस्तु का विसर्जन करते हैं, चारित्र का आरोहण करते हैं। बाह्य विकल्पों में जितने जाओगे उतने निज से दूर हो जाओगे।** यदि तुमने जिन्हें उतारा है, उन्हें देखोगे, तो उतरते ही चले जाओगे। ऊपर देखो तो नीचे के अपने आप दिखना बंद हो जायेंगे। आरोहण करो। सिद्धालय की ओर देखो। वो सिद्ध भगवान् भी तेरी आत्मा का ध्रुव स्वभाव नहीं है। मेरे देह-देवालय में विराजे हैं वे ही मेरे परमशुद्धस्वभावी भगवान् हैं। उनको देखो।

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः ।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रितै-
रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ।।208/अ.अ.क.।।

कलश में सुगत की मानसिकता और अर्हद् की सत्यता को उद्घाटित किया है। छोटे व्यक्ति छोटी ही सोच। विशालता तुम्हारी जब नजर आती है, जब सभी के प्रति तुम्हारी साम्य वृत्ति दिखाई देती है। कितने छोटे हो गये हो कि हम जिनमत को खोकर मतों में विभक्त हो गये हैं। तुम्हारे सुमत जिनमत नहीं है। तुम्हारे जो सुमत हैं, वह कुमत हैं, जिनमत नहीं हैं। तुम्हारे एक-एक नय को लेकर निज की बिडम्बना कर ली लोगों ने। एक-एक नय को लेकर स्वयं के शत्रु बन गये।

'स्व-पर वैरिषु' स्व और पर के ही बैरी हो गये। कहीं भी उपदेश करने बैठो तो एक पक्ष की प्रधानता से कथन नहीं करना ।''उभय नय विरोध ध्वंसिनि''

उभयनय विरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के
जिनवचसि रमंते ये स्वयं वांतमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षंत एव ।।4/अ.अ.क.।।

उभय नय का कथन करने वाली जिनेन्द्र की वाणी है, वही विरोध का विध्वंस करने वाली है, जो स्यात् पद से अंकित है, ऐसे जिनेन्द्र के वचन में जो रमण करते हैं उनका मिथ्यामोह का वमन हो जाता है। वे ही समयसार को प्राप्त करते हैं। अमृतचन्द्र स्वामी ने टीका के प्रारम्भ में ही चतुर्थ कलश

में यह कह दिया कि जिसका मोह बीत गया, वही समयसार को प्राप्त होता है। जब जब तुम्हारा धर्म करने का मन करे, असमान जाति पर्याय को छोड़कर करना। असमान जाति को लेकर करेगा तो तुझे समान शरीर नजर आयेगा, यश की कामना रहेगी, ख्याति की कामना रहेगी। यह मनुष्य आदि असमान जाति पर्याय हैं। इनको छोड़कर मैं करूँगा तो मुझे मेरी ध्रुव दृष्टि दिखेगी। मैं धर्म के लिए धर्म को कर रहा हूँ, इस चर्म की प्रशंसा के लिए धर्म नहीं कर रहा। जितने कुमत, कुपंथ बने हैं, जितने खोटे सम्प्रदायों ने जन्म लिया है, वे सब पर्यायमूढ़ लोग थे। मुझे ध्रुव सत्य कहने में किंचित् भी विकल्प नहीं आता है। भय तो पता नहीं कहाँ पलायन कर गया। डर तो लगता ही नहीं जिनवाणी कहने में। जितने पंथ का पोषण कर रहे हैं, उलझे हुए हैं। जिन्होंने पंथ बनाये हों, चाहे तेरह, बीस, साढ़े सोलह, जितने पंथ बनाये हैं, सब पर्यायमूढ़ लोगों के द्वारा बनाये गये हैं। सब 'पज्जयमूढ़ा' पर्याय में मूढ़ थे। मात्र अपना यश चाहते थे। मेरा यश फैल जाये, मेरा गुट बन जाये मात्र इतना उद्देश्य था।

हे पज्जयमूढ़ो! चक्रपतियों के चक्र नहीं बचे, तीर्थंकरों जैसे पुण्यात्मा इस भूमि पर हो चुके हैं। अनन्तानन्त चौबीसियाँ इस भारत की भूमि पर हो चुकी हैं, तुम कितनों के नाम जानते हो ? जब परमेश्वर के नाम नहीं बचे, तो पज्जयमूढ़ों के नाम कौन लेने वाला है। **''पज्जयमूढ़ा परसमया''** इसे हृदय की दीवार पर लिख लेना। आप आज नहीं समझ पाओ तो अंतिम श्वास के काल तक समझ लेना, परंतु मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि जितने पंथ विश्व में चल रहे हैं, तीन सौ त्रैसठ मिथ्या पंथ जितने बने हैं, मारीचि से पूछो, महावीर तो बन गये, परंतु पज्जयमूढ़ता की महिमा तो देखो, तुम विशाल सांख्य दर्शन खड़ा करके चले गये। तीर्थंकर बनकर निर्वाण भी प्राप्त कर गये, परंतु मारीचि की पर्याय में तुम्हारी मूढ़ता जो थी, वो अनन्तों के भवभ्रमण का साधन बन गई। ज्ञानी! किंचित् भी तुझे प्रवचन करने का शौक जीवन में आये, भारत और नगर में जितने प्रवचनकर्ता हैं उन सबसे हाथ जोड़कर कहना भैया! पर्यायमूढ़ होकर मत बोलना। परमात्मा की वाणी सुनाना। तुम पर्यायमूढ़ होकर बोलोगे तो मारीचि के समान मैं तुम्हें मानूँगा। पर्यायमूढ़ होकर जो बोलता है, वह एक नय को ही खींचता रहता है। दानदया को हेय ही कहता रहा। हर पंक्ति में दानदया हेय, परवस्तु। सीधी-सीधी बोल, तेरा राग लोभ है जो हेय कह दे तो देना नहीं पड़ेगा। यह ज्ञानी अच्छे हैं जो दयादान को उपादेय मानते रहेंगे तो मुझे भी नंगे पैर साधु के साथ चलना पड़ेगा। इसलिए एक काम करो कि इसको पहले से ही हेय कहना प्रारम्भ कर दो। लोगों ने दयादान को ऐसा हेय किया, कि हर गाथा के अर्थ में, जहाँ प्रकरण भी न हो वहाँ पर भी दया दान तो हेय है, पुण्य क्रिया है। ऐसा कहकर जब दयादान को ही हेय कह दिया। उमा स्वामी को तो ऐसे कर दिया जैसे उमास्वामी पक्के मिथ्यादृष्टि हों। जिसने दयादान को पूर्ण हेय ही कह दिया उसने उमा स्वामी को तो पक्का मिथ्यादृष्टि ही घोषित कर दिया। साथ में कुन्दकुन्द स्वामी भी गये, क्यों कि

उन्होंने स्वयं लिखा है।

दाणं पूया मुक्खं सावयेधम्मे ण सावया तेण विणा। (11 र.सा.)

दान देना और पूजन करना, यह श्रावक का मुख्य धर्म है इसके बिना श्रावक 'श्रावक' नहीं है।

''दयावृत्ति सु अनुकम्पा''

जो दया दान करे सो मिथ्यादृष्टि ऐसा कहने वाले मिथ्यादृष्टि। अपनी बुद्धि ऐसी चलायी कि कुन्दकुन्द को कहीं-न-कहीं मिथ्यादृष्टि घोषित कर दिया।

'' दान चार परकार चार संघ को दीजिए''

जब दान ही को हेय कर दिया, तो चार संघ ही हेय हो गये। अब बचा कौन? मैं 'स्वयंभू'। ऐसे आगम का विपर्यास मत कर लेना। दया दान हेय नहीं है।

सम्यग्दिट्ठी पुण्य ण होइ संसारकारणं णियमा।
मोक्खस्स होऊ हेऊ जइ वि णिदाणं कुणदि॥

सम्यग्दृष्टि जीव का पुण्य नियम से संसार का कारण नहीं होता। उसका पुण्य मोक्ष का हेतु है यदि निदानबंध नहीं करता। आगम की पंक्ति-पंक्ति विशुद्ध है। आगम में किंचित् भी अशुद्धता नहीं है। आपको पकड़ना चाहिए। आगम पाया, आगम देखा, आगम सीखा, अब मैं किसकी बात मानूँ ? यदि आचार्यभगवंत इतना कह दें कि वर्तमान आगम झूठा है, तो फिर मैं और-कुछ सोचूँगा। आगम झूठा नहीं हो सकता है, आप भले हो जाओ। आगम तो जो है, सो है।

इदमेवे-दृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पाऽय-साम्भोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः॥ 11/र.श्रा.॥

ऐसा ही है, अन्य नहीं है, अन्यथा नहीं। 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार जी' में समन्तभद्र स्वामी लिख रहे हैं, जैसे तलवार पर चढ़ा पानी। तलवार टूट सकती है, परंतु पानी नहीं उतरता। ऐसे-ही अर्हन्त की देशना को तुमने जान लिया है, अब लोग कितने ही कहें। एक बालक आया मेरे पास और बोला महाराज! आप अमुक काम छोड़ दो तो बहुत सारे लोग मिलकर रहने वाले हैं। तू कैसी बातें कर रहा है? मैं जगत् से छूटकर रहने की इच्छा से मुनि बना हूँ, तुम मुझसे मिलकर रहोगे तो मुझे तुमसे मिलकर रहना पड़ेगा। बिना राग के कैसे मिलन होगा? मैं तुमसे मिलकर नहीं रहना चाहता। तुम कहो कि आगम के वचनों को छोड़ दो। आप नमोऽस्तु शासन बोलना छोड़ दो। जिसके लिए मैं तरस रहा था अनन्त भवों से, वह वीतरागी शासन, अर्हन्त दर्शन, जिनेन्द्र शासन, जिनेन्द्र वाणी, निर्ग्रन्थ गुरु जिनका आलम्बन

खोजते-खोजते पंचम काल मिल गया, अब तुम उनसे ही तो मुझे दूर करना चाहते हो मुझे तेरी भीड़ की जरूरत नहीं है। मैं तो 'एकोऽहम्' उसे कौन मिटा पायेगा?

मेरे श्रद्धान को, मेरे ज्ञान को, मेरे चारित्र को कौन विनश सकता है। आप किसी को मंदिर के बाहर तो कर सकते हो, लेकिन भीतर के भगवान् को भीतर से अलग नहीं कर सकते हो। ऐसी दृष्टि होना चाहिए। अन्यथा एक समय की पर्याय से कहीं प्रभावित हो गये, तो क्षणिक में प्रवेश कर जाओगे। एक समय की पर्याय को क्यों प्रधानता दी जा रही है? उसका रहस्य पकड़िये। कि क्यों कह रहे हैं बार-बार। ऊपर इतना चला गया सोच में, कि नीचे से आधार को खा गया।

पर्याय-पर्याय में इतना उलझ गया कि द्रव्य की नींव को खो गया। यदि आप पुण्यात्मा हो तो आपको मानने वाले बहुत सारे मिल जायेंगे। आचार्य धर्मसागर जी महाराज का दृष्टांत तो जैनियों को वक्ताओं को प्रतिक्षण अपने मस्तिष्क में रखना चाहिए। उन्होंने दिल्ली में एक गोष्ठी के माध्यम से दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों के बीच में एकता का प्रयत्न किया। धर्मसागर जैसा निष्पृह श्रमण आचार्य पद पर आसीन होकर भी जो अपने को आचार्य नहीं स्वीकारता। कुछ नहीं, मैं तो परम्परा का निर्वाह कर रहा हूँ। मैं तो '' जो हूँ, सो हूँ' पच्चीसवें निर्वाण महोत्सव के समय दिल्ली की घटना है। तीन दिन तक गोष्ठी चलती रही और महाराज श्री को माइक नहीं दिया गया, तब तीसरे दिन बोले 'आशीष वचन दो, दो मिनिट के।' महाराज कहते हैं 'मेरे पास घड़ी नहीं है, मैं दिगम्बर हूँ। क्या जरूरत है दिगम्बरों को घड़ी रखने की? वो अपने निज की घड़ी देखेंगे, कि घड़ी के सेलों की चिंता करेंगे? परिग्रही नहीं बनाना, जिनवाणी भेंट करना। तीन दिन से लगातार प्रवचन में यही आवाज गूँज रही थी कि एकता हो। एकता होना ही चाहिए। परंतु कैसे सम्भव है? तभी संभव है जब या तो मैं लँगोटी लगा लूँ या आप लँगोटी छोड़ दो। तो एकता। अन्यथा क्या एकता ? सिद्धांत में कोई एकता नहीं है। समन्वय हो सकता है सामाजिकता के नाम पर, मानवता के नाते, लेकिन सिद्धांत में मेरा समन्वय नहीं होता है। यदि सिद्धांतों में समन्वय है तो मिथ्या समन्वय में भेद किस बात का ? आगे महाराज जी कहने लगे-तुलसी जी! सत्य क्या है? इसे बोलिये। उनको तीन दिन से माईक इसलिए नहीं दिया जा रहा था कि यह बोलेंगे तो सब चुप हो जायेंगे। पूरे तीन दिन की गोष्ठी एक मिनिट में समाप्त हो जायेगी। आचार्य महाराज क्या बोले? 'यह तो बताओ कि सत्य क्या है?

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ।।23/सू.पा.।।

जिनेन्द्र के शासन में वस्त्रधारी की सिद्धि नहीं होती है। नग्नता ही मोक्षमार्ग है, शेष उन्मार्ग हैं।

बोलो, सत्य क्या है। उनको कहना पड़ा-महाराज! जो आप कह रहे हैं, वो ही सत्य है। जो सत्य है, वो ही आप हो। यही सत्य है, तो स्वीकार क्यों नहीं? स्वामी! मेरे पीछे भीड़ को देखें, वो सत्य को जानता ही नहीं है। सत्य को पहचानता ही नहीं है। सत्य में भीड़ नहीं होती है। भीड़ में सत्य नहीं होता है। सत्य में भीड़ हो जाये तो कोई तनाव नहीं। इसलिए ध्यान दो। तुम भीड़ से सत्य की परीक्षा मत करो। भीड़ से साधु की परीक्षा मत करना। जितने बड़े स्थान को भाजीमण्डी की दुकानें घेरती हैं, उतने स्थान को सोने-चांदी की दुकानें नहीं घेरतीं। बस, ध्रुव सत्य यही है।

''मैं बद्ध आत्मा को सम्पूर्ण शुद्ध मानने की आकांक्षा से युक्त होकर'' ऐसे जो भेदज्ञान से, आत्मज्ञान से अंधे हो गये हैं, ऐसे सुगत दर्शन वाले जीव यहाँ क्या कह रहे हैं। अतिव्याप्ति। जिनकी आकांक्षा है आत्मा की शुद्ध पर्याय को देखूँ। आत्मा की शुद्ध दशा को देखूँ, इसलिए एक क्षण की पर्याय को स्वीकार करके द्रव्य में ग्रहण करेंगे। अनन्त पर्यायों को देखेंगे तो यहाँ अतिव्याप्ति दोष आ रहा है। क्या मेरी शुद्धि समाप्त हो जायेगी? द्रव्य अशुद्ध पर्याय में भी जाता है, द्रव्य शुद्ध पर्याय में भी होता है। लक्ष्य में भी, अलक्ष्य में भी। मेरा लक्ष्य तो शुद्ध पर्याय है। यह कौन बोल रहा है? ऐसा वही है जगत् में जो तर्क शून्य लोग होंगे, उनके पास भी तर्कणा है। भाषा भी बड़ी मृदुल है। जब मैं बोल रहा हूँ तो आपको यह लग रहा है कि महाराज कितना अच्छा बोल रहे हैं। देखो, लक्ष्य में भी, अलक्ष्य में भी मैं द्रव्य को ग्रहण करूँगा, तो द्रव्य तो शुद्ध पर्याय में भी रहेगा, अशुद्ध पर्याय में भी रहेगा। तो जब मैं द्रव्य को ग्रहण करूँगा तो मेरा लक्ष्य तो शुद्ध पर्याय है। एक समय की पर्याय है। मैं द्रव्य को त्रैकालिक मानूँगा, क्षणिकम् नहीं मानूँगा, तो जो मेरी शुद्ध पर्याय है वह अतिव्याप्ति दोष से दूषित हो जायेगी, अलक्ष्य में चली जायेगी।

अशुद्ध मेरा लक्ष्य नहीं है। ऐसा मानकर '**कालोपाधिबलाद**' काल की उपाधि के बल से, दीर्घ समय लगायेंगे। जब मैं एक समय की पर्याय को न कहकर दीर्घ समय द्रव्य को मानूँगा तो वहाँ काल की उपाधि लग जायेगी। पर की उपाधि से द्रव्य में अशुद्धि आती है। द्रव्य की शुद्धता सौपादिक दशा है, इसलिए मैं काल की उपाधि नहीं जोड़ना चाहता हूँ। तुम्हारे कहने से क्या होता है? उपाधि से अशुद्धि की अधिकता हो जायेगी। ''**तत्रापि मत्वा परैः**'' ऐसा मानकर, अतिव्याप्ति दोष को मानकर तथा '**चैतन्यं क्षणिकं**' इसलिए हमने चैतन्य को क्षणिक स्वीकारा है। क्यों? कहीं काल की उपाधि में अशुद्धि न आ जाये। 'प्रकल्प्य' ऐसी कल्पना करके। कौन? प्रथुकैः शुद्ध ऋजुसूत्र नय की आत्मा को छोड़कर मात्र पर्याय को स्वीकार रहा है। कैसे ? '**हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः**' मोतियों के हारवत्। हार में धागा रहता है, सूत्र रहता है। हार को छोड़कर मोती चाह रहा है, ज्ञानी! जब हार छूटेगा तो मोती

भी छूट गये या नहीं ? अज्ञानता की धारा। तुझे हार का धागा नहीं चाहिए, इसलिए हार को देखकर मोती को ही छोड़ रहा है। ऐसे-ही अज्ञानी मुझे नहीं चाहिए। क्योंकि जो पर्याय है, वह द्रव्य को छोड़कर नहीं है। द्रव्य में ही पर्याय है। मोती में धागा रहेगा तब हार संज्ञा होगी। धागा रहित हार नहीं होगा। ऐसे ही ज्ञानियो! जिनका कथन है कि मुझे मात्र मोती चाहिए, धागा नहीं चाहिए, तो मोती के राग में हार को छोड़ रहा है। उसकी पर्याय भी गई और द्रव्य भी गया। तो सम्यक्त्व शून्य हो गया। वस्तु की व्यवस्था व्यवस्थित है। एक तरफ विचारों की विचारणा चल रही है। यथार्थ में पर के विचारों से वस्तुव्यवस्था विघटित होने वाली नहीं है। जितने सम्प्रदाय हैं, यह विचारों का समूह है। इसलिए आज से सम्पूर्ण आम्नाय/ पंथों से निज को भिन्न करके मात्र सर्वज्ञ शासन पर दृष्टिपात करना। कर्तृत्व दृष्टि एकांत से, मिथ्यादृष्टि। अकर्तृत्व दृष्टि एकांत से, मिथ्यादृष्टि। यदि यह जीव आत्मा के रागादिक भावों को भी आत्मा द्वारा कृत नहीं मानता तो मिथ्यादृष्टि। यदि यह जीव परद्रव्यों को आत्मकृत मानता है तो मिथ्यादृष्टि। ज्ञानी! एक क्षण की पर्याय सूक्ष्मऋजुसूत्र नय का विषय है। जो सूक्ष्मऋजु सूत्र नय का विषय है, उस सूक्ष्मऋजुसूत्र नय को हम पर्यायदृष्टि से देखते हैं, तो सम्यक् है और द्रव्यदृष्टि से ही द्रव्य का नाश मानते है तो असम्यक् है। नय सापेक्षता हो, परंतु नय सापेक्षता उसे ही स्वीकारना जिस नय की जहाँ सापेक्षता है। जिस नय की जहाँ सापेक्षता घटित ही नहीं है, वहाँ पर उसकी सापेक्षता भी सम्यक् नहीं है। अपेक्षा भी वहीं लगेगी जहाँ अपेक्षितता है। पुत्र माँ की अपेक्षा से पुत्र ही है, पति नहीं है। आप पुत्र में माँ के प्रति पतिपने की अपेक्षा खोजो तो किसी अपेक्षा से क्या माँ का पति पुत्र है? ज्ञानी ! वर्तमान की पर्याय में ऐसा कभी सम्भव नहीं है कि इसी पर्याय में, इसी पवित्र सम्बंध में तुम अपवित्र सम्बंध की खोज कर रहे हो? यह आपकी मिथ्या धारणा है। इसी प्रकार से वर्तमान की पर्याय से अशुद्ध पर्याय में प्रगट परमात्मा को स्वीकारना, तो यही मानकर चलना कि बेटा अपनी माँ को पत्नी कहना चाहता है। वर्तमान की अशुद्ध पर्याय में प्रकट भूत शुद्ध पर्याय को स्वीकार कर रहा है। प्रकट परमात्मा को स्वीकार रहा है, उस अज्ञानी की दृष्टि से तद्रूप है, जैसे कि वर्तमान की पर्याय में कोई पुत्र अपनी माँ को पत्नी कह रहा हो। हे ज्ञानी! माँ में पत्नीधर्म नहीं होता स्व के लिए। माँ में पत्नीधर्म यदि है, तो मात्र तेरे पिता के लिए है। माँ में स्वपत्नी धर्म जो मानता है, उससे बड़ा जगत् में पापी कोई नहीं है। ऐसे ही अशुद्ध पर्याय में प्रकट शुद्ध द्रव्य मानना है, प्रगट शुद्ध परमात्मा मानना है। जीव की अशुद्ध पर्याय में वर्तमान में जो प्रकट परमात्मा मान रहा है अपने आपको, वह व्यभिचारी मिथ्यादृष्टि जीव है। क्योंकि वर्तमान की जो पर्याय अशुद्ध है, उस अशुद्ध पर्याय में प्रकट परमात्मा नहीं होता है। अशुद्ध पर्याय में शक्तिरूप परमात्मा स्वीकारता हूँ।

'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' शुद्ध निश्चयनय से, द्रव्यार्थिक नय से संसार के सभी जीव शुद्ध हैं।

शुद्धनय से अप्रकट परमात्मा प्रकट परमात्मा नहीं है। जो प्रगट परमात्मा है, वह सकल परमात्मा अर्हन्त देव हैं, निकल परमात्मा नहीं हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु भी न प्रगट सकल परमात्मा है, न प्रगट निकल परमात्मा हैं। परमात्मपद की प्राप्ति का पुरुषार्थ करने वाली परमेष्ठी- भक्ति भाषा भिन्न है। वस्तुव्यवस्था पर दृष्टिपात कीजिए।

आचार्य, उपाध्याय, साधु प्रकटभूत न सकल परमात्मा हैं, न निकल परमात्मा हैं। यह परमात्मपद की प्राप्ति के पुरुषार्थी लोग हैं। जब आचार्य, उपाध्याय, साधु को हम प्रकट परमात्मा नहीं स्वीकार रहे हैं, तो अहो रागी श्रावको! तुम विषय-कषाय में लिप्त होकर कहाँ से प्रकट परमात्मा हो? यदि आप प्रकट परमात्मा हो गये हो, तो मुमुक्षु! सकल परमात्मा समवसरण में विराजते हैं। सामान्य केवली होंगे वे गंध कुटी में विराजते हैं। सामान्य भूतल से पाँच हजार धनुष ऊँचे, बीस हजार सीढ़ियाँ जिस पर लगी होती हैं, इतनी दूरी पर होते हैं सकल परमात्मा। तेरी गंध कहीं मुझे दिखाई नहीं दे रही है, तेरा समवसरण अभी मुझे दिखाई नहीं दे रहा है, अरे भाई! तू पंचमकाल में सकल या निकल परमात्मा कहाँ हो गया? इसलिए भक्ति के अतिरेक में भी यतिसंघ को यतिसंघ ही बोलिये। यह मुनियों का संघ है। न मिनी समवसरण है, न पुराना है। मात्र यह मुनि आचार्य संघ है। आर्यिका संघ है, इत्यादि।

सम्यक् शब्द का ही प्रयोग करो, क्यों? कल यह लिखित हो गया....? पंचमकाल में लोग समवसरण लगाने लग गये, जबकि समवसरण मात्र तीर्थंकर का होता है। सामान्य सभायें नहीं होती हैं। इसलिए भक्ति के अतिरेक में अनर्थ न हो जाये। अभी आप तो बोल दो और किसी ने नोट कर लिया, वो ग्रंथ में चला गया, वो प्रमाणित हो जायेगा कि पंचमकाल में आचार्यों के भी समवसरण होते थे। इसलिए आचार्य, उपाध्याय, मुनि के कोई समवसरण नहीं होते, यह धर्मसभा मात्र है। प्रवचन सभा है। श्रमण सभा है। यह मुनि परिषदी है। यह प्रवचन मण्डप है। श्री मण्डप भूमि नहीं है, यह प्रवचन मण्डप भूमि है। श्री मण्डप भूमि में तीर्थंकर प्रवचनकार ही विराजते हैं। सामान्य केवली की गंध कुटियाँ होती हैं। उनकी सभा गंधकुटी में लगती है, लेकिन वो समवसरण सभा नहीं होती है। इसलिए हम मोक्षमार्ग की व्याख्या करें, तत्त्व की प्ररुपणा करें, भक्ति के अतिरेक में विवेक खोकर न चलें अन्यथा आपकी पर्याय जाने के बाद अज्ञानी लोग आपको ही भगवान् मानकर बैठ जायेंगे। फिर जैसे अन्य दर्शनों में बाबा पुज रहे हैं, उनके मंदिर बन रहे हैं, ऐसे आपके यहाँ भी तीर्थंकरों के मंदिर बंद हो जायेंगे, बाबाओं के मंदिर शुरू हो जायेंगे। ज्ञानियो! तीर्थंकर के ही मंदिर रहने दो, उनका ही समवसरण रहने दो, अन्य मंदिरों की स्थापना मत कर देना। वस्तुस्वभाव ऐसा है। न मुझे आप समवसरण में दिखाई दे रहे हो, न गंधकुटी में दिखाई दे रहे हो, न सिद्धशिला पर दिखाई दे रहे हो। फिर आप यहाँ वस्त्रों के मध्य में सामान्य व्यक्तियों के बीच में दाल-रोटी खाते हुए आप प्रकट परमात्मा कैसे ? रहस्य की बात चल रही

है। प्रगट परमात्मा होता है, हमारे दिगम्बरों का। जो बना है, वो दिगम्बर परमात्मा नहीं है। आपको लग रहा है कि सामान्य प्रवचन चल रहे हैं। इसको सामान्य उपदेश मत समझना। यह 'समयसार' की व्याख्या सिद्धांत की प्ररूपणा है। अर्थात् दाल-रोटी खाते हुए तुमने परमात्मा को स्वीकार किया तो, आपको मालूम होना चाहिए कि यह वस्त्रों में जो आत्मानुभूति की व्याख्या है, उस परम्परा के संस्कार हैं, जहाँ दाल-रोटी खाते हुए तीर्थंकरों को स्वीकार कर लिया गया है। दिगम्बर को स्वीकार करने पर भी दिगम्बर नहीं बन सका जीव। अपने अंदर के सिद्धांतों को आपके बीच में रख दिया। आपको तो लगा कि व्याख्या कर रहे हैं, सो मुझे अच्छा लग रहा है। मेरे मित्र! शब्दों की अच्छाई मत देखो, सिद्धांत का अन्वेषण कीजिए कि सिद्धांत में कितना विपर्यास हो रहा है। कितनी भोली समाज है कि किसी को भी स्वीकार कर लेती है। इस बात को नहीं समझ पाये कि प्रकट परमात्मा समवसरण में होता है, प्रकट परमात्मा सिद्धशिला पर होता है। हम अपने आप में दाल-रोटी खाते-खाते परमात्मा घोषित कर लिये। नहीं। तू परमात्मा शक्ति से सम्पन्न है, व्यक्त परमात्मा नहीं है। हमारे अर्हन्त परमेश्वर कवलाहारी नहीं होते हैं।

ग्रास तोड़-तोड़ कर जो भोजन किया जाता है, वह कवलाहार है। केवली कवलाहारी नहीं होते हैं। स्त्रीमुक्ति, केवली भुक्ति यह श्वेताम्बरआम्नाय के मूल सिद्धांत हैं। दिगम्बर आम्नाय इन दोनों सिद्धांतों को स्वीकार नहीं करती। स्त्री मुक्ति, केवली भुक्ति को हमारा वीतराग श्रमण धर्म स्वीकार नहीं करता। इसलिए हम उन ग्रंथों को भी नहीं स्वीकारते। उनको ग्रंथाभास कहता हूँ जिन ग्रंथों में स्त्री मुक्ति, केवली भुक्ति की व्याख्यायें हैं। जिन सिद्धांतों का द्वादशांग का अभाव स्वीकार है, परंतु जितना हमारे पास अवशेष है वह मेरा सम्यक् है। परंतु मैं ग्रंथों की पोटलियों के राग में मिथ्यात्व को स्वीकार नहीं कर सकता। इस विषय को चर्चा का विषय बनाइये। परस्पर में तत्त्ववार्ता का विषय बनाइये। लगभग दस वर्ष से समाज में थोड़ा-सा परिवर्तन देख रहा हूँ। जो स्वाध्याय नहीं करते थे, उनमें स्वाध्याय बढ़ा हुआ है। जो एकांत में जा रहे थे, उन पर भी पाबंदी हुई है। आप बहुत सहजता में देखो। आज ही देवबंद समाज का स्वाध्याय मण्डल आया था, वह कर रहे थे महाराज! आपने जो 'समाधितंत्र' का अनुशीलन किया, वो ग्रंथ मेरे हाथ में आया, उसको पढ़कर हम लोगों का मिथ्यात्व बदल गया। क्यों ? स्वाध्याय के ग्रुप में हम यही मानते थे कि पर्याय अशुद्ध है, द्रव्य शुद्ध है, त्रैकालिक। जब आपका वो ग्रंथ पढ़ा तब उसमें देखा कि द्रव्य दृष्टि और द्रव्य। द्रव्यदृष्टि से हम त्रैकालिक शुद्ध हैं। द्रव्य से तुम संसार में त्रैकालिक शुद्ध नहीं हो। यह लिखा हुआ है। यह मत सोचना कि सर्वथा कहने वाले ने बुद्धिपूर्वक गलत बोल दिया है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कहने वाले की बुद्धि ही नहीं चली वहाँ तक। उसको जितना समझ में आया उतना बोल दिया, लेकिन इतना विवेक नहीं रख पाया कि मेरे बोलने से आगम का विपर्यास

हो गया। मुझे सुनना है, तू बैठ कर वाँच दे, मैं सुन लूँ। परंतु वाँचने वाला यदि जैसा था वैसा ही वाँच देता आगम को, तब तो सुनने वाले का कल्याण था। वाँचने वाले को तत्त्व निर्णय नहीं है। साथ में तत्त्व की व्याख्या करने का विचार करने लग गया, ज्ञानी! वह तुम्हारे लिए अहितकारी हो गया। यदि तुमसे नहीं बनता है कुछ भी, तो जैसा ग्रंथ में लिखा है वैसा वाँच कर सुना देना। लेकिन जिसका निर्णय स्वयं नहीं हो, उसका निर्णय अनागमिक मत कर देना। जितने मत तैयार हुए हैं, पर्यायमूढ़ लोग हैं। जितने पंथ बनाये हैं, यह पर्यायमूढ़ लोगों ने बनाये हैं। जिनको अपनी पर्याय में राग था, मुख से कहते रहे कि भेदविज्ञान की दशा पर चलो, परंतु राग तीव्र था, मेरी पर्याय का नाम फैलेगा, पर्याय के नाम पर राग न होता तो साक्षात् आगम लिखा होने पर एक नय की व्याख्या क्यों ? **पर्याय के राग ने आपको मुनि नहीं बनने दिया। पर्याय के राग ने आपको त्यागी नहीं होने दिया। पर्याय के राग ने आपको त्यागी के पास नहीं बैठने दिया। बहुत कठिन है पर्याय का राग छोड़ पाना।**

यह कहना सरल है 'पज्जय मूढ़ा परसमया'। अहो! कहने वाले कहीं ऐसा तो नहीं है , कि तुम लक्ष्य लगाकर ऐसा कह रहे हो। **कर्मातीत होने का जिसका लक्ष्य है, वह किसी गुट में शामिल नहीं होगा। यदि आत्मसिद्धि चाहिए तो प्रसिद्धि के हेतुओं से अपनी रक्षा करो। जो प्रसिद्धि के हेतुओं की गवेषणा करेगा, अन्वेषण करेगा, वो आत्मसिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकेगा।** कोई शंका का काम नहीं है। आत्मसिद्धि वाला प्रसिद्धि पर लक्ष्य नहीं ले जायेगा। आत्मसिद्धि को चाहता हुआ कह रहा है कि मैं प्रसिद्धि को चाहता नहीं हूँ, परंतु वह प्रसिद्धि पर जा रहा है। आप मात्र वचनालाप कर रहे हो। आत्म प्रसिद्धि को चाहने वाला प्रसिद्धि पर लक्ष्य नहीं ले जा सकता, परंतु जब तक प्रसिद्धि है, तब तक आत्म-प्रसिद्धि पर लक्ष्य नहीं है। प्रकट परमात्मा, अप्रकट परमात्मा-परमात्मा के द्वैत पर ध्यान दो। परमात्मा के द्वैत पर लक्ष्य लगाओ। हम सभी अप्रकट परमात्मा हैं। अर्हंत व सिद्ध प्रकट परमात्मा हैं। अप्रकट परमात्मा प्रकट परमात्मा को कैसे प्राप्त करेंगे? **दृष्टि में भेदविज्ञान, चर्या में वीतराग संयम चारित्र और अंतरंग में आत्मध्यान लीनता जब होगी, तब कहीं तू अपने अप्रकट परमात्मा को प्रकट परमात्मा बना सकेगा।** समय तो निकालो। एक आधा घंटे बैठो तो। जाया करो शून्य स्थान पर। गृहस्थी में रहकर भी, गृहस्थी से दूर रहकर बैठना सीखो। दूर से देखना प्रारंभ करो कि जिनके बीच में हूँ, वह मैं हूँ कि मैं इन सब से भिन्न हूँ? जो सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय था, क्या सम्यक् उद्देश्य है इसका। मैं भूत को नहीं देखना चाहता, मैं भविष्य को नहीं देखना चाहता, मैं वर्तमान में देख रहा हूँ। मैं क्या हूँ? वर्तमान के द्रव्य को निहार रहा हूँ। इसकी भूत की पर्याय नष्ट हो चुकी है, भविष्य की पर्याय अजन्मा है, वर्तमान में मेरे ज्ञानगुण का परिणमन कैसे चल रहा है, वैसा मेरा ज्ञाता है। जब मैं ज्ञान-दर्शन, द्रव्य-गुण-पर्याय इन तीन को देखता हूँ। तब मुझे अपना ज्ञाता त्रियोग दिखता है। जब मैं अपने ज्ञाता

को ज्ञायकभाव से देखता हूँ, तब मुझे अपना ज्ञाता एकरूप दिखता है। इसलिए मैं भेदभूत हूँ, मैं अभेदभूत हूँ। मेरा भेद भी मेरे से अभिन्न है, अभेद भी मेरे से अभिन्न है, परंतु भेद मेरे से अत्यन्त भिन्न है, अत्यंताभाव है। अब इतना समय नहीं दे रहे अपने लिए कि मैं अपने ज्ञाता को भिन्न रूप में देख सकूँ, मैं अपने ज्ञाता को अभिन्न रूप में देख सकूँ। पर के विकारी परिणमन, परकी विकारी पर्याय, पर के विकारी भाव, इनको देखने के लिए यह अधिकारी बने बैठे हैं। अपने बारे में विचार ही नहीं है कि इन विचारों से मैं विकारी ही हूँ, निर्विकारी नहीं हूँ। यदि ज्ञाता पर के द्रव्य को, पर गुण को, पर की पर्याय को विकारभूत देख रहा है, यह लक्ष्य बना रहा है कि यह आदमी कैसा है? इसको कैसा होना चाहिए? हे अज्ञानी! तुझे देखकर ज्ञानी क्या चिन्तवन का विषय बनायेगा? यह तेरा दोष नहीं है। तेरी जितनी औकात है, तू उतना ही सोच पायेगा, परंतु वस्तुस्वरूप विराट है। तू मेरे अंदर विकार निहार रहा है, तू मेरे गुण को विकृत देख रहा है, तू मेरे ज्ञान को विपरीत कह रहा है, तू मेरे श्रद्धान को विपरीत कह रहा है, तू मेरे चारित्र को विपरीत कह रहा है, यह तेरा सोच है। कोई नियत नहीं है, कि जैसा तू सोच रहा है वैसा पर हो। परंतु यह नियत है, कि जैसा तू सोच रहा है, तेरा विकारी भाव ही है। जब कि परमात्मा और परमेष्ठी इनको ज्ञेय बनाने पर मेरा विकारीपना नष्ट होता है।

परमात्मा, परमेष्ठी, चौबीस तीर्थंकर भगवन्त, सिद्ध भूमि,अतिशय भूमियाँ, सत्रह प्रकार की निषीधिका भूमियाँ। (अपभ्रंश में नसियाजी है, यह है निषीधिका भूमि) आप मत कहना कि जहाँ पर किसी साधु की समाधि की छत्री बनी हो वह निषीधिका है। सत्रह प्रकार की निषीधिकाओं में वह स्थान भी निषीधिका होता है जहाँ तीर्थंकर के कोई भी कल्याणक हुए हों, वो भी निषीधिका भूमि है। ऋद्धि सम्पन्न मुनिराज जहाँ विराजते हों, वो भी निषीधिका भूमि है। सामान्य मुनिराज जहाँ बैठते हों, वो भी निषीधिका भूमि है। चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमा जहाँ विराजमान हो, वो भी निषीधिका भूमि है, वो भी नसिया जी हैं। निषीधिका भूमि की वंदना '**णमो णिस्सिहीए, णमो णिस्सिहीए**' दिगम्बर मुनि तो जब-जब प्रतिक्रमण करता है, तब-तब निषीधिका भूमि की वंदना करता है। प्रतिक्रमण जो है वो साक्षात् गौतम कृत है।

प्रतिक्रमण में एक ही ग्रंथ तो है जो साक्षात् महावीर की वाणी से गौतम स्वामी ने कहा है, वो ही है। मुनियों के प्रतिक्रमण का कोई लेखक नहीं है। परम्परा में चला आया है। सत्रह प्रकार की निषीधिकाओं की वंदना को भी विकार मान रहा हूँ। यह विकार वो विकार नहीं है जो पाँच इंद्रिय विषयों का विकार है, यह ध्यान रखना। यह पंचपरमेष्ठी की वंदना को विकार क्यों कह रहे हो ? निर्विकल्प ध्यान की अपेक्षा से तेरे परिणाम विकारमय हैं। जब पंचपरमेष्ठी पर लक्ष्य पाने के लिये योगी निर्विकल्पता से शून्य हो जाता है, तेरे पाँच पापों में लिप्त पुरुष के बारे में चिंतन करूँगा तो उसका

विकल्प उसका है, लेकिन मैं अपनी समाधि से भंग नियत होऊँगा। श्रमणों को (पंचमकाल में) इस विषय पर प्रतिक्षण जाग्रत रहने की आवश्यकता है। अधिक सोचने के लिए समय नहीं देना चाहिए। श्रुत में समय दो, श्रुति में समय दो। भावश्रुत में बाहर मत जाओ। चार अनुयोग हैं अपने पास। **आपका मस्तिष्क जिस अनुयोग में जाता है उस अनुयोग का अध्ययन करो। नहीं है तुम्हारा प्रवेश करणानुयोग में, द्रव्यानुयोग में, चरणानुयोग में, तो प्रथमानुयोग पढ़ो, लेकिन श्रुत में लीन रहो। प्रथमानुयोग भी बोधि समाधि का कारण है। चाहे पुराण हो, चाहे चारित्र हो, जिससे आत्मविशुद्धि होती है वह सब बोधि समाधि का साधन है।** देखो गजकुमार मुनिराज ध्यान में लीन हैं यह प्राचीन मुनियों के चित्र उठाकर रख दिये हैं, इनको मंदिर में लगाइये। इन हँसते-मुस्कुराते फोटो ने तो पूरी वीतरागता को छीन लिया है। यदि दिगम्बर मुनियों की फोटो लगानी है तो सामायिक में बैठे हों, सहज ध्यान में लीन हों, उन तस्वीरों को लगाओ, इससे मुझे समझ में आये कि हमारा वीतराग धर्म ऐसा है, इसकी मुद्रा ऐसी है। **यह अभिनेताओं का मार्ग नहीं है, यह वीतरागियों का मार्ग है।** इसलिए अब निहारिये। जब मंदिरों में गजकुमार मुनिराज की तस्वीर लगी होती थी, तब कभी बच्चा भी देखकर पूछ ले कि माँ! यह क्या हो रहा है ? तब माँ का शरीर भी रोमांचित होकर कहता है 'बेटे! क्या कहूँ? संसार की लीला विचित्र है। जिसे कन्या दी थी, उसे ही झुलसाने खड़ा हुआ है। जिसे बेटी सौंपी थी, तब पुत्रवत् व्यवहार कर रहा था, जिसके पैर पूज रहा था, आज उसी के सिर को झुलसा रहा है। **अपना किसी को मानकर बैठ मत जाना। कब कौन दगा दे जाये, यह नियत नहीं है। संसार जो है वह स्वार्थ में आकण्ठ डूबा हुआ है।** क्या दान त्याग समाधि, सब उसके वचनों का विषय बनता है। स्वार्थ आता है, तो दयाशील लिखा हो। मुमुक्षु! सँभलकर जीना, चारित्र पर विश्वास करना, यश पर विश्वास मत करना। उपाधि यश नहीं, साधना होना चाहिए। उसके द्वार पर यश स्वयमेव खड़ा होते मिलता है। विश्वास वर्तमान में उपाधियों के नष्ट हो चुके हैं। विश्वास तो संयमी पर ही होता है। विश्वास तो चारित्र पर ही होता है। संयम पर होता है। 'बोधि समाधि निधानं'।

कहा है भावों में क्या होता है। ध्यानस्थ बैठे थे गजकुमार मुनिराज, उनको तो मालूम ही नहीं था कि आज क्या घटित होगा। नहीं था मालूम। वे तो जगत् की घटनाओं से दूर होकर बैठे हुए थे। उनको नहीं मालूम था कि आज क्या घटित होने वाला है।

अङ्घ्य-शक्तिर्भवितव्यतेयं॥33/स.स.॥

भवितव्यता की शक्ति अलंघ्यनीय है। जो आप कभी नहीं सोच पाये थे, वो भी जीवन में घटित होते दिखाई देता है। वहाँ अश्रुपात नहीं करना, वहाँ किसी पर शोक प्रकट नहीं करना, वहाँ किसी पर

रोष प्रकट नहीं करना। उस काल में कह पाना तेरी परम तपस्या होगी, **''अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं''** तेरा कोई दोष नहीं है। चाहे तू मेरा यश फैला चाहे अयश, यह भवितव्यता की अलंघ्यशक्ति है। सीता ने क्या दोष किया था वर्तमान की पर्याय में? मनोरमा ने क्या दोष किया? माताओ! कोई दोष किया था इस पर्याय में? उसको लोगों ने छोड़ा। अंजना ने क्या दोष किया था तत् पर्याय में? सासू ने घर से निकाल दिया। सोमा ने क्या दोष किया था इस पर्याय में? सासू ने काला नाग रख दिया। लेकिन यह सबकुछ हो तो सकता है, सत्य के, नाश के साधन उपस्थित किये जा सकते हैं, परंतु सत्य का नाश होता नहीं। गजकुमार मुनिराज को मालूम नहीं था कि आज क्या घटना घटेगी मेरे ऊपर। मार्ग में जाता हुआ श्वसुर निहारता है, यह वही तो है गजकुमार जिसने मेरी बेटी को छोड़ दिया। तुझे बेटी का राग झलक रहा था, वीतरागी मुनि नहीं दिखाई दिया। हे पापी! तुझे बेटी का राग तो दिखा, लेकिन वीतरागी मुनि नहीं दिखा। एक पंचेन्द्रिय जीव नहीं दिखा। तुझे बेटी का राग तो दिखाई दिया, एक जीवित पुरुष नहीं दिखाई दिया। सिगड़ी ही मात्र नहीं रखी, उस अभागे ने पहले सिर पर सूजे भी ठोके थे। फिर उसके ऊपर सिगड़ी रख दी। निहारिये आप एक निर्ग्रन्थ तपोधन को। **मित्रो! तुम्हें वीतरागी मुनि की वंदना के भाव नहीं आयें तो मत करना, तुम्हें नमोऽस्तु नहीं करना है तो मत करना, परंतु किसी मुनि का वध मत करना, बदनाम नहीं करना, क्यों कि दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव कहीं होगा तो यहीं होगा। सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर की स्थिति प्रमाण जो मोहनीय कर्म है, उसको तुझे निमंत्रण देना हो तो तेरा विषय है।** मैं यथार्थ में यही कहूँगा। जितना गहरे में मैं 'समयसार' पढ़ता हूँ, उतना गहरे में मैं करणानुयोग भी पढ़ता हूँ। तत्त्वार्थसूत्र पर जितने टीका ग्रंथ हैं सब मैंने अत्यंत गहरे में अध्ययन किये हैं। तत्त्वार्थसूत्र के टीकाग्रंथों को यदि श्रमण अच्छी तरह समझ लें तो उसके मुख से दूसरे श्रमण के बारे में भी अशुभ नहीं निकलेगा। श्रावको! किसी धर्मात्मा के बारे में अशुभ भाव नहीं आ सकता है, लेकिन स्वाध्याय होना चाहिए, अध्ययन नहीं होना चाहिए। **'केवली-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहनीयस्य'** (तत्त्वार्थ सूत्र) केवली, श्रुत, संघ, धर्म, देव इनका अवर्णवाद करने से दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव-बंध होता है। सत्तर कोड़ा-कोड़ी है मोहनीय कर्म की उत्कृष्ठ स्थिति। योगी के सिर पर जलती हुई सिगड़ी रख दी । विद्वानो ! कितनी तीव्र कषाय होगी ? मेरा सोच तो यह है कि सिगड़ी की अग्नि कम होगी, परंतु रखने वाले की अग्नि और-तीव्र होगी। ज्ञानी! भले हमारे किसी की वंदना करने के भाव न आयें, तटस्थ होकर निकल जाना, लेकिन हमारे धर्म में चींटी का वध करना भी पाप है। अविरत जीव को भी बदनाम कैसे कर सकते हैं ? प्रथमानुयोग चल रहा है। मैं जानकर सुना रहा हूँ। जो यह मानकर बैठे हैं कि परिणामों की विशुद्धि तो मात्र द्रव्यानुयोग से होगी, नहीं, मित्र! अंतिम समय में जब समयसार की गाथा समझ में नहीं आयेगी तब ज्ञानी! **'तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव भारी'**, उस समय तुझे प्रथमानुयोग की गाथाएँ संतुष्ट कर देंगी। पाँच सौ मुनियों को घानी में

पेल दिया, यह था 'समयसार'। सिगड़ी रखी जा रही थी, तपोधन क्या चिंतन में थे ?

हे जीव ! तू ठीक ही कर रहा है। हंस निकलने पर दुनिया जलाती है। कोई देख नहीं पाया। जिस पर मैंने राग किया था, उसे राख होते कोई देख नहीं पाया था, परंतु तू मेरा कितना परम मित्र है कि जिसकी राख होती मर जाने के बाद, उसे तू आज ही दिखा रहा है। यह दृश्य मैं कभी नहीं देख पाता। जो जलने वाला है, उसे ही तो जला रहा है, क्योंकि तू जल रहा है। **पर को जलाता वही है, जो कषायों से जल रहा होता है। वह दूसरों को जलाने पहुँच जाता है। जो कषाय की अग्नि से विहीन होता है, वह कभी किसी पर सिगड़ी नहीं रख सकता।** यथार्थ में तो पहले तू ही जल रहा है, फिर तू शरीर को जला रहा है; परंतु न तू मुझे बाहर से जला पा रहा है न भीतर से जला पा रहा है, क्योंकि 'दुनियाँ में सबसे न्यारा यह आत्मा हमारा। भीगे नहीं पानी में, जले नहीं अग्नि में, सूखे नहीं पवन के द्वारा' **दुनियाँ में सबसे न्यारा यह आत्मा हमारा। यह कभी पवन से सूखता नहीं है। अग्नि से झुलसता नहीं है। पानी में गीला होता नहीं है। ध्रुव भगवानात्मा अहेतुक है। अजन्मा है, उत्पन्न नहीं है, वह त्रैकालिक है।** इसे कौन नष्ट कर पायेगा? हे स्वामी गजकुमार! आपके चरणों में कोटि-कोटि नमस्कार। इसलिए आपकी इस मुद्रा की वंदना नहीं कर रहा हूँ, आपके मुनिभावों की वंदना कर रहा हूँ कि इतना सबकुछ होने के बाद भी आपने श्वसुर के बारे में अशुभ नहीं सोचा। यह सबसे बड़ी तपस्या है। नहीं आज किसी ने कुछ कह दिया तो मेरे लिए ऐसा क्यों बोल दिया ? आह! ऐसी समता रहे, ऐसी शक्ति रहे। लोक के मुख बंद नहीं किये जा सकते हैं, पर अपनी कषाय को बंद करना स्वसाध्य है। कौन क्या कर रहा है यह तुम ठीक नहीं कर पाओगे, यह पराधीन है। परंतु पर के कहने पर भी निज को विकृत नहीं करना, यह स्वाधीन है। न नेत्र सजल हों, न कंठ रुँधे, ज्ञानी ! कंठ में अर्हन्त तो हों, नेत्रों में निर्ग्रन्थ दशा स्वयं की झलके। आज वर्तमान में मेरे ऊपर क्या उपसर्ग है? कुछ भी नहीं है। गजकुमार स्वामी को देखो। माँ ! तुम तो व्यर्थ में क्लेश करती रहती हो घर में। तेरी सासू ने कभी भगाया, राम-जैसे तेरे पति ने जंगल में भेजा, अग्नि कुंड में पटका क्या? धन्य हो उस सीता को, इतना सबकुछ हुआ, लेकिन तब भी ''अलंघ्यशक्तिर्भावितव्यतेयं'' यह भवितव्यता ऐसी थी, किसी का दोष नहीं है, ऐसा कह लेना, अंतरंग में यह बहुत बड़ी साधना है। तनिक में दिमाग खराब हो जाता है, 'मेरे तो भाव बिगड़ गये। मैंने तो उठाकर रख दिया सब काम।' हे भाई! तू लोक को अपने प्रति संतुष्ट करने के लिए यदि साधु बना है, तो विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि बड़े-बड़े योगी भी सारे लोक को संतुष्ट नहीं कर पाये तो तुम क्या कर पाओगे? बड़े-बड़े तपस्वियों को भी आलोचक मिल गये। तुम चारों मेरे प्रशंसक ही मात्र हो। तीर्थंकरों के सारे लोग प्रशंसक नहीं हुए तो तुम्हारे क्यों होंगे? तू तो चिंता में वैसे ही सूख रहा है।

यदि तीर्थंकरों को प्रशंसक मिल गये होते तो महावीर स्वामी के काल में भी पाँच लोग और थे जो अपने आप को तीर्थंकर कहते थे। क्या गौतम स्वामी नमस्कार करने गये थे, इंद्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति क्या नमस्कार करने गये थे? वे तो वर्द्धमान से शास्त्रार्थ करने गये थे। वो विषय अलग है कि स्वयंभू की समवसरण सभा को देखकर उनके मिथ्यात्व की गाँठें निकल गईं। अब यहाँ कहना समंतभद्र स्वामी के सूत्र को कि -

हे वर्द्धमान ! आपके समवसरण भूमि में प्रवेश करते ही '**भवत्यभद्रोऽपि समन्तभद्रः**' (यु.शा.)

अभद्र जीव भी समन्तभद्र हो गया, यह आपकी सभा की महिमा है। स्यात् उन जीवों की होनहार भी ऐसी थी, स्यात् काललब्धि भी ऐसी थी। अनेकांत यहाँ लगाइये। एक समय की पर्याय को गजकुमार मुनि कैसे देख रहे होंगे? जलानेवाले पर भी आक्रोश नहीं, बुझाने वाले पर स्नेह नहीं और मैंने इतना सहन किया है इस पर भी अहम् नहीं। यह बीच की साधना क्यों भूल रहे हो? लोक व्यवस्था में तुम चले गये। कुछ मत कहो। सो जलाने वाले पर साम्यभाव दिखाई दे गया। हटाने वाले की प्रशंसा मत करो। और इतना सहन किया, इस अहं भाव को और सहन कीजिए। ''देखो मैं किसी से कुछ नहीं कहता।'' ''महाराज'' इस शब्द को और ठीक कीजिए। कुछ नहीं कहते, फिर भी तो कह रहे हो। मैं कुछ नहीं कहता हूँ तो भी क्यों कह रहे हो? यह भी कहने की आवश्यकता नहीं है। चारित्र में लीन रहो। विश्वास रखो, जब गुरूदत्त स्वामी पर आग लगाने वाला चरणों में झुक सकता है, पारसनाथ स्वामी पर उपसर्ग करने वाला चरणों में झुक जाता है, तो तुम्हारे चारित्र की दृढ़ता इतनी पवित्र होगी कि उपसर्ग करने वाला भी तुम्हारे चरणों में सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। समय चाहिए। क्या कह रहे हैं अमृतचन्द्र स्वामी? अंधे मत बनो। एक समय की पर्याय को सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय को विपरीतता में ले जाकर, क्षणिक मत में लीन मत हो जाओ। एक समय की पर्याय को सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय को यह ऐसे निहारो, गजकुमार वत्। अब जिसमें लगनी थी आग, उसमें लग ही चुकी है। लगाने वाला लगा ही चुका है। दोनों भूत हो गये हैं। भविष्य में इसे सोचना मेरा काषायिक भाव है। वर्तमान में तापमान मेरे शरीर में है। जब शरीर जल ही रहा है, नष्ट हो ही रहा है, तो मौका क्यों छोड़ो? आह! गेहूँ की बालें। समझदार किसान होता है वह कहीं भी आग जल रही हो, किसी ने व्यर्थ में होली ही जला दी तो समझदार किसान क्या करता है कि अलग से आग क्यों लगाना पड़े, जलती आग में अपने गेहूँ की बालें सेंक लो। जब जल ही रही है, तो मैं हिंसा क्यों करूँ? गजकुमार योगी यह सोचते हैं कि जब श्वसुर ने आग लगा ही दी है, आग लग ही रही है, तो शरीर जल ही रहा है, वो तो नष्ट हो ही रहा है, क्यों न अपने बालों को सेक लूँ? भावों को सेंक लूँ? और योगिराज अपने आत्मध्यान में लीन हो गये। अपनी बालें सेंक लो।

''समयसार'' सुन रहे हो। मैं तो कथा कर रहा हूँ, तब भी आप शांत हैं। मैं यह कहना चाहता

हूँ कि किसी भी अनुयोग के प्रति अशुभ भाव मत लाना। ऐसा कहना कि यह तो कथा कहानी है। आपकी सोच-शौच नहीं है। जिसकी सोच-शौच है वह कथाओं में भी 'समयसार' को देखता है यह मात्र लिखा समयसार है। गजकुमार स्वामी का जीवन्त ''समयसार'' वो क्या कर रहे थे? समयसार में न होते तो वो उठकर चल देते।

यदि अन्य कोई व्यक्ति होता तो क्या करता, वर सिगड़ी पटकता अंगारे उठा उठाकर फैंक कर श्वसुर को मारता। बोलता मैं कमजोर हूँ क्या ? जो तू मुझे जलाने आ गया है। हाँ, ज्ञानी! तू कमजोर ही है, कि तू कषायी पर कषाय कर रहा है। तो तू महाकषायी हो गया। इसलिए जैन दर्शन की अंतरंग अनुभूति की जो व्याख्याएँ हैं उन्हें समझो।

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्व भेदोऽपि वा
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव सचिंत्यताम्।

प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः ॥209/कलश॥

व्यावहारिकदृशैव केवलं कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते।
निश्चयेन यदि वस्तु चिंत्यते कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते ॥210/कलश.॥

आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी आत्मानुभव करने का उपदेश देते हुए कह रहे हैं कि कर्ता का और भोक्ता का युक्ति के वश से भेद हो या अभेद हो, अथवा कर्ता और भोक्ता दोनों न हों, वस्तु का ही अनुभव करो। जैसे चतुर पुरुषों के द्वारा डोरे में पिरोयी गई मणियों की माला भेदी नहीं जा सकती, उसी प्रकार आत्मा में पिरोई गई चैतन्यरुप चिन्तामणि की माला भी कभी किसी से भेदी नहीं जा सकती, ऐसी यह आत्मारूपी माला एक ही, हमें सम्पूर्ण तथा प्रकाशमान ही अर्थात् नित्यत्व, अनित्यत्व आदि के विकल्प छूटकर हमें आत्मा का निर्विकल्प अनुभव हो।

मुमुक्षु! आत्मा वस्तु होने से द्रव्य-पर्यायात्मक है, इसलिए उसमें चैतन्य के परिणमनस्वरूप पर्याय के भेदों की अपेक्षा से तो कर्त्ता-भोक्ता भेद है, पर चिन्मात्र द्रव्य की अपेक्षा से भेद नहीं है, इस प्रकार भेद-अभेद हो अथवा चिन्मात्र अनुभवन में भेद-अभेद क्यों कहना चाहिए?

आत्मा को कर्ता-भोक्ता ही नहीं कहना चाहिए, वस्तु मात्र का अनुभव करना चाहिए। जैसे ज्ञानी! मणियों की माला में मणियों की और धागे की विवक्षा से भेद-अभेद है, परंतु माला मात्र के ग्रहण करने पर भेद-अभेद विकल्प नहीं है। इसी प्रकार आत्मा में पर्यायों की और द्रव्य की विवक्षा से भेद-अभेद है, परंतु आत्मवस्तु मात्र का अनुभव करने पर विकल्प नहीं है। आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि ऐसा

निर्विकल्प आत्म-द्रव्य का अनुभवन हमें प्रकाशमान हो।

हे मुमुक्षु! केवल व्यावहारिक दृष्टि से ही कर्ता और कर्म भिन्न माने जाते हैं। यदि निश्चय से वस्तु का विचार किया जाये जो कर्ता और कर्म सदा एक माना जाता है। मात्र व्यवहार दृष्टि से ही भिन्न द्रव्यों में कर्तृत्व-कर्मत्व माना जाता है, निश्चय दृष्टि से तो एक ही द्रव्य में कर्तृत्व-कर्मत्व घटित होता है।

मुमुक्षु ! द्रव्यार्थिक नय से देखें तो जो कर्म करता है वही भोक्ता है तथा पर्यायार्थिक नय से देखें तो अन्य करता है और अन्य ही भोक्ता है, इस प्रकार जो मानता है, सम्यग्दृष्टि है। ऐसा कहते 'केहिंचि दु पज्जएहिं विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो' पर्यायार्थिक नय विभाग से देव-मनुष्यादि रूप कितनी ही पर्यायों से जीव नष्ट होता है और द्रव्यार्थिक नय विभाग से कितनी ही पर्यायों से जीव नष्ट नहीं होता। 'जम्हा तम्हा कुव्वदि सो वा अण्णो वा णेयंतो।' ज्ञानी ! जीव का स्वरूप नित्य-अनित्य स्वभाव वाला है। पर्यायार्थिक नय से अन्य कर्म करता है, अन्य भोगता है। इस कारण से द्रव्यार्थिकनय से वही कर्म करता है। वही भोगता है। पर्यायार्थिक नय से अन्य कर्म करता है, अन्य भोगता है। इस संबंध में एकांत नहीं है।

पर्यायार्थिक नय विभाग से देव-मनुष्यादि रूप कितनी ही पर्यायों से जीव नष्ट होता है और द्रव्यार्थिक नय विभाग से कितनी ही पर्यायों से जीव नष्ट नहीं होता है, क्योंकि जीव का स्वरूप नित्य-अनित्य स्वभाव वाला है, इस कारण से इस निज कर्मफल का वेदन या अनुभव न करता है। कौन? जिसके द्वारा पूर्व में कर्म किया गया है। मुमुक्षु! पर्यायार्थिक नय से अन्य कर्म भोगता है, अन्य कर्ता है, इस संबंध में एकांत नहीं है।

द्रव्यार्थिक नय से जीव मनुष्य भव में शुभ-अशुभ कर्म करता है, वही जीव स्वर्ग में अथवा नरकगति में उस कर्म का फल भोगता है, पुनः पर्यायार्थिक नय से उस ही भव की अपेक्षा से बाल्यकाल में किए गये कर्मों का फल यौवनादि अन्य पर्याय में भोगता है। ज्ञानी! संक्षेप में कहूँ तो अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् भोगता है, किन्तु भवान्तर की अपेक्षा से मनुष्यपर्याय में किया हुआ कर्म देवादि में पर्याय भोगता है।

ज्ञानियो! जो नय-न्याय से शून्य है, वह न तो वस्तुतत्त्व को समझ सकता है और न ही समीचीन व्याख्या कर सकता है। ज्ञानी! अध्ययन करना पड़ता है, न्याय दीपिका, आलाप पद्धति, आप्तमीमांसा, परीक्षामुख सूत्र, व्याकरण, सिद्धांत का। जब तक सम्यक् बोध नहीं है, तब यदि 'समयसार' पढ़ेगा तो भटकने का पूर्ण अवसर है। अध्यात्मग्रंथों को गूढ़ग्रंथ/रहस्यग्रंथ कहा है, इसलिए एकाग्रतापूर्वक गुरु चरणों में इनका अध्ययन आवश्यक है।

हे मुमुक्षु ! जो एकांत से कहता है कि जो कर्ता है, वही भोगता है अथवा एकांत से अन्य करता है और अन्य ही भोगता है, इस तरह जो कहता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

'जो चेव कुणदि सो चिय ण वेदगो जस्स एस सिद्धंतो' जो जीव शुभ-अशुभ कर्म करता है, वही एकांत से उसके फल को भोगता है, और-दूसरा नहीं, ऐसा जिसका सिद्धांत या आगम है, 'सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो' वह जीव मिथ्यादृष्टि है, अनार्हत अर्थात् अर्हन्त के मत का नहीं है ऐसा समझना। अब कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि क्यों है?

हे मुमुक्षु! यदि एकांत रूप से जीव को सांख्यमत के समान नित्य कूटस्थ टंकोत्कीर्ण अपरिणामी माना जाये तो जिस जीव के द्वारा मनुष्य भव, नरक गति के योग्य पापकर्म किया गया है तथा स्वर्गगति के योग्य पुण्यकर्म किया गया है, उस जीव का नरक में या स्वर्ग में गमन सिद्ध नहीं होगा। इस प्रकार शुद्धात्मा के अनुष्ठान अनुभव से मोक्ष भी कैसे सिद्ध होगा? अर्थात् नहीं होगा। क्योंकि उसने जीव को नित्य एकांत माना है।

हे मुमुक्षु ! अन्य जीव कर्म करता है और अन्य जीव कर्म भोगता है, यदि एकांत से ऐसा कहता है तो जिस मनुष्यभव में पुण्य कर्म किए, पापकर्म किए तथा मोक्ष के लिए शुद्धात्मा का अनुष्ठान किया उसके उस पुण्यकर्म का देवलोक में अन्य कोई भी भोक्ता प्राप्त हुआ, परंतु वही जीव भोक्ता नहीं हुआ। इसी तरह नरक में भी। इसी तरह केवलज्ञानादि की व्यक्ति-प्रगटरूप मोक्ष भी किसी अन्य को प्राप्त होगा। तो फिर पुण्य, पाप तथा मोक्ष का अनुष्ठान व्यर्थ होगा-ऐसा बौद्धमत में दोष है। ज्ञानियो! इस तरह नित्य एकांत मत तथा अनित्य एकांत मत का निराकरण किया है।

ज्ञानियो! जीव में प्रतिसमय होने वाले अगुरुलघुगुण के परिणाम द्वारा क्षणिक होने से और अचलित चैतन्य के अन्वयरूप गुण नित्य होने से कितनी ही पर्यायों से विनाश को प्राप्त होता है और कितनी ही पर्यायों से विनाश को नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार दो स्वभाववाला जीवस्वभाव है। वस्तु का स्वभाव द्रव्य पर्याय स्वरूप है। वस्तु का स्वरूप अनेकांत सिद्ध है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

उत्थानिका: जीव कर्म करता हुआ भी तन्मय नहीं होता है, इसको दृष्टान्त द्वारा कहते हैं।

गाथा:

जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होदि।।349।।
जह सिप्पिओ दु करणेहिं कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो करणेहिं कुव्वदि ण य तम्मओ होदि।।350।।
जह सिप्पिओ दु करणाणि गिण्हदि ण सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो करणाणि दु गिण्हदि ण य तम्मओ होदि ।।351।।
जह सिप्पि दु कम्मफलं भुंजदि ण सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो कम्मफलं भुंजदि ण य तम्मओ होदि ।।352।।
एवं व वहारस्स दु वत्तव्वं दरिसणं समासेण।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं तु जं होदि ।।353।।
जह सिप्पिओ दु चेट्ठं कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो से।
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि हवदि य अणण्णो से।।354।।
जह चेट्ठं कुव्वतो दु सिप्पिओ णिच्चदुक्खिओ होदि।
तत्तो सिया अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो ।।355/स.सा.।।

संस्कृत छाया :

यथा शिल्पिकस्तु कर्म करोति न च स तु तन्मयो भवति।
तथा जीवोऽपि कर्म करोति न च तन्मयो भवति ।।349।।
यथा शिल्पिकस्तु करणै: करोति न च स तु तन्मयो भवति।
तथा जीव: करणै: करोति न च तन्मयो भवति ।।350।।
यथा शिल्पिकस्तु करणानि गृह्णाति न च स तु तन्मयो भवति।
तथा जीव: करणानि तु गृह्णाति न च तन्मयो भवति ।।351।।
यथा शिल्पी तु कर्मफलं भुंक्ते न च स तु तन्मयो भवति।
तथा जीव: कर्मफलं भुंक्ते न च तन्मयो भवति ।।352।।

एवं व्यवहारस्य तु वक्तव्यं दर्शनं समासेन।
शृणु निश्चयस्य वचनं परिणामकृतं तु यद्भवति।। 353।।
यथा शिल्पिकस्तु चेष्टां करोति भवति च तथानन्यस्तस्याः।
तथा जीवोऽपि च कर्म करोति भवति चानन्यस्तस्मात्।। 354।।
यथा चेष्टां कुर्वाणस्तु शिल्पिको नित्यदुःखितो भवति।
तस्माच्च स्यादनन्यस्तथा चेष्टमानो दुःखी जीवः।। 355।।

गातार्थ : (**यथा**) जैसे (**शिल्पिकः तु**) शिल्पी (**कर्म**) कुण्डलादि कर्म (**कार्य**)(**करोति**) करता है (**सःतु**) परंतु वह (**तन्मयः न च भवति**) तन्मय नहीं होता (**तथा**) उसी प्रकार (**जीवः अपि च**) जीव भी (**कर्म**) पुण्य-पापादि पुद्गल कर्म (**करोति**) करता है (**न च तन्मयः भवति**) परंतु तन्मय नहीं होता (**यथा**) जैसे (**शिल्पिकः तु**) शिल्पी (**करणैः**) हथौड़ादि कारणों के द्वारा (**करोति**) कर्म करता है (**स तु**) परंतु वह (**तन्मयः न भवति**) तन्मय अर्थात् हथौड़ादि करणमय नहीं होता (**तथा**) उसी प्रकार(**जीवः**) जीव (**करणैः**) मन-वचन-कायरूप करणों के द्वारा (**करोति**) कर्म करता है (**न च तन्मयः भवति**) परंतु तन्मय अर्थात् मन-वचन-कायरूप करणमय नहीं होता (**यथा**) जैसे (**शिल्पिकः तु**) शिल्पी (**करणानि**) करणों को (**गृह्णाति**) ग्रहण करता है (**स तु**) परंतु वह (**तन्मयः न भवति**) तन्मय नहीं होता (**तथा**) उसी प्रकार (**जीवः**) जीव (**करणानि तु**) करणों को (**गृह्णति**) ग्रहण करता है (**न च तन्मयः भवति**) परंतु तन्मय (**करणमय**) नहीं होता (**यथा**)जैसे (**शिल्पी तु**) शिल्पी (**कर्मफलं**) कुण्डलादि कर्म के फल को, खान-पानादि को (**भुङ्क्ते**) भोगता है (**सः तु**) परंतु वह (**तन्मयः न च भवति**) तन्मय नहीं होता (**तथा**) उसी प्रकार (**जीवः**) जीव (**कर्मफलं**) पुण्य-पापादि पुद्गल कर्म के फल को अर्थात् पद्गल परिणामरूप सुखदुःखादि को (**भुङ्क्ते**) भोगता है (**न च तन्मयः भवति**) परंतु तन्मय नहीं होता (**एवं तु**) इस प्रकार जो (**व्यवहारस्य दर्शनं**) व्यवहार का मत (**समासेन**) संक्षेप से (**वक्तव्यं**) कहने योग्य है (**निश्चयस्य वचनं**) अब निश्चय का वचन (**श्रृणु**) सुनो (**यत्**) जो कि (**परिणामकृतं तु भवति**) परिणाम विषयक है। (**यथा**) जैसे (**शिल्पिकः तु**) शिल्पी (**चेष्टां करोति**) चेष्ठारूप कर्म [**अपने परिणामस्वरूप कर्म को करता है**] (**तथा च**) और (**तस्याः अनन्यः भवति**) उससे अनन्य है (**तथा**) उसी प्रकार (**जीवः अपि च**) जीव भी (**कर्म करोति**) कर्म करता है (**च**) और (**तस्मात् अनन्यः भवति**) उससे अनन्य है (यथा) जैसे (**चेष्टांकुर्वाणः**) चेष्टारूप कर्म करता हुआ (**शिल्पिकः तु**) शिल्पी (**नित्य दुःखितः भवति**) नित्य दुःखी होता है (**तस्मात् च**) और उससे (**दुःख से**) (**अनन्यः स्यात्**) अनन्य है (**तथा**) उसी प्रकार (**चेष्टमानः**) चेष्ठा करता हुआ (**जीवः**) जीव (**दुःखी**) दुःखी होता है।

समयदेशना

भव्य बन्धुओ! आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज समयसार जी में ध्रुवज्ञायक-स्वभावी भगवानात्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान करके समझा रहे हैं। पर्याय दृष्टि से कर्तृत्व-भोक्तृत्व में भिन्नत्व है। द्रव्य दृष्टि से कर्तृत्व-भोक्तृत्व में एकत्व है। इसी बात को दृष्टांत और दाष्ट्रांत से कुन्दकुन्द स्वामी समझा रहे हैं। तन्मयभूत कर्तृत्व भाव, अतन्मयभूत कर्तृत्व भाव। एक कर्त्ता तन्मयभूत है, दूसरा कर्ता अतन्मयभूत है। कुम्भकार का कुम्भ में कर्तृत्व अतन्मयभूत है। कुम्भ का कुम्भकार के द्वारा कर्त्तापन जो है वह अतन्मयभूत है, लेकिन कुम्भ में मिट्टी का कर्तापन है वह तन्मयभूत है। मिट्टी स्वयं ही कुम्भरूप परिणत हुई है। दोनों में कर्तृत्व दृष्टि है। कुम्भकार भी घट का कर्ता है, मिट्टी भी घट का कर्ता है। एक निश्चय दृष्टि, एक व्यवहार दृष्टि। उपादन दृष्टि से मिट्टी कुम्भ का कर्ता है। निमित्त दृष्टि से कुम्भकार कुम्भ का कर्ता है। यदि कुम्भकार को कुम्भ का कर्ता नहीं मानते हो तो यह भी मिथ्या है। मिट्टी को कुम्भ का कर्त्ता नहीं मानते, यह भारी मिथ्या है। कुम्भकार से रहित कुम्भ का निर्माण असम्भव है। उसी प्रकार मिट्टी के अभाव में कुम्भ का निर्माण असम्भव है। आप उपादान की दृष्टि से कथन करें, कोई विकल्प नहीं है; परंतु उपादान के कथन के साथ निमित्त का भी ध्यान रखना होगा। आप निमित्त का कथन करें, परंतु उपादान का भी ध्यान रखना होगा। व्याख्यान के काल में वक्ता को अपनी दृष्टि में रखना चाहिए कि श्रोता तुम्हारे व्याख्यान को असम्यक् न स्वीकारें। व्याख्यान के काल में वक्ता को देखना चाहिए कि हमारी सम्यक् प्ररूपणा होने पर भी कहीं श्रोता अज्ञानता से तुम्हारी प्ररूपणा में असम्यक्पना न देख लें। इसलिए आपको उपादान के काल में निमित्त का भी कथन करना चाहिए। निमित्त के व्याख्यान के काल में आपको शीघ्र ही उपादान की व्याख्या करनी चाहिए। जैसे प्रवचन सुनने आप गाड़ी से आये हैं, तो आप उस गाड़ी को पैट्रोल से चलाकर लाये हो या चकों से चलाकर लाये हो कि आप चलाकर लाये हो, कि आपको गाड़ी चलाकर लायी है? पेट्रोल हो तो चाबी न लगाते उसमें? क्या चाबी लेकर आई है आपको ? पेट्रोल मत डालो तो चाबी लगा दो? इसलिए व्याख्यान तो करना चाहिए। कहीं साम्व्यवहारिक प्रत्यक्ष में लोक को तुम्हारी बातें असत्य न दिखने लग जायें, इसकी दृष्टि बराबर होनी चाहिए। कहीं जैनदर्शन को लोक मिथ्या न कहने लग जायें, इसलिए आचार्य भट्ट श्री अकलंक स्वामी ने सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष की व्यवस्था की है। जैसे कि यह मैं लेखनी देख रहा हूँ, यह प्रत्यक्ष देख रहे हो या परोक्ष देख रहे हो?

जिसे आप प्रत्यक्ष कह रहे हो, वह परोक्ष है। "**आद्ये परोक्षं**" ॥ **त.सू.** ॥ मति-श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं। मति-श्रुतज्ञान से ही तो जान रहे हो। लेखनी को परोक्ष जान रहे हैं। अब यह मीमांसक कहेगा कि आप लोग प्रत्यक्ष में दिख रही वस्तु को परोक्ष कह रहे हो। क्या आपकी आँखें नहीं देख रही हैं, क्योंकि

इन आँखों से देखने वाला आदमी है। उसको हमारी बात प्रत्यक्ष दिख रही है। जिसे आप परोक्ष कह रहे हो। सिद्धांत इसे परोक्ष ही कहेगा, क्योंकि मति-श्रुत ज्ञान जो है वह परोक्ष ज्ञान है। परोक्ष क्यों है ? इन्द्रिय और मन की सहायता से हो रहा है, पर की सहायता से होने के कारण यह परोक्ष है। यह परोक्ष होने पर चूंकि लोक को आपके सर्वज्ञ की भाषा पता नहीं है, आपके आगम की भाषा पता नहीं है, अतः वह तो यही कहेगा कि जैनी लोग प्रत्यक्ष को भी परोक्ष बोलते हैं, जबकि हम प्रत्यक्ष को परोक्ष नहीं बोल रहे हैं, वास्तव में परोक्ष को ही परोक्ष बोल रहे हैं। फिर भी लोक की व्यवस्था है। हमारे परोक्ष पर प्रश्न-चिह्न न खड़ा कर दें, हमें असत्य न कहें इसलिए हमने अलग से शब्द चुन लिया 'साम्व्यवहारिक प्रत्यक्ष।

''इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्।।5/प.मु.सू.।।''

इन्द्रिय और मन की सहायता से जो देखा जा रहा है, उसका नाम सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहकर अकलंक स्वामी ने अति सुन्दर व्यवस्था बना दी है। हमारा सिद्धांत भंग नहीं हुआ और लोक की व्यवस्था भी बनी रही। लेखनी परोक्ष नहीं है, प्रत्यक्ष है। अन्य-जो प्रत्यक्ष है, वह अन्य है। अवधि और मनःपर्यय देशप्रत्यक्ष हैं। केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। सिद्धांत की भी रक्षा हो गई। ऐसे-ही वक्ता को चाहिए। प्रत्यक्ष जानने पर भी सिद्धांत परोक्ष कह रहा है। इसी प्रकार से अब प्रश्न किया कि आपको गाड़ी लेकर आई है या आप अपनी क्रियावर्त्ती शक्ति से आये हो?

क्रियावर्ती शक्ति से अवश्य आये हो, लेकिन गाड़ी सहकारी नहीं थी क्या? हे जीव! तू अपनी क्रियावर्ती शक्ति से आया है, इसमें कोई शंका नहीं है। जीव और पुद्गल इन दोनों में क्रियावर्ती शक्ति होती है। शेष '**निष्क्रियाणि च।**' तत्त्वार्थ सूत्र को याद रखना पड़ता है प्रतिक्षण। जीव और पुद्गल को छोड़कर शेष द्रव्य निष्क्रिय हैं। गाड़ी को आप चलाकर लाये या अपनी क्रियावर्ती शक्ति से आये ? प्रत्येक परमाणु को हम स्वतंत्र रूप में देखते हैं। प्रत्येक परमाणु को भिन्न-भिन्न देखते हैं, भेद से देखते हैं। वहाँ प्रत्येक पुद्गल के परमाणु की स्वतंत्र क्रियावर्ती शक्ति थी। अपनी-अपनी क्रियावर्ती शक्ति से हम लोग यहाँ आये हैं। जीव तू अपनी क्रियावर्ती शक्ति से होकर आया है। लेकिन व्यवहार में इस निमित्त नैमित्तिक सम्बंध को नहीं स्वीकारो तो लोग आपको अज्ञानी कहेंगे। इसलिए श्रद्धा में आपको रखना है कि पेट्रोल की क्रियावर्ती शक्ति पेट्रोलभूत है और गाड़ी की चाबी की क्रियावर्ती शक्ति चाबीरूप है। उन शक्तियों का संग्रह करके आया है। विमान उड़ान भर रहा है। उसके प्रत्येक परमाणु की क्रियावर्ती शक्ति है और चालक जो है वह मनुष्य उसकी क्रियावर्ती शक्ति अपनी स्वतंत्र है। हे ज्ञानी! क्रियावर्ती शक्ति को मात्र स्वीकारता है और निमित्त-नैमित्तिक को नहीं स्वीकारता, तो यदि तेरी क्रियावर्ती शक्ति को उद्घाटित करने का निमित्त नहीं होगा तो लोकव्यवस्था भी भंग हो जायेगी। इसलिए व्याख्यान

करते-करते इतना विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कहीं अज्ञानी लोग हमारी व्याख्या पर हँसी न करने लग जायें। हमारी व्याख्या तो सम्यक् चल रही है, परंतु इतना आपको विशिष्ट रूप से व्याख्यान करना चाहिए कि सामने वाले के अंतरंग में एक-एक शब्द प्रवेश कर जाये, कहीं भ्रम न फैले। फिर भी भ्रमित होता है तो उस जीव की अज्ञानता का भ्रम है, उस वक्ता का कोई दोष नहीं है। वक्ता का अभिप्राय कुटिल नहीं होना चाहिए। यदि उसके अभिप्राय में कुटिलता है कि मैं निमित्त को कहना पसंद ही नहीं करता हूँ। मैं निमित्त को सर्वथा झूठा ही कहता हूँ, तो उस वक्ता के अभिप्राय की कुटिलता है। बेलन अपनी क्रियावर्ती शक्ति से छू रही है, तो हे माँ! तू क्या कर रही है? सत्यता यह है कि हाथों को क्रियावर्ती शक्ति से युक्त होकर चला रही हो, बेलन अपनी क्रियावर्ती शक्ति से चल रहा है। रोटी का विस्तार अपनी क्रियावर्ती शक्ति से हो रहा है, परंतु एक दूसरे का निमित्त नैमित्तिक सम्बंध भी है। यदि लोई के अंदर विस्तृत होने की सामर्थ्य न होती, तो आप कहो कि मैं विस्तार दे रही हूँ, तो आप उसी बेलन को खाली चलाके देखो, पर लोई की विस्तृत होने की सामर्थ्य थी। आप कहो कि बेलन को मैं चला रही हूँ, तो बहुत बड़े पाषाण खंड को चलाकर दिखाओ? बेलन में चलने की सामर्थ्य है, आपको चलाने की सामर्थ्य है, परंतु सिद्धांत की दृष्टि में प्रवेश करेंगे, उपादान की दृष्टि में जायेंगे तो हे जीव! तू भाव से बेलन चलाने के उपयोग का कर्ता है और व्यवहार से तू अपने काययोग को हिलाने का कर्ता है। तेरे हाथ हिल रहे हैं, तू उसी का कर्ता है। बेलन तो अपने स्वभाव में घूम रहा है, बेलन ने आपभूत परिणमन किया नहीं है, यह भी सत्य है। इसी बात को आज स्वर्णकार का दृष्टांत देकर कुन्दकुन्द स्वामी इन सात गाथाओं में इस विषय को कह रहे हैं।

यहाँ आचार्यभगवन् कह रहे हैं जैसे शिल्पकार कर्म करता है, स्वर्णकार आभूषण बनाता है, यह विषय समझ में आ जाये। इतना गहरा यह विषय है कि व्यक्ति कर्तृव्यपने से निष्पण हो जाये। ठीक है, तुम जीवन जी रहे हो, आजीविका चला रहे हो, परंतु जो जीवन है वह बहिर् भाव है। जो जीवन है वह ही व्यवहार है। निश्चय नय की शैली में जी रहे हो, तो निश्चय कैसा ? जब तेरा द्रव्य प्राण तन्मयभूत नहीं है, तो द्रव्य प्राणों की रक्षा तन्मयभूत कैसे?

इन्द्रिय, आयु, श्वाच्छवास, बल यह क्या आत्मा का तन्मयभूत गुण है? क्या द्रव्येन्द्रिय आदि यह तन्मयभूत गुण है ? जो जीवन जी रहे हैं, जो मैं देख रहा हूँ वही व्यवहार है। इस जीवन को धारण करने की जो शैलियाँ हैं, वे भी व्यवहार ही हैं। निश्चय तो मेरा चेतनद्रव्य ही है। उसके लिए, जीवन जीने के लिए कुछ सामग्री की आवश्यकता ही नहीं है। जो द्रव्यप्राणों का चार गतियों का जीवन है, चौरासी लाख योनियों का भ्रमण है, चौदह मार्गणास्थानों में जी रहे हो, गुणस्थानों में जी रहे हो, ये हमारा परमार्थ जीवन नहीं है।

मग्गण गुण ठाणेहि य, चउदसहि हवंति तहअसुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ।। 13/द्र.सं.।।

मार्गणा स्थान, गुणस्थान चौदह होते हैं, यह अशुद्ध नय से हैं। अंतरंग में प्रवेश करके समझना। मेरा मित्र, मेरा शिष्य, मेरा बेटा, मेरी माँ, मेरी पत्नी, मेरा पिता हे जीव! यह अत्यंत स्थूल व्यवहार में तल्लीन होकर जीवन जी रहे हैं। इसे अपना धर्म मान रहे हैं। बेटे को जन्म दे दिया, आह! मेरी वंश परम्परा चलेगी, मेरा धर्म चलेगा। सुन! तेरा धर्म चलेगा क्या? धर्म का नाश करके धर्म चला रहा तू। तेरा धर्म तो ब्रह्म से था, उसका तूने घात किया है। अब कौन-से धर्म को चलाना चाहता है तू ? तेरा धर्म तो उसी समय नष्ट हो गया जब तू बेटे को जन्म देने का भाव कर रहा था। जिसे तू 'धर्म' संज्ञा दे रहा है, वह लोक-व्यवहार सम्प्रदाय की बात है, लेकिन निज धर्म की बात नहीं है। आप अपनी आँख को बंद करके और थोड़ा खोलकर सुनना। तात्पर्य समझो। जो तुम चौबीस घंटे व्यवहार का जीवन जी रहे हो, उस आँख को बंद कीजिए। जिस आँख को आज तक खोल नहीं सके हो, उस परमार्थ की आँख को खोलकर चलिये। **ज्ञानी! जिसे तू धर्म कह रहा है कि महाराज जी! यह मेरी पुष्प वाटिका है, यह हमारी पत्रिका है, यह हमारा तीर्थ है, यह हमारा मंदिर है, यह हमारी धर्मशाला है, यह मेरा पिता है, यह मेरा बेटा है, हे जीव! यह तो अत्यंत स्थूल व्यवहार है जो तू अतन्मयभूत, अनात्मभूत, असंश्लेषभूत द्रव्यों में आत्मदृष्टि रख रहा है।** असंश्लेष सम्बंध है तेरा शरीर और तेरी आत्मा वर्तमान में संसार में संश्लेष संम्बंध सहित है।

बेटे को देख रहा है, अब मैं इसका पालन करूँगा, यह मेरा धर्म है। दूसरे के प्राणों की रक्षा हो, जिसे तूने पानी पिलाया हो, यह तेरा धर्म है। भोजन करा रहा है, यह तेरा धर्म है। तुम्हारी इतनी आँख खुली है, सो इसे धर्म कह रहा है, परंतु यह तेरा धर्म नहीं है। करुणा का राग है।

सुबह मैं चींटी को आटा खिला रहा हूँ, श्वान को रोटी खिला रहा हूँ, गाय को रोटी खिला रहा हूँ, यह मेरा धर्म है। यह जो धर्म है, करुणा का राग है। जो मैं बोल रहा हूँ, इस विषय को सहन करने की सामर्थ्य चाहिए। मैं आपकी करुणा नहीं छुड़ा रहा हूँ। आप जो कर रहे हो, उसे मैं नहीं कहूँगा तो भी आप छोड़ नहीं पाओगे। लेकिन इतना तो बोध होना चाहिए कि धर्म कौन-सी वस्तु है? वहाँ हम कह क्या रहे हैं? नहीं तो आप कहोगे महाराज! आपके उपदेशों को सुनकर हम भोजन नहीं करायेंगे। हाँ, तुम भूखे को भोजन कराओ, आप उसकी तृष्णा को शांत करो। दया करुणा है, दया धर्म है। लेकिन धर्म ऐसा कैसा ? यही कारण है कि दुनियाँ के महापुरुषों का उपकार में नाम लिया, लेकिन तीर्थंकर महावीर का कहीं नाम ही नहीं मिलता, कि पूरे विश्व पर उपकार किया। बोलो महावीर स्वामी ने किस

पर उपकार किया ?

माताओ! जो उपकार या अन-उपकार का भाव है, यह जो विषय चल रहा है, वह मस्तिष्क में निर्णय करने का विषय है। उपकार-अनउपकार का धर्म-अधर्म भाव है, बहुत नीचे स्तर की बातें हैं। जो जीव निज योग में स्थिर हो गया, स्वरूप में लीन हो गया है, आत्मा को आत्मा से जोड़ता है। भई! यदि रास्ते में कोई व्यक्ति गिर पड़े, आप गाड़ी में हो, तो आपका कर्तव्य है कि आप उसे उठा लो। यह आपकी करुणा है। लेकिन आप जिनालय में बैठे हुए थे, अर्हन्त देव को निहार रहे थे, उस समय तुम सड़क पर नहीं थे। कौन गिरा है, कौन बैठा है, आपको पता नहीं था, तो आपको अधर्म हो जायेगा क्या ? आप इतने तल्लीन थे कि सड़क पर क्या हो रहा है इन विकल्पों से आप दूर थे, आपको तो भगवान् दिखाई दे रहे थे, तेरा धर्म चल रहा था, तुम ऊँचे उठ चुके थे और जब स्वरूप में लीन हो गये तो कौन से अर्हन्त देव ? कौन-से निर्ग्रंथ गुरु ? कौन-सी जिनवाणी ? तुम इतने ऊपर जा चुके थे कि स्वरूप में लीन हो तो विकल्प नहीं आयेगा मन में कि देव-गुरु-शास्त्र को भजूँ । इनको भज चुका हूँ। मैं कहाँ हूँ? मैं जिस धर्म में हूँ जिसने सारे जगत् को देखा था, उस जाननहार-देखनहारे को मैं जान रहा हूँ। मैं नियत रूप से धर्म में हूँ। कहाँ हो ? व्यवहार प्राणों में तो जी रहे हो। जो भी तुम्हारा धर्म चल रहा है, वो व्यवहार में ही व्यवहार चल रहा है। व्यक्ति इसमें ही समझ लेता है कि मैंने तो क्या नहीं कर दिया। अभी तुम निज के नजदीक नहीं पहुँचे हो।

ज्ञानी! एक सौ इक्यावन परिक्रमा लगाकर आये हो सम्मेदशिखर की और कह रहा है क्या आनंद आया? बेटा! आनंद आया? बेटा! तूने बहुत अच्छा किया, सम्मेद शिखर में विराजे हैं तीर्थंकर पार्श्वनाथ आदि। कोटि-कोटि मुनियों की निर्वाण भूमि है। बेटा! अब सत्य समझना, उन लोगों ने सम्मेद शिखर की एक भी परिक्रमा नहीं लगायी। क्यों ? जब परिक्रमा लगा रहे थे, तब भगवान् नहीं थे। जब भगवान् थे, परिक्रमा नहीं लगा रहे थे। जब स्वरूप में लवलीन हो गये, उनका परिणमन, उनके आत्मप्रदेशों की परिक्रमा आत्मप्रदेशों में चल रही थी। भावों की धारा भावों में चल रही थी। वहाँ क्या पर्वत की परिक्रमा लगाने जाते? वे तो निज में परिणमनशील थे। वे परमात्मा हो गये। अब तुम परिक्रमा इसलिए लगाने जाते हो कि परमात्मा यहाँ से हुए हैं, उस सिद्धभूमि की वंदना कर रहे हो, लेकिन सत्यता यह है कि जब-तक तुम वंदना करते रहोगे तब-तक बंध होता रहेगा। वंदना नहीं करोगे, तब भी बंध होता रहेगा। वंदना बंद हो जायेगी, तो बंध बंद हो जायेगा। **जब-तक वंदना करते रहोगे बंध होता रहेगा, वंदना नहीं करेगा तो अशुभ का बंध करेगा।** वंदना बंद हो जायेगी, तो बंध बंद हो जाये, बंध बंद हो जायेगा, तू निर्बंध परमात्मा हो जायेगा। डॉक्टर! तू सोचता है कि कोई गरीब आया, तूने इंजेक्शन लगा दिया, पैसा नहीं लिया, तो यह मेरा धर्म हो गया? तू इसे धर्म मान रहा है, जबकि सब व्यवहार है।

ज्ञानी! यदि कोई गिर जाये तो उसे उठा दिया तो यह धर्म हो गया क्या? हे जीव! अपने काययोग से दूसरे के काययोग को तूने उठा लिया है, किया क्या है? पर से पर को ही तो पकड़ रहा है। तूने धर्म किया क्या ?

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहारक यह चौदह मार्गणा हैं। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरति, देशविरत, प्रमत्त संयत, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीण मोह, सयोग केवली, अयोग केवली यह चौदह गुणस्थान हैं। मैं गुणस्थान नहीं हूँ। मैं मार्गणास्थान नहीं हूँ। यह भी व्यवहार है। यह भी परद्रव्य है। गुणस्थान परद्रव्य के नहीं हैं। जब मैं गुणस्थान, मार्गणास्थान जो संश्लेष सम्बंध सहित अवस्थाएँ चल रही हैं , मैं उनको निज रूप नहीं मान रहा हूँ, तो **हे ज्ञानी ! तू कहाँ संतुष्ट हो रहा है? मेरा पुत्र है, मैं इसका पालन करूँगा, मेरा धर्म है। यह राग है, राग बंध का कारण है, धर्म नहीं है।** अधर्म मानना। यह ब्रह्मचारी कहते हैं कि मेरा पिता कहता है कि तू मुनि मत बन जाना। माँ कहती है शिविर में मत जाना, बेटा! इन दिनों घर का क्या होगा? जब माँ ही तेरी नहीं, पिता ही तेरा नहीं, तो आज्ञा किसकी? कहोगे, महाराज! आप तो बिगाड़ दो हमारे घर की व्यवस्था को। मैं तो यही चाहता हूँ कि घर की व्यवस्था बिगड़ जायेगी तो मुनि संघ की व्यवस्था बन जायेगी। परंतु जाने वाले को कौन रोक पाया? रुकने वाले को कोई भगा नहीं सकता। यदि यह तू कह रहा है कि मुझे अमुक व्यक्ति रोक रहा है, रोका उसे ही जा रहा है। जिसने वस्तु की स्वतंत्रता को नहीं जाना, दुनियाँ उसे ही रोक पायेगी, उसे ही वश में कर पायेगी। जिसने वस्तु-स्वतंत्रता को जान लिया है, उसे जगत् में रोकने वाली वस्तु है ही नहीं। मैं गुणस्थानों से भिन्न होकर आया हूँ 'सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया' पर दृष्टि है। आज कहो महाराज! एक धर्मशाला को नाश करने के लिए चला हूँ। तू मेरे से धर्मशाला की बात कर रहा है, मैं शरीर को धर्मशाला मान रहा हूँ। मैं इसमें रहना पसंद नहीं कर रहा हूँ और तू मुझ से यह कह रहा है, कि एक धर्मशाला भवन बन जाये, आशीर्वाद दे दो और कोई सेठ बता दो जो दान देगा। हे अभागे! तू कहाँ फँस गया मेरे पास आकर। जो जीव निर्ग्रन्थ दीक्षा को प्राप्त हुआ है, मैं गुणस्थान या अर्हन्त अवस्था को अपना स्वभाव नहीं मान रहा हूँ। कहाँ तुम ईंट चूने की बात कर रहे हो? जो भावमोक्ष से युक्त है। (अर्हन्त भगवान् भाव मोक्ष से युक्त हैं) वो भी मेरा शुद्ध स्वभाव नहीं है। मैं चौदहवें गुणस्थान को अपना स्वभाव नहीं मान रहा हूँ। तूने चौथे गुणस्थान को अपना स्वभाव कैसे मान लिया ? चौदहवाँ गुणस्थान भी मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। जिस गुणस्थान की प्राप्ति में कोटि-कोटि वर्ष लग जायें, अनन्त भवों की तपस्या न्यौछावर हो जाये, तब कहीं मिलता है चौदहवाँ गुणस्थान, जिसमें नियत हो चुका है कि अब अ, इ, उ, ऋ, लृ इतना उच्चारण होगा इतने समय में निर्वाण हो जाता है। वो भी गुणस्थान मेरी आत्मा का धर्म नहीं है।

धर्म नहीं, विभाव है। **चौदहवें गुणस्थान तक आत्मा अशुद्धात्मा है। सिद्धांत की दृष्टि से शुद्धात्मा तो गुणस्थानातीत है। द्रव्य, गुण, पर्याय से शुद्ध है, उसका नाम निकल/अशरीरी सिद्ध परमात्मा है।**

अर्हन्त परमात्मा भी अभी शुद्धात्मा नहीं हैं। जब तक कर्म का कलंक लगा हुआ है, अभी अघातिया कर्म बचे हुए हैं, घाति कर्म का नाश हुआ है। कितनी प्रकृतियाँ बैठी हुई हैं? कर्म की पिच्चासी प्रकृतियाँ बैठी हुई हैं। जब-तक पिच्चासी कर्मप्रकृतियाँ विगलित नहीं होंगी, तब-तक यह जीव शुद्ध टंकोत्कीर्ण परमपारिणामिक भाव को प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए बहुत अच्छा योग है। कम-से-कम वस्तु की व्यवस्था को हम व्यवस्थित सुन रहे हैं, नहीं-तो जीव समझ नहीं पाये 'समयसार' को। चौदहवें गुणस्थान को तो छोड़ो, चौथे गुणस्थान में सर्वस्व मान बैठे। नहीं, मुमुक्षु! तुम क्यों इतरा रहे हो कि मैं चौथे गुणस्थानवर्ती हूँ। चौथा गुणस्थान मेरी आत्मा का धर्म है क्या? चौथा गुणस्थान कह कर तुम कहाँ उन्मत्त हो रहे हो? जब गुणस्थान ही मेरी आत्मा का धर्म नहीं है, तो चौथा हो पाँचवाँ, कोई गुणस्थान मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। **गुणस्थानातीत जो दशा है, वह आत्मा का स्वभाव है। देहातीत, गुणस्थानातीत, कर्मातीत, यही आत्मा का शुद्ध स्वभाव है।** उस धर्म की प्राप्ति के लिए आपको प्रथम गुणस्थान से पुरुषार्थ करना पड़ेगा। सत् फिर यहाँ कहना कि चौथा गुणस्थान कार्यकारी है। पाँचवाँ, छटवाँ, सातवाँ गुणस्थान कार्यकारी है। सत् तो मेरी परम अशरीरी दशा है। मैं ही मैं तन्मयभूत हूँ। मैं से तात्पर्य मैं और मेरा शरीर। मैं ही शरीर नहीं हूँ, शरीर ही मैं नहीं हूँ, तो परके शरीरों में आत्मबुद्धि कैसी? वेचारे कैसे सूख रहे हैं, तड़प रहे हैं, परके शरीर के रागों के बारे में बिलख रहे हैं। कोई परशरीर को देखकर मुस्काता है, कोई परशरीर को देखकर रोता है। हंस निकल गया सो रोने लग गये शरीर को देखकर। जब-तक आत्मा था, सो मुस्कुरा रहा था। सब स्वशरीर परशरीर को आत्मबुद्धि से देखते हैं। सब बहुत पापी लोग हैं। मालूम नहीं तुमने पूरी पर्याय कहाँ निकाल दी? पर शरीरों की रक्षा में निकाल दी। कोई स्वशरीर की रक्षा में लगाता रहा है। धर्म तो देखा ही नहीं है, जाना ही नहीं है। दिगम्बरत्व के धर्म को नहीं समझ पाया तो क्या कर पाया दिगम्बर बनकर? इस व्याख्या को अज्ञानी लोग सुन लेंगे तो यही कहेंगे कि महाराज ने अहिंसा धर्म का लोप ही कर दिया, आप कह रहे हो लोप। जो परम अहिंसा है, उस पर तेरा लक्ष्य ही नहीं है। ज्ञानी ! तू पर की पर्यायों की रक्षा में समय व्यतीत कर रहा है। अपने परिणामों की रक्षा में दृष्टि ही नहीं लगा रहा। '**निज की हिंसा किये बिना पर पर अहिंसा होती नहीं।**' यह जो विषय चल रहा है, वह समयसार का पुरुषार्थभूत विषय चल रहा है। **निज हिंसा किये बिना, पर पर अहिंसा भाव आता नहीं है।** परंतु आप धर्म छोड़ मत देना, नहीं-तो **हे ज्ञानी! जब-जब तू कर्तृत्व बुद्धि लायेगा तो किसी पर दया कर रहा होगा, उस समय तू अपने शुद्धोपयोग**

में होगा क्या? स्वरूप में लीन होगा क्या? स्वरूप की हिंसा करके ही तूने पर की रक्षा की है। ज्ञानी! तू बेटे पाल रहा है, मुस्कुराकर पाल रहा है। उसे पन्द्रह फल खिलाये और कह रहा है देखो मैं अपने बेटे को बहुत अच्छे से पाल रहा हूँ। ज्ञानी! कितना घात करके तू बेटे को पाल रहा है। यह पन्द्रह फल किसी वृक्ष से आये थे कि नहीं ? उन जीवों को कष्ट हुआ या नहीं ? इसे ही धर्म मानकर बैठ गये कि मैं धर्म पालन कर रहा हूँ। मैं यह जानकर कह रहा हूँ, तुम समझो। तो धर्म कुछ-और ही है। डॉक्टर ने किसी के फोड़े को देखा, उसे बहुत पीड़ा थी, उसके फोड़े में कीड़े पड़ चुके थे, उसमें कीटनाशक औषधी लगाकर तू उसे ठीक कर रहा था, हे ज्ञानी! तूने एक के राग में कितनों को मार दिया। तेरा धर्म किस बात का है? तू परमार्थ से देख भाई। वहाँ हिंसा हो रही थी या नहीं? हिंसा हो रही थी तो हे जीव! तेरी रक्षा भी अरक्षा से युक्त है। अभी जो वर्णन चल रहा है, वह गहराई का वर्णन चल रहा है। इसलिए यह कथन कर रहा हूँ कि तुम संतुष्ट कहाँ हो रहे हो। आप करुणा करो, दया करो, रक्षा करो जीवों की, लेकिन इतना फिर भी ध्यान रखो, व्यवहार में ही व्यवहार का ध्यान कर लो कि कोटि-कोटि जीवों की हिंसा करके रक्षा मत करो। उनकी भी रक्षा करो और जिसकी रक्षा कर रहे हो उसकी भी रक्षा करो।

बिजली के जीवों की रक्षा के राग में छिपकली की हिंसा मत करो। ऐसा करो कि छिपकली की भी रक्षा हो और जीवों की भी रक्षा हो, इसलिये बिजली ही मत जलाओ। जो परमार्थ ट्रस्ट लिखा होता है, परमार्थ औषधालय, वह मात्र शब्द का उपयोग है। वह परमार्थ किंचित् भी नहीं है। परमार्थ निश्चयदृष्टि है। यहाँ परमार्थ कहाँ है? यहाँ पर के शरीरों के राग में दूसरे के शरीर का नाश कर रहे हो, फिर भी कह रहे हैं परमार्थ। जड़ीबूटी भी लायेगा तो एकेन्द्रिय की हिंसा करेगा। परमार्थ तो वह है-परम्+अर्थ=परमार्थ। निश्चय स्वरूप में लीन वालों के यहाँ। आपके शब्दों में निश्चय आता है, आप पूरी क्रिया में लिप्त हो। यदि आपने तीर्थवंदना भी निकाली, परमार्थ वंदना भी निकाली है, वह शब्द मात्र परमार्थ वंदना है। वह जो पेट्रोल आ रहा है गाड़ी के लिए, उसके लिए भारत कितना मांस निर्यात कर रहा है? टायर के नीचे कितने जीव कुचले जायेंगे? यह है क्या परमार्थ वंदना? परमार्थ वंदना क्या है?

गमनागमन का त्याग करके निज स्वरूप में लीन होना, उसका नाम है परमार्थ वंदना। किसी पर्वत या द्वीप पर घूमना परमार्थ वंदना नहीं है। एक प्रांत से दूसरे प्रांत जीवों को मारकर आ गये, कह रहे हैं परमार्थ वंदना। वंदना भी परमार्थ से होती है क्या? सब व्यवहार है।

निश्चय से रत्नत्रय ही तीर्थ है, जो उसमें लीन हो गया वही तीर्थवंदना है। यदि कोई यह कहे कि मैं निश्चय को मानता हूँ, तो निश्चय वाले को तो प्रवचन करना ही हिंसा है। उसे तो प्रवचन ही नहीं

करना चाहिए। क्योंकि तू बोलेगा तो बोलने से हिंसा होगी। भगवान् की पूजा, आरती, धूप इन सबमें हिंसा है। यह माईक लगा है, इसकी ध्वनि कितनी दूर तक जा रही है, इसमें हिंसा होगी या नहीं? यह राग है कि मैं ऐसा कर रहा हूँ। घोर हिंसा है। जानकर कह रहा हूँ ताकि दृष्टि तो समझ में आये कि हम भूल कर कहाँ रहे हैं।

जब चौदहवें गुणस्थान तक परमार्थ नहीं है, तो तेरे पास चौथे में कहाँ से आ गया परमार्थ ? परम अर्थ तो मात्र मोक्ष है। **धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थ हैं। परम पुरुषार्थ मोक्ष है। मोक्ष से ही परमार्थ है। उस मोक्ष परमार्थ की सिद्धि के लिए आपको ऐसा क्रम करना चाहिए कि जिससे सारे संसार के उपक्रम बंद हो जायें। इसलिए जितने सम्प्रदाय/ पंथ हैं, सब विकल्प हैं।** जिनके अंदर विराजते हैं सब हिंसक लोग हैं। तुम ऐसे अज्ञानी कि उस व्यक्ति को ही भगवान् मानकर पूजने लग गये। यह तेरा वस्तु स्वभाव का धर्म नहीं है।

'वत्थु-सहावो धम्मो'

सूत्र यह है, न कि 'व्यक्ति स्वभावो धम्मो' है। वस्तु का स्वभाव वस्तुत्वभूत है। व्यक्तियों के स्वभाव में तो राग-द्वेष भरे हुए हैं। उनका क्या स्वभाव स्वीकारें?

पूरे विश्व/ देश/ राष्ट्र की समाजों को पता चल जाये कि ''वत्थु-सहावो धम्मो'' है। यह हमारा अमुक पंथ, गच्छ, गण, संघ, आम्नाय, परम्परा सब छोड़ो। सब मिथ्यात्व है। वस्तुस्वभाव धर्म है, उसकी व्याख्या करो, उसी की सुनो, आप उसमें जिओ, मैं आपकी वंदना करता हूँ। तुम्हारे गण गच्छ की कोई वंदना नहीं करता हूँ। आपके अहंकार की वंदना मेरे पापबंध का कारण है। ऐसा ही है। कषाय पाप है। कषाय धर्म है या अधर्म ? माताओ! ध्यान देना, यदि यह तुम्हारी बुद्धि में चढ़ जाये तो बहुत सारा विषय तुम्हारे लिए कल्याणकारी हो जायेगा। सुनो, यह आपको कहाँ उलझा कर रखा गया है, वर्तमान में। यहाँ नहीं जाना, वहाँ जाना, भोजन करना, वो नहीं करना। इस विषय को समझ लो। कषाय धर्म नहीं है, अधर्म है।

यदि कोई व्यक्ति अपनी कषाय के वश में होकर मात्र अपने को ही पूज्य मान ले, दूसरे को अपूज्य मान ले। अथवा जिसे तुम पूज्य मान रहे हो, उसे ही तुम पूज्य मान रहे हो, दूसरे को जो तद्रूप पूज्य है उनको पूज्य नहीं मान रहे हो, यह कौन बोल रहा है? अधर्म है। कषाय है अधर्म। आप धर्म को करने आये हो। **जो कषायी व्यक्ति की पुष्टि कर रहा है, वह अधर्म की ही पूजा कर रहा है। धर्म तो उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य है, इससे विपरीत सब अधर्म ही है।** धर्म की कितनी आराधना चल रही है, अधर्म की कितनी आराधना चल रही है? खोजो।

यदि आप भी मेरे मान की पुष्टि कराओगे तो तुम भी अधर्म की ही पूजा कर रहे हो। तू मेरा क्या नाम लिखेगा? मेरा नाम है ही नहीं। जिसका नाम विशुद्धसागर है, वह देह का नाम विरागसागर जी ने रख दिया है। मैं तो जो हूँ, सो हूँ। परमार्थ दृष्टि से सब अधर्म है। व्यवहार की बातें तो दुनियाँ जानती है। ऐसा कौन-सा अभागा शिष्य होगा जो अपने गुरु का नाम नहीं लेगा ? वो तो लेगा ही। वहीं लोगों को उसके मन के लक्षण ही नहीं दिख रहे हैं। जिसके सम्यग्ज्ञान के लक्षण नहीं दिख रहे हैं, वह सम्यग्दृष्टि ही नहीं है। मिथ्यादृष्टि क्या गुरु का नाम ले पायेगा? गुरु के नाम के राग में लिप्त होकर दूसरों की अवहेलना कर रहा है, वह अधर्म की उपासना कर रहा है। समझना पड़ेगा अभी विद्वानों को। वस्तुस्वभाव को समझने के लिए समझना पड़ेगा धर्म को। मैं चौदह गुणस्थान तक को अपना स्वभाव धर्म नहीं मानता हूँ, अधर्म है। **संयम पालन करना, आदि जो क्रियायें हैं वे उस स्वभाव की प्राप्ति के लिए उपाय हैं। उपेय की प्राप्ति के उपाय को भी उपचार से धर्म कहा जाता है। उपेयभूत शुद्धात्मा है, उपाय रत्नत्रय है।** उपेय की प्राप्ति का साधन होने से उपायभूत धर्म है, उसका नाम **''सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः''** यह है धर्म। निश्चय रत्नत्रय धर्म, व्यवहार रत्नत्रय धर्म, लेकिन फिर भी उपाय ही है, उपेय नहीं। क्या कह रहे हैं-

आपकी हथौड़ी सोना है या सोना हथौड़ी होता है? सोना हथौड़ी नहीं है, हथौड़ी सोना नहीं है। हथौड़ी सीधे सोने पर चोट कर रही है। हाथ तेरे सोने के नहीं हैं, सोना हाथ नहीं है, तब भी कार्य होते दिख रहा है। कार्य जिससे हो, वह कारण जो है, वह कार्यभूत हो, यह नियत नहीं है। जिससे कार्य होता है, वो कारण है। वो कारण कार्य नहीं होता है। कारण अनात्मभूत है, वह कभी कार्यभूत परिणत नहीं होता। जो उपादान कारण है, वही कार्यभूत परिणत होता है। इसलिए जैसे शिल्पी कर्म करता है, आभूषण बनाता हुआ स्वर्णकार आभूषण बना रहा है, तब भी आभूषणभूत परिणत नहीं होता। यदि स्वर्णकार कुण्डल बना रहा था, वो कुण्डल बन गया तो किसी माँ के ही कान में लटक जायेगा। यदि कर्ता कार्य हो गया, तो ज्ञानी! कुण्डल अचेतन था, बनाने वाले चेतन थे, जब कुण्डल बन रहा था, यदि वह कुण्डल बन गया, तो ऐसा आभूषण बनाया कि स्वयं ही जड़भूत हो गया। अब बनाया था पैसे बनाने के लिए, तो कोई ग्राहक खरीदने आयेगा तो पैसे किसके हाथ आयेगा? वो तो कुण्डल बन गया। इसलिए ध्यान दो, कर्ता कभी कर्म नहीं होता, निमित्त रूप जैसे शिल्पी आभूषण बना रहा है, लेकिन तब भी तन्मय नहीं हो रहा है। 'जीव भी कर्म करता है, लेकिन तन्मयभूत नहीं होता। यदि आप अपने द्रव्यकर्म पर भी दृष्टि डालेंगे, ज्ञानावरणादि कर्म का तूने बंध किया है तब भी जीव कर्म का बंध होने पर भी आत्मा में तू कर्मभूत नहीं हुआ है। **'जह सिप्पिओ दु करणेहिं कुव्वदि'** जैसे शिल्पकार करणी के द्वारा कर्ता है, आभूषण बनाने के उपकरण हथौड़ी छेनी आदि के माध्यम से आभूषण निर्मित कर रहा है शिल्पकार,

'ण य तम्मओ होदि' लेकिन तब भी शिल्पकार हथौड़ीभूत नहीं हुआ, शिल्पकार कसौटीभूत भी नहीं हुआ। चूड़ी बनाने वाला यंत्र होने पर भी, यह सारे उपकरण होने पर भी शिल्पकार न हथौड़ीभूत हुआ न धोंकनीभूत हुआ, न अन्य कोई चूड़ी आदि रूप हुआ है। क्यों? वे जड़भूत द्रव्य हैं, स्वर्णकार चेतन्य द्रव्य है। कार्य करते हुए भी उपकरण के द्वारा, करण के द्वारा, तब भी करणभूत, तन्मयभूत नहीं होता। वैसे-ही जीव भी मन, वचन और काय इन तीन करणों से कर्म करते हुए भी आत्मा करणभूत नहीं है। जैसा शिल्पी करण को ग्रहण करता है, कोई तन्मयभूत नहीं होता, ऐसे ही जीव भी कर्म को ग्रहण करता है तन्मय नहीं होता।

शिल्पी ने जो आभूषण आदि बनाये हैं, उसका क्रय विक्रय करेगा, तो उससे फल मिलेगा, या नहीं? अब शिल्पी ने आभूषण को बनाकर ग्राहक को विक्रय कर दिये, ग्राहक ने उसे पैसा दिया इतना सब कुछ हुआ तो फल मिला या नहीं? लेकिन तब भी फल क्या तन्मयभूत है। जैसे आभूषण उसकी आत्मा से भिन्न था, ऐसे नोट भी आत्मा से भिन्न है, तन्मयभूत नहीं है। संतुष्टि कहाँ चल रही है। पुद्गल को पीटा, पुद्गल को आभूषण रूप दिया, पुद्गल ही हाथ में आये तूने किया क्या है? पसीना किसके नाम पर बहाया? चाहे कच्चा बना, चाहे पक्का बनाये पैसा तो मिलेगा तो वह किसका हुआ? आत्मा का? या तो कागज के नोट होंगे, या फिर धातु के सिक्के होंगे, वही तो है। ज्ञानी! स्वर्ण धातु को पीट रहा था उसके बदले में वही धातु तुझे मिल रही है। बस शासन की मुद्रा लग गई। मिला क्या हाथ में पुद्गल। इतने गहरे में चला जाये जीव तो क्या करेगा पुद्गल के लिए पुद्गल, पूरा जीवन इसी में निकल गया। भाई! तू कर क्या रहा है? इतनी सुन्दर देह का नाश कर रहा है घर में बैठकर। पुद्गल को पीट रहा था पुद्गल के लिए। हे मुनि! तू भी अंजुली लगाकर चला जाता है पुद्गल के लिए, पुद्गल लेने, अनशन स्वभावी आत्मा नहीं हो जाये जब तक क्यों यह कहता रहूँ? सब कुछ छोड़कर आये फिर भी दूसरों के घर जाना पड़ता है, हे भगवान्! यह दिन कब समाप्त होगा? वह दिन जल्दी आये। ठीक है साधना के लिए देह नहीं चल सकती है तो साधना के लिए आहार तो लेना होगा आपको? वो भी हे भगवन्! कब वो दिन आये जब आहार के बिना रहना पड़े। पुद्गल के लिए पुद्गल को लेने जाना पड़ता है। कभी खांसी उत्पन्न करता है, कभी जुकाम होता है। पुद्गल की विधि ही तो विचित्र है, कितना कष्ट दे रहा है आत्मा को यह पुद्गल।

''मूलम् संसार दुःखस्य, देह एवात्मधीस्ततः। (स.तं.)''

इस आत्मा के दुःख का कोई मूल है, तो देह में आत्म बुद्धि है। शिल्पी पीट रहा है पुद्गल को और क्या मिलेगा पुद्गल। ऐसे ही मुमुक्षु! तुम इन्द्रिय विषयों में लिप्त हो इनसे मिलेगा क्या? इन्द्रियाँ ही मिलेंगी। गति से गति, गति में इन्द्रियाँ, इन्द्रियों से भव भवों का भोग, भोगों का भोग, पाप का आस्रव,

पाप के आस्रव से पुनः गति, गति में फिर इन्द्रियाँ, शरीर फिर शरीर में इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय, फिर भोग, फिर पाप, फिर गति, पेडल से पेडल, एक पेडल मारा तूने फिर ऊपर आ गया, ऐसी ही चेन चल रही है। मुमुक्षु! तूने किया क्या? दूसरे को फँसा कर लाया, दूसरे से निकालकर लाया तू स्वयं को फँसाने के लिए।

वस्तुस्वरूप समझो! इस जीव ने कमाने के लिए कितना कमाया? कमाने के राग में कितना पुण्य को कम कर लिया। पैसा कमाने के लिए कितना पाप कमाया। बस निर्ग्रन्थ मुनि बनने के अलावा कोई चारा नहीं है। यहाँ भी मुनि बनकर यहाँ-वहाँ के दम्भ-खम्भ में फँस गया, तो दोनों तरफ से गया।

यमुना के बीच में टापू है। एक व्यक्ति वहाँ पर झोपड़ी बनाकर बैठा था दोनों तरफ थोड़ा-थोड़ा पानी था, वो आराम से बैठा था एक दिन इतना पानी भर गया कि उसकी झोपड़ी उखड़ गई, बह गई। अब सोचता है कि इधर जाऊँ या उधर जाऊँ। दोनों तरफ पानी है। ऐसे ही मुमुक्षु! सुन तू सोच रहा है मैं कमाकर कुछ करूँगा, कमायेगा तो जायेगा भी, गवाँयेगा भी। तू सोच रहा है मैं कमाकर कुछ कर लूँगा। जब तू कमाने गया था तब उससे पहले गवाँना शुरू हो चुका था। बिना रागादिक भाव किये, बिना संकल्प-विकल्प किये द्रव्य को कमाता कैसे? हे जीव! कहीं तू योगी बन गया और उस टापू पर पहुँच गया, यदि तू वहीं साधना करले तो उच्चगति को प्राप्त हो जाये, वहाँ पहुँचकर इस तरफ देखेगा तो पानी, उस तरफ देखेगा तो पानी, ज्ञानी! घर का राग सतायेगा तो डूबा, भक्तों का राग सतायेगा तो डूबा। तेरे लिए दोनों तरफ पानी ही पानी है। आप दोनों से रहित होकर तटस्थ होकर चिन्तवन कर। तो बच पायेगा, नहीं तो शिल्पकार की तरह फल होगा। जैसे शिल्पकार काम के फल को भोगता है। ज्ञानी! स्वर्णकार है, वह क्या कर रहा है? मैंने जो आभूषण बनाया है उससे मैं तन्मयभूत नहीं था, उससे जो पैसा मिला है उससे भी तन्मयभूत नहीं हूँ। ऐसे ही जीव भी कर्म के फल को भोगता है, फिर भी उसमें तन्मयभूत नहीं है। इसीलिए व्यवहार का मत संक्षेप से कहा, इतने कथन को तब भी व्यवहार का मत कहा जा रहा है। यहाँ निश्चय कितना गहरा होगा। अब निश्चय के वचन सुन, जो परिणामकृत होता है अब निश्चय से भीतर की बात जैसे शिल्पी चेष्टा कर रहा है, **''हवड़ ता तहा अणण्णो''** मैं आभूषण बना हूँ। मुझे आभूषण बनाना है, यह कौन बोल रहा है? शिल्पकार। मैं आभूषण बना हूँ। आभूषण कसौटी, भट्टी, हथौड़ी से बन रहे हैं। मैं आभूषण बनाऊँ, यह कहाँ बन रहे हैं? भावों में। हे जीव! जो भट्टी आदि पर आभूषण बन रहा था वो अतन्मयभूत था, परन्तु मैं आभूषण बनाऊँ यह तेरे भीतर चल रहा है, यह तन्मय है। मैं आभूषण हूँ। यह भावों में चल रहा है।

मैं इसे मार दूँ? तुम इसे मार सको या ना मार सको, भीतर हिंसा हो चुकी है, ज्ञानी! तूने किसी को देख लिया उस पर तू मोहित हो गया, वो व्यक्ति तुझे मिले ना मिले, परन्तु तेरे भीतर तेरे ज्ञान का परिणमन विपरीत हो चुका है। ज्ञान का परिणमन विपरीत हो गया है, वहाँ विपरीत दण्ड हो ही चुका

है उसका परिणमन होना होगा। अब चिन्तवन यह करना है कि मैंने जीवन में ऐसा कितनी बार किया है?

पण्डित जी! जिस बेटी से तेरी शादी हुई है, वह तो समाज सम्मत है। लोक सम्मत है। उसको दुनिया ने देखा जाना है। इसकी इसके साथ शादी हो चुकी है। मेरे मित्र! यह तो समाज के सामने एक शादी दिख रही है, परन्तु तेरे भावों ने कितनी शादियाँ किस-किस के साथ की हैं। उनकी भाँवर ना पड़ी हो, लेकिन भँवर में डुबोने वाली तो शादी हुई है। यह मत सोचना कि जो भाँवर पड़ी है उससे ही पाप का बंध होगा, भाँवर नहीं पड़ी उससे पहले ही तूरे किसी को अशुभ रूप से देख लिया है। कर्म तो कहेगा कि मैं छोड़ने वाला नहीं हूँ। माताओ! ध्यान से सुनना माता-पिता की स्वीकृति से तुमने शादी की है वो सबकी आँखों के सामने है, परन्तु तेरे भाव कितनों से शादी कर बैठे हैं। यह आपका विषय आप जानो, परन्तु भावों से कितनों से शादी की है वो सब भगवान् केवली के ज्ञान में सब झलक रहा है। किसी को मत बताओ कि मैं कैसा जीव हूँ? बंध होगा कि नहीं? अभी तक व्यवहार की व्याख्या चल रही थी जैसे ही निश्चय (परमार्थ) की व्याख्या प्रारम्भ हुई सबके चेहरे उतर गये मेरे विकारी भाव बंध के साधन नहीं हैं क्या? समाज, राज्य और लोक नीति-रीति में तुम अच्छे कहलाते रहोगे, अपने भावों से भी पूछो कि अच्छा है क्या? बेटा अपने भावों से पूछना कि उन्नीस वर्ष की आयु आते-आते मैं अपने जीवन में कितना अच्छा हूँ। यह भाग्य काम कर रहा है। इतना अशुभ करने के बाद भी पुण्य टक्कर मार रहा है, आज मैं जिनवाणी के पास हूँ। आचार्य भगवन् क्या कह रहे हैं? हे शिल्पी! जो तू हाथ से, हथौड़ी से काम कर रहा है वो अतन्मयभूत था, वह भावों से कितने आभूषण बना चुका है इतने हाथों से नहीं बना पाया? हे जीव! जितना भावों से पाप कर चुका है, उतना तू देह से पाप नहीं कर सका। बंध तो होना है। ईमानदारी का जीवन जिओ, पैसा ही सब कुछ नहीं है। जब-तक नहीं थी, समझ तब-तक कर लिया अब तो समझ आ गई।

यहाँ कोई नहीं आयेगा तुम्हारे साथ। मेरा लक्ष्य, मैं दिगम्बर मुनि हूँ, धूप से छाँव में जाने पर पिच्छिका से प्रमार्जन करता हूँ, छाँव से धूप में आने पर पिच्छिका से प्रमार्जन करता हूँ। क्यों? उन जीवों पर भी अहिंसा दृष्टि रखता हूँ। करुणा रखता हूँ। फिर मैं इन ज्ञानियों के प्रति द्वेष क्यों रखूँगा? किसी पंथ सम्प्रदाय के प्रति द्वेष क्यों रखूँगा? मुझे विश्वास है मुझे किसी पंथ-सम्प्रदाय से द्वेष नहीं है। मात्र इतना भाव है कि यह पंथों के अधर्म को तू अपना धर्म मत मान लेना, बाकी कोई प्रयोजन नहीं है। क्यों? तीन सौ तिरेसठ मतों का कर्ता मारीची भी महावीर बन गया तो हम किस में द्वेष रखें। यदि कोई मुझसे कहे कि अमुक व्यक्ति खराब है, यथार्थ मानना मैं तब भी उसे खराब नहीं मानूँगा, क्योंकि मेरे अन्दर श्रद्धा में बैठा हुआ है कच्चा माल ही पक्का होता है। यह गलत श्रद्धान नहीं सच्चा श्रद्धान् है।

ज्ञानी! बनी रोटियाँ देखकर घर का आटा मत फैंक देना नहीं तो भूखा मर जायेगा जितने धर्मात्मा बैठे हैं उन्हें देखकर सड़क पर चलने वाले लोगों को देखकर दुत्कारना मत, जो त्रस की पर्याय में हैं वे ही सिद्ध पर्याय को प्राप्त होंगे। जो निगोद में हैं वे ही त्रस पर्याय में आयेंगे, जो सड़क पर घूमने वाले पापी दिख रहे हैं वे ही जीव पलटकर यहाँ धर्मात्मा बनकर बैठेंगे। पुनर्भव मानते हो या नहीं? अमुक व्यक्ति का एक शिष्य पूर्व भव में जैनी था और उन्हें अपने पूर्व भव के लोगों से इतना राग है कि अभी भी वो वहाँ जाते हैं। अभी राग सता है, मिलना चाहते हैं। आप कल्पना करो एक जीव जैनकुल में जन्मा, वो यादव कुल में जन्में हुए हैं। आप कल्पना करो एक यादव कुल का बेटा जैन कुल में जन्म ले लिया यह तो जगत् का परिणमन चल रहा है। इसे तुम क्या करोगे। इससे तुम किसी को हेय मत देखो किसी को उपादेय मत देखो, वस्तु स्वभाव को देखो। ''जो है, सो है।''

जब पुनर्भव है। तो कच्चा माल ही पक्का होता है। मित्रो! किसी को कभी भी निर्दयी कहकर मत बोलना, कब किसके परिणाम बदल जायें। किस कुल का जीव किस कुल में जन्म ले ले?

शिल्पी की जो इच्छा है, चेष्टा है, भावना है वह तन्मयभूत है। वह जीव अनन्यभूत होकर भाव करता है। ''**जह चेट्ठं कुव्वतोदुसिप्पिओ**'' जैसी शिल्पी चेष्टा करता है, इच्छा करता है। ''**णिच्च दुक्खिओ होदि**'' तो दुखी होता है। दुःखी कब होता है? वस्तु से दुःखी नहीं होता? जब दुख रूप भाव करता है तब भीतर का दुःख तन्मयभूत होता है, सुखरूप भाव करता है तो सुखभूत होता है। वैसे ही जीव भी यदि दुःख भाव करता है तो जीव भी दुःखी होता है। सुखभाव करता है तो जीव भी सुखी होता है। इस प्रकार समझना। जितना जो कुछ चल रहा है तन्मयभूत, अतन्मयभूत इन दोनों धाराओं को देखो। अतन्मय को अतन्मय होकर देखो, तन्मय को तन्मय होकर देखो, परंतु ध्रुव सत्य है, जो तन्मय धारा है वही तेरे मोक्ष में, बंध में कार्यकारी भाव है। अतन्मय बहिरंग हेतु है। तन्मय अंतरंग हेतु इस प्रकार से दुःख और क्लेश से मुक्त होना चाहते हो तो ध्यान रखना भव से कितने लोगों का संबन्ध हुआ है और भावों से कितने लोगों का सम्बन्ध हुआ है। इस पर चिन्तवन अवश्य कर लेना और जीवन में कायोत्सर्ग करके आत्मा की शुद्धि कर लेना।

मुमुक्षु! समयसार की गहराई समझना है, तो मात्र शब्दों से प्राप्त नहीं होगी। शब्द ज्ञान भिन्न है, आत्म ज्ञान भिन्न है और स्वभाव भिन्न है। वस्तु तत्त्व को समझने का उपाय शब्द है, पर स्वानुभूति का जो आनंद है वह भिन्न है।

यह जीव निमित्त नैमित्तिक दृष्टि से पर द्रव्य का सहकारी कारण है। उपादान दृष्टि से स्वका स्व में ही कर्ता है, निज स्वभाव भाव का ही कर्ता है। परभावों में तन्मयभूत होकर, किसी भी द्रव्य का कर्ता जीव द्रव्य नहीं है। परन्तु निमित्तभूत दृष्टि से कर्ता भी है। इस कर्तव्य को नहीं स्वीकारोगे तो लोक में घर, पट भवन आदि जो पर के द्वारा निमित्तभूत देखे जा रहे हैं, इस व्यवहार के

सत्य को भी नकारा नहीं जा सकता, लेकिन इस व्यवहार के साथ यह भी सत्य है कि आप जो कर्ता हैं, वह प्रयोगभूत ही कर्ता हैं । तन्मयभूत कर्ता नहीं हैं । जैसे स्निग्धरुक्ष द्रव्यों के संयोग से बंध हो रहा है, उन द्रव्यों का स्वयं ही बंध का कारण है। उस स्निग्धरुक्ष के संयोग का कराने का कर्ता जीवभूत हो सकता है। कागज के टुकड़े होने पर आपने गोंद से चिपका दिये। आप विचार कर रहे हो कि मैं इस कागज को जोड़ने का कर्ता हूँ, परंतु यथार्थ में देखा जाये यहाँ द्वैत धारा चल रही है। गोंद को लगाकर आपने फटे कागज को जोड़ दिया है सो आप यह कह रहे हो मैंने कागज को जोड़ा है, मैं कर्ता हूँ। एक दृष्टि। दूसरी दृष्टि, तूने कागज को जोड़ा है कि गोंद ने कागज को जोड़ा है? कागज तो गोंद से जुड़ा हुआ है, परन्तु तू अपना अहंकार व्यर्थ में फैला रहा है। यहाँ मनुष्य किस बात का कर्ता हुआ? मात्र शीशी में रखी गोंद का कागज पर लगाने का कर्ता है। कागज को जोड़ने का कर्ता तू नहीं है। एक दृष्टि। अगला प्रश्न - वास्तव में कागज जुड़ा है क्या?

ज्ञानी! न गोंद कागज को जोड़ पायी है, न गोंद का लेपन करने वाला कागज को जोड़ पाया है। कागज का टुकड़ा टुकड़ा है, गोंद, गोंद ही है, गोंद तो मात्र मध्य में उसके परत से युक्त हुई है, परत तो परत में जुड़ी है, गोंद-गोंद में है। कागज-कागज में है यह परमार्थ दृष्टि है।

देखा दो-दो कर्ता बन गये। तब भी कोई कर्ता नहीं है। ऐसे ही ज्ञानियो! मैं भूमि का कर्ता, मैं इमारत का कर्ता, मैं वस्तु का कर्ता, तू मात्र कर्तृत्व भाव के राग का ही कर्ता है, जबकि भवन ईंट, चूने की मदद से बना है। शिल्पकार जैसे गोंद को लगाने में सहकारी था ऐसे ही शिल्पकार ईंट चूने को एक साथ रखने का कर्ता तो है, लेकिन भवन जो बना वह ईंट चूने के निमित्त से बना है और परमार्थ दृष्टि में जाओगे तो भवन संज्ञा आकार देने के कारण होती है, परन्तु ईंट-ईंट ही है, सीमेंट-सीमेंट ही है। बालू-बालू ही है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में प्रवेश होने पर भी अपने स्वभाव का अभाव किये नहीं है, इसलिए कोई किसी का कर्ता नहीं है। जो कर्तृत्वपना दिख रहा है वह चाक्षुष राग की पूर्ति का कर्ता है। वस्तु तो अपने स्वभाव में परिणमन कर रही है। दोनों निमित्त पर ध्यान दो। कर्त्तापने पर भी क्या किया? क्या करता नहीं है? व्यवहार की दृष्टि से फटा हुआ कागज जुड़ गया देखो, लेकिन यथार्थ बताईये कागज जुड़ा क्या? कागज के दो टुकड़े किये, उस पर गोंद लगाकर देखना जुड़ गया। लेकिन सत्यता क्या है? गोंद ही गोंद में चिपकी है, कागज तो फँसा है ऐसे ही मुमुक्षु! आत्मा-आत्मा है। कर्म ही कर्म में चिपके हुए हैं। आत्मा तो उसमें फँसी हुई है। जब गोंद सूख जाती है, उसकी स्निग्धता कम हो जाती है, तो गोंद झड़ना प्रारम्भ हो जाता है। कागज दो टुकड़ों में था वह बराबर टुकड़े भूत ही हो जाता है। ऐसे ही आत्मा में जो कर्म का बंध था वह कर्म-कर्म में ही चिपके हुए थे। जैसे ही कर्मों की सीमा पूर्ण होती है, स्निग्धता राग की समाप्त हो जाती है तो आत्मा के अन्दर से कर्म झड़कर नीचे गिर जाते हैं, फिर मात्र शुद्धात्मा शेष बचती है। यह दृष्टि है।

जो व्यवहार में जीव जी रहा है, जिसने परमार्थ को समझने का कभी प्रयास ही नहीं किया, तत्त्व पर दृष्टि ही नहीं गई उसे अपने भीतर के भावों का, भीतर के भगवान् का निर्णय ही नहीं हो पा रहा है। क्योंकि आप तो मात्र काम देख रहे हो, तात्कालिक कार्य देख रहे हो। उसमें मस्त हो। फटे कागज को जोड़ने का भाव जिसमें था उसने अपना काम तो देख लिया, परन्तु वस्तु स्वरूप में कहाँ प्रवेश किया? जो वस्तु स्वरूप में प्रवेश करेगा तो कागज जुड़ा है क्या? कागज तो नहीं जुड़ता? कौन सी आँखें हैं तुम्हारी? इन आँखों के साथ आँखें और देखती हैं। खुली आँखें जो बाहर देख रही हैं, वे खुली आँखें भीतर भी देख रही हैं। मैं आपके सामने हूँ, आपका चेहरा मैं देख रहा हूँ। परन्तु आपको यह दिखाई दे रहा है कि महाराजजी तो मेरे चेहरे की ओर देख रहे हैं, परन्तु ध्रुव सत्य यह है, आपके चेहरे तो दुनिया को दिखाई दे रहे हैं, परन्तु जो मैं कह रहा हूँ वो भी मुझे दिखाई दे रहा है, खुली आँखों में भी भीतर और कुछ दिखाई दे रहा है। आपको कागज चिपका हुआ दिखाई दे रहा है। मुझे कागज टुकड़े भूत ही दिखाई दे रहा है। गोंद-गोंद में चिपकी हुई है। ऐसे ही मुमुक्षु! ना आपमें स्त्री लिप्त है ना स्त्री में आप लिप्त हो, इस विषय को समझिये। आपके शरीर में जो शक्ति है वह आपके अन्दर अब्रह्म भाव को उत्पन्न कर रही है। हे जीव! तू अपने अब्रह्म भाव में ही लिप्त है, स्त्री अपने अब्रह्म भाव में लिप्त है। पुरुष अपने अब्रह्म भाव में लिप्त है। वो तो दोनों के संयोग से उस अब्रह्म भाव की पुष्टि हो जाती है। राग की पुष्टि के लिए तुम अब्रह्म में लीन हो, पर यह वह आग है जितना ईंधन डालोगे उतनी अधिक भड़केगी। शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है फिर आसक्ति क्यों नहीं होती। इससे तात्पर्य क्या हुआ? आपका राग आपमें ही था। आपके अन्दर का राग नष्ट हो जाये तो वही स्त्री, वही पुत्र, वही भावन आपको अच्छा क्यों नहीं लगता।

इन युवा मुनियों से पूछो इनके भी माता-पिता, संपत्ति थी, लोग तो एक पैसा कमाने के लिए नौकरी करते हैं। तरसते हैं। यह सब कुछ छोड़कर आ गये, यह ऐसा कैसे हो गया? पैसा रोके नहीं रखता, माँ-पिता रोकती नहीं हैं, धन-सम्पत्ति नहीं रोकती है, रोकने वाली वस्तु थी वह स्निग्धता राग की थी। वो तुम्हारी हट नहीं रही है। इसलिए तुम यहाँ बैठे नहीं हो। जब तक वो नहीं हटेगी तब तक तुम यहाँ बैठ भी जाओगे तो शरीर यहाँ होगा, परन्तु चित्त तुम्हारा नहीं होगा। आँखों से देखने वाले, आने वाले, जाने वाले मात्र घर त्यागी दिखता है, परन्तु भीतर से दिखने वाला वह घर त्यागी नहीं होगा राग त्यागी होगा। मोक्षमार्ग गृह त्यागी का नहीं है, मोक्षमार्ग त्यागियों का है गृह त्याग कर आ भी गये, दूसरी जगह कुटिया बनाकर बैठ भी गये, तो तूने क्या किया? जैसे अन्य सम्प्रदायों में परम्परा है घर की कुटिया छोड़ देंगे बाहर मठ के मठ जिनमें अरबों खरबों सम्पत्ति निकलती है। अब बताओ उन्होंने त्यागा क्या है? स्थान परिवर्तन किया है। जैसे आगरा का श्रावक जबलपुर में जाकर रहने लग जाये तो वह घर त्यागी हो जायेगा क्या? जैसा व्यापार यहाँ करता था, वैसा व्यापार वहाँ करता है। ऐसे किसी जीव ने श्रमण दीक्षा भी ले

ली और पुनः अन्य कार्यों में तल्लीन हो गया जीव। उसे आगम यही कहेगा कि जीव तूने क्या किया है। स्थानांतरण किया है। जो व्यापार यहाँ करता था वही व्यापार वहाँ करता है। श्रावक भी बहुत ध्यान रखते हैं। एक-एक क्षण की दृष्टि रखते हैं, त्यागी त्याग में लिप्त है या त्यागी राग में लिप्त है?

सम्मान और पूज्यता कुछ और है, भीतर का मन कुछ और है वस्तु स्वरूप कुछ और है। व्यवस्था कुछ और चल रही है। ज्ञानी! सामने तू बैठा है, सब कुछ देखेगा, जानेगा परंतु भीतर का जो श्रद्धान् है वह यही कहेगा कि नहीं। वर्तमान के कार्य के निमित्त से गोंद से कागज को चिपका अवश्य देता हूँ। परन्तु जो निज स्वरूप को जानता है वह जानता है कि गोंद गोंद में ही चिपकी है, कागज इन दोनों के बीच में कटा हुआ है। यही है तत्त्व निर्णय। मैं संसार में कर्म के मध्य हूँ। नो कर्म के मध्य हूँ। संश्लेष सम्बन्ध की दृष्टि से मैं मनुष्य हूँ, ऐसे पहचान होती है परन्तु संश्लेष सम्बन्ध से रहित होकर देखता हूँ तो मुझे दिखता है, टीन के अन्दर घी भरा हुआ है। तो घी का टीन कहला रहा है। जब भी आपको आवश्यकता पड़ेगी आप यही कहोगे कि घी का टीन लेकर आओ, कभी नहीं कहोगे कि टीन लेकर आओ। घी का कनस्तर लेकर आओ। इतना देखने पर बोलने पर, सब कुछ करने पर तब भी जब तुझे भोजन में घी की आवश्यकता पड़ेगी तो तब तू कनस्तर को लगायेगा कि उसके भीतर के घी को लगायेगा? जैसे जीव यह व्यवहार में अवश्य कर रहा है कि घी का टीन लाओ, परन्तु वास्तव में टीन घी का नहीं है, यह किसे मालूम नहीं है। कोई ऐसा अज्ञानी ही हो कि टीन को ही घी स्वीकार ले तो क्या उस टीन से पूड़ियाँ बनायेगा? नहीं, ऐसे ही कर्म नो कर्म के सम्बन्ध से युक्त, यह संश्लेष सम्बन्ध से युक्त आत्मा को मनुष्य कहते हैं। देव, नारकी कह देते हैं। परन्तु आत्मा तो वास्तव में यह जो पर्याय की प्रधानता से कथन चल रहा है, यह जीव द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्याय है, मनुष्य, देव, तिर्यञ्च, नारकी।

जो चौरासी लाख योनियाँ हैं। यह जीवद्रव्य की विभाव व्यंजन पर्याय है और काम, क्रोध, मान, माया, लोभ यह जीव द्रव्य की विभाव गुण व्यंजन पर्याय है। मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय आदिज्ञान यह जीव द्रव्य की विभाव गुण व्यंजन पर्याय हैं। केवलज्ञान, केवल दर्शन जीव द्रव्य की स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय है। चरम शरीर से किंचित् न्यून जो सिद्ध पर्याय है वह जीव द्रव्य की स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है। चरम शरीर से किंचित् न्यून जो सिद्ध पर्याय है वह जीव द्रव्य की स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है। अब जो अगुरुलघु गुण का परिणमन चल रहा है, प्रतिक्षण इनके भीतर यह द्रव्य की अर्थपर्याय है। जो प्रतिक्षण परिणमन चल रहा है, षट्गुण हानि रूप जो परिणमन चल रहा है, जो कि आगम के प्रमाण से ही जाना जा सकता है। आपके ज्ञान का विषय नहीं है। जो गई पर्याय का परिणमन है, अगुरुलघु का परिणमन है, वह अचाक्षुष्य है। आगमप्रमाण, भवितव्य।

आगम के प्रमाण से ही जाना जाता है। यदि कोई जीव कहे कि मैंने अर्थपर्याय को जाना,

अर्थपर्याय को देखा, हे ज्ञानी! ना तूने अर्थ पर्याय को जाना, ना तूने अर्थ पर्याय को देखा, क्योंकि अर्थपर्याय इतनी सूक्ष्म है, एक समय की पर्याय का जो परिणमन चल रहा है वह किसी भी छद्मस्थ के चक्षु का विषय नहीं है। यह केवली के ज्ञान का विषय है। केवली के ज्ञान में षट् गुण हानि रूप, वृद्धि रूप परिणमन की जो व्याख्या है। उसे आगम बिन्दुओं से जानते हैं। उसे स्वीकारते हैं।

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः॥ आ.प.॥

जरूरी नहीं है जितना आगम है, वह सब तुम्हारे मस्तिष्क में प्रवेश कर जाये, आवश्यकता नहीं है कि जो तुम जान रहे हो, वो सत्य है, पूरा जीवन निकल जाये, जो तुम जान रहे हो उसे सत्य मानने में। जो आप जान रहे हो उसे ही जीवन में सत्यरूप जान लिया है हो सकता है तुम्हारे साथ सैकड़ों लोग उसको ही सत्य स्वीकारते हों। एक तुम्हारा ग्रुप भी बन जायेगा मैं सत्यवादी हूँ। परंतु आवश्यक नहीं है कि तुम्हारा चिन्तवन सत्य है। ज्ञानी! इन चारों को चश्मे लगे हुए हैं, यह अपने-अपने नम्बर से जानेंगे कि एक दूसरे के नम्बर ये देख रहे हैं इन्होंने अँगुली को देखा, एक कह रहा है मुझे साफ दिखाई दे रही है। तुम्हे जितनी साफ दिखे, कैसी भी दिखे लेकिन फिर भी आपको अँगुली एक सी दिखाई नहीं दे रही है, इसका कारण यह है कि तुम सबके नम्बर अलग-अलग इसलिए तुमको अँगुली अलग ही दिख रही है।

तत्त्व के निर्णय में हमने छद्मस्थों के ज्ञान का विषय क्यों नहीं बनाया है? क्योंकि छद्मस्थ है वह क्षयोपशमिक है। एक जैसे ज्ञान नहीं हैं। एक सदृश्य किसी भी छद्मस्थ के ज्ञान नहीं हैं। इनके ज्ञान में निर्णय नहीं है, इसलिए इनके ज्ञान को प्रमाणिक नहीं मानते, क्रम और करण से युक्त जो ज्ञान है वह प्रमाणित नहीं है। क्रम और करण। जो करण ज्ञान है, वह क्रम ज्ञान है। करण अर्थात् इंद्रियाँ इद्रियों से जो ज्ञान होता है वो क्रम से होता है, परंतु क्रम और करण से रहित जो ज्ञान है उसका नाम केवल्य ज्ञान। जो हमारे आगम ग्रंथ हैं वह आचार्यों के द्वारा लिखित, प्रणीत हैं, इसलिए प्रमाणित नहीं हैं, बल्कि यह सर्वज्ञ के द्वारा कथित है, इसलिए प्रमाण है। जो आचार्य प्रणीत नहीं है, गणधर कथित नहीं है, गुंथित नहीं, सर्वज्ञ कथित नहीं है, वो प्रमाण नहीं है। इसलिए सम्यग्ज्ञान प्रमाण है।

यह मैं व्याख्या इसलिए कर रहा हूँ कि यह जो मैं समझ रहा हूँ कि जीवन में उतना ही सत्य है अथवा जो दूसरा सोच रहा है वह झूठ सोच रहा है। हे ज्ञानी! हो सकता है कि तुम्हारी अस्सी साल की उम्र हो गई, तब भी यह आवश्यक नहीं है कि तेरा क्षयोपशमिक ज्ञान इतना विशुद्ध हो गया हो और आठ बरस का बालक भी ऐसा हो सकता है जिसका क्षयोपशम तद्विषय में आपसे विशुद्ध हो। ऐसा भी होता है, इसलिए आपको हर विषय में किसी भी व्यक्ति की उम्र और प्रभुत्व देखने की आवश्यकता नहीं है। आपको तद् विषय का ज्ञाता देखने की आवश्यकता है।

क्या कालेज का प्राचार्य सभी विषयों का ज्ञाता होता है, इसीलिए प्राचार्य है। ऐसा आवश्यक नहीं है कि सारे विषयों का ज्ञाता हो एक किसी विषय विशेष पर उपलब्धि प्राप्त होने पर भी उसके बुजुर्ग होने के नाते, अन्य विशेषताओं के कारण, उसको तद्पद पर स्थापित किया गया है। परन्तु विभिन्न विषयों के प्रोफेसर एक-एक विषय के विशेषज्ञ देखे जाते हैं इसी प्रकार से जैन दर्शन में चार अनुयोग हैं। चारों अनुयोगों पर सभी व्यक्ति ज्ञान का अधिकार रखते हों यह नियत नहीं है। किसी जीव को न्याय पर अधिकार है, किसी को दर्शन पर अधिकार है, किसी को अध्यात्म पर अधिकार है, किसी को करणानुयोग पर अधिकार है, किसी को चरणानुयोग पर अधिकार है, किसी को प्रथमानुयोग पर अधिकार है, यह अधिकृत विषय है परन्तु ज्ञान के विषय में वैराग्य हो सकता है, लेकिन मूल गुणों के पालन में वैराग्य नहीं होना चाहिए। स्थूल रूप से सूक्ष्म-सूक्ष्म से तो उनमें भी वैषम्य है।

कोई खड़े होकर सामायिक करता है, कोई बैठकर सामायिक करता है, परन्तु दोनों सामायिक कर रहे हैं। जो समाधि की ओर जा रहे हैं, क्षपक हैं वे लेटकर कर रहे हैं और युवा होकर लेटकर कर रहे हैं वे डाकू हैं। जो युवा होकर, शरीर में ताकत है, अस्वस्थ नहीं हैं, प्रमाद के कारण लेटकर सामायिक कर रहे हैं, वे डाकू हैं। क्यों हैं डाकू? आत्म ज्ञान को भंग कर रहे हैं, प्रमाद पाप है, उस प्रमाद का आश्रय लेकर कर रहे हैं, इसलिए डाकू कहा है। आप जीवन में साधना कितनी-कितनी कर पा रहे हो यह निजी विषय है, लेकिन जब भी गणधर की गद्दी पर बैठो तब अपनी साधना से आगम की बात नहीं कहना। आगम की बात आगम से ही हो सकती है, आपका शरीर अस्वस्थ है, आप बैठ भी नहीं पा रहे हो, आप लेट कर सामायिक कर रहे हो। सामायिक मत छोड़ना, सामायिक पूरी करना, लेकिन जब व्याख्यान का समय आये तब यह मत कह देना कि लेट कर भी सामायिक की जाती है। असमर्थता है, इसलिए लेटकर कर रहा है। सामायिक आसन तो पद्मासन, कायोत्सर्ग मुद्रा है विशिष्ट साधना करना है तो शवासन से भी ध्यान करना, लेकिन शवासन के ध्यान के लिए बहुत जाग्रति चाहिए। मालूम चला शवासन में ध्यान किया और सो ही गये।

श्मशान घाट में मुनिराज शवासन से ध्यान करते हैं, बहुत कठिन साधना है और कपाली आया उसने एक मुर्दा को उठाया, मुनिराज के बगल में लिटा दिया और सिर के सामने सिगड़ी जला दी, नीचे अग्नि जला दी है, उस पर खीर पकाने लग गया मंत्र साधना की, इतनी समता थी। चतुर्थकाल के मुनिराज थे, तब भी उनका काय-योग भंग हो गया। कम से कम इतना प्रमाद तो मत करना कि चार परिक्रमा लगाई और सो गये। इसका नाम सामायिक नहीं है। अचौर्य व्रत का भंग करना है। सामायिक में कमी नहीं करना, व्याख्यान जैसा आगम में है, वैसा कथन करना यदि व्याख्यान को आपने अपनी सामर्थ्य के अनुसार कहना प्रारम्भ कर दिया तो आपकी प्रमाणिकता उसी समय नष्ट हो गई। शरीर में आपके कमी है यह आपका निजी विषय है। ज्ञान आपके अनुसार नहीं चलेगा, ज्ञान आप्त के अनुसार

चलेगा। आगम आप्त का ही रहेगा। जो व्यक्ति, आगम की व्याख्या में अपनी बात कहता है तो फिर उसके शास्त्र भी कोई प्रमाणित नहीं होंगे। चर्या में किंचित् भी न्यूनता बरती, आपने यह कह दिया कि चलता है तो आगम वचन नहीं है। इसलिए जो ज्ञान है, तत्त्व निर्णय है, वो आप अपने क्षयोपशम से निर्णय लेते हो, परन्तु जितना-जितना सूक्ष्म में जाओगे उतना तीव्र सूक्ष्म है।

सिंह को दिखता है सूर्य, परन्तु आकाश में उड़ने वाला पक्षी पानी के अन्दर वाले जीव को देख रहा है। हम नदी के तट पर खड़े हैं कुछ भी नहीं दिख रहा है, लेकिन पक्षी को आकाश में से भी पानी के अन्दर जीव दिखाई दे जाता है। उसके नेत्रों की शक्ति आप से अधिक है, आप खुली आँखों से फिर भी ना देख पा रहे हो, चक्रवर्ती अपने भवन से सूर्य विमान में जो जिन बिम्ब हैं उनको आँखों से ऐसे ही देखता है जैसे आप जिनालय में विराजित जिनेन्द्र प्रतिमा को देख रहे हो। आप देखोगे तो यही बोलोगे कि कोई प्रतिमा नहीं है। ऐसा कहना भूल जाओ। आँखों के क्षयोपशम का पता करो। भूल कहाँ चल रही है, हम हर विषय को अपनी आँखों से देखते हैं, एक व्यक्ति से संयम का पालन नहीं होता, पानी के बिना नहीं रह सकता, भोजन के बिना नहीं रह सकता। भिलाई की घटना है, हमारी वाचना चल रही थी रिसाली में, वहाँ श्वेताम्बर समाज के साधु आये हुए थे उनके यहाँ कोई कार्यक्रम चल रहा था धार्मिक अनुष्ठान, उस अनुष्ठान में उनका अध्यक्ष आया, दिगम्बर समाज के अध्यक्ष के पास श्वेताम्बर समाज का अध्यक्ष आया वो कह रहा था मैं महाराज जी को निमंत्रण देने आया हूँ। किस बात का, हमारे यहाँ वेदी प्रतिष्ठा है। उसमें जो भोजन बना है वह सभी बिना नमक का बना हुआ है। आप हमारे यहाँ साथ में लेकर आना और उनकी भी गोचरी होगी, हमारे महाराज साहब भी आये हैं। उन्होंने कहा भाई सुन! हमारे महाराज ऐसे नहीं जाते, वो अपनी विधि से निकलते हैं। नियत स्थान पर नहीं जाते कि यहीं भोजन करेंगे। बोले सुबह का नहीं तो शाम का चल सकता है हमारे यहाँ। बोले चौबीस घण्टे में एक बार लेते हैं। जैसे ही इस शब्द का प्रयोग किया कि चौबीस घण्टे में एक बार आहार लेते हैं। वह बोला? क्या पंचम काल में सम्भव है ऐसा, जिस जीव से संयम नहीं पलता वह संयमी में भी वही खोजता है। जो हर पाँच मिनट में पानी पीता होगा वो क्या बोलेगा, कि कंठ सूख जायेगा ऐसा हो ही नहीं सकता।

हे ज्ञानी! तू अपने क्षयोपशम से किसी विषय की तुलना मत कर, तेरे सम्यक्त्व का नष्ट होने का मुख्य कारण है कि तू अपने सोचने से सभी को सोच रहा है। मिथ्यात्व में डूबने का, श्रद्धा से च्युत होने का, यह विशाल कारण है कि व्यक्ति अपने अनुसार दूसरे को देख रहा है। अपने अनुसार देखने वालों ने अपने सर्वज्ञ भगवान् में भी सर्वज्ञता का अभाव किया है। असर्वज्ञ वालों ने यह कहा कि सर्वज्ञ नाम की जगत् में कोई वस्तु नहीं है। सर्वज्ञता तो रथ्यापुरुषवत्। यह दर्शनशास्त्र का शब्द है रथ्यापुरुष-अर्थात् पागल पुरुष। बोले कोई सर्वज्ञ नहीं है और उन्होंने अपने पूरे क्षयोपशम को, पूरे ज्ञान को, उपयोग किया तर्क के साथ। सर्वज्ञता की शक्ति को अभाव रूप दिखाने के लिए बड़ी-बड़ी पोथियाँ लिखी हैं। और

जैनियों ने सर्वज्ञता की सिद्धि के लिए बड़ी-बड़ी पोथियाँ लिख दीं। क्षयोपशम जीव का अपना-अपना है। एक जीव सर्वज्ञता की सिद्धि के लिए ग्रन्थ लिख रहा है। एक जीव सर्वज्ञता नहीं होती है उसकी सिद्धि के लिए ग्रंथ लिख रहा है। वैशेषिक दर्शन जो है वह तो मैं ज्ञानी नहीं हूँ। इसकी सिद्धि के लिए पूरा ज्ञान लगा डाला। आप कल्पना करो। वैशेषिक दर्शन का सिद्धांत है, गुण गुणी में भेद। आत्मा ज्ञानी नहीं है। ज्ञान भिन्न है और आत्मा भिन्न है। इसके लिए मोटे-मोटे तार्किक शास्त्र लिखे हुए हैं वैशेषिक दर्शन में। जो दिगम्बर जिनमुद्रा को धारण करके भी अपने-आपको ज्ञानी नहीं स्वीकारते हैं, वो भी वैशेषिक हैं, क्योंकि तू अपने आप में ज्ञान गुण से युक्त नहीं मान रहा है। जबकि एक का सिक्का भी तेरे पास है तो भाई! तू धनवान कहलायेगा कि नहीं? मानता हूँ लाख करोड़ ना हों, लेकिन एक भी है तो धनवान है। ऐसे ही मुमुक्षु! भले कैवल्य तेरा प्रकट ना हुआ हो।

निगोदिया जीव वो भी ज्ञानी है या नहीं? है। निगोदिया अपर्याप्त जीव भी ज्ञानी है। सबसे अल्प ज्ञान किसी जीव का होता है तो लब्ध्याप्राप्तक निगोदिया जीव को होता है। उसका नाम है 'लब्ध्यअक्षरज्ञान'।

यदि जीव ज्ञान शून्य हो जायेगा तो जीवत्व का अभाव हो जायेगा। अब कहते हैं मैं ज्ञानी हूँ। हे जीव! अपेक्षा लगाइये। आप बहुत शास्त्रों को नहीं जानते, इसलिए अज्ञानी कह सकता हूँ। परन्तु बहुत शास्त्रों को नहीं जानते हो, यह आप जानते हो या नहीं? आप तो यह बताइये कि आप बहुत सारे शास्त्रों को नहीं जानते यह तूने जाना कैसे? ज्ञान से जाना। ब्रह्माण्ड में ऐसा जीव नाम का द्रव्य नहीं है जो ज्ञानी ना हो। **''उपयोगो लक्षणम्''**।

आज ऐसे जीव दिगम्बर मुनि बन जायें, जो यह कहें कि मैं ज्ञानी नहीं हूँ, तो क्या तू वैशेषिक दर्शन का प्रचार करने लग गया क्या? आपको इतना बोध होना चाहिए कि जिस ज्ञान की अपेक्षा से तुम अज्ञानी हो, तो तब तुम इतना जानते हो कि केवल्यज्ञान की अपेक्षा से अज्ञानी हूँ। पर शेष ज्ञान की अपेक्षा से अज्ञानी नहीं हैं। जैसे निषेध में अपेक्षा लगा रहा है वैसे विधि में भी अपेक्षा लगा दो। निगोदिया तो ज्ञानी है और यह अज्ञानी है। निरावरण ज्ञान दो ही होते हैं। एक कैवल्य और दूसरा निगोदिया जीव का ज्ञान। लब्ध्य अक्षरज्ञान इन पर कोई आवरण नहीं होता है। लब्ध्य अक्षर पर्याय ज्ञान है, उसमें कोई आवरण नहीं होता है। इस पर यदि आवरण पड़ गया तो जीवत्व का अभाव हो जायेगा। इसलिए जब-जब जिनवाणी की व्याख्या करने बैठो तो मस्तिष्क में विषय रहना चाहिए। विभाव व्यंजन पर्याय, गुणव्यंजन पर्याय, स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय, विभावगुण व्यंजन पर्याय यह पर्यायों के भेद हैं। इसलिए ऐसा जगत् में कोई जीव नहीं होता है जो पर्यायों से शून्य हो। ऐसी कोई पर्याय नहीं होती है जो द्रव्य से शून्य हो। ऐसा कोई द्रव्य पर्याय नहीं होता है जो गुण से शून्य हो। **''गुणपर्ययवद् द्रव्यं''**

गुण से पर्यायों से युक्त है उसी का नाम द्रव्य है।

भगवान् जिनेन्द्र देव के तत्त्व अत्यंत सूक्ष्म हैं। वह किसी के हेतुओं से खण्डित नहीं होते, इसलिए

जितना समझ में आ रहा है उतना समझने की चेष्टा करो। जो तुम्हारा क्षयोपशम है उतना सुनना और ज्यादा चेष्टा करोगे तो पागल हो जाओगे। करना क्या चाहिए? शांति से बैठकर चिन्तवन करना चाहिए, सुनना चाहिए। मनन करना चाहिए और निर्णय कर लेना। चिन्तन मनन में समझ में नहीं आया तो शंका में डूब जायेगा। क्या मालूम ऐसा है या वैसा है मेरी तो बुद्धि ही नहीं चल रही है। अरे! तेरी बुद्धि तत्त्व को समझने में नहीं है तो कोई बात नहीं, लेकिन भगवान् जिनेन्द्र देव ने कहा है वह सत्य है इतनी बुद्धि तो चला लो।

अरे भाई! हाथी के पाँव के नीचे चूहा दब जाये तो उसका मतलब यह नहीं है कि हाथी नाम की वस्तु ही नहीं होगी।

ऐसे ही अर्हन्त की जो देशना है वह किसी अज्ञानी चूहे बुद्धि वाले को समझ में न आये तो इसका मतलब यह नहीं है कि मंद बुद्धि वाला भी न समझ पाये।

तीक्ष्ण प्रज्ञा भी जिसके पास होगी, इस भवन में जितने लोग बैठे हुए हैं जब इनकी एक सी बुद्धि नहीं चल रही है, किसी ना किसी की विशिष्ट बुद्धि तो है, जब यहाँ पर सभी की बुद्धि एक जैसी नहीं है फिर भी विशेष्य विशेषता यह है कि विश्व में कोई ऐसा पुरुष भी होना चाहिए जिसका ज्ञान सम्पूर्ण चराचर द्रव्यों में जानने वाला था, उसी का नाम केवली भगवान् है, वही सर्वज्ञ है।

भैया! इतने सारे डॉक्टर एक ही नगर में हैं तो किसी का विशिष्ट काम रहता है, किसी का सामान्य काम रहता है, कोई बिचारा छू नहीं पाता है। कुछ ऐसे भी हैं जो ना जाने कितने लोगों को ऊपर भेज चुके। उसका पुण्य भी तो काम कर रहा है, तब भी तो वहाँ मरीज पहुँच जाते हैं। तो ऐसा है तत्त्व की विपरीतता का कथन करने वालों के यहाँ भी लोग पहुँचते हैं। ऐसा भी है मरीजों के पहुँचने से कोई डॉक्टर की प्रमाणिकता नहीं मान लेना। सड़क पर अपना भाग्य बताने वाले भी मिल जायेंगे। ट्रेनों, बसों में कुण्डलियाँ बताने वाले भी मिल जायेंगे, चार छः शीशी रखकर दवा बेंचने वाले भी मिल जायेंगे।

इन सारी की सारी व्यवस्था में तारतम्यता है या नहीं? है। ऐसे ही ज्ञानियो! प्रमाणिक स्थान कौनसा है। मेडिकल कॉलेज प्रमाणिक स्थान है। जिसको निरोग बनना है, वो ही वहाँ स्वास्थ्य लाभ लेता है। ऐसे ही आगम कहता है। "**प्रमाण सिद्धान्तो**"

वीतरागी दिगम्बर आचार्य के ही वचन प्रमाणित हैं, अन्य कोई प्रमाणिक वचन नहीं हैं। कोई शंका, कोई विकल्प नहीं। प्रमाणिक स्थान है। जिनेन्द्र के तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म हैं, किसी के हेतुओं से खण्डित नहीं होते हैं। तो क्या करना चाहिए? "**आज्ञा सिद्धंतु तद्ग्राह्यं**"

भगवान् जिनेन्द्र देव की ऐसी आज्ञा है, ऐसा ग्रहण कर लेना चाहिए, जो जिनेन्द्र होते हैं वह अन्यथा नहीं होते हैं। बहुत सारे विषय को समझने की चेष्टा नहीं करना चाहिए। समझने की चेष्टा करोगे तो अश्रद्धा में डूब जाओगे। थोड़ा रुक जाओ, तुम्हारा स्वयं का क्षयोपशम बढ़ने लग जायेगा वही विषय

तुमको समझ में आने लग जायेगा, तो तुम्हारी श्रद्धा बढ़ जायेगी। दृष्टांत सुनो।

पिता की मृत्यु हो जाती है, बेटा भीख माँगने लगता है और जो पिता का मित्र था वह जवाहरात की दुकान चलाता था। परंतु एक दिन वो बेटा आता है अपने पिता के मित्र से कहता है कि मेरे पास कुछ भी नहीं है, तो मित्र कहता है जाकर अलमारी में, तिजोरी में देखो कुछ हो पिता जी का, बोला ठीक है। उसने जाकर खोज बीन की, उसको पिताजी की तिजोरी में कुछ मणी-मोती मिले वो गद्‌गद् हो गया, कहता है अब मेरे सारे कष्ट नष्ट हो जायेंगे और लाकर पुनः सर्राफ को दे देता है कि आप इनको रख लीजिए, मुझे कुछ द्रव्य दे दो जिससे हम अपनी आजीविका करेंगे। परंतु सुनार बहुत समझदार व्यक्ति था। कहता है बेटा अभी बाजार में इसके भाव नहीं हैं आप इनको घर में रख लो, कुछ दिन आप हमारे यहाँ काम करो हम आपकी आजीविका की व्यवस्था करेंगे, ठीक है वह बेटा भी काम करने लग गया। जब दुकान के स्वामी ने देख लिया कि बालक हर प्रकार के मणि-मोती की परीक्षा करने में पूर्ण ज्ञानी हो चुका है। रत्नों की परीक्षा करने लग गया। बड़े विवेक के साथ कहता है, बेटा! अब बाजार के भाव अच्छे हैं, आप अपने घर पर रखे मणि-मोती बेच सकते हो। ठीक है मैं कल अवश्य लाऊँगा। घर जाकर देखता है, तो कहता है यह तो काँच के टुकड़े हैं। पटक देता है। फिर दुकान जाकर कहता है, वो सब तो काँच के टुकड़े थे। आपने पहले क्यों नहीं बता दिया। बेटा! बात यह है कि यदि मैं पहले काँच के टुकड़े बोलता तो तू यह सोचता कि यह मुझे ठगना चाहते हैं। तेरी मुझमें अश्रद्धा हो जाती। जब तू ही पहचानने लग गया तो तुझे स्वयं मालूम पड़ गया कि यह काँच के टुकड़े हैं। मुझे कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी। ऐसे ही बहुत सारा विषय है, आप जिनवाणी के विषय को अपने मस्तिष्क से ज्यादा सोचने के लिए मत खड़े हो जाओ। किसी भी व्यक्ति के बारे में अशुभ मत सोचो, जिनवाणी के बारे में अशुभ मत सोचो क्यों? थोड़ा धैर्य रखो, जब तुम्हारे कर्म के पटल छटना प्रारंभ हो जायेंगे, आपका स्वयं का निर्णय हो जायेगा फिर आप स्वयं पढ़ोगे, अरे! मैं अज्ञानता में था, वस्तु स्वरूप तो यह है। मुनि दीक्षा लेते ही तुरन्त विहार नहीं करना चाहिए। गुरु के चरणों में बैठकर अध्ययन करना चाहिए। समाज तुमको प्रमाणित पुरुष मानती है, समाज को पता नहीं है तुमको कितना ज्ञान है आप जो भी करोगे उसे प्रमाणिक मानती है। आपकी अज्ञानता को समाज की प्रमाणिकता मिल गई तो कितने लोगों का अहित हो जायेगा, इसलिए आगम वचन है, दीक्षा के बाद चारों अनुयोगों की शिक्षा लेना चाहिए। शीघ्र विहार नहीं करना चाहिए। स्वतन्त्र अध्ययन और गुरु के पास का अध्ययन इन दोनों में महान् अन्तर है। स्वतन्त्र अध्ययन में तुम पढ़ ही पाओगे, गहरे की बात समझ नहीं पाओगे, गुरु तुम्हे परम्परा का ज्ञान देंगे।

मैंने आचार्य विरागसागर जी महाराज से सीखा जब वह पढ़ाने लगे तो उनको कितना ज्ञान था, विमलसागर जी महाराज ने क्या बताया था, महावीर कीर्ति महाराज ने जो बताया वह विमलसागर महाराज को पता था। महावीरकीर्ति महाराज को आदिसागर महाराज ने क्या बताया था उनको ज्ञान था

या नहीं? इसलिए हमारे यहाँ जैन दर्शन में आचार्य परम्परा चलती है। आचार्य परम्परा दीर्घकाल तक चलती है। भैया! जब तेरे पिता के पिता, पिता के पिता की खोज करेगा तो आखरी में अनन्त काल में पहुँचेगा या नहीं? एक अज्ञानता और फैली है कि अमुक समाज तो अमुक लोगों की है, कोई कहता है यह तो बाद की है सबसे पहले का मैं हूँ। भैया! किंचित् भी तुम्हारे पास में विवेक नाम की वस्तु होगी, किंचित् भी जिनवाणी का स्वाध्याय किया होगा, तो इस बात पर ध्यान देना कि मैं क्या कह रहा हूँ।

बेटो! बीज पहले होगा कि अंकुर होगा? बीज हुआ। बीज कहाँ से आया? बीज अनादि है। बीजांकुर न्याय है। जब से बीज तब से अंकुर। प्रश्न कब से है, कब से नहीं। भैया? वस्तु को लेकर समाज में जो पागलपन है उसमें फँस मत जाना, तू बुद्धिजीवी है। वस्तु स्वरूप क्या है? हे जीव! चाहे शास्त्री जी हों, चाहे पण्डित जी हों यह कह रहे हैं मैं बड़ा यह छोटे, वो कह रहा है कि मैं बड़ा यह छोटे। आपको पता होना चाहिए कि आखिर में भारत में तो हो। तुम यह बताओ कि तुम्हारे पिताजी के पिताजी, पिताजी के पिताजी थे या नहीं? थे। देखते-देखते जो पंथ, आम्नाय पहले नहीं थी वह अब शुरू हो गई है। यह अमुक व्यक्ति कहता है कि मैं निश्चय वाला हूँ। यह व्यवहार वाला है। इन दोनों पागलों से पूछो कि तुम दोनों पुराने कब से हो? नये कब से हो? निश्चयनय व्यवहार नय यह दोनों सनातन हैं। तो छोटा-बड़ा किसको बना रहे हो।

अब पुनः प्रश्न है कि पण्डितजी! तुम्हारी उत्पत्ति कैसे हुई है? जो कुल परम्परा चलायी है, वह कभी ना कभी तो प्रारम्भ हुई होगी? जैसे तुम अपने को अनादि से कह रहे हो, ऐसे प्रत्येक वंश अनादि से चले आ रहे हैं। परन्तु वंश के बीच कोई निश्चयाभास हो गया तो निश्चयग्रुप, व्यवहाराभासी तो व्यवहार ग्रुप। किसी ने तेरह पंथ खड़ा कर दिया तो मेरा पंथ। किसी ने बीस पंथ, परन्तु सत्यता यह है इन सबको हटा दो। तुम कब से हो? अनादि से हो। हम सभी अनादि से हैं, तो कौन छोटा कौन बड़ा? सिद्धांत से पाँच जातियाँ हैं। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चार इंन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। क्षेत्र संबंधि, परम्परा संबंधि भी जाति होती है। रघु राजा हुए तो रघुवंश हो गया। शासन प्रारम्भ हो गया। दीपावली पर महावीर स्वामी का निर्वाण हो गया तो दीपावली पर्व हो गया। बीच में जो विकल्प हैं इन विकल्पों को नैमित्तिक मानकर स्वीकार करके आगे बढ़ना चाहिए। हमारी जो पाँच जातियाँ हैं, एक दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रिय और चार योनि वह शाश्वत हैं। बाकी कि जो उपजातियाँ हैं वह वास्तव में नैमित्तिक हैं। आप लोग क्षत्रिय हो क्या? शुद्ध क्षत्रिय हो। तीर्थंकर परम्परा ही क्षत्रिय परम्परा है। अब कहो कि मैं ऋषभदेव के वंश का हूँ, व्यवहार से, तो ऋषभदेव का वंश कब से प्रारम्भ हुआ? कम-से-कम नव पीढ़ी इस तरह से दूर रहे, नहीं तो लोग एक दूसरे से घृणा करते हैं यह कौन है? कौन बड़ा कौन छोटा, सभी जीव हैं। अब आप बीजांकुर न्याय को निहारिये। क्षत्रिय लोग हैं, जिसने जैन दर्शन को स्वीकार कर लिया, वह जैन संज्ञा को प्राप्त हो गये। विभिन्न सम्प्रदायों में चला जाता है तो विभिन्न देश का हो

गया। आपको मालूम है विश्व में सब अपनी परम्परा का घर-घर प्रचार कर रहे हैं। अपनी जाति के लोगों को संग्रहित कर रहे हैं। परन्तु विश्व में एक जैन दर्शन है जो किसी को संग्रहित नहीं कर रहा है। इसमें पहले से ही संग्रहित हैं। किसी भी प्रांत में जाना आपको जैनदर्शन को मानने वाला तद्प्रान्त का जैन मिलेगा, मराठी भी जैन हैं, गुजराती भी जैन हैं, बुन्देलखण्डी भी जैन हैं जहाँ भी जाओ सब जगह जैन मिलेंगे। कन्नड़ का जो सबसे पुराना कवि है वह जैन है। तमिल का वेद जो कुरल-काव्य उसके कर्ता कौन हैं? तिरूवल्लभाचार्य हैं। इसलिए अपने इतिहास को सम्भाल कर रखना है। इतिहास भी तुम जहाँ तक जाने समझे हो वहीं तक है ऐसा नहीं है इतिहास तो अनन्त काल से हैं। उसका आदि नहीं है, अन्त नहीं है। मैं कब से हूँ, अनादि से। आप सब भी अनादि से हो।

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतींद्र सामान्य-तपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवान्-जिनेन्द्रः ॥14/शा.भ.॥

धर्म बहुत दूर है, जिसे धर्म मान बैठे हो वह तुम्हारी परम्परा नहीं है। परम्परा को धर्म का प्रमाणपत्र दे देना चाहिए, परन्तु वह कुल परम्परा भी हमारी स्वीकार है जिससे दर्शन ज्ञान चारित्र की हानि न हो।

ज्ञानी! तेरे दादाजी! टी-शर्ट, पेन्ट पहनते थे क्या? जो पेन्ट-शर्ट आदि पहनें वे जिनवाणी छूने के पात्र नहीं बचे। जो खड़े-खड़े अशुद्धि करते हैं वस्त्रों पर छींटा तो पड़ ही जाता होगा, अब बताओ इन कपड़ों में तुम मंदिर आने के पात्र हो क्या? इन कपड़ों में तुम जिनवाणी छूने के पात्र हो क्या? अब सोचो? क्या द्रव्यशुद्धि है तुम्हारे पास? द्रव्यशुद्धि नहीं है तो भाव शुद्धि कैसे बनेगी? पेन्ट-शर्ट वाले जिनवाणी छूने के पात्र नहीं हैं, लेकिन आप सोले के वस्त्र पहनकर आये हो तो छू सकते हो परन्तु जिन वस्त्रों में लघुशंका, दीर्घशंका जाकर आ जा चुके हो, उन वस्त्रों से चाहे धोती दुपट्टा हों, चाहे पेन्ट-शर्ट हों जिनवाणी छूने का अधिकार नहीं है। जिनेन्द्र को नहीं छू सकते, शास्त्र को नहीं छू सकते, तो गुरु को भी नहीं छू सकते। यदि नाभि के नीचे भी हाथ चला गया तो जिनवाणी छूने के पात्र नहीं बचे, यह द्रव्य अशुद्धि है। आपको प्रमार्जन करना होगा, हाथ धोने पड़ेंगे तब जिनवाणी छूने की पात्रता आयेगी। जितनी द्रव्य शुद्धि का ध्यान रखोगे उतना ही विशिष्ट ज्ञान आयेगा। यदि यहाँ-वहाँ हाथ लगाकर आ गये जिनवाणी छू भी ली पूर्व के क्षयोपशम से ज्ञान आ भी जाये, लेकिन तुम्हारा ज्ञान आखिरी में कुमरण का कारण बन जायेगा। जिन जीवों ने विवेकपूर्वक द्रव्यशुद्धि को ध्यान में रखकर अध्ययन किया है, यदि भूल भी जायें तो भी कैवल्य ज्ञान का कारण बन जायेगा। ऐसा धवला जी षट्खण्डागम में लिखा हुआ है। इसलिए हमें बहुत-बहुत ध्यान रखना है द्रव्यशुद्धि का। बहिरंग द्रव्य शुद्धि के बिना अंतरंग शुद्धि नहीं बनती, इसलिए आगम की हर विधाओं पर चिन्तवन करना होगा। दिगम्बर मुनियों को आठ

प्रकार की शुद्धि का वर्णन है, आगम में। अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं -

जैसे शिल्पी स्वर्णकार (सुनार) कुंडल आदि का कर्त्ता है। परिणत होने में सहकारी बन रहा है। परिणत कराने में सहकारी बन रहा है, परन्तु परिणत हो नहीं रहा है। सोने की शलाका को कुण्डल रूप दे रहा है। स्वर्णकार तो हथौड़ी आदि से आकार रूप देने के लिए सहकारी बन रहा है, परन्तु परिणत नहीं हो रहा । हाथ और जिस से कूटा जा रहा है आदि को ग्रहण करने में ऐसे परद्रव्य के परिणात्मक करणी है। हस्त और हथौड़ी आदि को ग्रहण करने में कारण होता है और परद्रव्य के परिणात्मक कुन्डल आदि कर्म फल को भोगता है जब कुण्डल आदि बन गया तो कितने ग्राम का है अथवा गाँव आदि में बेंचने गया तो उसको उसका धन मिल गया तो कुण्डल आदि के कर्म फल को भी भोग रहा है। यह सब हो रहा, लेकिन तन्मयभूत नहीं है। दृष्टांत सुन लिया अब सिद्धांत पकड़ो अनेक द्रव्य होने से तू तन्मयभूत नहीं है। छेनी, हथौड़ी, सोना स्वर्णकार अलग हैं। अनेक द्रव्य हो गये तब भी तन्मयभूत नहीं अन्य होने से तन्मय नहीं होते। तो फिर क्या है? इसलिए निमित्त नैमित्तिक भाव से ही कर्ता-कर्म-भोग भाव का व्यवहार लोक की व्यवस्था हो गई।

जीव जन्म लेते हैं, मरण करते हैं फिर जन्म लेते हैं। ऐसे कैसे मैं कर्ता हूँ, मैंने रोटी को बनाया है, कैसे भोक्ता नहीं? मैंने तो रोटी को खाया है। आप तो झूठ बोलते हो कि कोई कर्ता नहीं है। भैया सुनो! तुम्हारी बुद्धि मात्र पर्याय से पर्याय सुरक्षित रखने के लिए चल रही है। द्रव्यत्व पर दृष्टि ही नहीं जा रही है। द्रव्य बना नहीं, आटा पिसा नहीं, रोटी बना ली, रोटी खानी है बस मैं कर्ता? मैं करण, मैं भोक्ता। तूने आटा पिसाया, रोटी बनाई, रोटी खाई। ज्ञानी! मैं आटा पिसाता हूँ, जो तू आटा पिसा रहा है यह सब बहिर् भाव चल रहा है। तद्जन्य योग चल रहा है उसको आस्रव होगा ही, परन्तु मैं आटा पिसाने जा रहा हूँ, जो आटा पिसाने जा रहा है वह तन्मय नहीं है। आटा तेरे में नहीं है, तू आटे में नहीं है। परन्तु जो आटा पिसाने का भाव तेरे भीतर चल रहा है, उसका तू तन्मयभूत कर्ता है। अब रोटी बना दूँगा, रोटी बना रहा हूँ, जो बन रही है, बना रहा है वह अतंमय है। परन्तु जो भीतर रोटी बन रही है, सिक रही है वह तन्मय है। रोटी खाऊँगा, रोटी खा रहा हूँ यह अतन्मय है। जो रोटी खाने का भाव भीतर चल रहा है, वह तन्मयभूत है। उसका तू तन्मयभूत कर्ता है, जो उपयोग बाहर का योग चल रहा है। काय योग, जिससे तू क्रिया कर रहा है वह अतन्मयभूत कर्तृत्वभाव है। क्रियाएँ दोनों करता है। बहिरंग भी करता है और अंतरंग भी करता है, परन्तु तेरे संसार का निर्णय मात्र बहिरंग क्रिया तक होता है और अन्तरंग पर लक्ष्य ही नहीं है।

रोटी नहीं बना सका, रोटी नहीं खा सका, अतन्मयभूत, लेकिन तन्मयभूत बना भी चुका और बंध भी कर चुका। रोटी पूरी बनना चाहिए है। ऐसा तूने चिन्तवन किया, परन्तु रोटी नहीं बन पायी, लेकिन रोटी बनने का भाव का कर्ता तू हो ही गया। बंध होगा कि नहीं? उसका फल भोगने को मिलेगा कि

नहीं? ऐसा व्यर्थ का बंध कितनी ही बार हो चुका है। जब तक तेरे अन्दर यह भाव बैठा हुआ है कि मेरा पिता सम्पन्नशाली है। मैं घर का ज्येष्ठ पुत्र हूँ। तब भी मैं इतना सब छोड़कर आ गया हूँ। ज्ञानी! तू अतन्मय में जी रहा है। ज्ञानी! मुनि बनकर भी तू अतन्मय में जी रहा है। जो तन्मय तेरा चल रहा है वह भी अशुभभूत चल रहा है। सोचा ही नहीं था यह तो, यह सोच रहा है कि मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ। महाराज जी ने मेरी प्रशंसा कर दी है, मैं दार्शनिक हूँ। मैं दार्शनिक हूँ ऐसा विचार तेरे अन्दर चला गया। अतन्मय की अनुभूति ले रहा है, बाहर में भीतर रागादिक भाव तन्मयी। भीतर तन्मयी भाव चल रहा है, पर द्रव्य का। यह-शुभभाव है या अशुभ भाव। भगवान् के सामने खड़े होकर भी तेरे अन्दर भाव आया कि मैं धनपति आदमी हूँ। मेरी समाज में ख्याति है, खड़ा भगवान् के सामने है। हे जीव! तू उस समय किसकी अनुभूति ले रहा है? भावपूर्वक मनन कर रहा हूँ। फिर तू परद्रव्य की अतन्मयभूत द्रव्य की अनुभूति से युक्त है।

मित्रो! तुम यहाँ बैठकर तत्त्व सुन रहे हो, यह मत मान बैठना कि मैं तत्त्व सुन रहा हूँ, तन्मय होकर। मुझे मालूम है तेरी दुकान अच्छी चल रही है, इसलिए तू यहाँ आकर बैठ गया है। घर में पिताजी के पास पैसा भरा पड़ा है, उसकी गर्मी तुझे यहाँ लाकर खड़ी कर गई है। व्यवस्थित होकर घर को छोड़ कर आये हो। इसलिए शांति से बैठे हो। अभी मालूम चल जाये कि दुकान में कुछ हो गया तब भी तू कहेगा कि जो है, सो है। "**आत्म स्वभावं परभाव भिन्नं**" जाओ मैं जिनवाणी सुन रहा हूँ। तब कहना कि अमुक व्यक्ति को थोड़ा सा ज्ञान हुआ है। यहाँ आने के पहले तू पूरी व्यवस्था बनाकर आता है। कि दो घण्टे महाराज के पास बैठना है तो दो घण्टे की व्यवस्था बना कर चलो। अब दो घण्टे की तू व्यवस्था बना कर आया है तो राग कार्य पहले ही पूरा करके आया है। अब संतुष्ट होकर बैठा है। अज्ञानी समझ रहे हैं कि जिनवाणी में संतुष्टि चल रही है। इन माताओं से पूछो थोड़ी देर लम्बा प्रवचन हो जाये तो इनका चिल्लाना शुरू हो जाता है। भोजन की व्यवस्था के लिए जाते हो, दूसरा विषय और आ गया कि जब तू अनशन स्वभावी है ही, भोजन करना स्वभाव है ही नहीं है। खाना खिलाना दिमाग में आ कैसे गया? अर्थात्-आस्रव जारी है। सुबह का पच नहीं पाया शाम का आस्रव शुरू हो गया है। अब सोचो मैं तो जान-जान के कर रहा हूँ, निर्णय भीतर करो कि तभी तक तुम्हारा मन लगता है जब तक तुम्हे लगता है कि यह समय हमारा खाली चल रहा है। जैसे ही भोजन का समय हो गया, उसी समय से प्रवचन में चिढ़ने का समय शुरू हो जाता है कि कब खत्म करेंगे महाराज! यह क्या हुआ? अर्थात् यह तत्त्व का आनन्द नहीं है, यह तो तुम राग की पूर्ण व्यवस्था बनाकर आये हो, व्यवस्था का समय किसी कारण से भंग हो जाये तो तुम्हें जिनवाणी भी सुहाना बन्द हो जाती है। इसलिए निर्ग्रन्थ मुनि बनना पड़ता है जहाँ व्यवस्था का विकल्प ही नहीं रहता। तो जितने लोग आनन्द लूट रहे हैं सब अकर्मय है।

मैं अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र हूँ, मैं सब कुछ छोड़कर आया हूँ। ऐसा तेरे अन्दर भाव आया है तो

तू इस समय अतन्मय में है। अतन्मय में भी तन्मय हो रहा है। यही बहिरात्म भाव है। जब अन्तरंग भाव में लीन हो जाऊँगा तो क्या मुझे प्रयोजन किसी दूसरे से। सब मेरे से भिन्न हैं, मेरा ज्ञायक भाव मेरा ज्ञेयभाव मैं ही हूँ। यह मेरा तन्मय भाव है। परन्तु यही तन्मय भाव मुझे सिद्ध पर्याय प्रदान करा पायेगा। लोक का धर्म, धर्मात्मा का व्यवहारिक वात्सल्य भी स्वर्ग का ही साधन है। साक्षात् मोक्ष का साधन नहीं है। मुमुक्षु! आपका राग भी बंध का कारण है। निर्बन्धपना मात्र ज्ञेय ज्ञायक भाव की लीनता ही है। आयु का जो इतना सा हिस्सा है, जीते-जीते उसमें यही सीख लो। यह आँखों के पास का हिस्सा जब भी आनन्द आता है तो ठण्डा हो जाता है। जब भी गर्मी होती है तो सबसे पहले यही गर्म होती है। जब भी पावर होगा तो सबसे पहले यही फटेगी। आँखों के पास का जो स्थान है, मस्तिष्क गर्म हो रहा है, तो पूरे मस्तिष्क की धोने की जरूरत नहीं है, आप इतने स्थान को सुरक्षित कर लो, सिर दर्द में दवा भी लगते हैं तो यहीं लगाते हैं। सोचो, हमारे आगम में क्या-क्या नहीं भरा हुआ है। हमारी जिनवाणी में ऐसे गूढ़ रहस्य भरे पड़े हैं। मस्तिष्क को ठण्डा कर लो आँखों के पास का स्थान है वह मस्तिष्क है। जितना शीतल यह होगा और जितना विशुद्ध परिणामी होगा उसकी नसें यहाँ शांत दिखेंगी। जितना तनाव में रहेगा उसकी यहाँ की नसें फूलना प्रारम्भ हो जायेंगी। जिसके मस्तक की नसें दिखने लग जायें तो इसका मतलब समझना कि यह आदमी बहुत तनाव में जी रहा है। जितना प्रसन्न रहेगा माथा सफेद दिखेगा और यह ठण्डा रहेगा और जितना तमतमायेगा उसका चेहरा लाल हो जायेगा। वस्तु स्वरूप में ठण्डा होना सीखो।

बेटा! कुछ भी हो जाये, कोटि-कोटि ताने भी मारने लग जायें तो कहना अतन्मय द्रव्य है, उनसे मेरा क्या विगड़ता है, मैं ठण्डा रहूँगा कोटि-कोटि निन्दा भी करें, पंचमकाल है, कोई किसी को छोड़ेगा नहीं इतना सोचकर रखना मन में, तू सोचे जगह-जगह परीक्षक मिलेंगे? सब जगह प्रशंसक मिलेंगे यह नियम नहीं है, आपके निन्दक आपके बीच में भी हो सकते हैं। तब भी निन्दा प्रशंसा में साम्यभाव रखकर जीने की सामर्थ्य हो, तब तो पंचमकाल में साधु बनना, अन्यथा घर में रहकर पंचपरमेष्ठी की पूजा करना श्रेष्ठ है। यदि अमुक व्यक्ति ने चौका लगाया और पाँच दिन खाली चला जाये, बड़े आदमी का चौका खाली नहीं जाना चाहिए, छोटा आदमी श्रेयस्कर है। जितना बड़ा आदमी होगा उसका एक दिन खाली चला जाये तो फिर देखना उसका चेहरा, उसके लिए आपके अन्दर हजार दोष दिखाई देना प्रारम्भ हो जायेंगे। देख लिया महाराज! ऐसे ही हैं सब। उसे तुम्हारे आहार से प्रयोजन नहीं था। अब प्रयोजन क्या होगा? सबके यहाँ तो आहार हो गये, मेरे यहाँ खाली जा रहा है। प्रश्न चिह्न खड़ा हो जायेगा।

एक सेठ के यहाँ महावीरकीर्ति महाराज के आहार तीन चार दिन नहीं हुए ,इतना बड़ा सेठ सो घबरा गया। शिकायतें पहुँच गईं परन्तु इतने कट्टर साधु थे, उनके आहार उसके यहाँ हुए तो नहीं, विशुद्धमति माताजी ने नीरज जी से आहार नहीं लिये। ऐसे कट्टर लोग होते हैं। निर्ग्रन्थ को आहार देना

है तो उल्टे सीधे काम नहीं करना। मैं तो नहीं लूँगा उनसे जिसने अपने कुल से बाहर शादी की, तुम मेरे पास भी मत आना।

जो बोध है, अतन्मयभूत बोध चल रहा है। एक द्रव्य जहाँ तन्मय होता है, परंतु अनेक द्रव्य जहाँ हैं वहाँ तन्मयभूत भाव नहीं है। इसलिए निमित्त नैमित्तिक भाव मात्र से कर्त-कर्म-भोतृ भाव का व्यवहार है। आत्मा पुण्य-पापादि पुद्गल परिणामों को कर्ता है और शरीर, नयन, मन इनके द्वारा पुद्गल परिणाम के द्वारा करण करता है। काय-वचन-मन पुद्गल द्रव्य के परिणाम करणी को ही ग्रहण करते हैं सुख-दुःख रूप पुद्गल द्रव्य परिणात्मक पुण्य-पाप आदि कर्म के फल को भोगता है। अनेक द्रव्यों के होने से तन्मय नहीं होता है। निमित्त-नैमित्तिक भाव मात्र से वहाँ कर्ता कर्म भोतृ व्यवहार जानना चाहिए। यहाँ तक व्यवहार का व्याख्यान किया अन्य का वर्णन किया अब अनन्य का वर्णन कर रहे हैं। वही शिल्पी इच्छा करता है। मैं आभूषण बनाऊँ, कुण्डल बनाऊँ इससे जो इच्छा हो रही है। इच्छाभूत आत्मा के परिणाम ही कर्ता हैं। जो परिणाम चल रहे हैं वह तन्मय भूत हैं। तब कर्म परिणाम का कर्ता होता है और दुःख लक्षण ऐसे आत्मा के परिणात्मक चेष्टा रूप कर्म के भाव को भोगता है। आत्मा के जो दुःख रूप परिणाम हुए उन दुःख रूप परिणामों का ही तो भोक्ता है। व्यवहार से कहा जाता है, इसने मेरे गाल पर चाँटा मारा सो मैं दुःखी हूँ। मैं दुखी होने का कष्ट भोग रहा हूँ। परन्तु सत्यता कुछ और ही है। चाँटा जो गाल पर पड़ा है वो तो पुद्गल पर पुद्गल पड़ा हुआ है। परन्तु अन्तरंग में जो तेरे राग भाव से युक्त होकर जो परिणामों में क्लेश हुआ है, ज्ञानी वह दुःख है।

मुमुक्षु! अन्तराय तूने डाला है इसमें कोई शंका नहीं है, बन्ध तो तुमको होगा ही नियम से। जो आपके परिणामों में क्लेश हुआ है, वे मन के क्लेशभूत परिणाम हैं वह दुःख है। यदि परकृत दुःख हो, फिर तो जगत् में दुखियों की संख्या बहुत कम हो जायेगी। परकृत दुःख तुम्हारे ऊपर बहुत नहीं है। परिणामकृत दुःख ही तुम्हारे ऊपर सर्वाधिक है। किसी के घर में बेटा हो गया और एक माँ वर्षों बीत गये, माँ नहीं बन पायी अब उससे प्रश्न करो पड़ोसी का बेटा तुम्हें गाली दे रहा है, सौतेला दुःख है वह किस बात का है? सौत का दुःख जगत् में किस बात के लिए प्रसिद्ध है? माना कि पति एक है पत्नी दो हैं। वह सौत कहलायेगी। यदि पति एक पत्नी को चाहता है और दूसरी के पास नहीं जा रहा है तो तुमको कष्ट कौन दे रहा है? बराबर सम्पत्ति के दो भाग किये हैं, भोजन सामग्री बराबर देता है। वस्त्र आभूषण देता है बस उसका प्रेम दूसरी पत्नी पर अधिक है। आपके यहाँ आता है तो कष्ट किस बात का है? पति कष्ट दे रहा है कि हीन भावना लाकर आप ही दुःखी हो रहे हो, तुमको दुःख कोई दे नहीं रहा है। व्यापारियों से पूछो? सामने वाले की दुकान चल रही है, तेरा माथा दर्द कर रहा है। खाली बैठा हूँ। कुछ भी नहीं जा रहा है। मुझे कोई पूछ ही नहीं रहा है। यह विषय जैसे श्रावकों पर लगा है वैसे मुनियों पर भी लगेगा। एक मुनि संघ को पन्द्रह लोग श्रीफल चढ़ा रहे हैं हमारे यहाँ चातुर्मास हो। व्यवहार

की बातें हैं। एक संघ को श्रीफल नहीं चढ़ाया। एक जगह कह रहे हैं महाराज हमारे गाँव चलो पंचकल्याणक है और एक को कोई बुला ही नहीं रहा। अब जिसको बुलाने आये हैं उसने क्या आपको कुछ दिया है। आपकी हीन भावना से ग्रसित होकर आप ही दुःखी हो। दुःख किसी ने दिया नहीं है। जब तक तत्त्व का चिन्तवन नहीं होगा, दिगम्बर मुनि बन भी जाओगे तो हीनभावना की राह में झुलसोगे।

मालूम चला इतना ऊपर चढ़ गये कि तुम पूरे मुनिपने को अतिक्रमण करके श्रावक से भी नीचे गिर जाओगे। कि जिसका प्रभाव बढ़ रहा था उसी की निन्दा में लग जाओगे और जो गुण तुम्हारे अन्दर नहीं होंगे तो खोज-खोज कर पकड़-पकड़ कर बिठा-बिठा कर बच्चों तक को पूछोगे कि कैसे हैं महाराज? यह नहीं पूछेंगे कि अच्छे हैं, तू तो यह बता कि अवगुण हैं या नहीं। भोपाल में एक संघ आया, बच्चे मेरे साथ विहार कर रहे थे। उनमें एक बालक को महाराज ने पकड़ लिया बोले भाई! यह बता तेरे सिलवानी में चातुर्मास किया, इतने दिन विशुद्धसागर रहे, वाचना हुई होगी, क्या देखा तुमने? वो बच्चा समझ गया बोला बगल के कमरे में महाराज जी हैं आप जाकर देख आओ कि क्या देखा? हकीकत यही थी कि वे यह पूछना चाह रहे थे कि अच्छे हैं, अन्दर कुछ और पूछना था। यह जीव के अशुभ भाव क्यों आ रहे हैं, क्योंकि तन्मयी भाव का बोध नहीं हो रहा है। वैराग्य के अभाव में न्यूनता नहीं अभाव में, न्यूनता में फिर भी थोड़ा विवेक रहेगा, जहाँ वैराग्य में द्वेष ही द्वेष भरा है उनके अन्दर कहीं ना कहीं खोजेंगे तो पता चलेगा कमी कहाँ है।

जिसका दृढ़ सिद्धांत है तू खोज ही पायेगा, खोज नहीं पायेगा। जिसे खोजने के लिए निकला था उसे नहीं खोज पाया, जीव बन्ध ही कर पाया पर की आलोचना में। जिसे खोजने के लिए तू साधु बना था उसे तू नहीं खोज सका, परन्तु दूसरे के दोष खोजते-खोजते तूने अपनी पूरी पर्याय व्यर्थ में ही खो दी। यह जब भी विचार आये तो आत्म आराधना कर लेना बहुत बड़ी साधना यही है। इसे बहुत बड़ी साधना समझ कर धोखे में मत रहना। जब तक तन्मय भूत, अतन्मयभूत का वेदक नहीं है कि तुमको यह पता नहीं है कि दुःखी कौन कर रहा है। तब तक यही मानकर बैठा है कि मेरा पड़ोसी दुकानदार मुझे बहुत दुःख दे रहा है। लेकिन बेचारे को अपनी दुकान चलाने से फुर्सत मिले तो तुम्हारा दुःख कम कर लेगा क्या? आपकी दुकान पर इतनी भीड़ लग रही है, आपको इतना समय नहीं है कि किसके बारे में क्या सोचूँ? पैसे गिनने की तो फुर्सत नहीं है। परन्तु सामने वाला तुझे देख-देख कर दुःखी हो रहा है उसे दुःख कौन दे रहा है? उसी के अशुभ विचार ही उसे कष्ट दे रहे हैं। ऐसे ही साधक यदि अपनी साधना में लीन है, चौबीस घण्टे अपने आप में ही लबलीन है उसे पता ही नहीं है कि मैं किसे सुख कह रहा हूँ, किसे दुःख कह रहा हूँ, उसे देखकर तू अपने ही भावों से स्वयं को दुःखी कर सकता है। मुझे कौन दुःखी कर सकता है? इसलिए विश्वास रखना सबसे बड़ा पापी जगत् में है दुःखी करने वाला वो मैं ही हूँ और मुझे सुख देने वाला तीर्थंकर भगवान् भी नहीं है। सबसे बड़ा उपकारी मेरा कोई है,

सुखी करने वाला कोई है तो मैं ही हूँ। जब से मन में अच्छे भाव आने लगे हैं तब से तू सबके साथ बैठने योग्य हो गया।

तुझे कोई दुःखी करेगा तो विश्वास रखना तू ही करेगा, दूसरा कोई नहीं है। मुझे दुःखी करके दिखाओ? यदि मैं दुःखी होना चाहूँगा तो ही आप मुझे दुःखी कर पाओगे और मैं दुःखी होना नहीं चाहूँगा तो रावण से पूछो, रावण के सामने विचलित करने के लिए विद्या देवताओं ने क्या किया, माता-पिता, पुत्र की गर्दन काट-काट कर दिखा दी विक्रिया से। वास्तव में काटी नहीं थी। मात्र उसे विचलित करने के लिए ऐसा किया था, परन्तु रावण इतना तन्मयी था अपनी साधना में उसने कुछ भी नहीं देखा अन्त में विद्या देवताओं को सिद्ध होना पड़ गया लेकिन जितना लम्बा समय लगने वाला था, वह अल्पसमय में हो गया।

इस प्रकार से समझना जो दुःख लक्षण है। आज के विषय को विशेष समझना तन्मयभूत, अतन्मयभूत। जगत् में हम व्यवहार की आँख से डरते हैं इससे परकृत दुःख नजर आता है, परन्तु परमार्थ से देखेंगे तो मेरा दुःख मेरे ही अन्दर हो रहा है, मेरा सुख मेरे अन्दर ही होता है। व्यापारी को तो प्रयोग में ही अनुभव है। इतना अनुभव है कि यहाँ तक टोटके करने भी खड़े हो जाते हैं। जगत् में इतना पागलपन छाया है, वह नींबू मिर्च क्या कर सकते हैं। एक लाल सिन्दूर में पोतकर दूसरे की दुकान की तरफ फेंक दिया। भैया! तू एक काम करना तू उठाकर खा जाना कि क्या होता है? इस पर्याय में सबसे लम्बा समय साधुओं के बीच में ही निकला है। रागियों के बीच में मात्र सोलह वर्ष निकले हैं। समाज के बीच में रहकर जो ज्ञान बढ़ रहा है, वो कहीं नहीं मिलेगा। अब पण्डित जी से ही पूछो जितने घरों का पानी इन्होंने नहीं पिया होगा उतना मैंने पिया है। मुझे पता है किसके घर में कच्ची रोटी बनती है किसके घर में पक्की रोटी बनती है। ऐसे ही घाट-घाट का पानी पिया है तो घर-घर का ज्ञान मालूम चलता है। श्रावक के घर की दहलीज पर पैर रखते ही पता चल जाता है कि आज अन्तराय हो जायेगा, इतना अनुभव हो जाता है कि व्यक्ति के हाव-भाव से उनकी वर्गणाऐं कैसी हैं? कुछ ऐसे क्षेत्र होंगे जिसके घर में मात्र सूखी रोटी होगी और एक मात्र दाल होगी उसके घर में तुम आहार करोगे तो तुम्हारे परिणाम विशुद्ध होंगे जहाँ सब कुछ हो परिणाम अच्छे नहीं हैं तो खाने वाले के परिणाम भी विकृत हो जायेंगे। इसलिए दाता के परिणाम निर्मल होना चाहिए और पात्र के परिणाम भी निर्मल होना चाहिए। दाता के परिणाम अशुभ हैं तो अन्तराय हो सकता है, लेने वाले के स्वयं के परिणाम ही खराब हैं तो भी अन्तराय। दोनों सही होने चाहिए। एकद्रव्य में तन्मयभूत होता है, परिणाम परिणामी भाव से। आत्मा की इच्छा से चेष्टा रूप आत्मा के परिणामरूप कर्म का कर्ता है, दुःख रूप आत्मा के परिणाम चेष्टा रूप कर्म के फल को भोगता है और एक द्रव्य से अन्यत्व होने से स्व में अनन्य होने से तन्मय भूत होता है, परिणाम परिणामी भाव से कर्म नौ कर्म का भोक्ता हूँ ऐसा जानना चाहिए।

निश्चय नय से एकत्व विभक्त आत्म द्रव्य तन्मयभूत होकर कर्तृ कर्म भोतृत्व भाव से युक्त है। व्यवहार नय से निमित्त नैमित्तिक दृष्टि से अन्य द्रव्यों में अतन्मयभूत द्रव्यों में कर्तृकर्म फल का भोक्तृत्व भाव जानना चाहिए। इन सभी गाथाओं का सार आगे वाले कलशों में भरा हुआ है। इन कलशों में यह कहने वाले हैं जो कर्तृत्व भोक्तृत्व की व्याख्या की है उन सब का अन्तरंग भाव क्या है? तब समझ में आयेगा। विश्वास मानो ढाईद्वीप में विराजते सभी वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन इन कलशों का चिन्तवन कर लें तो किसी दूसरे कलश को देखने के भाव ही नहीं होंगे। यदि चौबीस घण्टे गद्गद् भाव में जीना चाहता है, जीव तो उसे ''समयसार'' का स्वाध्याय करना ही चाहिए।

तन्मयभूत, अतन्मयभूत। दो धाराएँ जीव के साथ में हैं। अतन्मय में आलम्बन हो रहा है, तन्मय पर ध्यान भी नहीं है। जिनबिम्ब का ध्यान भी निज द्रव्य से अत्यन्तभिन्नभाव है। स्व आत्मा से भिन्न अन्य आत्मा का भाव भी मेरा ध्रुव स्वभाव नहीं है। निज आत्मद्रव्य को छोड़कर जितने द्रव्य हैं, एक मात्र निज आत्म द्रव्य ही हमारा तन्मयभूत है। शेषद्रव्य अतन्मयभूत हैं। जो-जो सुखानुभूति जीव ले रहा है, क्लेश को प्राप्त हो रहा है, अतन्मय पर ही भाव है।

मैं अपने द्रव्य से भी तन्मय नहीं हूँ, तो फिर परद्रव्य से तन्मयता किस बात की? आप पर मिश्रित राग कर रहे हो। इस राग में तन्मयी हो, परन्तु देह से तन्मयी नहीं हो। आप जो राग कर रहे हो, मेरी स्त्री है। हे जीव! तू स्त्री में तन्मय नहीं है। स्त्री तेरे में तन्मय नहीं है। स्त्री के प्रति तेरी प्रीति है जो भीतर विराजती है, वह तन्मयी है। स्त्री में जो तेरा प्रेम चल रहा है, राग तेरे भीतर बैठा हुआ है, वह तन्मयीभूत है। स्त्री परवस्तु है, वह अतन्मयीभूत है। जो-जो बंध हो रहा है। अतन्मय द्रव्य से बंध होता ही नहीं। पर द्रव्यों से बंध होता नहीं है। बंध का हेतु कोई द्रव्य है ही नहीं। बंध का हेतु पर द्रव्य कहाँ? अतन्मय द्रव्य बंध के हेतु नहीं हैं। इस सिद्धांत को अज्ञानी समझ नहीं पाता है और भोगों में लिप्त होकर परवस्तु से बंध है ही नहीं? ध्रुव सत्य है। परवस्तु से बंध नहीं है। मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योग यह बंध के हेतु हैं। इन पाँच प्रत्ययों में मिथ्यात्व भी जीव की विभाव दशा है, तन्मयीभूत। अविरति जीव की तन्मयी भूत दशा है। प्रमाद जीव की तन्मयी दशा है। योग भी आत्मद्रव्य का परस्पर में तन्मयीभूत दशा है। बंध का कारण मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योग है। इसमें अन्य द्रव्य बंध के हेतु कहाँ हैं? किसको बंध मानूँ, किसको मोक्ष मानूँ तन्मयता से ही बंध है, तन्मयता से ही मोक्ष है। अतन्मय में बंध है, अतन्मय में मोक्ष है, परन्तु छोड़ने की बात क्यों की जा रही है? योग अविरति कषाय यह कौन से द्रव्य हैं? जीव द्रव्य की विभाव गुण व्यंजन पर्याय क्या है?

मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि जीव की विभाव गुण व्यंजन पर्याय है। उससे बंध हो रहा है। तन्मयभूत है। द्रव्य हो या ना हो, अतन्मय मिथ्यात्व का साधन है। यदि आप मिथ्यात्व के अतन्मय के साधनों से मिथ्यात्व मानते हो तो विदेह में कोई मिथ्यादृष्टि जीव नहीं होगा, यदि आप मिथ्यात्व के अतन्मय द्रव्य

को भी मिथ्यात्व मानते हो, द्रव्य मिथ्यात्व से भी मिथ्यात्व मानते हो तो ज्ञानियो! विदेह क्षेत्र में द्रव्य मिथ्यात्व नहीं होता है। वहाँ सारे जीव सम्यग्दृष्टि हो जायेंगे, जब की ऐसा नहीं होता है। भरत क्षेत्र में जब हुण्डा अपसर्पिणी काल नहीं होता है तब यहाँ भी द्रव्य मिथ्यात्व नहीं होता है। सम्यक् आयतन ही होते हैं। यहाँ मिथ्यादृष्टि नहीं होते। स्वर्गों में कुलीन देवों के मंदिर हैं, क्या कोई अनायतन हैं? क्या वहाँ मिथ्यादृष्टि नहीं हैं? वहाँ पर भी मिथ्यादृष्टि हैं। भोगभूमि में जब द्रव्य सम्यक्त्व के मन्दिर आदि नहीं हैं, वहाँ मिथ्यात्व के भी साधन नहीं हैं तो क्या मिथ्यादृष्टि नहीं हैं? क्या सम्यग्दृष्टि ही हैं? जो यह कह रहा है अतन्मय से भी काम होता है, उसको कहना अज्ञानता को ठीक करो। भीतर का मिथ्यात्व भाव जो है।

''पज्जय मूढ़ा हि पर समया''

पर्याय में मूढ़ता चल रही है, परसमय। तत्त्व के प्रति निर्णय का अभाव चल रहा है, अज्ञान। तत्त्व में एकत्व बुद्धि है। एकान्त तत्त्व में विपरीत बुद्धि है। तत्त्व में संशय भाव है, संशय जो मिथ्यात्व तेरे भीतर बैठे हुए हैं। यह भीतर के निर्णय हैं। विपरीत निर्णय तेरे भीतर का है, सम्यक् निर्णय भी तेरे भीतर का है।

कर्म बंध का कारण राग है या पदार्थ है? जो अज्ञानी पदार्थ को ही बंध मान रहा है। वह कभी भी निर्बन्धता को प्राप्त नहीं हो सकेगा। लोक छः द्रव्य से शून्य कब होगा? लोक छः द्रव्यों से शून्य कभी नहीं होगा, लोक में चेतन अचेतन द्रव्य विद्यमान रहेंगे। तू पर द्रव्यों के निमित्त से बंध स्वीकारता है तो तेरा निर्वाण कब होगा? इसमें गुप्त विषय छिपा हुआ है।

बंध का कारण राग है, पर वस्तु बंध का कारण नहीं है, तो फिर अपने राग को क्यों नहीं न्यून करते हो? अपने राग का अभाव क्यों नहीं करते हो? परवस्तु में क्यों लिप्त हो रहे हो? पर वस्तु बंध का कारण नहीं है। राग बंध का कारण है। तन्मयभूत बंध का कारण राग ही है। ऐसा सिद्धांत का कथन था, परन्तु सिद्धांत अपने अन्तरंग में दूषित पक्ष को भी लेकर बैठा हुआ था, अज्ञानी ज्ञानी! तूने यह कहा कि महाराज! बंध का कारण राग है, परवस्तु नहीं है और तूने क्या किया? दुनिया के परिग्रह का संचय किया, जगत् में नारी को अपनी पत्नी स्वीकार किया और जितना जगत् में द्रव्य था सब तूने घर में रख लिया और धीरे से कहता है बंध का कारण तो राग है, परवस्तु नहीं है। मेरे मित्र! बंध का कारण तो राग है, परन्तु राग होता कहाँ है। लता जब भी वृद्धिमान होती है तब दूसरे पर पहुँचती है। राग लता है, लता की आड़ से स्तम्भ नहीं होता स्तम्भ की आड़ से लता होती है। राग लता है। जैसे लता दूसरे को घेर लेती है, ऐसे ही तेरा राग जो तूने संग्रह करके द्रव्य रखे हुए हैं, परद्रव्य इनका आश्रय करते ही राग होता है। बिना इनके राग होता कहाँ है? राग के विषय को तो देखो, बंध तो राग से होता है राग को विषय क्यों नहीं मानते हो?

आज हमारे मुमुक्षु ज्ञानी जीव! इस बात को तो कहते हैं बंध का कारण राग है, राग मत करो, वस्तु में बंध नहीं है, यह बिलकुल सत्य है समयसार जी में लिखा है वस्तु में बंध नहीं है। बंध का कारण वस्तु नहीं है, परंतु कारण का कारण वस्तु नहीं है क्या?

मनोज्ञाऽमनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष-वर्जनानि पञ्च ॥ त.सू.॥

जो पाँच इंद्रिय के विषय हैं। जो मनोज्ञ कारण भीतर है, मनोज्ञ का अभाव अमनोज्ञ का अभाव यही बंध है। इसलिए निज की आत्मा को ठग मत लेना कि द्रव्यानुयोग को समझकर और यह मानकर बैठ गया बंध तो राग से ही होता है, परंतु राग होता किसमें है? जिसने मूर्च्छा परिग्रह सूत्र का दुरुपयोग किया है। उसने 'रत्तोबंधदिकम्मं' शब्द का भी दुरुपयोग किया है। मूर्च्छा का नाम परिग्रह है। वस्तु का नाम परिग्रह नहीं है, परन्तु मूर्च्छा का साधन कौन है? वस्तु है। यदि आप यह कहो कि मूर्च्छा परिग्रह है, फिर आपके दस प्रकार के बहिरंग परिग्रह के त्याग की क्या आवश्यकता? फिर आप सरागी की प्रतिमा को क्यों नहीं पूजते हो? वीतरागी प्रतिमा को क्यों पूजते हो? जब आप यही मानते हो, वस्तु में राग नहीं है, ज्ञानी! धागा भी डालकर रखी प्रतिमा को क्यों नहीं पूजते हो? फिर मुमुट धारी प्रतिमा को क्यों नहीं पूजते हो? चक्रवर्ती शांतिनाथ की पूजा क्यों नहीं करते हो? फिर द्रव्य दृष्टि से तो भगवान् आत्मा है, जितने यहाँ बैठे हैं सबकी पूजा करो अष्ट द्रव्यों से।

ज्ञानी! वस्तु स्वभाव को समझने के लिए विशाल प्रज्ञा की आवश्यकता है। ज्ञान के क्षयोपशम के अभाव में चारित्र की निर्दोषता नहीं पल सकती। तत्त्व निर्णय के अभाव में सम्यक् का पालन नहीं हो सकता। तत्त्व निर्णय के अभाव में ना सम्यक् पलेगा ना चारित्र पलेगा? रूढ़िपरम्परागत आप शरीर की क्रियानुसार देह की क्रिया तो कह सकते हो, परन्तु विशेष आत्मा नहीं कह सकते हो। दर्शन को भी निर्मल करके, चारित्र को भी निर्मल करके। सभी अंगुलियों के बीच में बड़ी अंगुली कौन सी है? मध्य अंगुली है। मध्य अंगुली ऊपर की ओर जा रही है ऐसे ही ज्ञान भी मध्य में रखा गया है। यह चारित्र को भी निर्मल रखता है, श्रद्धान को भी निर्मल रखता है उसका नाम ज्ञान है। अंधविश्वासभूत चर्या का पालन कर लेना अलग विषय है, तत्त्व निर्णय से चर्या का पालन करना भिन्न विषय है। तत्त्व निर्णय से चारित्र का पालन करोगे, उससे भेद विज्ञान की दशा में प्रवेश करके जो संयम की साधना होगी उससे आत्मानंद आयेगा। इसलिए ध्यान दो। वस्तु बंध का कारण नहीं है, राग बंध का कारण है। यह सत्य है, लेकिन बंध के कारण का कारण वस्तु है, इसलिए परवस्तु को छोड़ना चाहिए। तन्मयता से बंध होता है, अतन्मय को छोड़ने की बात कर रहे हो? अरे ज्ञानी! जो तन्मयभूत राग है, वह राग अतन्मयभूत द्रव्यों के प्रति, तन्मयभूत बुद्धि से है और बिना ज्ञान दर्शन के राग बुद्धि नहीं होती। सारे गुण आत्मा में जड़भूत हैं, ज्ञानदर्शन गुण चेतनभूत है। जो-जो अनुभूतियाँ हो रही हैं, सम्पूर्ण द्रव्यों की आत्मा में उसकी अनुभूति का वेदन वाला कोई है वह ज्ञानदर्शन है। मिथ्यात्व का भी आनन्द करा रहा है, वह ज्ञानदर्शन

सम्यक् की अनुभूति करा रहा है वह ज्ञानदर्शन, राग की भी अनुभूति करा रहा है। वह ज्ञान दर्शन, तेरे राग का जो ज्ञेय बन रहा है, तन्मयभूत दृष्टि से राग ही राग का ज्ञेय है और तन्मय भूत से जो पर द्रव्य है वो इसके ज्ञान का विषय परिणामी कर रहे हैं, इसलिए वे बंध के कारण ही कारण हैं।

तन्मयभूत आनन्द पर लक्ष्य ही नहीं पहुँचा आज तक, ज्ञानी! अभी तक तो तू मात्र देह को ही निहारता रहा, कर्म, नो कर्म को निहारता रहा और कर्म, नो कर्म के बहिरंग सम्बन्ध स्थापित किये उनमें आत्मा बुद्धि रखता रहा और उसी आनन्द को लूटता रहा, अतन्मयी आनन्द में तन्मय रहा, पर तन्मय भूत के आनन्द पर लक्ष्य ही नहीं ले गया। ध्रुव सत्य है, आयु कर्म के निषेक पूर्ण होने की चरम सीमा पर आ रहे हैं तब जीव ने मैं जीवित हूँ इस बात का बोध ही नहीं किया। तूने पर के शरीरों में अन्य द्रव्यों में, निज के शरीर से भिन्न शरीरों में इतना मोह करके रखा हुआ है कि यह अनुभूति नहीं ले जा सका कि मैं जीव भी हूँ। मैं जीव द्रव्य हूँ। मैं निर्ग्रन्थ होकर कमण्डलु को निहारता रहा, मैं निर्ग्रन्थ होकर पिच्छिका को देखता रहा। मैं निर्ग्रन्थ होकर दिगम्बर भेष को देखता रहा, परन्तु दिगम्बरत्व को नहीं देख सका तो मैंने क्या देखा? पिच्छिका कमण्डलु मिलते ही आनन्दित हो गया कि मैं निर्ग्रन्थ हो गया, दिगम्बर मुद्रा मुझे मिल गई और इसके बाद में उपदेश देने बैठ गया, अरे अब तो मेरा काम पूरा हो गया और मन्दिर आदि के कार्यों में आशीर्वाद देने में लिप्त हो गया यह धर्म है। जिसके लिए दिगम्बरत्व की प्राप्ति की थी उस दिगम्बरत्व पर लक्ष्य नहीं गया, अतन्मयीभूत द्रव्यों पर लक्ष्य बना रहा, तन्मयी के लिए तूने कुछ भी नहीं किया। क्या किया? ज्यादा से ज्यादा तंत्र-मंत्र, ज्योतिष का अध्ययन कर लिया, उस अध्ययन को देखकर तू यह सोच बैठा कि मैं एक व्यक्ति को मंत्र दे देता हूँ, इसका व्यापार अच्छा चलेगा, अरे ज्ञानी! उस पर तू दया कर बैठा। यह दया तेरी हत्याभूत थी वह व्यापार करेगा, कोटि-कोटि जीवों की हत्या करेगा जिसको आशीर्वाद दिया था। अतन्मयी दृष्टि में संतुष्टि चल रही है।

मेरे निमित्त से इतने जीव भी सुखी हो रहे हैं। जो जगत् के कल्याण की दृष्टि है, जिसे जगत् कल्याण मानता है वो कल्याण के नजदीक भी नहीं है। लोक के धर्मज्ञों की कल्याण की जो भाषा है, सर्वज्ञ की भाषा नहीं कर रहा हूँ। धर्मज्ञों की भाषा, लोक के सम्प्रदायों में कल्याण की परिभाषा बोली जाती है, लोक कल्याण, जन कल्याण, मुमुक्षु वह धर्मज्ञों की भाषा है वह सर्वज्ञ की भाषा नहीं है। धर्मज्ञों की भाषा अज्ञानभूत ही होगी, सर्वज्ञ की भाषा ही ज्ञानभूत है। सर्वज्ञ की भाषा ही सम्यक् है, सर्वज्ञ का कथन ही सम्यक् है। जिन धर्मज्ञों के पास सर्वज्ञ नाम की वस्तु ही नहीं है। उनके पास सत्य कैसे? मैं तो उस धर्मज्ञ को मानता हूँ जो सर्वज्ञ के अनुसार चलता है। **वही धर्मज्ञता-धर्मज्ञता है, जिसमें सत्यता की प्राप्ति का लक्ष्य है। जिस धर्मज्ञता में सत्यता की प्राप्ति का लक्ष्य नहीं है, वह धर्मज्ञता नहीं है। अधर्मज्ञता ही है।** यह जो मैं कह रहा हूँ वह तत्त्व की कसौटी पर है या नहीं? दर्शन शास्त्र जो है, न्यायशास्त्र जो है वो एक सूत्र होता है तुम उस पर कितने प्रकार से चिन्तवन कर सकते हो, वह आपकी

प्रज्ञा का काम है, लेकिन आपकी वह प्रज्ञा आगम से बाहर नहीं होना चाहिए।

सर्वज्ञता प्रमुख है, पहले सर्वज्ञ ही देव हैं। जब-तक आप्त की परीक्षा नहीं हो जाती है, आप्त की प्रमाणिकता नहीं हो जाती है, तब-तक आगम की प्रमाणिकता नहीं होती। जब तक आगम की प्रमाणिकता नहीं होगी, तब तक आगम को कहने वाले धर्मज्ञ की प्रमाणिकता कैसे? वे अज्ञानी लोग हैं जो अपना माथा तुरन्त झुका देते हैं। तुरन्त किसी को भी स्वीकार कर लेते हैं। अब यहाँ यह नहीं चलेगा कि अच्छी बात यहाँ चलती है। **मात्र अच्छी बात प्रमाणिक नहीं होती है। अच्छी बातें तो जगत् में बहुत जगह होती हैं। चोर को चोरी का उपदेश मिल जाये कि चोरी कैसे हो, यह उसके लिए अच्छी बात है, यह अच्छी बात प्रमाणिक नहीं होती है।** व्यभिचारी को परस्त्री अच्छी लगती है। यह अच्छी बात प्रमाणिक नहीं होती है। परग्रही जीव दुकान पर खड़ा है, भले ही कोई ग्राहक आये या नहीं आये तब भी खड़ा रहता है यह बिल्ली परिणाम, एक मूषक को घातने के लिए जैसे बिल्ली चूहे के बिल के सामने बैठी हुई है। एक भी चूहा ना निकले, परन्तु कोटि-कोटि जीवों को घात कर रही है, क्योंकि उसकी दृष्टि प्रतिक्षण चूहे को मारने पर है। आस्रव चल रहा है कि नहीं? बंध चल रहा है या नहीं? जितने दुकान पर दुकानदार बैठे होते हैं, एक भी ग्राहक नहीं आये तब भी कोटि कोटि ग्राहकों को ठगने का आस्रव हो रहा है। बुरा तो नहीं लग रहा है आप लोगों को। अब लगे सो लग जाये ''जो है, सो है'' डॉक्टर, वकील इन विचारों की दुर्गति का कारण क्या है? बिल्लीपना विकार। जो भी वकील, डॉक्टर हों उसे अलग से दूसरा अपना व्यापार करना चाहिए।

डॉक्टर साहब! आपकी निजी क्लीनिक है आप उसमें जाते हो, दिनभर कोई मरीज नहीं आये तो आपका चिन्तवन क्या होगा? दो चार दिन तक ना आये यदि आजीविका के लिए डॉक्टर बने हो तो नियम से बुरा चिन्तवन चलेगा। लोग कहेंगे डॉक्टर लोगों के रोग ठीक करता है। सत्यता कुछ और ही है। यदि इनके क्लीनिक पर कोई नहीं पहुँचता है तो क्या सोचेगा यह जीव! कोई आया नहीं। अब कोई कब आयेगा? जब बीमार हो तब आपके यहाँ पहुँचे। यदि ऐसा चिन्तवन किंचित् मात्र भी आ रहा है। अहो मुमुक्षु! अतन्मयभूत परद्रव्यों में तू खोटा राग करके तन्मयता में तीव्र अशुभ का बंध कर रहा है। तुझे वही बंध होगा जो बिल्ली को और बगुले को होता है। कर्म सिद्धांत में आपका यह नहीं चलता कि महाराज ऐसा मत कहो, मेरा क्या होगा? अरे तेरा क्या होगा? मैं इसलिए कह रहा हूँ कि तू ठीक हो जा। तालाब में आये बगुले की दृष्टि मात्र मछली पर है बिल्ली की दृष्टि चूहे पर, ऐसे ही मुमुक्षु! जो रागी जीव व्यापार आदि के उद्देश्य से दुकान पर बैठा हुआ है उसके लक्ष्य में क्या चल रहा है। आस्रव उस समय भी जारी है।

ज्ञानी! इस विषय को समझो। ऐसा मानकर मत बैठ कि करोड़पति, धनपति लोग मात्र धर्म के क्षेत्र में धन खर्च कर धर्म मान रहे हैं, उल्टी सीधी कमाई करके लाते हैं और कौन से तीर्थ में चाहिए

ले जाओ इसी को धर्म मानते हैं बड़े-बड़े मन्दिर खड़े कर दिये, पाठशाला, धर्मशाला बना दिये, मात्र उनका उद्देश्य है कि मेरा धर्म हो रहा है, अतन्मयीभूत द्रव्य को इकट्ठा करके अतन्मयी में लगा देना यह कोई धर्म नहीं है। **तन्मयभूत राग को कम करके परिग्रह को छोड़ देना इसका नाम धर्म है। दान के बाद भी दान पत्र लिखवाने की तेरी भावना है, प्रशस्ति पत्र लिखवाने की भावना है, यह दान नहीं है, शुद्ध व्यापार है।** यही कारण है, आज के विद्वान् त्यागीगण 'समयसार जी' की व्याख्या नहीं कर रहे हैं। क्यों? यदि इस सत्य को कह दूँगा तो असत्य का धर्म जो चल रहा है उसे कोई स्वीकार नहीं करेगा। विश्वास रखना यदि सत्य की प्ररूपणा हो जायेगी तो आप जैसे विद्वान् असत्य धर्म को स्वीकार नहीं कर पायेंगे। इसलिए सत्य धर्म पर दृष्टिपात करो। अधर्म में, अतन्मय में लीन होकर तन्मय को भूल ही चुका है। निज ज्ञान तन्मयभूत है, निज दर्शन तन्यमभूत है। निज चारित्र तन्मयभूत है। श्रुत तन्मयभूत अपने निज द्रव्यों पर लक्ष्य क्यों नहीं जा रहा है। ज्ञानी! भूल जाओ इस धर्म को कि चार छः लोगों के साथ प्रक्षालन कर लिया, इसी में धर्म मान लिये, लोक कल्याण और डॉक्टर साहब आप जैसे लोगों ने क्या किया कि जो तन्मयभूत कल्याण में लगे थे उन निर्ग्रन्थों के भी अकल्याणभूत, कल्याण में लगा दिया महाराज आपकी जय हो, आपका प्रभाव बहुत है, आपकी कृपा से एक अस्पताल खुल जायेगा, जीवों का कल्याण होगा? हे स्वामी! आप तो आशीर्वाद दे दो। बड़े-बड़े सेठ आपके पास आते हैं, इसलिए आप इस काम को कर सकते हो और अपना-अपना नाम भी धर्म का होगा, परन्तु वह भूल चुका था कि हमारा धर्म तो वैसे ही नष्ट हो चुका है, जिस दिन खून की बोतल औषधालय में आई थी।

क्या करूँ? वेदना इस बात की होती है कि निर्ग्रन्थ श्रमण को जिस कल्याण मार्ग का उपदेश देना चाहिए था, उस कल्याण मार्ग से बहुत दूर चले गये हैं। महावीर की अहिंसा को भूल चुके हैं। रक्त माँस के पिण्ड को आशीर्वाद देने पहुँच जाते हैं। तुम्हारा कल्याण हो। दुनिया से भीख माँग-माँग कर तुम अस्पताल में लगाओगे तो तुम्हारा लक्ष्य क्या है? लोक में कल्याण शब्द का प्रयोग कहाँ हुआ है? जो चर्चा अभी प्रारम्भ की है उस विषय पर ध्यान देना। धर्म तो सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ ने जो कल्याण की बात की थी वह अतन्मयी द्रव्यों से निज द्रव्य अत्यन्तभिन्न द्रव्य है।

मुमुक्षु! अपने आपको पहले पृथक् कर लेना फिर संश्लेषभूत भाव है उनको पृथक् कर लेना और फिर तेरे जो तन्मयभूत विभाव भाव राग भाव हैं उनको पृथक् कर लेना और एक मात्र अपने शुद्ध चैतन्य पिण्ड ज्ञान घन में लवलीन हो जाना इनका नाम सर्वज्ञों का कल्याण मार्ग है। धर्मज्ञों ने क्या किया? कोई गरीब था उसने गरीब को सुख देने के लिए जादू, टोना, चमत्कार दिखाना प्रारम्भ किर दिया। कहते हैं जन-कल्याण हो रहा है। कल्याण शब्द का क्या दुरुपयोग है। यह कल्याण नहीं, जन-कल्याण हो रहा है। ज्ञानियो! सम-दत्ती हो सकते हो, किसी भी गरीब के प्रति यह आपकी दयावृत्ति हो सकती है, जो कल्याण शब्द है, वो तो आत्म कल्याण से निहित है। कर्मातीत दशा की प्राप्ति होना कल्याण है, इन

कार्यों में कहाँ कर्मातीत दशा है? जितनी लोक की दया है ''सो दया बंध कारीणी'' महाराज आपने स्वयं कहा है ''**धम्मो मूलस्य दया**'' धर्म का मूल दया है। ''**धम्मो दया विसुद्धो**'' कुन्दकुन्द स्वामी स्वयं लिखते है, आप नहीं मानते क्या? हाँ कुन्दकुन्द स्वामी, गौतम स्वामी ने जिसे 'धम्मोमूलस्य दया' कहा है ''धम्मो दया विसुद्धो'' कहा है, उस पर लक्ष्यपात तो करो। ज्ञानी! कोटि-कोटि जीवों को मारना इसका नाम ''धम्मो दया विसुद्धो'' नहीं है। हिंसक को भी हेय नहीं मानना और हिंसनी को भी बचाना इसका नाम ''धम्मो दया विसुद्धो'' है। हिंसक पर भी अशुभ भाव नहीं लाना, हिंसनी की भी रक्षा करना इसका नाम ''धम्मो दया विसुद्धो'' है।

आप यह कहेंगे कि महाराज आपकी बात से तो हाथ पर हाथ रखना पड़ेगा, बस यही तो मैं चाहता हूँ। यही तो सत्य बात है। स्वीकारना तो पड़ेगा, पालन जब करो तब कर लेना, लेकिन श्रद्धा में तो आज ही लाना पड़ेगा।

टीकमगढ़ में समयदेशना भाग एक पर गोष्ठी हुई, सब विद्वान् व्यवहार पक्ष वाले थे। 'समयसार' पर कभी लक्ष्य गया नहीं था। 'समयसार' ग्रंथ की जब गोष्ठी हुई उस पर जितने रुचिपूर्वक आलेख होना चाहिये थे और जितना हर्ष होना चाहिए था, एक ही शब्द निकल रहा था विद्वानों के मुख से कि यह अध्यात्म का विषय है, महाराज! आपका ही विषय है। ज्ञानी! जब तक तू अध्यात्म को ज्ञेय नहीं बनायेगा, तब तक अध्यात्म का ज्ञाता कैसे बनेगा? अध्यात्म को ज्ञेय कहने की स्पर्धा तो खड़ी कर दी, परन्तु ज्ञेय बनाने का प्रयास करता तो हेय-उपादेय का विवेक हो जाता। आप अध्यात्म भी सुन रहे हो तो क्या समझ में नहीं आ रहा है? आ रहा है। परन्तु सत्य यह है धर्मज्ञता सत्य है, या सर्वज्ञ की वाणी अच्छी लगना होगी, सर्वज्ञता प्रमाणिकता रूप है। धर्मज्ञता प्रमाणिक रूप नहीं है। सर्वज्ञता ही प्रमाणभूत है। धर्मज्ञता प्रमाणभूत नहीं है। हमारा सर्वज्ञ जो है -

''सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य॥ त.सू.॥''

सम्पूर्ण द्रव्यगुण पर्यायों को युगपत् जानन व देखन हारा है, वह हमारा भगवान् सर्वज्ञ है। ऐसा सर्वज्ञ ही प्रमाणभूत है। धर्मज्ञता ऐसी है, लोक में जितने सम्प्रदाय हैं, इन सबके धर्माचार्य हैं, पर धर्मज्ञता से युक्त हैं। धर्मज्ञों ने बहुत हिंसा फैलायी है। जितने लोक में लौकिक धर्मज्ञ हुए उन लौकिक धर्मज्ञों ने क्या किया कि ईर्ष्या फैलाकर रख दी। अपना सम्प्रदाय सत्य है, दूसरे सम्प्रदाय को विलीन कर दो। अपने सम्प्रदाय की पुष्टि में पता ही नहीं चला कि अहिंसा कहाँ गई? एक दूसरे दर्शनों ने विघात किया, धर्मान्धपना। उन्नीस सौ नव्वे से आजतक के समय में एक ऐसी लहर दौड़ रही थी निश्चय व्यवहार के चक्कर में मंदिरों में झगड़े हुए थे। मैं तो साक्षी हूँ। मात्र धर्मानुराग चल रहा था मैं निश्चय वाला मैं व्यवहार वाला, इन विद्वानों को बुलाया प्रवचन के लिए। भाई ऐसा उपदेश करो जिससे समाज में सर्वत्र मैत्री भाव रहे। भिण्ड में धर्मचन्द्र शास्त्री को चुना गया। इनको इसलिए चुना गया यह बहुत सरल सहज स्वभावी

जीव हैं। प्रवचनों में भीड़ होती थी, जो तत्त्व सुनने की जो कम होती थी। आज क्या होने वाला है इस बात की भीड़ होती थी। 'समयसार दृष्टि' उस अन्धपने को मैंने आँखों से देखा। यह वस्तु स्वरूप में अन्धापना कैसा? फिर मैंने 'समयसार' का अध्ययन किया देखूँ इसमें झगड़ा है कहाँ? समयसार में कोई झगड़ा नहीं है। यह अज्ञानी जीवों की कषाय में झगड़ा है।

क्या सर्वज्ञ ने निश्चयनय को मोक्षमार्ग कहा है, क्या सर्वज्ञ ने व्यवहारनय को मोक्षमार्ग कहा है? ना निश्चयनय मोक्ष मार्ग है, ना व्यवहारनय मोक्षमार्ग है। निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय मोक्षमार्ग है। आप अज्ञानियों के पास ना निश्चय रत्नत्रय, ना व्यवहार रत्नत्रय। मात्र नय की विवक्षा में विसंवाद करके अपनी आत्मा की वंचना कर रहे हो। किंचित् भी आपके मन में नय को धर्म मानने की अतिष्काम वृत्ति हो उसे अभी निकाल देना। **नय वचन प्रणाली है। नय भाषा है। वस्तु को समझने के लिए भाषा का प्रयोग होता है। भाषा वस्तु नहीं होती है। नय पद्धति है। नय आलाप पद्धति है, वचन बोलने की शैली है। मैं भी बोल रहा हूँ, आप भी बोल रहे हो, अपनी पद्धतियाँ है। पद्धतियाँ अनेक हो सकती हैं। परन्तु वस्तु एक है।** उसी समयसार की व्याख्या कोई और भी कर सकता है जो मैं कर रहा हूँ। अपनी-अपनी शैली में करोगे। लेकिन वस्तु स्वभाव समयसारभूत ही होना चाहिए। इसलिए निश्चय और व्यवहार यह वस्तु नहीं है। यह व्याख्यान करने की शैली को वस्तु स्वीकार लिया है, इतने मुग्ध हो गये, उसमें विसंवाद फैला लिया। नय दृष्टि होना चाहिए। नय दृष्टि ही है। आँखों से देखते रहो कि आँखें द्रव्य हैं। जो-जो आँखों से देख रहे हो, वह द्रव्य है आँखों का। आँख मात्र दृष्टि है, आँखें द्रव्य नहीं हैं। इन नयनों से पदार्थों को देखते हो, नयन पदार्थ हो जायेंगे तो पदार्थों को चेतन हो जाना चाहिए, या फिर नयनों को द्रव्य होना चाहिए। नयन यदि पदार्थ हो रहे हैं तो पदार्थ तो जड़ हैं। नयन भी जड़ हो जायेंगे तो देखोगे कैसे? आप यह कहो कि मेरे देखने से पदार्थ भी चेतन हो जाते हैं तो पदार्थ भी चेतन हो जायेंगे। जब तू रोटी का ग्रास उठायेगा, मुख में ले जायेगा, जीभ को चलायेगा तो वो भी चेतन हो जायेगी। समझो कितने तर्क की आवश्यकता है। तेरी आँखें वर्तमान में जो देख रही हैं, आँख सम्वेदन शील है, इसलिए जीवत्व भी है तेरी आँखों के देखने से प्रत्येक द्रव्य तद्रूप ही है, फिर तू द्रव्यों को देख रहा है सब चेतन रूप हैं खायेगा, पियेगा वो भी चेतन। तो तू अहिंसा का पालन कैसे करेगा? और अग्नि की आवश्यकता पड़ेगी वो भी जीव बन जायेगी, पानी की इच्छा करेगा तो वो भी मनुष्य बन जायेगा तो पियेगा क्या?

यदि तेरी दृष्टि के अनुसार द्रव्य होते है तो सारे द्रव्य तेरे रूप हो जायेंगे। दृष्टि में मात्र देखने की सामर्थ्य है। मित्र! दृष्टि में मात्र देखने की सामर्थ्य है या बदलने की भी सामर्थ्य है। आपके नयनों में मात्र ज्ञेयों को देखने की सामर्थ्य है, परन्तु परज्ञेयों को बदलने की सामर्थ्य नहीं है। परज्ञेय बदलेगा वह अपने स्व उत्पाद-व्यय ध्रौव्यत्व से युक्त होकर परिणमन कर रहा है। वह अतन्मयभूत है। मैं तन्मयीभूत

हूँ, इसलिए पुनः-पुनः समझना नयों के विकल्प में आकर परस्पर का वात्सल्य मत खो देना।

''तर्कात्तन्निर्णयः ॥ प.मु.सू.॥''

जो भी वस्तु स्वरूप का निर्णय करो तर्क से करो। तर्क-तर्क ही होना चाहिए कुतर्क नहीं होना चाहिए। तर्क प्रमाण है। कुतर्क प्रमाण नहीं है। तर्क वस्तु स्वभाव को समझने के लिए लगाना, आगम पर तर्क नहीं लगाना। स्वभाव पर तर्क नहीं लगाना। ''आगम अतर्क गोचरा, स्वभाव अतर्क गोचरा''

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत्।
न भवति कर्तृ शून्यमिह कर्म न चैकतया,
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ॥211/अ.अ.क.

आचार्य भगवन् श्री अमृत चंद्रस्वामी कह रहे हैं कि वास्तव में परिणाम ही निश्चय से कर्म हैं और परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही होता है, अन्य का नहीं, क्योंकि परिणाम अपने-अपने द्रव्य के आश्रित हैं, अन्य के परिणाम का अन्य आश्रय नहीं होता है और जो कर्म है वह कर्ता के बिना नहीं होता है। वस्तु कूटस्थ नहीं होती है, क्योंकि वस्तु द्रव्य पर्यायस्वरूप होने से सर्वथा नित्यत्व बाधा सहित है, इसलिए वस्तु स्वयं ही अपने परिणाम रूप कर्म की कर्ता है यह निश्चय स्वरूप सिद्धान्त समझना।

जिस जीव का निर्णय हो चुका है और परवस्तु में कर्तापन नहीं है, निजवस्तु का निजवस्तु में कर्तृत्वभाव स्वभावभूत है ऐसा निर्णय करके जो बैठ चुका है वो कभी हँसेगा ही नहीं। वो कभी रोयेगा ही नहीं। रोना-हँसना परालम्ब पर होता है। यह श्रीफल रखा हुआ है। अमुक व्यक्ति सोच रहा है कि अच्छा नहीं है यहाँ पर रखना, सो उसे दुःख हो रहा है, मंदिर का माली सोच रहा है, बहुत बढ़िया है, एक और रख जाता, क्यों? उसे मिलने वाला है, प्रसन्न हो रहा है। जो हँसना है, रोना है वह पर वस्तु पर है। जो स्वयं की स्वयं वस्तु है, उसमें ना हर्ष है ना विषाद है। जो है, सो है।

अपने में हर्ष नहीं होता अपने में विषाद नहीं होता। पर के मिलने पर हर्ष होता है, पर के मिलने पर ही विषाद होता है। मैं तो ध्रुव हूँ। ज्ञानी! यदि तू किसी दिन चरण-पादुका पहने तो सामने मार्ग को नहीं देखता है, पर को देखता है, कैसी लग रही हैं? जब तू चलता है तो ऐसे चलता है जैसे जनमासे में चल रहा हो अथवा जैसे कोई निर्ग्रन्थ मुनि भूमि को देखकर चलता है, ऐसे ही बेचारा पैरों को देखकर चल रहा है। जूतों को देखने की जगह पैरों को देख लेता, तो जूते पहनने की आवश्यकता ही क्या थी?

निश्चयनय से जब शुद्धोपयोग में लवलीन योगी है, उस समय करनी का विषय नहीं है, इस अपेक्षा से नहीं है, लेकिन ऐसा कोई समय ही नहीं होता है, जब जीव कर्ता कर्म करण क्रिया से रहित होता हो? विकल्प रहित तो हो सकता है, परन्तु कार्य रहित नहीं हो सकता है। अरे! मुमुक्षु! इस बालक के हाथ में नारियल है, इसने बोला क्या मैं कर्ता हूँ, मैं करण हूँ, मैं कर्म हूँ, मैं क्रिया हूँ? इसने बोला क्या?

यह श्रीफल पुराना-पुराना सा लगा, इसका मतलब क्या होना चाहिए इसको। इसमें परिणमन हुआ है। इसका परिणमन किसने कराया? स्वयं ने कराया। स्वयं कर्ता है या नहीं, इसका परिणमन किसमें हो रहा था? स्वयं में क्रिया है या नहीं? इसका परिणमन किसको हुआ है। स्वयं में कर्म है या नहीं? इसका परिणमन किसके द्वारा कराया गया, इसमें करण है या नहीं है? यह बोल रहा है क्या? इन सबका बोध तुम्हे है क्या? यह इन विकल्पों से रहित है कैसा? विकल्प रहित होने से धर्म से रहित है क्या? अरे मुमुक्षु! शुद्धोपयोग में लीन होने से मुनि कोई जड़ नहीं हो जाता है। विकल्पों से भिन्न हुआ है, ना कि वस्तु के धर्म से भिन्न हुआ। अज्ञानियों ने व्याख्या कर डाली कि सिद्ध पर्याय में हमारी आत्मा शून्य हो गई।

ओंकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः॥ 1॥

मुमुक्षुओ! इस तत्त्व को तुम समझ नहीं पाये ओंकार पर जो बिन्दु है, वह शून्य है, वह शून्य क्यों? शून्य कहा है परन्तु जड़ नहीं हो गई है। आदि, अन्त, मध्य रहित होता है, जिसका सुख अन्त रहित है, त्रैकालिक सुख स्वभाव है वह शून्य स्वभाव है। जगत् में विभाव भाव का परिणमन का अभाव हो चुका है, इसलिए शून्य स्वभाव है ना कि बौद्ध जैसा शून्य स्वभाव जड़ है। जिनागम को अल्प पढ़ा और परागम को पढ़ने बैठ गये, जैनी भाई, उसे तुम समाज में लेकर बैठ गये, अज्ञानता में डूबकर मिथ्यात्व में मत डूब जाना। सीधे समन्वय की दृष्टि में पहुँच गये, क्या समझना? मिथ्यात्व का सम्यक् में समन्वय किस बात का? गुड़ दही कितना ही मिला-मिला कर खा लो, पर उसमें कीड़े पड़ जाते हैं भले ही तुम गुड़दही मिलाकर खा रहे हो। कहो मीठा है, परन्तु दही कभी मीठा होता नहीं है, गुड़ कभी भी खट्टा होता नहीं है। इसलिए होता है खट्टा-मिट्ठा।

अज्ञानी! की दृष्टि है वो तो कहेगा कि दही मीठा हो गया, परन्तु वास्तव में ना दही मीठा हुआ है, ना होगा, ना हो रहा है। मीठा तो गुड़ ही है। एक साथ सेवन कर रहा है, इसलिए ना खट्टा पकड़ पा रहा है, ना मीठा पकड़ पा रहा है। ज्ञानी जीव यही कहेगा कि खट्टा-खट्टा है, मीठा-मीठा है। ऐसे ही मुमुक्षु! तत्त्व का जो निर्णय हैवह भिन्न ही है। इसलिए अज्ञानी खट्टा-मिट्ठा कहकर अपना समय नष्ट कर रहा है। यहाँ जो व्याख्या चल रही है, वो सिद्ध परमेश्वर पर के द्रव्यों के व्याख्यान के विकल्पों से शून्य हैं, लेकिन वस्तु स्वभाव से शून्य नहीं हैं। ऐसे ही अखण्ड शुद्धोपयोग की धारा में लीन योगीश्वर की है। आज तो लोग यह कहने लगे हैं कि मुनिराज पर उपसर्ग चल रहा था वे तो बिलकुल वेदन से शून्य थे, अरे मुमुक्षु! पीड़ा के पीड़ितपने से शून्य होकर बैठे थे, ना कि पीड़ा की वेदना से शून्य होकर बैठे थे।

ज्ञानी! सुन यदि तुझे चींटी काटने लग गई उस समय तू शून्य हो जायेगा कि चींटी काट कैसे रही है? यदि तू शांत ही हो गया तो उपसर्ग किस बात का? पत्थर पर चींटी घूमती है उसको कुछ नहीं होता

है? यदि तू पाषाण हो गया तो उपसर्ग किस बात का? हे जीव! तू जड़ नहीं हो गया, तू चेतन ही है। संवेदन शून्य ही है चींटी के काटने के बाद भी तू चींटी को काटने के भाव नहीं कर रहा है, इस दृष्टि से तू शून्य भाव में है। मैं परभावों पर दृष्टि नहीं रख रहा हूँ, परन्तु जो वेदना चल रही है, इस वेदना को विदित होकर नहीं देखता वेदना को वेदकभाव से वेद रहा है, उसे तू पर से शून्य होकर देख रहा है। जड़ नहीं हुआ हूँ। यदि मुनिराज जड़ हो गये होते तो उपसर्ग दूर होने तक की ही समाधि ली थी। उपसर्ग दूर हो गया सो समाधि भंग हो गई। समाधि के साथ ही मर नहीं गये थे। समाधि के साथ ध्यान में बैठ गये थे। स्वरूप का चिन्तन कर रहे थे, उस काल में भीतर जायेंगे। आप उसको बाह्य ही मानते तो उपसर्ग होने वाले को कैवल्य कैसे हो गया? बाहर-बाहर से कैवल्य होता है क्या? आपकी बात भी सत्य है। ऐसा भी है। जब निर्विकल्प में लवलीन हो जायेंगे तो फिर देह में होते हुए विकल्प शून्य हो जायेंगे तब भी वह केवली होंगे। उपसर्ग हो रहा है, उपसर्ग होते हुए देखकर ही तो समाधि ली थी। वो विषय अलग है कि समाधि में इतने लीन हो गये कि समाधि कैवल्य में परिवर्तित हो गई।

पण्डित जी कह रहे हैं निर्विकल्प ध्यान किसी का होगा नहीं? अरे ज्ञानी! आज भोजन किया या नहीं, क्या-क्या खाया? हम लोग आहार करके आते थे तो आचार्यश्री को सब कुछ बता देते थे। अमुक मुनि का आहार कहाँ हुआ है और क्या-क्या लिया है। इतनी याद तो रहती नहीं है, कम लो ज्यादा अच्छा है। साधु अस्वस्थ भी नहीं हो और राग भी नहीं बढ़ता था। नहीं तो मालूम चला एक चौके में चार बार पहुँच गये, आचार्यों का सोच कितना लम्बा था। भैया! भोजन करने के बाद जब आप अपने कक्ष में गये थे उसी बीच में दूसरे पण्डित जी पहुँच गये। उन्होंने पूछा पण्डित जी! तुम ठीक हो, आप क्या कहोगे? भैया मैं तो निर्विकल्प बैठा हूँ। निर्विकल्प क्यों बोल रहे हैं अर्थात् खा पीकर मस्त बैठे हैं। हे जीव! आनन्द निर्विकल्प नहीं है। जब भोजन करके शांत बैठ गया तो कुछ करने का भाव नहीं आ रहा है तभी तो आनन्द ले रहा है। जब भोजन के बाद तू निर्विकल्प हो जाता है व्यवहार की भाषा में ऐसे ही जब योगी निज स्वभाव में लीन हो जाता है फिर निर्विकल्प का आनन्द होता है, लेकिन शून्य हो जाता है क्या? शून्य हो जायेगा तो आनन्द किस बात का? इस प्रकार से आचार्य भगवन् पुनः कह रहे हैं।

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम्।
स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितः क्लिश्यते ॥212॥ अ.अ.क.

वस्तु अनन्त शक्ति से युक्त है। यहाँ प्रवचन में इतने सारे लोग दिखाई दे रहे हैं। वे सब अपने-अपने स्वभाव में परिणमन कर रहे हैं। ओह! धिक्कार है, जब प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव में परिणमन कर रहा है फिर भी पत्नी सोचे कि मेरा पति बूढ़ा ना हो जाये, ऐसे अभागे पति हैं जो स्वयं धूप में कमा

कमा कर लायेंगे, परन्तु पत्नी को घर में रखे हुए हैं कि तू बाहर नहीं जाना, तेरा शरीर खराब ना हो जाये। तू राग में बह कर उनको घर में बिठाये रखेगा, लेकिन क्या वस्तु के परिणमन को भी रोक पायेगा, पत्नी बूढ़ी नहीं होगी क्या? जिसके लिए तू उसके शरीर को सुरक्षित रखेगा और तू ही काम करके उससे पहले ही बूढ़ा हो जायेगा तो वो तुझे अच्छा कहेगी क्या? हे जीव! जिसके लिए तू देह को सुरक्षित रख रहा है, परन्तु तू ही असुरक्षित है तो सुरक्षित रख किसके लिए रहा है? धिक्कार हो अज्ञानता के लिए। यही कारण है इस तत्त्व को समझने वाले लोग बहुत कम हैं। ध्यान रखना लोक की गणना को तत्त्व की गणना से मत जोड़ना। उसे वही सुन पायेगा, वही झेल पायेगा जिनके भीतर वस्तु स्वभाव की पिपासा होगी। वस्तु स्वभाव जो है वह परिपूर्ण परभावों से भिन्न है, इसलिए शुष्क है। ज्ञानी! तुम जिस-जिस वस्तु को देख रहे हो, जान रहे हो, तुम मात्र देख ही सकते हो, जान ही सकते हो उनमें तू जा नहीं सकता है वो तेरे में आ नहीं सकते हैं।

परवस्तु अन्य वस्तु में कभी प्रवेश नहीं करती है। इतना ही समझ में आ जाये तो सारे सम्प्रदायों का राग हट जाये। मैं स्वतंत्र हूँ, तू स्वतंत्र है तेरा परिणमन तेरे भीतर है, मेरा परिणमन मेरे भीतर है। अज्ञानी निमित्त मात्र है। पंचपरमेष्ठी से संश्लेष सम्बन्ध नहीं है, श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध है। निज के गुण निज में हैं, पर के गुण पर में हैं। परगुणों से मोक्ष और बंध प्रारम्भ हो जाये तो जगत् में किसी का मोक्ष नहीं होगा? पिता मुनि नहीं बना, बेटा मुनि बन गया तो फिर बेटा मुनि बनकर मोक्ष नहीं जा सकता क्या? शिवभूति मुनिराज केवली भगवान् बन गये उनके गुरु महाराज बैठे रह गये। यह स्थूल व्यवहार की बातें हैं कि गुरु का परिणमन शिष्य में है, शिष्य का परिणमन गुरु में है। थोड़ा तो वस्तु स्वभाव पर दृष्टिपात करो। तुम्हारी परिणति जो भी होगी वह तुम्हारे परिणामों से होगी या मेरे परिणामों से होगी? मेरे भावों से तेरी गति होगी या तेरे भावों से तेरी गति होगी? वस्तु स्वतंत्रता पर तो लक्ष्य ले जाओ। मेरे भावों से तुम्हारे बंध मोक्ष में कोई परिणमन नहीं है। आपके भावों से मेरे मोक्ष बंध में कोई रागभूत परिणमन नहीं है। यह क्या लिख रहे हैं इस पर तो ध्यान दो। देखो कलश - "**स्वभावनियतं यतः**" प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव में नियत है। "**सकलमेव वस्तिष्यते**" सम्पूर्ण वस्तु अपने वस्तुत्व गुण से स्वयं ही अनुभूति में आती है, लिखी जाती है।

"**स्वभावचलनाकूलः किमिह मोहितः क्लिश्यते**" आचार्य भगवन् कह रहे हैं प्रत्येक वस्तु अपने स्वभाव में निमग्न है, फिर भी अज्ञानी प्राणी मोहित हो रहा है। क्यों क्लेश को प्राप्त हो रहा है। जब प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने स्वभाव में स्वतंत्र है, पर में प्रवेश करता नहीं है, पर को प्रवेश देता नहीं।

अण्णोण्णं पविसंता दिंताओगासमण्ण मण्णस्स।
मेलंता वियणिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ॥ 07/पंचा.॥

प्रत्येक द्रव्य अवगाहनत्व शक्ति से युक्त है। एक दूसरे को अवगाहनत्व दे रहा है फिर भी ज्ञानी

क्या परके स्वभावभूत में प्रवेश कर रहा है? परके विभावभूत में प्रवेश कर रहा है क्या? इतना तो सीख लिया कि आत्मा भिन्न है, पुद्गल भिन्न है तूने यह तो अच्छा सीखा, इससे अधिक और सीखने की आवश्यकता है। 'पंचास्तिकाय' जैन दर्शन का उच्चकोटि का रसायन शास्त्र है। गीता में बहुत सारे श्लोक पंचास्तिकाय के पद्यानुवाद हैं। राधाकृष्णन ने एक पुस्तक लिखी है सप्त दर्शनम्। जब जैन दर्शन की व्याख्या की तो उन्होंने स्पष्ट लिखा जो कुछ मैं लिख रहा हूँ उसे सम्पूर्ण नहीं समझना। जब जैन दर्शन को लिखने बैठे, उन्हें कोई पुस्तक नहीं मिली उन्होंने पंचास्तिकाय को जैन सिद्धांत में लाकर रख दिया। जब सब कुछ बना ही रखा है तो और कुछ बनाने की क्या आवश्यकता? जब भी तत्त्व की व्याख्या होगी पंचास्तिकाय से होगी। समयसार जो ग्रन्थ है वह विचारभूतता के साथ-साथ इस ग्रन्थ में सर्वाधिक दृष्टांत का बाहुल्य है। अध्यात्म सम्वेदनभूत सम्वेदन की दृष्टि रख रहे हैं। दर्शन और तत्त्व की गवेषणा है वह पंचास्तिकाय में है। सोना, शिल्पकार, स्वर्णकार यह सब दृष्टांत हैं। इस ग्रन्थ में दृष्टांत को देकर दृष्टांत समझाया गया है और पंचास्तिकाय ग्रन्थ में शुद्ध सिद्धांत की व्याख्या है।

हे जीव! जब प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव से युक्त है, फिर क्यों परवस्तु रूप होकर क्लेश को प्राप्त हो रहा है। निज स्वभाव परद्रव्य का परिणमन किंचित् मात्र भी नहीं कर रहा है। निज भाव में पर वस्तु का परिणमन, पर में प्रवेश, भिन्न द्रव्य का होता नहीं है। फिर भी रागी जीव मोह भाव से ग्रसित हुआ परद्रव्यों को निज ही स्वीकार रहा है। इस बात को आचार्य भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी ने दो सो बारह नम्बर के कलश में कहा - जब नियत है सकल वस्तु का परिणमन, निजस्वभावभूत तब भी अज्ञानी जीव मोह से ग्रसित होकर परके परिणमन का कर्ता बन रहा है। तटस्थ होना स्वीकार लेना बहुत कठिन साधना है। परके राग-द्वेष में लिप्त होकर जी पाना बहुत सरल है। इसी में तो जी रहा है जिनसे कोई वास्तविकता नहीं है, जिनसे कोई परिणमन नहीं है, उन द्रव्यों के प्रति भी जीव का राग चल रहा है। किसी ने शुभ किया, किसी ने अशुभ किया, किसी ने शुभाशुभ इससे मेरा क्या होता है? पर का शुभ मेरे हित का कारण नहीं है। पर का अशुभ मेरे अहित का कारण नहीं है। तब भी जीव पर के शुभाशुभ पर भी निज का शुभाशुभ देख रहा है। पर के शुभाशुभ में निज का शुभाशुभ देख रहा है, इसलिए आचार्य पद छोड़ना पड़ता है कि आप प्रवृत्ति कैसी कर रहे हो, शिष्यों को देख रहे हो, आप शुभ कर रहे हो या अशुभ कर रहे हो। आप अपने आप में अधिकारी बने हो, शुभाशुभ छोड़ो, व्यवहार पक्ष कहेगा यह तो उपदेश सम्यक् है, परन्तु परमार्थ दृष्टि यह कहेगी कि पर ही पर है। कुछ अन्तर नहीं हुआ गृहस्थ था तो रागियों को सम्भालता था यहाँ तू वैरागियों को सम्भालने में लग गया है, निज को सम्भाल ले। यह भी सत्य है आचार्य भगवन्त को अपने आपमें बैठकर निज के स्वभाव का चिन्तवन करना होता है कि मैं इसलिए नहीं आया हूँ। यह मध्य का विकल्प आ कैसे गया? आप इसमें उलझ कर मत बैठ जाना, क्योंकि यह आपको आपसे दूर करने का मार्ग है। भेद पंचाचार के पालन के साथ, अभेद पंचाचार पर

भी दृष्टि रखना अनिवार्य है। जो निजात्मा को अपने में और पर को पंचाचार में जोड़ रहे हैं उनका नाम आचार्य है, परन्तु एक ऐसा भी समय आना चाहिए जब मात्र आत्मा को आत्मा में ही लगाना चाहिए।

हे श्रमण! पर का उपकार छोड़ दो। निज उपकार में लवलीन हो जाओ, स्व पर के उपकार में यदि कोई महान् है, तो वह स्व उपकार है। इसलिए लक्ष्य में यह रखना अनिवार्य है कि मैं निज में रमण कैसे करूँ? मैं निज में मग्न कैसे होऊँ? मुझे निज में मग्न होना है, तो पर के मग्नपने से दूर होना है। आनन्द का वेदन तो करो। किसमें लिप्त हो रहे हो, किस में लवलीन हो रहे हो, निज में रमण करो। जो बाहर के द्रव्य रोक रहे हैं उनसे अपनी सोच बदल लो। वस्तु बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है, सोच बदल लो। 'समयसार' कोई भिन्न वस्तु नहीं है, अध्यात्म कोई भिन्न वस्तु नहीं है, जो जीव द्रव्य की व्याख्या गोम्मटसार जीवकांड, कर्म काण्ड आदि ग्रन्थों में है वही जीव द्रव्य की व्याख्या ''समयसार जी'' में है। अन्तर इतना है एक में शुद्ध द्रव्य की व्याख्या है, एक में अशुद्ध द्रव्य की व्याख्या है। एक का सोच परभूत है, एक का सोच पराभूत है। जितने सोच में हैं, वो सब पर सोच में हैं। निज सोच में सोच नाम की कोई वस्तु नहीं होती। जितने भी श्रोता दुःखी हैं, जितने भी जीव सुखी हैं। आदमी रोता कब है? दुःखी कब होता है? जब-जब वस्तु नहीं मिले तो वस्तु तेरी है या पर है? पर है। मेरी वस्तु तो मेरे से भिन्न कभी होती ही नहीं है। मेरा ध्रुव ज्ञायक भाव मेरे से पृथक् होता ही नहीं। मेरा चेतन्यभाव मेरे से भिन्न होता ही नहीं। मेरी चित्त् शक्ति मेरे से भिन्न होती ही नहीं। मेरी प्रभुत्वशक्ति मेरे से भिन्न होती ही नहीं। मेरा निजनाथ मेरे से पृथक् होता ही नहीं। मेरा निजनाथ मेरे से कभी आज तक अलग हुआ ही नहीं और कभी होगा भी नहीं। जो मेरे से भिन्न होता है वो मेरा होता ही नहीं। जो मुझे छोड़ेगा, जिससे मैं छूटूँगा वो मेरा होगा ही नहीं। जो-जो आँखों से आँसू टपका रहे हैं, अपने कारण ही टपका रहे हैं। अब तो आपको स्पष्ट स्वीकारना ही होगा 'जो भी आँसू टपका रहे हैं वह सब पर के कारण ही टपका रहे हैं, जितने हँस रहे हैं वे सब पर के कारण। पर मिल जाये तो हँसता है, पर जाये तो रोता है। मेरा मेरे से कभी पृथक्पना होता ही नहीं। साधना के काल में ही जीव इस सत्य को समझ ले, तो विश्वास रखना उसकी साधना सहज हो जायेगी। जैसे ही तुम पर पर लक्ष्य करोगे वैसे ही तुम निज से दूर हो जाओगे। एक क्षण को विचार कर लो। मुमुक्षु! अमुक बालक मेरे से बहुत बात करता है। हे ज्ञानी! जैसे ही आपने ऐसा चिन्तवन किया तो तुम्हारे ज्ञान में परज्ञेय आ गया और परज्ञेय आने से तुम्हारी दृष्टि निम्न हो गई। हे जीव! जो आप बोल रहे हो वह पर सापेक्ष है। निमित्ताधीन है। आत्मानुभूति, आत्मबुद्धि, आत्म प्रीति और आत्म शांति पर सापेक्ष नहीं होती है वह निज सापेक्ष ही है। पानी गरम है? क्या पानी गरम है? क्या पानी गरम नहीं है?

हे ज्ञानी! पानी गरम है, व्यवहार से यही कथन होगा, वास्तव में पानी गरम है क्या? पानी गरम होता ही नहीं है। अग्नि का सहयोग ना होता तो पानी गरम कैसे होता? परन्तु पानी में गरम होने की

सामर्थ्य ना होती तो अग्नि का संयोग क्या करता? यह निमित्त नैमित्तिक धारा है। लेकिन शुद्ध नैमित्तिक को देखोगे, निमित्त को छोड़ दीजिए तो पानी गरम है क्या? पानी तो शीतल ही है, जैसे पानी तो शीतल ही है, पानी गर्म पर निमित्त से हुआ है, निज स्वभाव में पानी शीतल ही है। निज स्वभाव में पानी शीतल है, ऐसे ही प्रत्येक द्रव्य निज स्वभाव में निजभूत ही है, परात्मभूत नहीं है। यदि दुःख का कारण ही समझ में नहीं आया और दुःखी समझ लिया। दुःखी होने को ही सबसे बड़ा सुख मान लिया, यही सबसे बड़ा दुःख है। खेद है कि दुःखी होने को ही सुख मान रहा है। शादी नहीं हो रही थी सो रो रहा था, मेरी शादी नहीं हो रही है। अरे अज्ञानी! बर्बाद होने के लिए रो रहा है। दुःखी होने के लिए दुःखी हो रहा है, सबसे बड़ा हास्यास्प्रद यही है। अहोतात्! आपने शादी रचाकर क्या किया? मुझे जन्म देकर तुम कितने सुखी हो गये? मात्र लाल की अनुभूति के सुख का वेदन कर रहा है, परन्तु सुखी कहाँ है? दुःखी होने के लिए दुःखी हो रहा है। मेरी शादी नहीं हुई। अभी तुझे पता नहीं है तू अभी शांति से भोजन कर लेता है, परन्तु दो को खिलाने के लिए और कमाना पड़ेगा कि नहीं तुझे? अब संतान नहीं हुई सो और रो रहा है, अब और तनाव हो गया। दुःखी होने के लिए दुःखी हो रहा है। लोक में जो दुःख-सुख के जोड़े की बात चलती है वो दोनों ही दुखिया हैं। इस बालक ने तुम्हारे पैर छू लिये तो सुखी हो गया, गाली दे दी तो दुःखी हो गया। हे ज्ञानी! तू यह तो बता इसके पैर छूने पर तू सुखी हो रहा है तो उससे राग बढ़ा कि नहीं? गाली देने पर द्वेष बड़ा कि नहीं। एक में राग, एक में द्वेष। तू कह रहा है दुःख-सुख के जोड़े हैं, दोनों जोड़े दुःख रूप ही हैं संसार के दुःख को तो दुनिया दुःख मान रही है परन्तु सुख को दुःख क्यों नहीं मान रहे हैं? जिसे तू सुख कह रहा है और लोभ कह रहा है वह दुःख के बंध का कारण है। इच्छाओं की पूर्ति का नाम सुख है। इच्छाओं की पूर्ति करोगे तो पापास्रव होगा कि नहीं? पापास्रव होगा तो दुःखी होगा कि नहीं? ओहो!अज्ञानियों की भीड़ तो देखो दुःखी होने के लिए सुख की बात कर रहा है। तुम्हारा सुख भी दुःख है, दुःख तो दुःख लग ही रहा है। दुःखी होने के लिए सुख खोज रहा है?

हे भगवान्! मुझे पुण्यास्रव हो जाये? क्यों हो जाये? जिससे खूब सम्पत्ति मिलेगी, भोग सामग्री मिलेगी, सुन्दर शरीर मिलेगा, उससे मैं दूसरों को ठग लूँगा। श्रृंगार करूँगा और दूसरे के शील को चुरा लूँगा फिर उससे क्या होगा? पापास्रव कमा लूँगा फिर नरक में चला जाऊँगा दुःखी होने के लिए सुख खोज रहा है। कभी समझ में नहीं आये तो आज समझ लेना और जिन अज्ञानियों ने उल्टा समझ लिया हो उन्हें जरूर समझा देना। दुःखी होने के लिए सुख खोज रहा है। **हे परिग्रही! तुष मात्र भी परिग्रह निगोद भेज देता है। तू तो दुकान की दुकान चला रहा है तेरा क्या होगा भाई? एक सुई की नोंक के बराबर भी दिगम्बर मुनि पर द्रव्य को ग्रहण करता है तो उसे निगोद जाना पड़ता है। अहो श्रावको! तुम ढेर के ढेर रख रहे हो तुम्हारा क्या होगा?** सुखी होने जोड़ रहा है या दुःखी होने के लिए जोड़ रहा है?

'' परिग्रह-चिन्ता दुःख की खान फिर भी तू लगा रहा है पूरी जान''

परिग्रह की चिन्ता दुःख ही है। आँखें चली गईं तो अब दुनिया को देखने की चिन्ता भी गई। उन आँखों से दुनिया को देखता था, अब गईं सो अपने आप को देख रहा है। जीव का चिन्तवन देखो। सोच ही तो बदलना है। सोच बदल लिया तो अन्धेपन में भी आनन्द ले रहा है। सोच ना बदलता जीव तो अन्धेपन में भी रोता। इसका मतलब यह नहीं है कि तू अपनी आँखें फोड़ दे। सुख के लिए क्या कर रहे हो? सुख के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता है। भीतर की आँखें खोल लो तो बाहर की आँखें कुछ नहीं करतीं। अभी तू बीस साल का हुआ है और रो रहा है कि कुछ कर पाऊँगा या नहीं? भाई! करने की जरूरत क्या है? यह वस्त्र पहने बैठे हो, इसलिए दुःख है उतार कर फेंक दो ''परिग्रह चिन्ता दुःख ही जान'' यदि मेरा पुण्य ना होता तो तुम खिलाने वाले क्या कर सकते हो? तू बोल क्या रहा है? सब कुछ मिल जाये, खाओ पिओ मस्त रहो तो अरे चार्वाक! पुद्गल का परिणमन चल रहा है, खाओ-पिओ मस्त रहो, कह दो धीरे से परद्रव्य है। हे ज्ञानी! जो-जो उपयोग करेगा, वो उपयोग से करेगा। उपयोग से उपयोग कर रहा है, वह परिग्रह का ही सेवन कर रहा है। पर का ही सेवन कर रहा है। परद्रव्य भिन्न है, सुखी नहीं है, दुःखी ही है। यदि इस बालक को भी देखा है तो उपयोग पर में ले गये हो, पर में नहीं होता तो उपयोग क्यों? जिस सामग्री का उपयोग कर रहे हो, बिना उपयोग लगाये उपयोग कैसे? हे जीव! निज में तेरा उपयोग होता तो पर में उपयोग कैसे? निज में तेरा उपयोग है तो पर का उपयोग क्यों? जो पर का उपयोग कर रहा है उसका निज में उपयोग अभी है ही नहीं? चलिये गहरे समयसार में। जो पर का उपयोग कर रहा है, एक सिद्धांत। उसका निज में उपयोग है ही नहीं। जो-जो पर द्रव्यों का उपयोग कर रहे हैं उनका निज में उपयोग है ही नहीं। जिनका निज में उपयोग है वे पर में जाते ही नहीं और पर का उपयोग करते ही नहीं। धिक्कार है। दुःख को सुख मानने की मान्यता भीतर बैठी है ठूस-ठूस कर कई बार चिन्तवन लगाओ तो कम से कम एक बार ही चला जाये। दुःख को सुख मानने की मान्यता भीतर बैठी हुई है। लोक में सम्यक्-दृष्टि जीवों की संख्या बहुत कम है, क्योंकि सुख-दुख का वेदन कर रहा है संसार वह इन्द्रिय सुख को सुख मान रहा है और इन्द्रिय सुख की प्राप्ति ना होने पर दुःख मान रहा है। पर सुख दुःखभूत है यह इनको कोई जानकारी नहीं है। जितने सम्प्रदाय लोक में द्रष्टव्य हैं, साधु महात्मा जो लोक में घूम रहे हैं वे जब कल्याण की बात करते हैं, तो मात्र इसी कल्याण की बात करते हैं कि किसी गरीब की गरीबी दूर हो जाये तो इसका दुःख दूर हो जाये। किसी के लड़का नहीं हो रहा है और लड़का हो जाये तो कल्याण हो गया, कोई रोगी है उसके रोग ठीक हो जायें तो कल्याण हो गया। कल्याण एक परमार्थ ट्रस्ट है इससे कल्याण होता है क्या? आज पूरे देश में कहीं भी घूम आओ बड़े-बड़े तीर्थों में कल्याण शब्द लिखा भी मिल जायेगा, परमार्थ शब्द भी लिखा मिल जायेगा परन्तु वहाँ जाकर देखना अफीम, भाँग जैसी सामग्री मिल जायेगी और कहते हैं कल्याण मार्ग। बेटे-

बेटी की शादी कर दी और कहेंगे हमारा कल्याण हो गया लोक में जैसे कल्याण शब्द का प्रयोग हो रहा है, यह अज्ञानमयी कल्याण शब्द है। छोटे-छोटे बच्चे 18-20 साल के बालक इन लोगों के साथ छल हो रहा है, इनकी बुद्धि का हरण किया जा रहा है, बेटा ऐसे ही घूमता रहेगा कुछ कमाना जानता नहीं ऐसा बोल-बोल कर इनकी बुद्धि को कुंठित कर दिया है। बस कमाना ही धर्म है। छल है, इन लोगों की बुद्धि के साथ। कैसे इससे आप संतुष्ट हो गये? कुछ कमाने लग गये और दूसरे को खिलाने लग गये, दूसरे ने जन्म ले लिया इससे तुम संतुष्ट हो गये, लेकिन मेरे मित्र! बहुत बड़े विराट आनन्द से आपने अपने आपको दूर कर लिया है। तात्पर्य समझो यदि मैं भी आज युवा हूँ तो अज्ञान में जी रहा हूँ। विराट आनन्द से अपने आपको दूर कर रहा हूँ। चारों ओर परिधियाँ नहीं थीं, जहाँ कोई सीमाएँ नहीं थीं, जहाँ कोई दीवारें नहीं थीं। विराट-विशाल मात्र आनन्द-ही-आनन्द है उसका उपयोग करके हम सम्प्रदायों की परम्परा में मर्यादाओं की दीवारों में कहीं और विशाल होना चाहिए था। कहीं ना कहीं वो सीमाएँ भी छोड़नी चाहिए थी, असीम आनन्द की धारा में नहीं जा पा रहे हो, कहीं कोई शिष्य, कहीं कोई शिष्य दिखाई देता है। मात्र आत्म आनन्द, बहुत सीमा में आ चुके हो। यह भी कारण है।

इस शब्द पर ध्यान दो। 'मुनि साथ विचरें' यह द्वैत भाव है। मुनि एक विचरे यह अद्वैत भाव है। साथ विचरण में जो आनन्द नहीं है जो एक विचरने में आनन्द है। विचरण तो एक का ही एक में होता है। साथ तो पंचम काल का नियोग है, कि पंचमकाल में एकल विहार नहीं होता है। यह पंचम काल की बलिहारी है, एकल विहार नहीं होता है। जब सबकुछ छोड़ चुके हैं फिर भी परको साथ लेकर परका विकल्प क्यों करूँ? एक माही एक विराजे।

एक में एक को निहारो। एक में योग है, एकत्व में जाकर अखण्डत्व को देखो। विशालता से दूर क्यों हो? आप मुझे किसी भी जैन सम्प्रदाय से जोड़कर मत चलना। क्यों? तुम्हारे सम्प्रदाय बहुत छोटे हैं इनमें विशालता नहीं है। विराटरूप है हमारा कैवल्य में कोई सम्प्रदाय नहीं है। जगत् के सम्पूर्ण सम्प्रदाय कैवल्य में झलकते हैं। सारे जगत् के चराचर द्रव्य केवली के ज्ञान में झलकते हैं। ज्ञेय अल्प हैं, ज्ञान विशाल है। तीन लोक हैं, ऐसे कोटि-कोटि तीन लोक क्यों ना होते वो भी केवली के ज्ञान में झलकते हैं। दीवारें खड़ी हुई हैं इनको तोड़ने में लग जाओगे तो जहाँ जहाँ ईंट गिरेगी वहाँ हिंसा होगी। तोड़ना शब्द ही हिंसा है और तोड़ने में बहुत समय लगेगा, इसलिए दीवारें मत तोड़ो, आप ऐसा उपक्रम करो आप दीवारों से भी ऊपर चले जाओ तो तुम पुनः विशाल हो जाओगे। हम दीवारें नहीं तोड़ते दीवारों के ऊपर चले जाते हैं। यह बहुत बड़ा दार्शनिक पक्ष है इसमें कुछ है। जितने पंथ पक्ष हैं सब दीवारें हैं, इनको तोड़ने में समय बर्बाद करेगा पूरी पर्याय नष्ट हो जायेगी। पर अज्ञानियों के पंथ टूटने वाले नहीं हैं, लेकिन इन सब पंथ-पक्ष के ऊपर जो विमान होता है, भले होता जमीन पर है परन्तु उड़कर ऊपर चला जाता है तो तुम्हारा यह सारा नगर नीचे हो जाता है। तत्त्वज्ञ ज्ञानी जीव किसी को नीचे नहीं करता,

किसी की दीवार नहीं तोड़ता। मुमुक्षु जीव स्वयं को बहुत ऊपर ले जाता है। जितनी दीवारें बड़ी-बड़ी होती हैं यह सब नीचे आ जाती हैं। आप ऊपर चले जाना। अपने आप सब नीचे हो जायेंगे। जब तक तुम्हारा पर को नीचे करने का भाव है तब तक तुम ऊपर जा नहीं पाओगे। यह भी ध्यान रखना। दूसरे को नीचे करने का भाव त्याग दो, मात्र आत्म विकास करो, उत्कृष्टता का मार्ग है। हे परमाणु! तुम स्कन्धों को दोष मत दो, तुम स्कन्ध को छोड़ दो। तुम परमाणु हो जाओगे, अपने आप एक समय में चौदह राजु गमन कर जाओगे। एक शुद्ध परमाणु की तीव्र गति एक समय में चौदह राजु, एक शुद्ध जीव की गति एक समय में सात राजु। साधना सुदृढ़ चल रही है, पण्डित जी! आप मानिये लोक ऐसा ही है, आपके तन का, आपके मन का, आपके वचन का, उपयोग कर फिर आपको ऐसे फेंक देंगे जैसे दूध से मक्खी फेंक दी हो। यह लोक है, स्वार्थमयी है, तेरे तन का दुरुपयोग कर लेगा, तेरे मन के चिन्तन का दुरुपयोग कर लेगा, तेरी वाणी का दुर्वचन कर लेगा। फिर ऐसे ही छोड़ देगा। **अपने लगते सभी हैं, परन्तु अपने होते नहीं हैं।** मेरा देह मेरा नहीं है, पर है। अन्यद्रव्य है। अन्य-अन्य है, अन्य अनन्य नहीं है। अन्य में अनन्यपना नहीं है। अनन्य-अनन्य ही है। मेरे देह का धर्म अनन्य है। मेरा देह अन्य है। जिनको आप कह रहे हो शुष्क हो रहा है। हरी घास कितनी हो जाती है? हरी घास तूफान की आँधी में कितना उड़ पाती है। गिर जाती है और सूखा तृण, हे मुमुक्षु! इस हरेपन को सुखा ले तो तू उड़ जायेगा, जब तक हरा रहेगा तब तक गिरता ही रहेगा। राग की अंधियारी गिराती रहेगी। तू राग की अंधियारी को सुखा ले, तू अपने आप उड़ जायेगा। इस हरियाली में तू पानी डालता रहेगा तो सूखेगी कैसे? इसलिए पानी डालना बंद कर दे राग को आप तो मात्र कमा-कमा कर ले जाओगे, और बेटा कहे कि पिताजी मैं मुनि बन जाऊँ तो वो तुम्हें तीन काल में अनुभूति देने वाला नहीं है। कमाऊ पूत को कौन छोड़े? दस पन्द्रह दिन दुकान पर जाना छोड़ो, दुकान पर जाना नहीं और कहना यह चाहिए, वह चाहिए और जाप करते रहना भगवान् की। मालूम पिता क्या बोलेगा? भैया! कुछ करना धरना है नहीं, घर से भाग जा महाराज के पास चला जा, उसी दिन पैर छू लेना।

वैरागी जीव परिग्रह को स्वीकारता ही नहीं है। परिवार के लोगों से दीक्षा लेने की अनुमति लेना बहुत बड़ी बात है क्या? बहुत सरल बात है। मैंने तो मौन ले लिया था, बोलना ही नहीं था। काम तो मैं कुछ करता नहीं था। घर में रहो, ध्यान करो, बोले कि फँसे।

एक सम्राट् था, उसे सन्तान नहीं थी। लोगों ने कहा साधु के पास चले जाओ हो सकता है हो जाये। साधु महात्मा से बोले महाराज मेरे कोई सन्तान नहीं है। उन्होंने आशीर्वाद दे दिया कि जाओ हो जायेगी। फिर मुनि ने बाद में देखा कि राजा के संतान का नियोग ही नहीं है। साधु हो गये परेशान, अब बैठ गये तपस्या करने, मेरी साधना का फल है तो मैं ही राजा के यहाँ संतान बन कर जन्म लूँ नहीं तो मेरे वचन झूठे हो जायेंगे। बेचारे साधना करते रहे और राजा की रानी के गर्भ में आ गये, मरण करके। नौ महीने

लटके रहे, जन्म हुआ तो निश्चय कर लिया ओह! एक बार बोला तो नौ महीने लटक गया। अब तो मैं बोलूँगा ही नहीं। अब संतान ने जन्म तो ले लिया, लेकिन गूंगी संतान के लिए फिर परेशान। अब दुनिया के देवी-देवताओं को फिर भजा। सारे जगत् में उसने सब कुछ कर लिया। जितने झाड़ा फूँकी करने वाले थे, एक भी ठीक नहीं कर पाया उस बालक को, दस बारह वर्ष का हो गया, एक दिन अपने उद्यान में घूम रहा था, तो उद्यान में एक शिकारी जाल फैलाये हुए था, परन्तु वहाँ कोई चिड़िया नहीं आये, कोई चिड़िया नहीं दिखी। कहीं एक डाली पर चिड़िया बोल पड़ी। जैसे ही बोली सो शिकारी ने पकड़ लिया, तो बालक के मुख से पुनः निकला कि तूने बोला ही क्यों जो फंस गई। यह शब्द सुनते ही बहेलिया महाराज के पास पहुँच गया कि अब तो इनाम मिलेगा। महाराज! आपका बेटा बोल गया। आज तो मुँह माँगा इनाम मिलेगा, बुलवाओ फिर से, तो वह अब बोले ही नहीं। जब बालक बोला नहीं तो राजा को गुस्सा आ गया कि यह मेरी हँसी कर रहा है, इसको फाँसी दी जायेगी। बेचारा फँस गया, मैंने बोल दिया तो इसे फाँसी और लग गई, लेकिन जब राजा के पास गया तो जल्लादों से बोला कि जब भी मेरी फाँसी हो तो राजा और राजकुमार से मिलवा देना फिर फाँसी चढ़वा देना। अन्तिम दिन था फाँसी का सो राजा और राजकुमार को बुलवाया अब कहता है, बेटा तुझे पता है मुझे फाँसी का दुःख नहीं है, परन्तु मेरी मृत्यु के बाद भी लोक में अपवाद हो जायेगा कि मैं झूठ बोल कर मरा। तुम एक बार सोचो कि तुम्हारे बोलने से मैं बोला अब तुम नहीं बोलोगे तो मुझ अपराधी की हत्या होगी तो तुम्हें पाप पड़ेगा कि नहीं पड़ेगा? बालक सोचता है बात तो सही है। निर्दोष आदमी मृत्यु को प्राप्त हो रहा है, बोल देना चाहिए। फिर कहता है राजा से राजन्! मैं बोला था उद्यान में, लेकिन सुनो अब बोलूँगा नहीं। तुम कितने ही उपाय कर लो, क्योंकि मैं एक बार बोला तो तेरी रानी के गर्भ में नौ महीने लटकना पड़ गया, चिड़िया बोली सो जाल में फँस गई। यह शिकारी बोला सो फाँसी लगने लग गई अब मैंने सब बोलने वालों को देख लिया है, अब क्या होगा इसलिए चुप बैठ जाओ। जिन-जिन को फाँसी लगवाना हो सो खूब बोलो, फांसी नहीं लगवाना हो अपने आप में तो आज से मौन ले लेना। पक्का। मौन ले लो। ज्यादा नहीं बोलना। कम-से-कम इतना ही मौन ले लो। जो मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत होगा उतना ही बोलूँगा, व्यर्थ का भाषण नहीं करूँगा।

तोता पेड़ पर क्यों रोता? जो दूसरे की नकल उतारता है उसे तोते की जैसी पर्याय मिलती है। समझ में आ गया **''परिग्रह चिन्ता दुःख ही जानो।''** बात समझो गहरे में - **परवस्तु निज में प्रवेश करती नहीं, तू परवस्तु में प्रवेश करता नहीं। परवस्तु के राग में लिप्त होकर, कर्म का बंध करके अपने विराट आनन्द में विघ्न अवश्य करता है।**

ज्ञेय आप बने हो, पराधीन ज्ञेयों पर दृष्टि जा रही है। एक बालक से कहा भी देख कि कैसे पागल लोग हो रहे हैं मशीन बन्द करके बैठे हैं, परन्तु चित्त बंद नहीं हुए हैं। कमाओ-कमाओ। आप खड़े थे

और चिन्तवन क्या था, यह विचारा अपने विराट ज्ञान को नष्ट कर रहा है। अपनी पूरी पर्याय को नष्ट कर लेगा। यह निर्णय करने से शून्य रह गया। एक समय लगाता है उसको भरने में, दूसरा समय लगाता है उसको निकालने में। फिर भरने में, फिर निकालने में दोनों के बीच में और कुछ है? दुकान को भर रहा है दुकान को खाली भी कर रहा है। मात्र भरने के लिए पहले भरता है फिर दूसरों के लिए खाली करता है। मात्र भरने के लिए। लोभ किया तूने पेट-पेटी भरने के लिए और भगवती जिनवाणी की दृष्टि में आत्मा को पाप कर्म की प्रकृतियों को भरने के लिए। इसलिए साधु बनना पड़ता है। मैंने तो पक्का निर्णय कर लिया है, जो अन्दर का गद्गद् भाव है वह चेहरे पर आता है। मेरा तो पक्का निर्णय है कि साधु बनने के लिए साधु नहीं बना हूँ। साधु भी ना बनना पड़े इसलिए साधु बना हूँ। जो स्वानुभूति है उसकी अनुभूति लेकर विराट तट पर पहुँचना है तो साधु बनकर रहना पड़ेगा यदि मैं इन जैसा बनकर रहूँ एक दुकान पर बैठा-बैठा सब कुछ करता हुआ पागल ही हो जाऊँगा, क्यों? जो अन्दर की विराट अनुभूति की विशालता है उसकी अनुभूति क्या ले रहा है? कभी लेने में समय जाता है कभी देने में समय जाता है। मैं सोचता हूँ कि मैं कभी लेने जाता हूँ, कभी छोड़ने जाता हूँ, वह भी सब छूटजाना चाहिए इनमें भी दो घण्टे हो जाते हैं। आहार, विहार, निहार इन सब से भिन्न हो जायेगा फिर मात्र चलेगा विहार। फिर नगरों में विहार नहीं होगा, भारत की भूमि पर विहार नहीं होगा, निज आत्म प्रदेशों में विहार होगा, तभी सम्भव है जब आहार, विहार, निहार भी बन्द हो जायेगा। तब मात्र चलेगा विहार। जब तक यह बन्द नहीं हो रहा है तब तक यह बन्द मत कर देना, सड़ जाओगे। जो साधु एक दिशा में रुक गया समझो उसकी साधना सड़ गई जाम हो गई। गाड़ी नहीं चले तो वो भी जाम हो जाती है। इसलिए एक दिशा में रुकने का विचार मत कर लेना जीवन में, मठाधीश बनकर। ज्ञानी! तेरी साधना सड़ जायेगी। अपनी सोच को शौच करना होगा। बहुत विशाल शौच बनाने की आवश्यकता है।

अलग-अलग नगरों में अलग-अलग साधना करते दिखोगे तो आप मायावी दिखोगे, साधना तुम्हारी उल्टी है। एक जैसी होना चाहिए। जो अपनी साधना को सम्भाल लेता है उसको प्रभावना करने की जरूरत नहीं है। जो चर्या को बदल लेते हैं कि अब ठण्डी का मौसम है अब बाहर नहीं निकलना अधिक समय तक कमरे में ही बैठे रहना, बस दो समय ही निकलते हैं, शुद्धि को गये और आहार के लिये, यह बताओ कि कोठा खाली नहीं किया और कोठा भरने चले गये। बीमारी होगी उससे चित्त की शुद्धि नहीं होगी। आप कमरे में बैठे-बैठे तत्त्व का उपदेश नहीं करोगे। पंचम काल है। तत्त्व का उपदेश होना ही चाहिए। आप कहो कि वाचना कर लूँगा, स्वाध्याय कर लूँगा आप इस काल में इतने महान् नहीं हो कि अध्ययन करते-करते, अपने आप को बचाकर रख पाओगे। शरीर को थोड़ी ठण्डी, गर्मी सहन करने दो। **शीत-ग्रीष्म की वेदना का वेदन करो। शीत-ग्रीष्म की वेदना का वेदन नहीं करोगे तो तुम्हारी सहनशक्ति समाप्त हो जायेगी।** शीतकाल और ग्रीष्मकाल दोनों में विहार होना चाहिए।

मात्र वर्षाकाल में ठहरना चाहिए। अहिंसा के लिए। मृदुल चर्या नहीं।

जितने त्यागी हैं वे सब मुझे देखकर नहीं आये हैं। जिसे देखकर आये हैं वह कुछ और है। वो रत्नत्रय धर्म है, जिसे देखकर सब इस मार्ग पर आये हो। आप कहो कि वात्सल्य देखकर आये हो। सब उसी रत्नत्रय धर्म के अंतर्गत है। सम्यक्त्व का अंग है, वात्सल्य। यथार्थ मानो जितने जीव यहाँ प्रवचन कक्ष में बैठे हैं वे सब तत्त्व-पिपासु लोग हैं। मृदुल चर्या करने वाला भी, मृदुल चर्या को हृदय से स्वीकारता नहीं है। मृदुल चर्या में स्वयं चलने वाला जीव भी मृदुल-चर्या को स्वीकारता नहीं है। गलत जीव को भी गलती महसूस होती है। यदि वास्तव में किंचित् भी तत्त्व पिपासु है तो गलती महसूस करेगा। कोई जड़मति है उसे तो भगवान् भी नहीं सुधार सकते।

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत्।
निश्चयोऽयमपरोऽपरस्य कः किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि ॥213/अ.अ.क.॥

इसलिए "**वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो**" जो वस्तु है वह एक वस्तु रूप है। इस लोक में एक वस्तु दूसरी वस्तु की होती ही नहीं है। दूसरी वस्तु दूसरी वस्तु का क्या कर सकती है। अन्य वस्तु अन्य वस्तु का क्या कर सकती है? "**किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि**" बाहर में पड़े होने पर भी कोई वस्तु लोक के बाहर की वस्तु का क्या कर सकती है? नहीं कर सकती है।

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः किंचनापि परिणामिनः स्वयम्।
व्यावहारिक दृशैव तन्मतं नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात्॥ 214/अ.अ.क.॥

अन्य वस्तु, अन्य वस्तु को कुछ करती है। यदि ऐसा कोई कहता है तो यह तो मात्र व्यवहार का ही मत है। परन्तु "**तन्मतंनान्यदस्ति किमपीह निश्चयात्**" परन्तु निश्चय नय से स्वयं परिणामी वस्तु स्वयं में परिणमनशील है। निश्चय नय से कोई भी वस्तु किसी भी वस्तु का कुछ भी नहीं करती है।

तेरा निज का ही अविकार अविकारी भाव अविकारी बनायेगा। तेरा निज का विकार ही विकारी बनायेगा। परवस्तु मात्र द्वैत बाहिर्भाव है। मैं उपदेश कर रहा हूँ, सभी लोगों को समझ में आ रहा है। क्या तत्त्व से जीव के अन्दर विशुद्धि बनती है? मैं आहार करके लौटा वहाँ चौकी पर एक पत्र रखा हुआ था सामायिक के बाद उसे खोलकर देखा कि यह रखा क्या है? एक युवा वह मुख से नहीं बोल पाया तो पत्र में लिखकर रख दिया। कि स्वामी! अब तो मेरी इच्छाएँ मर चुकी हैं, होगा अट्ठारह बीस साल का। अब तो लगता है आपको देखकर वस्तु स्वरूप झलक रहा है। महाराज! आप तो ऐसा आशीर्वाद दे दो मैं निज का निज में रमण करने का मार्ग खोज सकूँ? सोचो पंचमकाल में ऐसा लिख रहा है जीव और जब पापों की अग्नि में दौड़ने के समय चल रहे हों तब मोक्षमार्ग की भावना भा रहा है। मुनि बने ना बने कितनी भावना प्रबल कर ली है, निर्जरा तो निश्चित होगी। उस जीव के भावों को व्यक्त कर रहा हूँ जिस जीव ने अपनी भावना व्यक्त की हो कि समयसार में रहना है। एक वे अभागे हैं जो खोटे

पत्र खोटे कामों के लिए डालते हैं। एक वो युवा है जो महाराज की चौकी पर पत्र रखकर गया है। स्वामी मुख से बोलने की सामर्थ्य नहीं है, परन्तु अंतरंग की व्यथा है कि मेरा घर में मन लगता नहीं, ऐसा मत करना माताओ कि घर जाकर अपने बच्चों से पूछो, क्योंकि सभी बच्चे जाते हैं महाराज के पास। आपका बेटा मुनि बनेगा तो आप क्या करोगे? आने देंगे। हाँ बेटे हों तो विद्यासागर, विरागसागर जैसे हों, परन्तु मेरा नहीं पड़ोसी का बेटा हो। ध्रुव सत्य है यथार्थ मानो कि उस जीव के भावों की अनुमोदना है, जो जीव यह कहकर अपने भावों को व्यक्त कर रहा है कि स्वामी 'समयसार' लगाने का आशीर्वाद दे दो। यथार्थ में कोई जीव में वैराग्य उमड़ता है, तो अब अनुभूति राग की तो होगी नहीं, मुझे परिपूर्ण पता है। जगत् का कोई भी स्वाध्याय यही है। समयसारी को कोई भी प्रलोभन किंचित् मात्र भी सुहाता नहीं है, उस समय। कोई समझाने भी आ जाये तो ऐसा लगता है कि आ कैसे गया अज्ञानी जीव।

जब वैराग्य में लीन हो। जब तू दीक्षा ले तो पहले से ही ज्ञानी हो जाना ऐसा निर्णय लेना कि कोई व्यक्ति मेरा फोटो खिंचवा रहा है या नहीं, कोई मुझे उठा रहा है या नहीं, कोई मेरे वैराग्य को देखकर रो रहा है या नहीं, कोई हँस रहा है या नहीं? कुछ नहीं। **''जो है, सो है'' तटस्थ हो जाइये। अनन्त भावों में अनन्त लोगों ने अनन्त आनन्द लूटे हैं। एक बार सच्चे वैराग्य का आनन्द लूटो।** यह जितने तामझाम हो रहे हैं यह वैरागी वैराग्य के नाम पर राग और कर लेते हैं। तुम ताम झाम में मत जाना। वस्तु स्वरूप समझो। आज से चिन्तवन बदलो कल जो पैसे कमाने में रुचि ली, उस रुचि को आज से बदल देना जब राग के लिए जाता है, तो सज के जाता है। मुक्त बधु के कंत बनने जाता है तो सज रहा है, यह मांगलिक मानकर लोग आपको मांगलिक कर रहे हैं। तुम राग की ओर क्यों जा रहे हो? हे ज्ञानी! भगवान् अमृतचन्द्र स्वामी ने 'समयसार जी' में स्याद्वाद अधिकार में सैंतालीस शक्तियों का वर्णन किया है। उन सैंतालीस शक्तियों में एक सम्प्रदान नाम की शक्ति है, उसका तात्पर्य समझिये - हे ज्ञानी! यह पैसा तू कमा रहा है, किसके लिए? धन कमा रहा है, किसके लिए? भवन बनवा रहा है किसके लिए? जिसमें तू जन्मा था वह तो झोपड़ी थी, अब तू बनबा क्यों रहा है? अब तू जन्म लेगा क्या पुनः। मरने के लिए। जन्मा तो फूटे मकान में, बनवा रहा है सुन्दर भवन मरने के लिए। आज अपने घरों में जाकर कहना कि कोई कुछ भी कहे तो कहना किसके लिए? जब ग्राहक सामने आये और तू पचास के पाँच सौ करे तो सामने देखना ''किसके लिए है''? जब तू सोना-चाँदी बेंचे तो कहना ''किसके लिए''? जब कोई तुझे निमन्त्रण दे और लिफाफा दे दो कहना ''किसके लिए''? पण्डित जी कहीं प्रवचन करने गये और किसी ने तिलक किया, लिफाफा दिया तो वहाँ कहना सम्प्रदान शक्ति किसके लिए? शौच धर्म पर तो प्रवचन कर रहा था विदाई का दिन आता है विद्वानों का, तो लिफाफा देते हैं ''किसके लिए''? आश्चर्य यह है कि शौच धर्म के दिन पुण्य-पाप की व्याख्या करेगा, आकिंचन धर्म के दिन कहता है कोई किसी का कुछ नहीं होता है। जैसे ही विदाई हुई तो कहना ''किसके लिए''?

पिताजी कहें कि बेटा कुछ कर तो कहना ''किसके लिए?'' जिस पर्याय के लिए तू कमा रहा है उसका ही धुँआ निकल जायेगा तो फिर''किसके लिए''? समयसार जी के एक-एक सूत्र के चिन्तवन की आवश्यकता है। आज संयम हीन क्यों हो रहे हो, समयसार में संयम के निषेध का कहीं वर्णन ही नहीं है वो तो यह कह रहे हैं, हे रागी! तू लिप्त हो रहा है ''किसके लिए''? सम्प्रदान शक्ति ''किसके लिए?''

हे माँ पचासों साड़ी रखी हैं पेटी में फिर भी खरीदते जा रहे हैं। ''किसके लिए?'' आपको स्वयं विश्वास है कि जीवन में इतना उपयोग नहीं कर पायेंगे, मेरा तो विश्वास है कि जितने कपड़े तुम्हारे घर में रखे हुए हैं वे कफन के लिए भी नहीं हैं। वो भी कपड़ा दूसरा खरीद कर ही आयेगा तो फिर यह साड़ियाँ ''किसके लिए?'' पेटी-पेटी, अलमारी-अलमारी पर लिख देना ''किसके लिए'' परन्तु दीबार और पेटी पर लिख भी दिया और भीतर नहीं लिख पाया तो ''किसके लिए''? आत्मा की सैंतालीस शक्तियों में यह सम्प्रदान शक्ति है किसके लिए? मुस्कुरा लो, किसके लिए? आनन्द है, किसके लिए?, चक्रवर्ती जैसा पुण्य है नहीं किसी के पास, मिल भी गया तो किसके लिए? पुराण कथाओं को विवेक से समझो। राग होने के बाद भी, वियोग होने के बाद भी अन्त समय देखो क्या हो रहा है? किसके लिए? धन्य वे चतुर्थ काल के मजाक, वे मजाक भी कितने आनन्दमय हुए कि मजाकों ने भी मुनि बना दिया। मजाक भी करो तो ऐसे करो। ज्ञानी! शादी होकर आयी, जंगल में मुनिराज खड़े थे, ध्यान कर रहे थे और उदय सुन्दर कहता है वज्रबाहु से कि जीजाजी! आप तो ऐसे देख रहे हो मुनिराज को जैसे कि आप ही मुनि बनने वाले हो। वज्रबाहु कहता है कि तू अपनी बहन को सम्भाल लेगा। वैरागी को चिन्ता है किसके लिए? आपको तो वैराग्य हो रहा है किसके लिए? वो सोच रहा था मैं मजाक कर रहा हूँ। भीतर भेद-विज्ञान की ज्वाला झुलस रही थी। क्षण नहीं लगा रथ से उतर गये। हँसी खेल का काम नहीं है। देखता रहा साला, देखती रही पत्नी और केश लुंचन हो गये दिगम्बर मुनि बनकर बैठ गये। यह क्या हुआ? ''जो हुआ सो हुआ'' धन्य हो उस पत्नी को वह सोचती है अब मैं किसके लिए जाऊँ? ससुराल गई तो कोई क्या कहेगा। पिता के घर किस मुँह से जाऊँगी। जिसके लिए जा रही थी वो तो मुनि बन गया अब किसके लिए? वो भी आर्यिका बन गई, अब बेचारा साला सोचता है कि मैं कैसे चेहरा दिखाऊँगा? जीजाजी गये, जीजी गई अब मैं भी जाता हूँ अब मैं घर जाऊँ किसके लिए? धन्य हो। मजाक भी हो तो ऐसा हो, जा रहे थे विदाई देखने के लिए तीनों की विदाई हो गई। छब्बीस राजकुमार साथ में जा रहे थे, वे छब्बीस भी दिगम्बर मुनि हो गये। ज्ञानी! कभी तेरा ऐसा मन नहीं होता? किसके लिए? **ज्ञानी! वस्तुस्वरूप यही है। जब-जब निज में रमण होगा तब-तब श्रमण मुद्रा है। श्रमण मुद्रा नहीं है तब-तक निज में रमण नहीं है। भिन्न द्रव्य का चिन्तवन तो श्रावक को हो सकता है। भावना श्रावक को हो सकती है। रमण की एकाग्रता तो श्रमण बनने के बाद ही होती है। सकल**

संयम के अभाव में निर्विकल्प दशा होती ही नहीं। जब सकल संयम होगा तभी स्वरूपाचरण होगा। इस बात को भूल मत जाना।

जयसेन स्वामी की टीका देखो -

अथव्यवहारेण - व्यवहार से कर्ता-कर्म में भेद है। निश्चयनय से वही कर्म है ऐसा कहते हैं। जैसे लोक में शिल्पकार भी स्वर्ण से कुण्डल आदि कर्म करते हैं, क्या करते हैं? हाथ से और हथौड़ी आदि उपकरण से हाथ से ग्रहण करते हैं, फिर भी कुण्डल आदि हाथ के द्वारा और हथौड़ी से करने पर भी उसमें तन्मय नहीं होते हैं। अज्ञानी जीव भी निष्क्रिय स्वसंवेदन वीतराग ज्ञान से च्युत होता हुआ ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मों को करता हुआ मन-वचन-काय व्यापार रूप कर्म के फल को उपकरण के द्वारा कर्मों के उदय के वश मन-वचन-काय के व्यापार रूप से कर्मों को उत्पन्न करने अन्य उपकरणों के द्वारा संश्लेष रूप से व्यवहारनय को ग्रहण करता है तथा मन-वचन-काय कर्म के उदय से उपकरण के साथ टंकोत्कीर्ण ज्ञायकत्व रूप से भिन्न होने से उन में तन्मयभूत नहीं होते हैं। जो स्वर्णकार आदि हैं स्वर्ण कुण्डल उपकरण को करते हुए उसके भोजन पान आदि फल के मूल्य को प्राप्त करते हैं। परवस्तु के संयोग से, पर वस्तु में सम्बन्ध जोड़कर, पर वस्तु की व्याख्या कर रहा है। मकान पीला है। मकान पीला नहीं है चूने में पीला रंग मिलाकर पोत दिया है। दीवार तो दीवार है जैसी है वैसी है। ''जो है सो है।''

फिर भी अज्ञानी कह रहा है पीला मकान, नीला मकान। इसकी व्याख्या आगे कुन्दकुन्द स्वामी स्वयं करने वाले हैं।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

॥ भगवान् महावीर स्वामी की जय॥

उत्थानिका: दृष्टान्तपूर्वक निश्चय व्यवहार का कथन -

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया य सा होदि।
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सो दु ।।356।।
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया य सा होदि।
तह पासगो दु ण परस्स पासगो पासगो सो दु।।357।।
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह संजओ दु ण परस्स संजदो संजदो सो दु।।358।।
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया दु सा होदि।
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तं तु।।359।।
एवं तु णिच्छयणयस्स भासिदं णाणदंसणचरित्ते।
सुणु ववहारणयस्य य वत्तव्वं से समासेण ।।360।।
जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं जाणदि णादा वि सएण भावेण।।361।।
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं पस्सदि जीवो वि सएण भावेण।।362।।
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं विजहदि णादा वि सएण भावेण।।363।।
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं सद्दहदि सम्मादिट्ठी सहावेण।।364।।
एवं ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते।
भणिदो अण्णेसु पज्जएसु एमेव णादव्वो ।।365।।

(संस्कृत छाया)

यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति।
तथा ज्ञायकस्तु न परस्य ज्ञायको ज्ञायकः स तु।।356।।
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति।
तथा दर्शकस्तु न परस्य दर्शको दर्शकः स तु ।।357।।

यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च स भवति।
तथा संयतस्तु न परस्य संयतः संयतः स तु।।358।।
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति।
तथा दर्शनं तु न परस्य दर्शनं दर्शनं तत्तु।।359।।
एवं तु निश्चयनयस्य भाषितं ज्ञानदर्शनचरित्रे।
शृणु व्यवहारनयस्य च वक्तव्यं तस्य समासेन।।360।।
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं जानाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन।।361।।
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं पश्यति जीवोऽपि स्वकेन भावेन।।362।।
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं विजहाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन।।363।।
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं श्रद्धत्तेसम्यग्दृष्टिः स्वभावेन।।364।।
एवं व्यवहारस्य तु विनिश्चयोज्ञानदर्शनचरित्रे।
भणितोऽन्येष्वपि पर्यायेषु एवमेव ज्ञातव्यः।।365।।

गाथार्थ - (व्यवहार से परद्रव्यों का और आत्मा का ज्ञेय-ज्ञायक, दृश्य-दर्शक, त्याज्य-त्यातक अत्यादि सम्बन्ध है और निश्चय से इस प्रकार है- **(यथा)** जैसे **(सेटिका तु)** खड़िया मिट्टी या पोतने का चूना या कलई **(परस्य न)** पर की अर्थात् दीवालादि की नहीं है **(सेटिका)** कलई **(सा च सेटिका भवति)** वह तो कलई ही है। **(तथा)** उसी प्रकार **(ज्ञायकः तु)** ज्ञायक **(परस्य)** पर नहीं है **(ज्ञायकः)** ज्ञायक **(सः तु ज्ञायकः)** वह तो ज्ञायक ही है। **(यथा)** जैसे **(सेटिका तु)** कलई **(परस्य न)** पर की नहीं है **(सेटिका)** कलई **(सा च सेटिका भवति)** वह तो कलाई ही है **(तथा)** उसी प्रकार **(दर्शकः तु)** दर्शक **(परस्य न)** पर का नहीं है **(दर्शकः)** दर्शक **(सःतु दर्शकः)** वह तो दर्शक ही है। **(यथा)** जैसे **(सेटिका तु)** कलई **(परस्य न)** पर की नहीं है **(सेटिका)** कलई **(स च सेटिका भवति)** वह तो कलाई ही है **(तथा)** उसी प्रकार **(संयतः तु)** संयत अर्थात् त्याग करने वाला, आत्मा **(परस्य न)** पर का **(परद्रव्य का)** नहीं है **(संयतः)**संयत **(सः तु संयतः)** वह तो संयत ही है। **(यथा)** जैसे **(सेटिका तु)** कलई **(परस्य न)** पर ही नहीं है **(सेटिका)** कलई **(सा च सेटिका भवति)** वह तो कलाई ही है **(तथा)** उसी प्रकार **(दर्शन)** दर्शन अर्थात् श्रद्धान **(परस्य न)** पर का नहीं है **(दर्शनं तत् तु दर्शन्)** दर्शन तो दर्शन ही है अर्थात् श्रद्धान वह तो श्रद्धान

ही है। (**एवं तु**) इस प्रकार (**ज्ञानदर्शनचरित्रे**) ज्ञान-दर्शन-चारित्र में (**निश्चयनयस्य भाषितं**) निश्चयनय कथन है (**तस्य च**) और उस सम्बन्ध में (**समासेन**) संक्षेप से (**व्यवहारनयस्य वक्तव्यं**) व्यवहारनय का कथन (**श्रृणु**) सुनो। (**यथा**) जैसे (**सेटिका**) कलई (**आत्मनः स्वभावेन**) अपने स्वभाव से (**परद्रव्यं**) परद्रव्य को (**सेटयति**) सफेद करती है (**तथा**) उसी प्रकार (**ज्ञाता अपि**) ज्ञाता भी (**स्वकेन भावेन**) अपने स्वभाव से (**परद्रव्यं**) परद्रव्य को (**जानाति**) जानता है। (**यथा**) जैसे (**सेटिका**) कलई (**आत्मनः स्वभावेन**) अपने स्वभाव से (**पर द्रव्यं**) परद्रव्य को (**सेटयति**) सफेद करती है (**तथा**) उसी प्रकार (**जीवःअपि**) जीव भी (**स्वकेन भावेन**)अपने स्वभाव से (**परद्रव्यं**) परद्रव्य को (**पश्यति**) देखता है। (**यथा**) जैसे (**सेटिका**) कलई (**आत्मनः स्वभावेन**) अपने स्वभाव से (**परद्रव्यं**) परद्रव्य को (**सेटयति**) सफेद करती है (**तथा**) उसी प्रकार (**ज्ञाताअपि**) ज्ञाता भी (**स्वकेन भावेन**) अपने स्वभाव से (**परद्रव्यं**) परद्रव्य को (**विजहाति**) त्यागता है। (**यथा**) जैसे (**सेटिका**) कलई (**आत्मनः स्वभावेन**) अपने स्वभाव से (**पर द्रव्यं**) परद्रव्य को (**सेटयति**) सफेद करती है (**तथा**) उसी प्रकार (**सम्यग्दृष्टिः**) सम्यग्दृष्टि (**स्वभावेन**) अपने स्वभाव से (**परद्रव्यं**) परद्रव्य को (**श्रद्धत्ते**) द्धान करता है। (**एवं तु**) इस प्रकार (**ज्ञानदर्शन चरित्रे**) ज्ञान-दर्शन-चारित्र में (**व्यवहारस्य विनिश्चयः**) व्यवहारनय का निर्वाण (**भणितः**) कहा है (**अन्येषु पर्यायेषु अपि**) अन्य पर्याय में भी (**एवं एव ज्ञातव्यः**) इसी प्रकार जानना चाहिए।

''समय देशना''

भव्य बन्धुओ! आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज 'समयसार' जी में ध्रुव ज्ञायक स्वभावी भगवानात्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। प्रज्ञा की छैनी को इतना तीक्ष्ण कर लिया आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने, चौरासी पाहुड ग्रन्थों का सृजन करके, सारे विश्व में अध्यात्म की प्रभुता-प्राप्त की है। वे निर्ग्रन्थ कुन्दकुन्द स्वामी, अरिहंत के लघुनंदन, निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों को युगपत् समझा रहे हैं। जो वस्तु-सिद्धि के कथन का उपाय है, उसका नाम नय है। प्रमाण और नय इन दोनों के माध्यम से ही वस्तु की सिद्धि होती है। यह सिद्धांत सिद्ध है।

नय-प्रमाणाभ्याम् वस्तु-सिद्धि इति सिद्धि सिद्धान्तः।

'न्याय दीपिका' ग्रन्थ में आचार्य अभिनवयतिभूषणजी महाराज स्वयं लिख रहे हैं कि नय-प्रमाण के माध्यम से वस्तु की सिद्धि होती है, यह सिद्धांत सिद्ध है। बिना नय, बिना प्रमाण के किसी भी प्रकार से आप तत्त्व की विवेचना करने में असमर्थ हैं। जिसको नय-प्रमाण का बोध नहीं, नय निक्षेप का बोध नहीं, वह वस्तुस्वभाव की सम्यक् प्ररूपणा नहीं कर सकता। इसीलिए यहाँ आचार्यभगवन् दोनों नयों को युगपत् समझा रहे हैं। व्यवहार भी एक नय है, निश्चय भी एक नय है। दोनों नय अपने-अपने विषय

का वेदन कर रहे हैं। जो आत्मग्राह्य, स्वरूपग्राह्य है, वह निश्चयनय और जो परग्राह्य है, वह व्यवहार नय है।

भेद कथनकर्ता व्यवहारनय है। अभेद कथनकर्ता निश्चयनय है। जिस नय के माध्यम से पर संबंध को छोड़कर व्याख्या हो रही है, वह निश्चयनय है। कुन्दकुन्द महाराज ने 'समयसार' जी ग्रन्थ में जो दृष्टांतों का बहाव दिखाया है, उसमें ध्वनित होता है कि यह उनकी आत्मीय गाथा परिपूर्ण सम्यक् रूप से चली आई है। म्लेच्छ को म्लेच्छ की भाषा में कह रहे हैं, ज्ञानी को ज्ञानी की भाषा में कह रहे हैं। **म्लेच्छ को म्लेच्छ की भाषा में न समझायें तो उसे समझ में नहीं आयेगा। ज्ञानियों के बीच में भी म्लेच्छ की भाषा का प्रयोग करना, यह सम्यक्त्वपना नहीं है। म्लेच्छों के बीच में म्लेच्छ भाषा का प्रयोग करना, यह समीचीन है।** इस बात को भी ध्यान में रखना। जो परमार्थ दृष्टि को समझता है, उससे परमार्थ की ही व्याख्या करो जो परमार्थ दृष्टि को नहीं समझता है, उसका व्यवहार का पालन करने के लिए परमार्थ की व्याख्या करो। **जिसे औषधि का धर्म मालूम है और निरोगता का लाभ लेने का राग है, उसे बतासे में दवाई देने की कोई आवश्यकता नहीं है। बतासे में दवाई उसको दी जाये जो औषध गुण के ज्ञान से शून्य है। जिसको सीधी औषधि कड़वी लगती है, जो औषधि खाना नहीं चाहता है, उसको बतासे में घुट्टी दी जाती है, जैसे बच्चे को। ऐसे-ही जो शुद्ध तत्त्व है, उसको जो आज्ञानी नहीं जानते हैं, उनको व्यवहार के बतासे में भरकर शुद्ध तत्त्व की प्ररूपणा करना चाहिए।** जो जीव शुद्ध को ही जानता है, उसको बतासे से देने की आवश्यकता नहीं है। उसे औषधि का पान कराना चाहिए।

सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे।।12/स.सा.।।

शुद्ध को शुद्ध का उपदेश दो। जो शुद्ध तत्व को जानते हैं, उनको शुद्ध का ही उपदेश दो। जो शुद्ध की न्यूनता रखते हैं, उनको शुद्ध का ही उपदेश दो, लेकिन व्यवहार अपरमभाव, अपरमज्ञान जो स्वभाव को नहीं समझ पा रहे हैं, उनके ऊपर करुणा करो, उसको व्यवहार का उपदेश दो।

अपरमार्थभूत क्या है? जो परमार्थ तत्त्व को नहीं जानते हैं, उनको व्यवहार का उपदेश दो, लेकिन दृष्टि मात्र व्यवहार पर ही नहीं होना चाहिए, व्यवहार के साथ दृष्टि निश्चय पर भी होनी चाहिए। **यदि व्यवहार का उपदेश व्यवहार के लिए ही दे रहे हो, तो तुम्हारा व्यवहार व्यवहाराभास है। व्यवहार का उपदेश व्यवहार के लिए नहीं दिया जा रहा है, व्यवहार का उपदेश निश्चय की प्राप्ति के लिए दिया जा रहा है, तो परमार्थ की सिद्धि के लिए जो भी व्यवहार क्रम है वो परमार्थ की सिद्धि के**

लिए है। जिसको परमार्थ का लक्ष्य नहीं है, उसका व्यवहार भी व्यवहाराभास है। जो परमार्थ को प्राप्त नहीं कर सका, व्यवहार शून्य होकर परमार्थ को प्राप्त करना चाहता है, वह निश्चयाभासी है। उभय नय को समझना। यहाँ कुन्दकुन्द स्वामी निश्चय और व्यवहार दोनों व्याख्या को युगपत् कह रहे हैं।

कुन्दकुन्द स्वामी गाथाओं में एक ही दृष्टांत के माध्यम से निश्चय और व्यवहार की व्याख्या कर रहे हैं। पहले परमार्थ दृष्टि की प्रधानता से कह रहे हैं। **''जह सेडिया दु ण''** जैसे खड़िया मिट्टी, खड़िया-खड़िया है। मिट्टी-मिट्टी है। मिट्टी दीवार नहीं है। खड़िया-खड़िया ही है। **''तह जाणगोददु ण'' 'परस्स जाणगोजाणगो'** मैं ज्ञाता हूँ, ज्ञाता ही है। ज्ञाता परज्ञेय भी नहीं है। ज्ञाता परज्ञेय में जाता नहीं। ज्ञाता में परज्ञेय आते नहीं। परज्ञेय ज्ञाता में आ जायेंगे तो ज्ञाता चैतन्य है, परज्ञेय ज्ञाता में प्रवेश कर जायेंगे तो उनमें कुछ ज्ञेय अचेतन भी हैं, चेतन भी हैं, पर चेतन निज भाव नहीं हैं, अचेतन तो निज भाव हैं ही। यदि ज्ञेय भी ज्ञाता में प्रवेश कर गये तो उन ज्ञेयों में ज्ञाता होना पड़ेगा, परन्तु ज्ञेय ज्ञाता हो गये तो संकर दोष हो जायेगा। अथवा यह कहो कि ज्ञाता ज्ञेय में जाता है, यदि ज्ञेय में जायेगा तो ज्ञाता चेतन है, ज्ञेय अचेतन हैं उन अचेतन ज्ञेयों में ज्ञाता जायेगा तो ज्ञाता भी अचेतन हो जायेगा। मेरा ज्ञाता, मेरा ज्ञेय भाव निज ज्ञायकत्व भाव-भिन्न हुआ नहीं, पर-ज्ञेय मेरे ज्ञाता में मिले नहीं। कण-कण स्वतन्त्र है। अणु-अणु स्वतन्त्र है।

इस बात पर ध्यान दो। पर को देखकर विकार आ रहे हैं। लगता ऐसा है कि विकार घर में है, ध्रुव सत्य है। हे विकारी! विकार तेरे भीतर ही है। यदि तेरे में विकार न हो तो पर आपको विकार कैसे उत्पन्न कर सकते हैं? उपादान की योग्यता के अभाव में निमित्त कार्य कैसे करेगा? निमित्त दृष्टि परिणमन निमित्तभूत हैं। पर निमित्त में आकर निमित्त बना तभी है जब उपादान सशक्त है। निमित्तों को दोष देकर उपादान की विडम्बना मत करो, निमित्तों को सुधारने मत जाओ, उपादान को सुधारो। निमित्तों को सुधारने जायेगा तो दूर जाना पड़ेगा, वह तेरे से भिन्न है, उपादान तेरे स्वाधीन है।

एक घटना है विरागसागर जी महाराज विहार कर रहे थे, ताजगंज से ताजमहल के सामने से निकल रहे थे। संघ था, उसमें मैं भी था। एक ज्ञानी आया, वह कहता है कि आप यहाँ से जा नहीं सकते हैं। क्यों ? आप पहले लंगोटी लगाओ, फिर जा सकते हो। महाराज ने उससे कहा कि यह मेरा धर्म है दिगम्बरत्व। लोक को प्रमाण मत मानना। इस पर ध्यान मत देना कि अमुक व्यक्ति क्या कह रहा है। लोक को ही प्रमाण मानकर अपने जीवन की विडम्बना मत कर लेना। लोक तो लोक है। आचार्य श्री उपसर्ग मान कर खड़े हो गये, क्योंकि वह आदमी कह रहा था कि आगे भी नहीं जा सकते पीछे भी नहीं जा सकते। जितने लोग वहाँ से निकल रहे थे, प्रातः का समय था, बहुत सारे लोग इकठ्ठे हो गये।

वहाँ ग्वाले कहते हैं। हाँ, महात्मा जी! ठीक तो है, इनका मोहल्ला है, इसलिए आप एक लंगोटी लगा लो, बाहर जाकर फिर फेंक देना। लोक में भीड़ को प्रभावित कर देना बहुत बड़ी बात नहीं है। उस एक आदमी ने सारे लोक को प्रभावित कर लिया अपनी बात से कि ठीक, आप कपड़ा लगा लो। हे जीव! लोक को प्रमाण मानोगे तो आगम प्रमाण का क्या होगा ? इसलिए न लोक प्रमाण है, न इन्द्रियाँ प्रमाण हैं, न कोई पुरुष प्रमाण है। कोई प्रमाण है, उसका नाम है **'सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं।'**

जो सर्वज्ञ का वचन है, सम्यक् आगम है, सम्यग्ज्ञान है, वही प्रमाण है। लोक को बदलने में देर नहीं लगती। उसी समय एक पुरुष मोटा-सा लाल कपड़े पहने सामने से दौड़ा चला आया, भीड़ थी जो महाराज को रोकने आयी थी। मात्र तीन लोग थे, आचार्य महाराज और दो मुनि। एक क्षुल्लक और मैं वस्त्रधारी। श्रावक भी नहीं थे। जैसे-ही महाराज को कायोत्सर्ग में खड़े हुए देखा भीड़ को पार करके मोटा आदमी सामने आ गया। वह कहता है कि इनको कौन रोक रहा है? कौन रोक सकता है? ये भारत की गली-गली में घूमते हैं। यह दिगम्बर साधु हैं। आपको बुरा लगता है तो आप आँख पर पट्टी बाँध लो।

अरे! जिसकी दृष्टि खोटी हो, वह अपने आप को ठीक करे, पर को ठीक करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वस्तु तो वस्तु है। एक मिनिट नहीं लगा, जितने लोग वहाँ रुके हुए थे, वे सारे बदल गये, 'हाँ, हाँ, आप ठीक कह रहे हो। भारत की गली-गली में घूमते हैं। इनको कौन रोक सकता है? महात्मा लोग हैं।' जो मना कर रहा था, वह भाग गया यह सोचकर कि अब तो मेरी हालत खराब हो जायेगी। धैर्य रखो। समय दे दो। सबके समाधान होते हैं। समय दे दो अथवा समय में चले जाओ। सब समाधान हो जायेगा। समय अर्थात् आत्मा। स्व समय में चले जाओ। स्वआगम, स्वआत्मा। स्वआगम को निहारो। स्वआत्मा में चले जाओगे तो समाधान हो जायेगा । कौन क्या कर रहा है, इस विकल्प में अधिक जाने की आवश्यकता नहीं है यदि निज की विडम्बना नहीं करना है तो। लोक को बदल नहीं सकते आप। लोक को बदलने में देर नहीं लगती। इसलिए ज्ञाता निहार रहा है ज्ञायकभाव ज्ञायकत्व में। ज्ञायक मात्र ज्ञायक हूँ।

सेडिया तो सेडिया है, खड़िया तो खड़िया है, दीवार सफेद दिखाई दे रही है, परन्तु क्या दीवार सफेद है? कमण्डलु सफेद है क्या? पर की सफेदी से निज को सफेद मान रहा है। देखो लाल, पीले, नीले रंग लिये यहाँ कितने लोग बैठे हुए हैं। पर के आवरण से अपने को आवृत्त करके अपने को वैसा कह रहा है, **हे ज्ञानी! आवरण उतार कर देख तू कैसा है? जब-तक आवरण नहीं उतरता, तब-तक सम्यक् निर्णय नहीं होता। जब-तक आवरण नहीं उतरता, तब-तक सम्यक् बोध नहीं**

होता। जब-तक आवरण नहीं उतरता, तब-तक भूतार्थ अनुभूति नहीं होती है। जब-तक आवरण है तब-तक पराभूत ही हो आप। आप लोगों को पता ही नहीं है कि शुद्ध वायु कैसी होती है ? शुद्ध वायु कैसी लगती है? बैठे हैं बेचारे, अब क्या तुमको शुद्ध धूप लगेगी? आवरण में सत्य का बोध कहाँ? यदि मस्तिष्क पर राग का पटल आ जाये तो तुझे सत्य दिखाई नहीं देगा। जिसके प्रति राग है, वह बुरा भी करेगा तो वह अच्छा ही दिखेगा। वह भी आवरण है। जिसमें राग नहीं है, वह कितनी ही मेहनत कर ले, तब भी माँ को अच्छा ही नहीं लगता कि मेरा बेटा ऐसा है। दीवार को तू सफेद बोल रहा है। दीवार सफेद नहीं है, तूने कलई पोत दी है। तूने खड़िया मिट्टी पोत दी है। फिर भी, जब भी कहेगा तो यही कहेगा कि सफेद मकान में चले जाना। सत्य क्या है? दीवार सफेद है या खड़िया सफेद है? दीवार सफेद नहीं है, सफेद तो खड़िया मिट्टी है, परन्तु मिट्टी के आवरण से खड़िया का नाम नहीं ले रहे हो, दीवार सफेद है।

जैसे खड़िया तो खड़िया है, खड़िया दीवार नहीं है। ऐसे ही ज्ञाता तो ज्ञाता है। मैं मात्र जाननहार हूँ। **मैं किसी का मारनहार नहीं हूँ । मैं किसी को बचावनहार नहीं हूँ। मैं किसी को बदलनेवाला भी नहीं हूँ। मैं किसी को अच्छा करनेवाला भी नहीं, मैं किसी को बर्बाद करनेवाला भी नहीं। मैं तो मात्र जाननहार हूँ। 'जानो, देखो, जाने दो।'**

ज्ञानी! आप जान ही पाओगे, आप देख ही पाओगे, आप रोक नहीं पाओगे। कितना ही रो लो, सिर पटक लो, माथा ठोको, मैं कह रहा हूँ कि तुम रोक नहीं पाओगे।

मित्र! मैं तेरे से पूछ रहा हूँ। तेरा सगा अस्वस्थ पड़ा है तू वैद्य तो बुला सकता है, दो चार डॉक्टर खरीद सकता है। अब क्या करेगा इसके आगे? देख सकता है, जान सकता है। यदि आयु पूर्ण हो चुकी है तो तू रोक सकता है क्या? एक क्षण भी रोक सकते हो क्या ? सत्य का निर्णय नहीं कर सके तो आज इस वर्तमान में, खोटे काल में कोई समझाने वाला नहीं है। **तुम राग-द्वेष कर पाओगे। राग किसी को रोकता नहीं। शत्रु भी जायेगा, मित्र भी जायेगा। जब मैं अपनी ही पर्याय को नहीं रोक सका, तो जगत् की पर्याय को क्या रोक पाऊँगा? जो तुम्हारा इष्ट अन्तिम श्वास भर रहा था, तुम जान रहे हो, देख रहे हो कर क्या रहे हो? देख रहे हो कि नहीं ? जान रहे हो कि नहीं? रोक रहे हो क्या?**

यही समयसार है। यदि इतना समझ में आ गया तो आप किसी के प्रति ममत्व नहीं कर पाओगे। बदलते को कौन बदल पाया है? बदलते को कौन रोक पाया ? जान रहे हो, देख रहे हो, बहुत हुआ तो आँख में आँसू गिरा सकते हो। इसके आगे क्या ? 'तुम ज्ञाता ही हो। तुम दृष्टा ही हो।' मेरा हाथ दिखाई दे रहा है? कैसा है? हे ज्ञानी! तुम देख रहे हो, तुम इसके ज्ञाता हो। जान रहे हो, ज्ञाता हो। देख रहे हो,

तो दृष्टा हो।

मित्रो! आप ज्ञाता ही हो, आप दृष्टा ही हो, आप मेरे हाथ के कर्ता नहीं हो। आप देखनहार हो, आप मात्र जाननहार हो, परन्तु हाथ को बनाने वाले हो क्या ? कौन कहता है कि समयसार समझ में नहीं आता है? आप सब तो समझ रहे हो।

यदि यह हाथ मुड़ गया तो आपने क्या किया ? क्या देख नहीं रहे थे ? क्या जान नहीं रहे थे? देख रहे थे, जान रहे थे, आपके देखते-देखते सीधा हाथ मुट्ठी बन गया। किसी को आशीर्वाद दिखाई दे रहा था, वह मुट्ठी बन गया।

आँखें खुली थीं आपकी, ज्ञान जान रहा था कि नहीं ? तुम जान ही पाये, परन्तु मुट्ठी बन्द हो गई इसे तुम रोक नहीं पाये। ऐसे-ही विश्व में ब्रह्माण्ड में आयेगा, तुम रोक नहीं पाओगे, रो ही पाओगे। अपने देखते-देखते कितने जा चुके। ज्ञाता तो ज्ञाता ही है, दृष्टा तो दृष्टा ही है। ज्ञाता ज्ञेय नहीं बनाता, ज्ञाता ध्येय नहीं बनाता। ज्ञेय अर्थात् जिसको जान रहे हो। ज्ञाता-जाननेवाला, ज्ञेय-जाननेयोग्य। यदि मैं जिसको जान रहा था, वैसा परिणत कर गया, तो मरनेवाले के साथ मैं भी मर जाऊँगा। यदि ज्ञाता ज्ञेय बनने लग गया, तो मरनेवाले के साथ मैं भी मर जाऊँगा, फिर ज्ञेय कहाँ रहेगा? इसलिए ध्रुव सत्य है कि सबके साथ रहो, सबको देखो, जानो, जाने दो।

हम भी कहीं से आये हैं? जब तेरा जन्म हुआ, जिस घर में, उस घर में ताली बजा रहे थे, खुशियाँ मना रहे थे। खुशियाँ मनाने वाले भूल चुके थे कि यह जीव कहीं से आया है, वहाँ कोई रो रहा होगा कि नहीं रो रहा होगा ? चारों ओर खुशियाँ मना रहे हो, तुम उससे पूछते कि किस बात की खुशियाँ मना रहे हो ? आज अनेक नगरों के लोग एक हॉल में बैठे हैं ज्ञानी! तुम जहाँ से आये हो, वहाँ आज तुम्हारा अभाव है या नहीं ? जिस जगह से तू आया है, वहाँ तेरा आज अभाव है। इसी पर्याय में एक स्थान से दूसरे स्थान जाता है तो एक स्थान खाली हो जाता है। एक पर्याय में एक शरीर में तू प्राप्त हुआ है। कुल में जन्मा तो दूसरे कुल को रुलाकर आया है। इन अज्ञानी लोगों को मालुम होना चाहिए कि घर में बेटी का जन्म होना, किसी की मृत्यु है, यह बहुत अनहोनी घटना नहीं है, यह सामान्य विषय है।

जहाँ भरेगा, वहाँ कहीं से खाली होगा। जहाँ खाली हुआ है, कहीं नियम से भरेगा। इसमें हर्ष-विषाद क्या ? यही साधुस्वभाव है। अज्ञानी हर्ष-विषाद कर रहा है। एक पेन दे दो तो महाराज ने पेन दिया, हर्ष कर रहा है। जेब में रख लिया, दूसरा व्यक्ति आया, खींच ले गया, तो अब बोल ज्ञानी! कैसा लग रहा है? एक क्षण में पेन आया तो हर्ष, एक पल में खींच ले गया तो विषाद। मेरे मित्र! तुम पेन के अभाव को क्यों नहीं देखते हो? मेरी जेब में पेन पहले भी नहीं था। जो बीच में आया था, वही तो

गया है, मेरा क्या गया है? रागी! परवस्तु से तू रोता नहीं, परवस्तु से तू हँसता नहीं है। अपने राग से ही रोता है अपने ही राग से हँसता है। वस्तु न राग कराती है, न हँसाती है। आज ही बच्चे ने जन्म लिया, न उसे एक कटोरी पानी पिलाया और शाम को मृत्यु हो गई, तब भी तुम रो रहे हो। बेटा तो जैसा आया था, वैसा ही चला गया। रोने का विषय क्या है? जो सुनेगा, उसे कितनी कठोर तपस्या करना होगी। शास्त्रज्ञान से समझ में नहीं आयेगा। यह विषय जो चल रहा है, वह शास्त्रज्ञान से भीतर जाने वाला नहीं है।

अन्यथा वेद पाण्डित्यं शास्त्र पाण्डित्य मन्यथा।
अन्यथा परमं तत्वं लोका क्लिश्यन्ति चान्यथा॥

वेदों का पाण्डित्य भिन्न है, शास्त्रों का पाण्डित्य भिन्न है, आत्मा का पाण्डित्य भिन्न है। किसी जीव का घात करना हिंसा है या नहीं ? किसी को सताना पाप है या नहीं ? हाँ। ज्ञानी! किसी को सताना पाप है तो किसी से तात्पर्य आप क्या लेते हो ? जगत् के प्राणिमात्र। प्राणियों के मध्य में तेरी पत्नी प्राणी है या नहीं? किसी दिन तेरी पूर्ति न हो तो तू भूल गया है कि किसी प्राणी को सताना पाप है। जिसे आप अपना शत्रु मान रहे हो, वह क्या जीव नहीं है? प्राणी नहीं है? उसको सता सकते हो क्या ? **विषय को जानना कठिन नहीं है, विषय को स्वीकारना कठिन है। विषयों को जान लेना कठिन नहीं, विषयों को जानकर विषयों से दूर होना कठिन है।**

यह मेरे हैं, यह तेरे हैं। इनमें ही समय जा रहा है। जबकि मेरे भी नहीं हैं, तेरे भी नहीं हैं। मात्र ज्ञायकभाव है। सम्पूर्ण मूलगुणों का पालन, सम्पूर्ण उत्तरगुणों का पालन करते हुए भी मुनि का मोक्ष मार्ग यही कहा है, ज्ञायकभाव। सत्य तो यही है कि आप जान ही पाओगे, देख ही पाओगे, रोक नहीं पाओगे, फिर भी तुम रोकने का पुरुषार्थ कर रहे हो। यह तेरी अज्ञानदशा है। करुणा करो, दया करो, जब-तक है तब-तक सेवा करो, जा रहा है तो खुशी से जाने दो। रोक पाओगे नहीं, रो ही पाओगे। जब नियत है कि जाने वाला जाता ही है, तो रोकर अपने परिणाम खराब क्यों करें? और पहचानो कि मैं भी जाऊँगा। इसलिए जाने के पहले कुछ ऐसा करके जाओ कि जाने के बाद लोग तुझे पहचानते रहें।

ज्ञानी ! चाहे पुण्य आत्मा हो, चाहे पापी हो, चाहे योगी हो, चाहे भोगी हो, जाना सबको ही पड़ेगा। इस पर्याय से सभी को जाना पड़ेगा, परन्तु अपने चतुष्टय से कोई कहीं भी नहीं जायेगा। समझो, आज मैं यहाँ आया, कल दूसरी जगह था तो अमुक नगर वाले कहने लगे कि महाराज भी चले गये। यहाँ वाले कहने लगे कि महाराज जी आ गये। मैं न आया, मैं न गया। मैं जैसा हूँ, वैसा ही हूँ। मैं कहाँ गया? जहाँ से गया, उसको लगता है कि गया और जहाँ आया, उसे लगता है कि आया। परन्तु मैं अपने आप में मैं ही हूँ। जैसा एक नगर में था, वैसा ही दूसरे में भी हूँ, मैं तो 'जो हूँ, सो हूँ' वे सुनें, देखने वाले देखें,

मैं तो अपने में हूँ। मुझे न सूना लगता है, न भरा लगता है। मैं तो अकेला ही हूँ। सूना उन्हें लगता है जो साथ में नहीं आये हैं। साथ में आ जाते तो उनको भी सूना नहीं लगता। आया हूँ देह की अपेक्षा से, प्रदेशान्तर की अपेक्षा से, क्षेत्रान्तर की अपेक्षा से, मैं आया हूँ गया हूँ। स्वक्षेत्र की अपेक्षा से न गया हूँ न आया हूँ। मैं तो अपने चतुष्टय में ही हूँ। समझ में आया क्या?

सत्य को समझ तो लो। नहीं मान पाओ, वह आपका विषय है। नहीं चल पाओ, वह आपका विषय है। कम-से-कम स्वीकार तो कर लो कि यही सत्य है। दीवार सफेद है, यह शुद्ध झूठ बोल रहे हो। जिसे मैं देख रहा हूँ, उसे नहीं देख रहे हो। जिसे तुम देख रहे हो, जान रहे हो, उसे तुम झूठ बोल रहे हो। दीवार पर लगा पेन्ट सफेद है, दीवार तो दीवार है। जैसे तुम दीवार को सफेद मानकर बैठे हो, ऐसे ही मुमुक्षु! दो हरियल, दो साँवरे.... । मैं गोरा हूँ, मैं साँवला हूँ। दीवार के रंग को दीवार मान रहा है। ऐसे ही शरीर के वर्ण को तू अपना वर्ण मान रहा है जबकि शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है। सारा जगत् पर के रंग में रंग रहा है, जो भी विलम्बित हो रहे हैं, जो भी ठगे जा रहे हैं, एक मात्र पर के कारण।

आप कभी शाम को वस्त्रालय में गये हो? तो पक्के में ठग कर आये हो। वस्त्रालय वाले कितनी प्रकार की लाइटें जलाकर रखते हैं। कपड़े के व्यापारी इतने भोले नहीं हैं कि व्यर्थ में अपनी लाइट जलायेंगे। लाइट क्यों जलायी जा रही है? कपड़े में चमक दिखे, इसलिए लाईट जलाकर रखते हैं। आप इतना विवेक क्यों भूल गये कि लाईट की चमक में एक सौ रुपये के वस्त्र को पाँच सौ में खरीद कर ले आये।

अज्ञानी जीव क्या कह रहा है मैं अमुक विभाव को छोड़ता हूँ, मैं कुल को छोड़ता हूँ। मैं माया, लोभ, क्रोध, मान चारों कषायों को छोड़ता हूँ। मैं हास्य आदि नोकषायों को छोड़ता हूँ। एक-एक कषाय पर दृष्टि ले जा रहा है, कषाय को बार-बार याद कर रहा है। छोड़ तो पा नहीं रहा है और बार-बार कषाय की याद कर रहा है। जैसे इंजीनियर ने एक ईंट को देखकर, क्षेत्रफल और गुणफल और गुणनफल बता करके भवन की ईंटों की गणना कर चुका, ऐसे ही मेरे मित्रो! क्या करो? जब ''क्षपणासार, लब्धिसार'' में असंख्यात् लोक प्रमाण परिणाम जीव के भाव हैं तो एक-एक भाव को स्वयं जान नहीं पा रहे हैं। अपने ही स्थूल भावों को तुम स्वयं नहीं जान पा रहे हो। करना क्या चाहिए ? अब मैं एक अशुभ भाव को छोड़ने की सामर्थ्य रखता हूँ। मैं तो शुद्ध /शुभ/ शुक्ल भाव में लीन हूँ। तो विश्वास रखना, असंख्यात्लोकप्रमाण परिणाम भाव को छोड़ने का भाव था, वह भी चला जायेगा और मैं उनसे रहित भी हो जाऊँगा और मैं तो जिसे चाहता था वह मुझे मिल ही जायगा। यह अन्दर की साधना है, इसे लोग नहीं समझ रहे हैं। कोई कुल को छोड़ रहा है। सत्यता यह है कि स्वभाव में बैठ

जाओ तो चारों कषायें छूट जायेंगी। जो भेदज्ञान विद्या चल रही है, उसका नाम है गूढ़विद्या। अध्यात्म शास्त्र का नाम है गूढ़विद्या, रहस्यमय विद्या जिसे सामान्य जीव समझ नहीं पाते।

आप कितने समझदार हो गये कि जेब कटने के चक्कर में आजकल आप कार्ड रखकर चलते हो। जहाँ से निकालना हो कार्ड लगाकर निकाल लो, बारबार का डर भी निकल गया है। बस, मुमुक्षु! इतने झमेले से बच गये। जैनदर्शन की जो सनातन परम्परा थी जिसे आज वैज्ञानिक सामने लेकर आ रहा है। यह दुनियाँ की रेजगारी कौन इकट्ठी करे ? बैंक में डालो, कार्ड लेलो, जहाँ आवश्यकता पड़े निकाल लेना। मैं इस कषाय को छोड़ूँ, उस कषाय को छोड़ दूँ यह व्यर्थ की रेजगारी है। चिद्रूप पर लक्ष्यपात करो, सब अपने आप छूट जायेगा।

ज्ञानी! जब तू अपने शहर से दूर नगर जा रहा था तो तुझे रास्ते में मात्र एक नगर दिखाई दिया था और भी प्रांत, जिले, नगर दिखाई दिये क्या? तुझे रास्ते में कितने जिले, नगर, प्रांत बदले, तो उसमें से कौन-से प्रांत में कौन-सा आदमी क्या-क्या कर रहा था? यह तुझे दिखाई दिया क्या? नहीं दिखाई दिया। जिस दिन मैंने अमुक शहर जाने का लक्ष्य बनाया था, उस दिन मुझे वही शहर मात्र दिखाई दे रहा था। ऐसे-ही तत्त्वज्ञानी दिगम्बर मुनि वही भाव लिए होता है जो दुनिया के सारे देश में घूमे और मात्र अपना मोक्ष दिखे, और-कुछ भी नहीं दिखे। इसका नाम मोक्षमार्गी है। उपेक्षाभाव तो होना ही चाहिए। उपेक्षा भाव नहीं होगा तो आप लोगों की आँखें नहीं बचेंगी, क्योंकि लोग रोज जन्म ले रहे हैं रोज मर रहे हैं, किन-किन की खुशी मनायेगा, किन-किन का दुःख मनायेगा? उपेक्षा भाव तो करना ही पड़ेगा। वही शांति दिलायेगा, वही संयम दिलायेगा, वही परमचारित्र दिलायेगा, पर उपेक्षा यहीं से प्रारंभ करना होगा। उपेक्षा करना सीखो, तब संयम में पहुँच पाओगे।

माना कि कोई व्यक्ति उपदेश सुन रहा हो, उसने आगे-पीछे कुछ नहीं सुना हो, अथवा आज का उपदेश सी.डी. से सुन लिया हो, अथवा कोई उसे लिखकर देदे, तो वह यही कहेगा कि कौन-से सम्प्रदाय के साधु हैं? मुमुक्षु हैं नहीं। पता नहीं क्या कर रहे हैं? जो मैं कह रहा हूँ, उस पर लक्ष्य करो। उपेक्षा नहीं सीखोगे तो आँखें नहीं बचेंगी। तू अपने मतलब को ही देखता है, मतलब को जानता है। जब मतलब को इतना देखता-जानता है तब इतना सुखी है, और-कम कर लेगा तो कितना सुखी होगा और पूरा ही छोड़ देगा तो कितना सुखी होगा? उपेक्षा करना सीखो। कैसे? कोई कहे कि ऐसा हो गया, वैसा हो गया। ठीक है, 'जो है, सो है' उपेक्षा करना सीखो। सुखी रहने का यही तो सूत्र है। किसके लिये रोओगे? किसके लिए हँसोगे ? वीतरागी तपोधन जंगल में रहते थे। फिर निज के अंदर रहते थे। कुछ नहीं 'जो है, सो है' कोई गाली दे तो ठीक है उसका मुख, उसकी जीभ है। छोड़ो। बहुत प्रशंसा करे तो

किसकी प्रशंसा? 'जो है, सो है।' स्वामी! वह तो कह रहा था मैं उसका घात कर दूँगा। किसका घात करेगा? वह तो दूर है, कहने वाला नहीं कर पा रहा है। करने आ जाये तो किसका करेगा? जिसका करेगा, वह मैं नहीं हूँ। जो मैं हूँ, उसका घात ही नहीं है। कितना गहरा अध्यात्म है, जिसे जीव भूल चुका है। **लेना-देना छोड़ दो, यही सुख-शांति है। 'न लेना, न देना, निज में रहना'** 'जो है, सो है।'

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं- यहाँ दीवार पर सेटिका/ खड़िया है, वह श्वेत गुण से युक्त है। निज स्वभाव से द्रव्यत्वभूत है। वह व्यवहार से श्वेत आदि पने को प्राप्त है। दीवार आदि परद्रव्य को श्वेतकर्ता है। अब यहाँ पर कह रहे हैं खड़िया आदि के द्वारा दीवार श्वेतपने को प्राप्त होता है। क्या दीवार खड़िया हो जाती है, क्या खड़िया नहीं होती? दोनों नयों से तत्त्व संबंधी यहाँ पर उसकी मीमांसा करते हैं। आचार्य भगवन्त ने दृष्टांत ऐसा दिया है जिसे बालगोपाल भी जानते हैं। वे दिन कहाँ गये जब लकड़ी की पट्टी होती थी, जब पढ़ने जाते थे बालक, काली पट्टी से चेहरा काला कर आते थे, पता चल जाता था कि पढ़कर आया है बच्चा। लकड़ी की पट्टी और मिट्टी की डलिया। जब लिखना प्रारम्भ करते थे तो क्या लिखते थे?

ओना मासी धंम। ओऽम् नमः सिद्धम्।

जब भी बालकों को पढ़ाओ तो प्रथम दिन सिद्धों की पूजा कराओ और सिद्धों की पूजा के बाद उसकी पट्टी पर शब्द लिखो।

''ओना मासी धम्म, ओऽम् नमः सिद्धम्''।

देहाती से देहाती भी होगा, वह यही कहेगा ''ओना मासी धम्म, बाप पढ़े न हम''

कोई-न-कोई गलत शब्द प्रचलित हुआ है, गाली प्रचलित हुई है कोई-न-कोई अपवाद हुआ है। उसका सार समझना चाहिए। जब विश्व में किसी को पता नहीं चला कि 'ओना मासी धम्म' का अर्थ क्या होता है? तब जैनियों ने कहा, तुम को पता नहीं है।

''ओऽम् नमः सिद्धम्'' यानी अ सि आ उ सा नमः।

अ-अशरीरी, अर्हन्त-अरिहंताणं, सि-सिद्ध, आ-आचार्य, उ-उपाध्याय, सा-साधु नमः। पंचपरमेष्ठी को नमस्कार है।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः, क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स ह, क्ष त्र ज्ञ।

सम्पूर्ण वर्णों का जो ध्यान करता है, उस व्यक्ति को विद्या-मंत्र की सिद्धि होती है, वचनसिद्धि होती है। जो भगवान् बनते हैं, वह मात्र इन्हीं से बनते हैं। मात्र अर्हन्त कोई है, वह यही है। सबकुछ जानते हो, परन्तु समय नहीं देते हो।

यदि खड़िया दीवार होती है, तो खड़िया दीवार हो जायेगी और दीवार खड़िया हो जायेगी। खड़िया अर्थात् जिससे लिखा जाता था, मिट्टी। जिस दृष्टांत को बच्चे से लेकर बूढ़े जानते हैं। इतना प्राचीन ग्रन्थ है, दो हजार वर्ष पूर्व में यह लिखा हुआ है, खड़िया मिट्टी से ही लिखा जाता था। वह पोतने के काम में भी आती है। खड़िया मिट्टी से दीवार को पोता, तो क्या दीवार खड़िया हो गई, खड़िया दीवार हो गई? यदि एक दूसरे रूप हो जायेंगे तो जैसे आत्मा में ज्ञान होता है, वह आत्मा में ही होता है, आत्मा ही ज्ञानस्वरुप है। ज्ञान महिमाभूत है। ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं है। जैसे ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं है, ऐसे ही खड़िया भी खड़िया से भिन्न नहीं है।

व्यक्ति उस ज्ञान से युक्त जीता है। खड़िया दीवार नहीं होती है तो क्या दीवार हो जायेगी? यदि ऐसा हो गया तो खड़िया अपने स्वभाव का नाश कर देगी, परन्तु यह तो पूर्व में ही कह दिया है कि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में संक्रमण नहीं होता, यह ध्यान रखना। जीव कभी पुद्गलभूत नहीं होगा, पुद्गल कभी जीवभूत नहीं होगा। यह आत्मा की प्रधानता से कथन है। द्रव्यानुयोग का विषय है, आपको मालूम होना चाहिए। द्रव्य एक नहीं, द्रव्य छः हैं। यदि इस विषय को कोई रसायन शास्त्री पढ़ेगा तो अपना विषय कहाँ ले जायेगा ? बात लिखी है कि द्रव्य द्रव्यान्तर नहीं होता। समझ में आ गया, उसने रसायन तत्त्व निकाल लिया। दूध में कितना ही पानी मिला लो, लेकिन दूध के परमाणु नहीं बढ़ेंगे, पानी के परमाणु नहीं घटेंगे। यही पानी मिला दूध हँस पियेगा तो नीर-क्षीर भिन्न कर लेगा। कहते-कहते तो बहुत दिन निकल गये कि हंस नीर-क्षीर अलग कर लेता है, परन्तु रहस्य तो पकड़ो कि हो कैसे जाता है?

दूध में नींबू निचोड़ो तो क्या होगा ? परन्तु छेना से पानी हट जाता है अलग हो जाता है। छेना में पानी अलग से डालते हैं या दूध का पानी होता है ? जो दूध था, वह थक्का बन गया। जो पानी था, वह अलग से बह गया। मेरे मित्र! तुमको पता होना चाहिए कि हंस भी प्राणी है। उसकी चोंच में ऐसा द्रव्य है जो कि अम्ल का काम कर रहा है। उस द्रव्य के संयोग होते ही हंस दूध-दूध पी लेता है और पानी-पानी अलग हो जाता है। जो दूध भैंस से भी निकाल कर लाओगे उसमें भी पानी होता है, उसको भी अलग कर लेता है। जब-तक तुमने हंस पक्षी नहीं देखा, प्रयोग नहीं किया, तब-तक आगम वचन को प्रमाण मानो। हंस नीर-क्षीर को भिन्न कर लेता है। आपके शरीर में भी अम्ल है, पित्त है। जब आपके शरीर में पित्त बढ़ जाये तो दूध भी पिओगे तो पित्त का काम करेगा। जब वह भी तुम्हारे पित्त में भर

जायेगा तो अस्वस्थ हो जाओगे। **पित्त प्रकृति के व्यक्ति को गुस्सा तीव्र आती है। दिमाग तेज चलता है। जिन जीवों के भद्र परिणाम हों, बुद्धि तेज हो, यह पित्त और कफ प्रकृति वाले होते हैं। कफ की प्रधानता नहीं है, मिस्त्र धारा है, उसके भद्र परिणाम होते हैं वह साधु स्वभावी होते हैं। वात प्रकृति वाला दो मिनट शान्त नहीं बैठता, बड़बड़ाता ही रहता है, सुनने वाला थक जाये। उसकी बुद्धि मन्द होती है। इतना ज्यादा सोचते हैं कि सोचकर ही पागल हो जाते हैं। अ-सामान्य व्यक्ति होते हैं। वे चाहे कितने ही पैर घिसें, उनके पैर कभी चिकने नहीं होते। जीभ भी साफ नहीं होती, क्योंकि पेट भी साफ नहीं होता है।** उत्तम है पित्त व कफ का सामंजस्य।

तीनों होते सबके हैं, लेकिन प्रधानता है। आयुर्वेद शास्त्र भी जिनालयों में है। प्राणायाम अंग, प्राणायाम पूर्व है, उसमें आयुर्वेद का ही कथन है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को दूषित नहीं करता, संक्रमित नहीं होता। यह पूर्व में ही बता दिया। यदि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में प्रवेश कर गया तो एक द्रव्य का उच्छेद हो जायेगा, परन्तु एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अभाव है। निश्चय नय से दीवार दीवार है, खड़िया दीवार नहीं है, दीवार खड़िया नहीं है। अब पुनः प्रश्न है कि यदि खड़िया दीवार नहीं है तो खड़िया नहीं हो तो ? खड़िया क्या होती है ? खड़िया तो खड़िया ही है। यह सिर्फ खड़िया की बातें नहीं चल रही हैं? अरे! तुम्हारी बुद्धि कुंठित हो गई है, पर में लिप्त हो गई है, तो खड़िया को समझाकर यह कह रहे हैं कि आत्मा तो आत्मा ही होती है। आत्मा कर्म नहीं होती है। आत्मा परद्रव्य नहीं होती है। आत्मा तो आत्मा ही होती है।

टोपी तो टोपी है, पण्डित जी पण्डित जी हैं, पण्डित जी की टोपी पण्डित जी नहीं हैं। टोपी से पण्डित जी की पहचान हो रही है, यह भी सही है। अनात्मभूत लक्षण की दृष्टि से यह भी सही है, आत्मभूत लक्षण की अपेक्षा से झूठ है।

इसी में मग्न है जीव। आजकल तो कोई टोपी लगाता नहीं है, हम ही लगाते हैं, न तू टोपी है, ना टोपी तू है। फिर क्यों टोपी में लीन है? मुकुट की महिमा देखो। किसी के मुकुट लग जाये फिर देखो कैसा सीना तानकर चलता है? परवस्तु की महिमा तो देखो। उपचार भी कितना प्रबल होता है कि व्यक्ति अपने स्वरूप को भूल जाता है। वह यही मान लेता है कि मैं ऐसा हूँ, तू है क्या?

खड़िया-खड़िया है, दीवार-दीवार है। फिर भी दुनियाँ कह रही है कि सफेद दीवार है। व्यवहार यही कहेगा कि सफेद छत है, परन्तु सफेद ही सफेदी की है। दीवार तो दीवार है। यदि किसी अपेक्षा से खड़िया-खड़िया है, यदि खड़िया-खड़िया होती है, अन्य विषय से खड़िया-खड़िया नहीं है, किन्तु अन्यभूत नहीं है। कोई कहे, पर खड़िया किसकी है ?

अपने स्वरूप में अनन्यभूत है, परभूत नहीं है। सो स्व स्वामी अंश-अंशी भाव है, पर स्वामी अंश-अंशी भाव नहीं है। मेरा ज्ञान, मेरा दर्शन, मेरा सुख, मेरा चारित्र यह मेरे स्व के अंश-अंशी भाव हैं, पर के नहीं हैं। मेरे में पर नहीं। तो फिर यहाँ प्रश्न किया-अच्छा तो यह बताओ कि स्व स्वामी अंश-अंशी की दृष्टि से व्यवहार में इसकी क्या सिद्धि होती है? स्व स्वामी अंश-अंशी भाव में अनन्यभाव को मानने पर इससे व्यवहार की कोई सिद्धि होगी क्या? व्यवहार की बात व्यवहार का ही फल देखेगी ना? व्यवहार में उससे कोई फायदा नहीं है, क्योंकि-खड़िया खड़िया ही है। खड़िया किसी की नहीं है, खड़िया तो खड़िया ही है। इस प्रकार से निश्चय जानना चाहिए।

इस प्रकार से यहाँ पर दृष्टांत का कथन किया। अब दृाष्टांत को कहते हैं। आत्मा को कहते हैं, जो चेतनभूत है, ज्ञान गुण से भरा हुआ है स्वभाव, वह जो व्यवहारनय से ज्ञेय है, पुद्गल आदि द्रव्य हैं। यहाँ पर पुद्गल आदि परद्रव्य हैं, वह ज्ञेय हैं। क्या पौद्गलिक द्रव्य ज्ञेयभूत हैं? ज्ञाता की जो ज्ञायकत्व चेतना है, क्या वह चेतना उसमें होती है? अथवा नहीं होती है ? ऐसा प्रश्न किया। अब यहाँ दोनों तत्त्वों की मीमांसा करते हैं। जो पौद्गलिक द्रव्य हैं, उसमें आत्मा होती है कि नहीं होती है? उसमें ज्ञाता का अंश होता है या नहीं होता है? जो पौद्गलिक द्रव्य ज्ञेयभूत हैं उन ज्ञेयभूत पौद्गलिक द्रव्यों में ज्ञाता का अंश होता है या नहीं होता है?

यहाँ पर उसकी मीमांसा करते हैं। मीमांसा किम् नाम ? परीक्षा। किम् परिक्षानाम् ? ऐसा है, ऐसा नहीं है। तर्क-वितर्क। यदि चेतना पुद्गल में होती है तो फिर पुद्गल भी चेतनभूत हो जायेगा। जैसे आत्मा में ज्ञान होता है, वह आत्मा में ही होता है। इस तत्त्व के सम्बंध से जीता है चेतना से युक्त होकर, फिर तो वह पुद्गल में भी हो जायेगा क्या ? नहीं। पुद्गल तो पुद्गल ही होता है। इस प्रकार से होने पर यदि पुद्गल में चेतना आ गई तथा चेतना में पुद्गल आ गया तो यहाँ पर स्वद्रव्य का उच्छेद हो जायेगा। द्रव्यान्तर में संक्रमण नहीं होता है, ऐसा पूर्व में ही कहा है ? पहले ही निषेध कर दिया कि ऐसा मानोगे तो द्रव्य का उच्छेद होता है। नहीं होती है चेतना पुद्गल आदि द्रव्यों में। यदि पुद्गल आदि में चेतना नहीं होती है, तो चेतना किसमें होती है ? चेतना तो चेतना में होती है। तो फिर क्या अन्य में चेतना है? अन्य की चेतना अन्य में होती है क्या? अन्य की चेतना में अन्य की चेतना नहीं होती है, तो अंशअंशी अन्वय होता है, परन्तु अंश-अंशी में कोई अन्वय नहीं होता है। क्या पर के गुण अंश, तेरी आत्मा के ज्ञान गुण का अंश पुद्गल में चला जायेगा ? पुद्गल का स्पर्श, रस, गंध, वर्ण जो धर्म है वह अंश चेतना में आ जायेगा क्या? अंशअंशी भाव से तात्पर्य समझो? पैर मस्तक, कान नाक आदि अंगों में आत्मा के प्रदेश हैं। सर्वाङ्ग अंशी है । यथार्थ में आत्मा ही अखण्ड अंशी है। आत्मा के अंग अंग में अंश हैं। इसमें

ही अंश-अंशी भाव बनता है। अन्य किसी में अंश-अंशी भाव नहीं बनता। प्रत्येक द्रव्य का स्वयं अंश-अंशी भाव है। परद्रव्य का परद्रव्यों में अंश-अंशी भाव नहीं होता है। क्यों? तालाब का किनारा तालाब का ही अंश है। ऐसे-ही मुमुक्षु। आत्मा के प्रदेश नख से शिख तक हैं। एक-एक अंग को देखेगा तो उनमें अंश-अंशीभाव है। मेरी आत्मा के प्रदेशों में मेरी आत्मा का ही अंश-अंशी भाव है, पर की आत्मा का अंश-अंशी भाव मेरी आत्मा में नहीं है।

सोचो आचार्यों ने कितना गहरा चिन्तन करके लिखा है। अद्भुत प्रज्ञा होगी। आपके कम्प्यूटर फेल हो जायेंगे। कम्प्यूटर से मनुष्य के मस्तिष्क बने हैं क्या ? कम्प्यूटर किसने बनाया है? क्यों पागल हो रहे हो कम्प्यूटर के चक्कर में। जिसने कम्प्यूटर का प्रयोग किया हो उस मस्तिष्क को ही तुम कम्प्यूटर को प्रदान कर चुके हो। सोचिये ? आपके कम्प्यूटर में कितने ही ग्रंथ भर चुके हैं, कितनी सी.डी. में कितने ग्रन्थ भरे हुए हैं ? बताओ कौन बड़ा है? ओ हो! धन्य है सर्वज्ञ के ज्ञान की महिमा। मस्तिष्क में कुछ है, आप लोग उपयोग नहीं कर रहे पूरे मस्तिष्क का। कितना-सा उपयोग कर पा रहे हो अपनी बुद्धि का? पूरा उपयोग करना सीखो। आप विश्वास मानिये। आपके मस्तिष्क में विशाल विषय भरा हुआ है, लेकिन उपयोग करना सीखो। तत्त्व का निर्णय करो, वस्तु का निर्णय करो। खोज करो, खोजनहार की खोज करो। वैज्ञानिकों ने प्रयोग किया है, वह जड़ में किया है। चूना को उठाकर हल्दी में पटक दिया, चूने का रंग बदल गया। देखो, प्रयोग करके दिखा दिया। इसमें किया क्या है? प्रयोगशाला तो होती है, कर्ताशाला नहीं होती है। प्रयोग किया है, परन्तु तुम्हारे वीतरागी वैज्ञानिकों ने क्या किया है? सारे एक सौ अड़तालीस जड़ कर्मों को पृथक् करके और आत्मगुणों को भिन्न करके शुद्धात्मा बनाया है। यह वीतरागी वैज्ञानिकों के मस्तिष्क का प्रयोग है। कितना साहित्य लिखा, भूगोल, खगोल, तंत्र-मंत्र, आयुर्वेद, अध्यात्म, चरणानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, प्रथमानुयोग। ऐसा कोई विषय नहीं है जिस पर लिखा न हो, सबकुछ लिखा है। बस आप उपयोग करना सीखो। इस लेखनी में कितने ग्रन्थ हैं? यदि इसे ऐसे ही रखो तो कुछ नहीं है, लिखो तो है।

ऐसे-ही तू मस्तिष्क को लेकर बैठा है, उपयोग नहीं हो रहा है। हाथ में लेखनी लो और कागज लो, लिखना प्रारम्भ कर दो आप पृष्ठ-पृष्ठ भर दोगे। मात्र लिये बैठे हो, क्या करूँ ? बर्बाद कर रहे हो समय को। काम करना प्रारंभ करो। मैं कभी भी धर्मसभा में प्रवचन का सोचकर ही नहीं आता हूँ। मैं प्रवचन की भी कभी तैयारी करके नहीं आता हूँ। तैयारी करके आयेंगे तो तैयारी वाले कैसे बोलते हैं यह मुझे मालूम है। वह रट्टू तोता होता है। बोलते-बोलते फिर अटक जायेंगे। तैयारी नहीं, तैयार होकर आना चाहिए।

जो तैयारी करके आता है वह पानी की काली टंकी के समान है। उसमें पानी कब तक, जब तक

भरा है। खाली हो जायेगा। पाताल तोड़ जो कुआ है उसमें पानी कब से कब तक ? ऐसे ही ज्ञानियों को विद्या रटना नहीं चाहिए, अपना पातालतोड़ कुआ खोदना चाहिए। स्वयं के भीतर का क्षयोपशम इतना बढ़ा लेना चाहिए कि कुछ पढ़ने की जरूरत नहीं है, सब अपने आप हो जायेगा। क्या सम्भव नहीं है?

केवली तीर्थंकर भगवान् बताओ कौन से विद्यालय में पढ़ने जाते हैं ? वे स्वयंभू होते हैं, वे पढ़ने नहीं जाते हैं। किसी ग्रन्थ को नहीं पढ़ते हैं। वे तो मात्र निर्ग्रन्थ होकर ग्रन्थ को देते हैं। यह जिनशासन ग्रन्थियों का शासन नहीं है, निर्ग्रन्थियों का शासन है। सग्रन्थों से ग्रन्थ मानने लग गये तो समाज में विघटन हो गया। ग्रन्थों की वाणी प्रमाणित नहीं है, निग्रन्थों की वाणी प्रमाणित है। ग्रन्थ अर्थात् शास्त्र। कितने गहरे विषय के लिए कितना सरल दृष्टांत दिया है। खड़िया। विषय क्या है? आत्मा।

यहाँ जो पढ़ रहे हो, वह समझ में आ गया क्या ? समझ में आ गया, तो तेरा मोक्ष हो गया क्या? सम्यग्दर्शन होते ही मोक्ष हो जायेगा क्या ? यदि सम्यग्दर्शन से मोक्ष होना है तो घर में ही मोक्ष हो जायेगा। रहस्य पकड़ो। जो सम्यग्दर्शन से मोक्ष मानते हैं, आप मानिये कि वे इसी घर से आये। सिद्धांत है। जो पहले श्वेताम्बर थे, अब वे अपने अन्दर में दिगम्बर रत्न भर नहीं पाये और ऊपर से दिगम्बरत्व ओढ़ लिये। जो सम्यग्दर्शन से मोक्ष मानता है, वह कपड़े पहने-पहने मोक्ष मानता है, वह श्वेताम्बर जीव है। ये हल्ला शुरू हुआ है कि सम्यग्दर्शन से मोक्ष हो जायेगा। तभी से हुआ जब से वो लहर आयी है। आपने क्यों अपनी बुद्धि को ठगा है।

सच्चे साधु दिगम्बर ही हैं, लेकिन दिगम्बर बनना नहीं होना। सम्यग्दर्शन न भी कहता तो यह कहता महाराज रत्नत्रय की पूर्णता होगी तब मुझे निर्वाण होगा और रत्नत्रय की पूर्णता में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आ गये। **सम्यक्चारित्र की पूर्णता के बिना मोक्ष होता ही नहीं। ज्ञान की पूर्णता से मोक्ष नहीं होता, चारित्र की पूर्णता से ही मोक्ष होगा। ज्ञान तो तेरहवें गुणस्थान में प्रकट हो जाता है, पूर्ण केवल ज्ञान। लेकिन चारित्र की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है।** और जैसे-ही चारित्र की पूर्णता होती है-अ, इ, उ, ऋ, लृ बस मोक्ष हो गया। चौदहवें गुणस्थान में मोक्ष होता है। परन्तु मोक्षमार्ग प्रारम्भ स्यात् चौथे, स्यात् पाँचवें गुणस्थान से प्रारम्भ होता है। लेकिन यथार्थ रूप में छटवें गुणस्थान से होता है।

व्यवहारनय से, जो दीवार है वह खड़िया होती है या नहीं होती है? इस विषय की दोनों मीमांसा आगे करेंगे । दीवार दीवार है, खड़िया नहीं है। खड़िया खड़िया है। खड़िया दीवार नहीं होती है। यह सफेद कपड़े तू नहीं है। तू सफेद कपड़े नहीं है।

परमपारिणामिक भाव से युक्त चिद् चैतन्य भगवानात्मा पूर्ण रूप से अपने आप में निश्चल

शांतिभूत है। कर्म की कलंकता के कारण, राग की कलुषता के कारण इस सहजस्वरूप को जीव समझ नहीं पा रहा है। जैसे कि खड़िया तो खड़िया है, खड़िया दीवार नहीं है, दीवार खड़िया नहीं है। परन्तु अज्ञानी जीव दीवार को सफेद कह रहा है, परन्तु यथार्थ में क्या दीवार ही सफेद है? दीवार तो कोई सफेद नहीं हुई। सफेदी तो खड़िया मिट्टी में है, परन्तु मिट्टी दीवार से संशोधित है। दीवार मिट्टी से संयुक्त है, इसलिए दीवार सफेद कही जा रही है। ऐसे-ही ज्ञानियो! आत्मा राग से युक्त है, आत्मा कर्मों से युक्त है, यह पर सम्बंध सापेक्ष है। शुद्धात्मा जो है, न रागभूत है, न कर्मभूत है, परन्तु पर के संयोग से जो कथन चल रहा है कि अमुक दीवार सफेद है, इसी प्रकार से पर संयोग से अज्ञानी जीव यह कह रहा है कि मैं पर से युक्त हूँ, पर मेरे से युक्त है। ध्रुव सत्ता को देखता है तो राग स्वभाव मेरा ध्रुव स्वभाव नहीं है। राग ही विभाव है। रागभूत स्वभाव नहीं है। अज्ञानी जीव राग के साधनों में निज भाव मान रहा है। जब मैं अपने राग को निज नहीं मानता हूँ, तो हे ज्ञानी! राग की पुष्टि निज से हो रही है तो वे तेरे निज कैसे ? आयुकर्म के निषेक हैं जीव के, वह पर सम्बंधों में नष्ट हो रहे हैं। अपने बारे में चिन्तन ही नहीं जा रहा है। मैं ही सब से युक्त हूँ। जब मेरी देह नहीं है, तो पर के सम्बंध मेरे कैसे ? एक रोम खण्ड भी तू अपने शरीर का लेकर नहीं जा सकेगा, एक परमाणु प्रमाण भी नहीं ले जा सकता है। फिर पूरे विश्व के प्रति जो रागबुद्धि चल रही है उसका क्या? साधना का जीवन, साधु का जीवन, इसको लक्ष्य लेकर सुनना है। मैं पर से भिन्न होने के लिए साधु बना हूँ। पर से भिन्न स्वीकारा है, तब साधु बना हूँ।

पर से निजात पाये हो तब साधु बने हो। साधु बनकर पर में लिप्तता है तब हे जीव! साधु असाधु भेद कैसा ? किस बात का ? जीव जिस क्षण साधुता की अनुभूति ले रहा था उस क्षण पर के दोष, पर के गुण देखना भी बन्द हो जायेंगे। दोष देखना तो दोष ही है, पर के गुणों में लीन होना भी गुणहीनता ही है। पर के दोष नहीं देखना, यह तो स्वीकार लोगे; लेकिन पर के गुण स्वीकार नहीं करना है, इसे नहीं स्वीकार पायेंगे? निज गुण और पर गुण इनमें एकत्व है क्या ? निज गुण पर गुण इनमें किंचित् भी एकत्व नहीं है। सदृश्यपना हो सकता है, एकत्वपना नहीं होता। आप दोनों व्यक्ति सफेद वस्त्र पहने हो, दोनों के वस्त्रों की सफेदी में सदृश्यता है, परन्तु क्या दोनों के वस्त्र एकत्वभूत हैं ? सदृश्य हो सकते हैं, एकत्वभूत नहीं हो सकते हैं। मेरा गुण तेरा गुण। मैं ज्ञान-दर्शनस्वभावी हूँ, आप भी ज्ञान-दर्शनस्वभावी हैं। ज्ञानदर्शनस्वभावी होने पर भी दोनों के ज्ञायकत्व में सदृश्यत्व है, परन्तु ज्ञायकत्व में एकत्व नहीं है। मेरा ज्ञानगुण स्वतंत्र है, आपका ज्ञानगुण स्वतंत्र है। आपका दर्शनगुण स्वतंत्र है। यदि इन दोनों के गुणों में एकत्व हो गया तो हम दोनों एक हो जायेंगे, फिर दो आत्मा एक हो जायेगी, यह तीनकाल में भी सम्भव नहीं है। सदृश्यत्व गुण-सदृश्यत्व मानिये। सदृश्यत्व में एकत्व मत ले जाइये। सदृश्यत्व में एकत्व

नहीं है। अनन्तानन्त सिद्ध परमेश्वर सिद्धालय में विराजते हैं, सम्पूर्ण सिद्ध भगवान् एक सदृश्यत्व हैं, फिर भी एक नहीं हैं। अनन्तानन्त जीवद्रव्य हैं। सदृश्यत्वभूत हैं ज्ञान-दर्शन की दृष्टि से, लेकिन एकत्वभूत नहीं हैं। मैं भगवान् स्वरूप हूँ, मैं भगवत् स्वरूप हूँ, पर मेरी भगवत्ता स्वतन्त्र है। मैं किसी भगवान्भूत नहीं हूँ। यदि मैं भगवान्भूत हो गया तो मेरी स्वतंत्रता का लोप हो जायेगा। सदृश्यत्व होने पर भी एकत्व नहीं है। इस भेद को समझिये। सदृश्यत्व को देखकर एकत्व को खोज रहा है, इसी में ठगा जा रहा है। जीवद्रव्य में सदृश्यपना हो सकता है, परन्तु पुद्गल में सदृश्यपना भी नहीं है। चेतन में सदृश्यपना है, परन्तु देह में सदृश्यपना भी नहीं है। समान धर्म जिसमें-जिसमें हों, वहाँ सदृश्यत्व भाव है। एकीभूत जो है, वह निजगुण गुण में होता है, परगुण गुण में एकत्व नहीं होता। जब भी आप यह कहो कि मैं एकत्वभूत हूँ, तो उसी क्षण दूसरा शब्द बोल देना चाहिए कि विभक्त स्वरूप हूँ।

ध्यान में बैठ जाओ। मैं एकत्वभूत हूँ, मैं विभक्तभूत हूँ। एकत्व को तभी समझोगे जब विभक्त को समझोगे। मैं एकत्वभूत हूँ, मैं विभक्तभूत हूँ। जितना एकत्व पर जोर दे रहे हो, उतना विभक्त पर भी जोर दो। मैं एकत्वभूत हूँ। मैं मात्र एक ही हूँ। विभक्त भूत क्या कह रहा है? मैं पर से भिन्न ही हूँ । निज में एक हूँ, पर से भिन्न हूँ। निज में एक का ध्यान तो कर लिया, पर से भिन्न का ध्यान नहीं किया, तो राग नहीं हटेगा। कहीं-न-कहीं तो राग है । 'मैं एक हूँ, पर से भिन्न हूँ' पर से भिन्नत्व है, इस पर ध्यान दो। एक दूसरे के शरीर पर राग। जो जितना अच्छा बेटा हो उसी पर राग। जगत् में विभिन्न द्रव्यों पर मात्र राग। विभक्त कठिन साधना है। ज्ञानी! अभी विभक्त को नहीं जाना, इसलिए बार-बार घर जाना पड़ता है। विभक्त द्रव्यों को नहीं जाना।

यह ज्ञान का विषय लाना अलग विषय है, श्रद्धान का अलग विषय है। जब व्यक्ति गुस्से में कहता है कि मैं छोड़ता हूँ, यह वस्तु नहीं चाहिए मुझे। ऐसे सहजता में निर्णय हो जाये कि यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा नहीं है। सहजता में निर्णय हो जाये इसका नाम वैराग्य है। तब एकान्त में बैठा मिलेगा जीव। कुछ नहीं, कोई मेरा नहीं। यह शब्द भी नहीं आना चाहिए। यह शब्द बोलना भी मेरा नहीं है। आप मेरे नहीं हो, मैं आपका नहीं हूँ। ऐसा कहना अज्ञानी की भाषा है। घर में जाकर यदि तू यह कहेगा कि तू मेरा नहीं है, अरे पागल! 'तुम मेरे नहीं हो' यह सुनाने भी क्यों गया? मेरे नहीं हैं यह तू बेटे की माँ को बोलने ही क्यों गया? तू बोलने गया क्यों? तेरे मन में राग बैठा है, इसलिए उसे सुनाने गया है। उसे ही सुनाने क्यों गया? जगत् में बहुत सारी नारी हैं , उन्हें सुनाने क्यों नहीं गया? तू मेरी नहीं है। अपनी पत्नी से बोल रहा है। यह तेरा अज्ञान बोल रहा है। जब तू निर्णय कर ही चुका है कि कोई मेरा नहीं है तो फिर कहना किसको? मैं तो दीक्षा ले रहा हूँ। आप मेरी नहीं हो, आप मेरे नहीं हो ऐसा आपने बोला। यदि आपको वैराग्य हो गया, घर जाकर माँ से कहा माँ तू मेरी नहीं है, मैं आपका नहीं हूँ। तेरी बात को सुनकर माँ

को धक्का लगा, उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई, उसकी मृत्यु हो गई तो अरे! तूने क्या किया? यह बोलने की आवश्यकता नहीं है, तो क्या करेगा ? कुछ नहीं। भीतर निर्णय हो चुका है। जब मैंने निर्णय कर लिया है कि मैं एकत्व हूँ, विभक्त हूँ। अब मैं कहने किसको जाऊँ ? निर्णय हो ही चुका है। समझाने किसको जाऊँ?

मिट्टी के सूखने पर तूम्बी पर से मिट्टी का लेप स्वयमेव हट जाता है। आर्द्रता हटा दो, मित्र भी तुम से दूर हो जायेंगे, तुम्हें साधु मानने लग जायेंगे। तुम साधु बन गये, आर्द्रता नहीं हटी, तब भी तुम्हें मित्र दिखाई देंगे। इसलिये आर्द्रता हटा दो। कुछ नहीं करना, मात्र आर्द्रता हटा दो। गीलापन है, उसे सुखा दो। जब-तक तुमको मित्र या शत्रु दिखाई दे रहे हैं, जब-तक तुम को स्वयं नहीं दिखाई दे रहे, तब-तक तुम गीले हो, मात्र उसे मित्रता दिखाई दे रही है। कोई मेरा शत्रु नहीं है अर्थात् शत्रु शब्द अभी तेरे पास है। अभी आपकी स्मृतियों में शत्रुपना है कि मैंने तो सब छोड़ दिया, कोई मेरा मित्र नहीं है। यानि तेरी जिससे मित्रता थी वह तेरी आँखों के सामने घूम रहा है, परन्तु तू वैराग्य की बात कहना चाहता है कि वैरागी हो चुका हूँ। जिस दिन तू शत्रु या मित्र के भाव से शून्य हो जायेगा तो कोई शत्रु नहीं है, कोई मेरा मित्र नहीं है। यह व्यर्थ का शब्द बोलने में समय नष्ट नहीं करेगा। कोई मेरा शत्रु नहीं, इतना भी बोलने में आपका समय गया यानी आपके पास समय का कोई मूल्य नहीं है। मित्र या शत्रु में समय गया तो आपके मन में मित्र भी आ रहा है, शत्रु भी आ रहा है। जब तू शत्रु-मित्र से शून्य हो जायेगा, अब मैं तेरे से पूछना चाहता हूँ तेरा कोई शत्रु है या नहीं, मित्र है या नहीं? हे मुमुक्षु! तू स्वात्मलीनता में लवलीन हो जायेगा उस काल में तू अपना ही भेद न कर रहा होगा। वहाँ न शत्रु का विकल्प है, न मित्र का विकल्प है। **मैं तो एकत्व-विभक्त स्वरूप हूँ, इस सत्ता के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है। यदि शत्रु मित्र शब्द भी तेरे पास है तो आप शुद्धोपयोग में लीन नहीं हो। स्थूल विकारों को छोड़ना प्रारम्भ करो। लोक में जो अच्छा या बुरा दिखाई दे रहा है, उसे देखना बन्द करो।** मैं नारी का त्यागी हूँ। ऐसा तू कह रहा है तो कहीं-न-कहीं नारी तेरे अन्दर है। जब स्वयं में लीन हो ही चुका है, अब नारी को क्यों बुला रहा है?

जब त्यागी गुण का भी त्याग हो जायेगा, तब त्याग हो जायेगा, तब तू त्यागी होगा। एक तरफ जीवन में मन बना लो। ग्रहण करने की छोड़ने की बहुत सारी साधना कर चुका हूँ। अब तो मात्र वह साधना करना चाहता हूँ कि बस, शून्य हो जाओ। किससे ?

मैं ग्रहण और त्याग इन दोनों की उपादान की शक्ति से शून्य हूँ। न ग्रहण मेरे अन्दर है, न त्याग मेरे अन्दर है। मैं तो मात्र मैं ही हूँ। जब मेरे अन्दर कुछ नहीं है, तो ग्रहण किसमें करूँ ? 'जो खाली होता है, उसमें कुछ रखा जाता है।' मैं पूर्व से ही पूर्ण कुम्भ हूँ। मैं पूर्व से ही अनन्त ज्ञान-दर्शन स्वभाव से

युक्त हूँ, पूर्ण हूँ। मेरा ज्ञान दर्शन मेरी आत्मा में परिपूर्ण भरा हुआ है। जैसे गन्ने के पौरे में किसी भी अंश में रस शून्यता नहीं है। गाँठ को छोड़ दो। **जैसे गन्ने के पौरे में जहाँ भी देखो वहाँ रस है, ऐसे ही मेरी आत्मा में एक अंश भी ऐसा नहीं है जहाँ ज्ञान न हो, जहाँ दर्शन न हो।** मुझे दूसरे किसी की आवश्यकता ही नहीं है। मैं तो ज्ञान-दर्शन रूप ही हूँ। पूर्व से ही पूर्ण हूँ।

मैं तो जिसे बोल रहा हूँ, उसे अनुभव भी कर रहा हूँ। गन्ने का कौन-सा भाग ऐसा है जिसमें रस नहीं है? गन्ने के प्रत्येक अंश में रस भरा हुआ है। अब गन्ने को किसी और रस की आवश्यकता है क्या ? गन्ना किसी रस को चाहता है क्या? जो दुनियाँ को रस दे रहा हो, वह रस ग्रहण किसी का करना ही नहीं चाहता है। जैसे गन्ना किसी का रस नहीं ग्रहण करता है, ऐसे ही सम्यग्दृष्टि मुमुक्षु निर्ग्रन्थ तपोधन किसी भी परवस्तु के रस को ग्रहण नहीं करना चाहता है। इसलिए '**ग्रहणशक्ति शून्योऽहम्**'

सैंतालिस शक्तियों पर व्याख्या करूँगा यदि पर्याय रही तो? यह सैंतालिस शक्ति हैं आत्मा की, उसमें एक शक्ति का नाम है-

'*ग्रहण त्याग उपादान शक्ति शून्योऽहम्।*'

'मेरे में कुछ ग्रहण नहीं' मैं खाली नहीं हो जाऊँगा । जो कुछ चाहते हैं वे बेचारे खाली हैं। जो मैं कह रहा हूँ, वह समझ में आ रहा है क्या? भले ही आप उस में लीन नहीं हो पा रहे हो, लेकिन ज्ञान का विषय बन रहा है कि नहीं? मैं कहाँ से खाली हूँ? यह दुकान, मकान, धन, स्त्री, शिष्य, चेला, चेली सब परवस्तु हैं, मैं इनसे शून्य हूँ। शिष्यों को अपना मानना भी महा-अज्ञानता है। एक शब्द में भी राग आ रहा है कि यह मेरा शिष्य है, तो कहीं आप उसके नजदीक हैं। स्वीकार तो करना ही पड़ेगा। वहीं मुनिपने का आनन्द तो आ ही नहीं सकता। पहले गृहस्थी चलाते थे, अब संघ चलाते हो, उसमें उलझते हो, अन्तर क्या है महाराज ? मेरे तो एक-दो सन्तान थीं, आपके तो ढेर सारे लोग इकट्ठे हो गये। जो मैं कह रहा हूँ, वह भीतर का विषय है, भीतर से बोल रहा हूँ। कहाँ खाली है, लबालब भरा हुआ है। गन्ने के पौधे में सर्वस्व में रस भरा है, ऐसे ही मेरी आत्मा में ऐसा कौन-सा प्रदेश है जिसमें ज्ञान नहीं है, जिसमें दर्शन नहीं है? कोई ऐसा अंश नहीं जो ज्ञान-दर्शन शून्य हो। इसलिए ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ। अब मुझे पर को ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए गृहण शक्ति से शून्य हूँ। जब मैंने किसी को ग्रहण किया ही नहीं है। एक क्षण को बारिश का पानी समुद्र के पानी में गिरता है, वही ग्रीष्मकाल में क्यारियों में भर जाये तो नमक बन जाता है, वही नमक की डली बारिश में पानी हो जाती है। जैसे नमक की डली पानी हो जाती है, पानी पुनः नमक हो जाता है मौसम को देखकर, ऐसा कोई भी मौसम नहीं होगा जब मेरी आत्मा परवस्तुभूत हो जायेगी और पर वस्तु आत्माभूत हो जायेगी। कोई मौसम नहीं होगा।

न ग्रीष्म, न शीत, न बारिश। में तीनों मौसमों में निज से पूर्ण हूँ। जब में खाली ही नहीं हूँ, तो भरूँ किसको ? जब मैंने किसी को स्वीकारा ही नहीं है, तो छोडूँ किसको?

महाराज! इतने दिन से व्रत ले लिया है, इतने दिन से परिग्रह छोड़ दिया है। अरे ज्ञानी! तेरा था ही क्या जो तूने छोड़ दिया है? घर में बैठे हैं, वे ग्रहण के राग गा रहे हैं। घर छोड़ दिये हैं, वे छोड़ने के राग में रो रहे हैं, दोनों बंध को प्राप्त कर रहे हैं।

जिसकी धारा प्रवाह व्याख्या चल रही है, अब आपको समझना चाहिए। अरे! त्याग निज उपादान शक्ति से युक्त नहीं है। ग्रहण भी निज उपादन शक्ति से युक्त नहीं है। तो इसके भीतर और कौन-सा धर्म छिपा हुआ है? कुछ तो है। गन्ने के रस में क्या भरोगे? और गन्ने के रस से क्या निकालोगे ?

एक उपदेश में ही एक युवक के व्रत लेने के भाव हो गये। कहता है 'महाराज! व्रत देदो।' मैंने कहा 'माता-पिता से पूछ लो।' उसने कहा 'लेना मुझे है, पालना मुझे है।' कौन क्या करेगा ? सोचो। तत्त्व भीतर नहीं जाता होता तो कैसे भाव आ गये? इसमें क्या भर सकता हूँ? रस से क्या निकाल सकता है ? यह कह रहा है कि पानी भर सकता हूँ। तो पानी के परमाणु पानीभूत ही रहेंगे, गन्नेभूत नहीं होंगे।

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वियणिच्चं सगं सभावं ण विजहंति।। 7 पं.का.।।

एक दूसरे में मिले हुए होने पर भी क्या एक-दूसरे में मिल जायेंगे? उसमें क्या भर रहे हो, क्या निकाल रहे हो ? न कुछ भर सकते हो, न कुछ निकाल सकते हो। जो मधुरता उसकी है, उसे क्या निकालोगे ? ऐसे-ही ज्ञानियो ! मेरी आत्मा में ज्ञान-दर्शन गुण है, वह उसमें कुछ भरा ही नहीं जाता है, उसमें से कुछ निकाला ही नहीं जाता है। जो है, सो है। जब जगत् में सारे सूत्र फेल हो जाते हैं तब जगत् में सूत्र प्रारंभ होता है- 'जो है सो है।'

सम्पूर्ण प्रश्नों का सारे विश्व में समाधान कोई है, तो 'जो है, सो है।' 'ग्रहण त्याग उपादान शक्ति शून्योऽहम्।'

इसलिए मैं ग्रहण-त्याग उपादान-शक्ति से शून्य हूँ। न मैं किसी को ग्रहण करने की सामर्थ्य रखता हूँ, न किसी छोड़ने की सामर्थ्य रखता हूँ। तेरे राग की विडम्बना है जो ग्रहण कर रहा है। जो चिद्रूप है, उसमें किसी का प्रवेश नहीं। अकृत्रिम द्रव्यों में कुछ जोड़ सकता है क्या? अकृत्रिम हैं। वे अज्ञानी लोग हैं जो यह कह रहे हैं कि मैं पिता का हूँ, मैं माता का हूँ। अरे! जिसे तू अपना कह रहा है, वह तो देह के पिण्ड हैं तेरे माता-पिता। परन्तु मैं तो अकृत्रिम ही हूँ। तू कब से है, कब तक और रहेगा ? ध्यान

किसका करें?

'अकृत्रिमस्वरूपोऽहम्' मैं परकृत नहीं हूँ, मैं निजकृत भी नहीं हूँ। मैं तो अकृत्रिम हूँ। अहेतुक। सहजस्वरूप। अहेतुक और सहज पर लक्ष्य नहीं है, दिगम्बर मुनि बनकर भी पूरी पर्याय निकाल दी। अहेतुक, अकृत्रिम, सहज पर दृष्टि नहीं पहुँची तो विश्वास रखना पूरी पर्याय का वजन तो तू ढो लेगा, हर्ष-विषाद कर ही लेगा, परन्तु 'त्यागग्रहणउपादानशक्तिशून्योऽहम्' पर दृष्टि नहीं है। उस पर लक्ष्य करो। जब मैं पहुँच जाता हूँ तो अपने आप शून्य हो जाता हूँ। आकाश में विमान देखते-देखते एक क्षण ऐसा आता है कि विमान दिखाई देना बंद हो जाता है। ऐसे-ही जब जीव उस शुद्ध सत्ता को अनुभव करने लगता है, वह पर से शून्य हो ही जाता है।

जिस व्यक्ति ने एक धान्य खाने का नियम ले लिया हो, परन्तु यह नियम नहीं है कि कौन-सा धान्य खाना है? मात्र एक दिन में एक ही धान्य खाऊँगा और उसके सामने पचास धान्य की भोजन सामग्री बना कर रख दी है। जब तक उसने मुख में नहीं रखा, तब तक उसे सब धानों का आस्रव हो रहा है, क्योंकि वह अभी निर्णय नहीं कर पा रहा है कि मैं कौन-सा खाऊँगा? इसलिए अभी पचासों का आस्रव कर रहा है और जैसे ही निर्णय कर लेता है कि आज मुझे चावल खाना है। चावल का ग्रास जैसे-ही मुख में रखता है, बचे हुए उनपचास धान अपने आप उसके लिए अकिंचित्कर हो गये। न आस्रव कर रहे हैं न बंध करा रहे हैं। उसका मात्र एक खाने का नियम था, एक ग्रहण कर लिया है, अब वह परिपूर्ण रूप से उदास हो गया है। एक को खाते ही उनपचास से राग दूर हो गया। एक भगवानात्मा को देखते ही जगत् के सम्पूर्ण द्रव्यों से दूर हो जाता है। बस 'एकोऽहम्।'

उत्कृष्ठ साधना, उत्कृष्ठ तपस्या मात्र 'एकोऽहम्' दिगम्बर मुनि मात्र इसलिए बना जाता है एक में लीन होने के लिए। बाकी प्रपंच के लिए दिगम्बर मुनि बना ही नहीं जाता है। 'एकोऽहम्।' वर्तमान की विडम्बना है कि जो तुमको निर्ग्रन्थ नाना कामों में संलग्न दिखाई दे रहे हैं। देखनहार को देखो, वो भी एकमात्र है। मात्र एक है। मैं दूसरे जाननहार को भी जानना नहीं चाहता हूँ। दूसरे देखनहार को भी नहीं देखना चाहता हूँ। मैं उसे ही देखना चाहता हूँ जो मुझे दिखा रहा है। बस, कुछ नहीं । ऐसा सम्भव है। एक जीव सोलापुर में पागल हो गया था इसी बात को सुनते-सुनते। ऐसा पागल हो गया कि तीन दिन तक मेरी कक्षा में नहीं बैठा। कहता है, जो यह बोल रहे हैं वह सम्भव है क्या ? किसी को देखो मत, किसी से बोलो मत, किसी को छोड़ो भी मत, किसी को स्वीकारो भी मत, यह कैसे सम्भव है? मैंने उनपचास कैसे छोड़े, चावल खिलवा दिये। सम्भव है छूट गये।

ऐसे-ही मुमुक्षु! तेरे निज की थाली में राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि के असंख्यात लोक प्रमाण

विभाव बैठे हैं, उन सब विभाव भावों को हटाने के चक्कर में बैठ जायेगा तो परेशान हो जायेगा। इंजीनियर है तू, यह बता कि इस भवन में कितनी ईंटें लगी हैं ? तू उसे गिनने जायेगा क्या? नहीं बता पायेगा क्या? कैसे बता सकते हो? एक क्षेत्र में ईंटों का प्रमाण निकालेगा। एक क्षेत्र में ईंट कितना हिस्सा घेर रही है। हमारे जैनदर्शन में विद्या की कमी नहीं है। रेखा गणित, अंक गणित भी है। परिधि भी है। बहुत सारे प्रकार के गणित हैं हमारे यहाँ। माना कि अब इतने प्रदेश में एक ईट घेर रही है तो पूरे भवन के प्रदेश की नाप करा दो। आप एक भवन की ईटों की गिनती कर सकते हो कि नहीं? क्या लोगों ने लौकिक पढ़ाई भी विवेक से नहीं की? एक भवन की ईट को देखकर पूरे भवन की ईटों का ज्ञान कर लेता है। ऐसे-ही ''क्षपणासार, लब्धिसार'' यह जैनदर्शन के उच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। इन दोनों ग्रन्थों में भावों का वर्णन है। पूरी गणित शैली से है। अब असंख्यात लोक प्रमाण जीव के परिणाम हैं।

एक जैन भवन इतने विशाल क्षेत्र को घेरे हुए है, उसकी एक-एक ईंट नापने जाओगे तो कितना हमारा समय बर्बाद होगा और एक एक परमाणु-परमाणु नापोगे क्या? मुश्किल हो जायेगी। एक ईंट को नापकर उसका क्षेत्र निकाल लेते हो, इसमें इतनी ईंटें होना चाहिए। आत्मा एक भवन है। इसमें असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम हैं, विभाव भाव। अब्रह्म एक प्रकार का नहीं है, चोरी एक प्रकार की नहीं है, परिग्रह एक प्रकार का नहीं है। स्थूल रूप से पाँच गिनते हो। यह पाँच पाप के प्रकार हैं। यह पाँच पाप के भेद नहीं हैं। एक हिंसा ही असंख्यातलोकप्रमाण है। किसी व्यक्ति के प्रति अशुभ भाव ला रहा है, अहिंसा है कि हिंसा है? मार्ग में चींटी जा रही थी और आपने उसका मार्ग मोड़ दिया तो आप प्रायश्चित्त के भागीदार हो गये। घात नहीं किया, उसका मार्ग रोक दिया है। आप मुनिराज हो, श्रमण हो, कैसी बातें कर रहे हो? अपहृत संयमी से पूछो, वे हटाने की बात कर रहे हैं उपेक्षा संयमी से पूछो। कालिया नाग जमीन पर घूम रहा है, मेरी प्रतिज्ञा है कि जब तक यह हटेगा नहीं मैं यहाँ से हटूँगा नहीं, न हटाऊँगा। वे उपेक्षा संयमी निर्ग्रन्थ, तपोधन हैं। चींटी काट रही है तो काटने दो, मच्छर काट रहा है तो काटने दो। पिच्छिका से भी नहीं हटायेगा। यह उपेक्षा संयम है।

धर्म के नाम पर इतना विपर्यास फैल चुका है। इन विद्वानों का क्या होगा? लोक रूढ़ियों को स्वीकार करके नवग्रह शांत करने लग गये, लोगों को भ्रमित कर दिया है। इस बालक को किसी ने बोल दिया कि तुझे कालसर्प योग लगा हुआ है, इसकी तो हालत खराब हो गई। पता नहीं क्या विवेक जागा, यह मेरे पास आया, बोला 'महाराज जी! कल से चिन्ता-ही-चिन्ता है, मुझे तो कालसर्प योग हुआ है।' मैंने कहा 'ज्ञानी! सुन। सबसे बड़ा योग मैं ही हूँ।

ध्रुव सत्य समझो। भीतर भय है तो सारे ग्रह तुझे सतायेंगे। जिसके भीतर का भय निकल चुका

है, 'जो है, सो है।' उसे किस बात का भय है? मरण के आगे क्या होता है? जब मुझे मरने से ही डर नहीं लगता, तो जगत् के भूतों से क्या डर लगेगा? वे भूत मेरे चरणों में आये हैं। यह सबकुछ हो रहा है, इतने नाटक हो रहे हैं धर्म के नाम पर। सत्यता यह है कि लोगों को धर्म का ज्ञान नहीं है। लोक में जिसे कल्याण कहा जाता है, वो ही कल्याण है कि कालसर्प योग उतार दो, गृह उतार दो, लगे हों या न लगे हों। ज्ञानी! एक क्षण तू ही बन जा ग्रहपति, यह शनिग्रह उतारना है। भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी को इनने देव बना डाला। वे दिन गये जब ज्योतिषी सवा रुपये माँगता था। अब तो भिखारी भी सवा रुपये नहीं लेता। पण्डित लोग कहते हैं सवा लाख चाहिए। हजार से नीचे तो बात ही नहीं करेंगे तुमसे। तेरे से बोल दिया कि तुझे लगा है शनिग्रह। अब पण्डित जी शनिदेव उतरवाने आये, क्या करेगा? सवा लाख रुपये माँगेगा। तेरे उतरें या न उतरें, पण्डित जी के तो पक्के उतर गये। पण्डित जी को तो सवा लाख से मतलब है, तेरा काम तू जाने। जब कुछ नहीं हुआ तो क्या कहेंगे? अरे भइया! जब कर्म का तीव्र उदय होता है तो कुछ नहीं होता। तो ऐसा कहकर तुमको घुमा दिया, सवा लाख लेकर चला गया। धर्म की व्याख्या तो बन्द हो चुकी है। 'ज्ञायकभाव मात्र तेरा निज स्वभाव है।' आज से निर्णय कर लो 'जो है, सो है।'

सबसे बड़ा डर है परिग्रह। परि अर्थात् चारों ओर। जो चारों ओर से ग्रहण करे, उसका नाम है परिग्रह। आप सब परिग्रह उतार दो। एक शास्त्री जी आये, मेरे हाथ की रेखाएँ देखकर कहने लगे 'महाराज! आपको शनिग्रह लगा हुआ है।' शनिग्रह से क्या होता है? 'महाराज! कुछ नहीं बचता उसके पास।' मैंने कहा 'बहुत अच्छा हुआ। मैं तो परिग्रह त्याग चुका हूँ। मेरे लिए तो शनिग्रह फलित हो गया तो मैं मुनिराज बन गया।'

पण्डित जी! वे दिन कहाँ चले गये? आज तो जिसके बेटे की शादी होती है वह धनपति को देखता है। बिटिया का गोरा वर्ण है या नहीं? अरे आज्ञानी! वे दिन कहाँ गये कि चार-पाँच रिश्तेदारों को साथ में लेकर जाया करते थे, और उसके यहाँ भोजन करते थे। भोजन करते समय जो परोसने आये वह कन्या, कैसे चलकर आ रही है! उसकी एड़ी जमीन पर रखी जा रही है या पंजा रखा जा रहा है, पैर की कौनसी अंगुली आगे भग रही है? आगे कुछ देखने की जरूरत नहीं है। मैं इस विद्या को जानता अवश्य हूँ, लेकिन प्रचार के लिए कुछ नहीं। पूछना हो तो ज्ञायक भाव पूछना। अब आप नहीं पूछना कि कौन-से शास्त्र की विधि बता रहे हो आप। जिसको मोक्ष चाहिए, उसे सफेद द्रव्य चढ़ाना चाहिए, सफेद वस्त्र पहनना चाहिए, सफेद ही मात्र से भगवान् का नाम लेना चाहिए। जिसको इन्द्र बनकर आराधना करना है उसको पीत आवरण ही स्वीकार है। पीत लेश्या पीत वर्ण है, वह आकर्षण का प्रतीक है। जैसे भौंरा होता है वह भले ही काला होता है, लेकिन बैठता पीले फूल पर है।

'णमोआइरियाणं' आचार्य परमेष्ठी का पीतवर्ण, वह पीत वर्ण आकर्षक है। पद्म लेश्या का प्रतीक है। पीत लेश्या भद्र परिणामों का प्रतीक है और भक्ति का उत्कृष्ठ कोई चिह्न है, वह पीतवर्ण है। पीत लेश्या वाले के लिए गोम्मटसार- जीवकाण्ड में यह कहा कि जिसके अंतरंग में तीव्र भक्ति है, अंतरंग में गुणानुराग है, वह पीत लेश्या का लक्षण है। पीत लेश्या वाले के अन्दर बहुत भक्ति होती है, इसलिए इन्द्र की पोशाक भी पीली ही बनाई है। यह काले-कलूटे वस्त्र पहन कर मन्दिर नहीं जाना। क्यों ? काले कपड़े से ढँक कर फाँसी दी जाती है। अशुभ का प्रतीक है काला वस्त्र, इसलिए शुभ कार्यों में पहनकर नहीं आना चाहिए।

रक्त वस्त्र और श्याम वस्त्र, इन दोनों प्रकार के वस्त्रों में शुभ काम करने के लिए निषेध है। गीले वस्त्र पहनकर जो व्यक्ति दान, पूजा आदि कार्य करता है, वह तो चमड़े को पहनकर कर रहा है। गीले वस्त्र पहनकर न कभी दान देना, न पूजन करना। जब रंगों की व्याख्या करोगे तो नील वर्ण भी निरोगता का प्रतीक है। ध्यान का विषय भिन्न है, पूजन-पाठ के लिए तो पीले ही वस्त्र चाहिए।

कहाँ ज्ञायकभाव से व्यवहार में डूब गये हो? चलो, समयसार में चलें। यह नीला-पीला व्यवहार पर वस्तु है। निश्चयनय से तो 'जो है, सो है। समयसार समझना कठिन नहीं है, परन्तु समयसार में लीन होना बहुत कठिन है। समयसार में लीन होना भी कठिन नहीं है, पापों में लीन होना कठिन है। समयसार में तो निज में रहना पड़ता है, पापों के लिए तो पर चाहिए। समयसार कठिन नहीं है, पाप ही कठिन है। शब्द समयसार का आनन्द भिन्न है, अर्थ समयसार का आनन्द भिन्न है।

देखनहारा दृश्यमान वस्तु नहीं है। समझो। समयसार की बात प्रारंभ होती है तब सब विलीन हो जाता है, जैसे ही व्यवहार की बात प्रारंभ होती है तो हलचल प्रारंभ हो जाती है। जब व्यवहार की बात में ही हलचल है तो व्यवहार कितना हलचल करता होगा? निश्चय की बात में शांति है। मार्ग में चलता पथिक ठहर जाता है। जबलपुर में वाचनाकाल में एक पथिक रिक्शे वाला रुक कर प्रवचन सुनने लग गया। उसे किसी व्यक्ति ने कहा चलो, तो कहने लगा मुझे प्रवचन सुनना है। वह सज्जन बोले 'पचास का नोट दूँगा, चलो।' तो कहने लगा 'पचास का क्या सौ या हजार भी दोगे तो भी मुझे प्रवचन ही सुनना है।' तो वह सज्जन कहने लगे कि घर क्या ले जायेगा? बोले 'घर कुछ नहीं ले जाऊँगा खाली जाऊँगा। बस यही ले जाऊँगा।' यह समझ में आता है क्या तुमको? प्रवचन चल रहे हैं। पता नहीं समझ में आयेगा या नहीं, लेकिन जब से मैं यहाँ खड़ा रहने लगा हूँ मेरे जीवन में शांति आने लगी है। पैसे तो कहीं भी मिल जायेंगे, परन्तु शांति कहीं नहीं मिलेगी। शांति चाहिए तो जितनी सुख की सामग्री है सब छोड़ दो, शांति आ जायेगी। दृष्टा तो दृष्टा है। ज्ञाता तो ज्ञाता है। ज्ञेय दृष्टा नहीं है, ज्ञेय ज्ञाता नहीं है। जो दिखाई

दे रहा है, वह दृष्टा नहीं, ज्ञाता नहीं। जो ज्ञाता-दृष्टा है, वह आँखों से किसी को दिखता नहीं है। जो आँखों से दिख रहा है, वह ज्ञाता-दृष्टा नहीं है। जो दृष्टा है दर्शन है वह पर नहीं है। जो पर है, वह दृष्टा नहीं है। दृष्टा तो दृष्टा ही है। सेटिका तो सेटिका है। खड़िया नहीं है।

मुमुक्षु! मैंने यह छोड़ दिया, मैंने संयम धारण कर लिया। अरे ज्ञानी! क्या छोड़ा ? कुछ भी तो छोड़ने लायक था नहीं। बस ऐसा ही कहकर सब पापों में लिप्त हो रहे हैं कि क्या छोड़ना ?

तत्त्व को विपरीत कर लिया और भोगों में मस्त हो गया कि क्या छोड़ना? परमार्थ दृष्टि से कह रहे हैं कि जब मैं स्व का कर्ता ही नहीं हूँ, तो छोडूँ किसे ? जब मैंने स्वीकारा ही नहीं है, तो मैं छोडूँ किसे ? एक सज्जन मुझसे बोले 'तुम तो साधु बन गये हो।' हाँ, बन गया हूँ। 'यह तो बताओ कि तुम्हारे नाम की सम्पत्ति किसको देकर जा रहे हो ? ज्ञानी ! मैंने स्वीकारा ही नहीं है, तो छोडूँ किसको ? छोड़के जाऊँगा तो नियम से राग-द्वेष होगा। किसको दूँ? ज्ञानी लोग कहेंगे कि बताओ साधु तो बन गये, अभी मन में भाव आ रहा है कि किसको दूँ ? जिसके प्रति ज्यादा राग था उसे देगा यह उत्कृष्ट वैराग्य नहीं है। जो व्यवस्था सौंप कर गया है वह तो रागी है। पड़ी रहने दो। 'जो है, सो है।' मैंने स्वीकारा ही नहीं, छोड़ा किसको? अज्ञानी लोग यह कहते हैं कि मैं छोड़ रहा हूँ। इसका तात्पर्य उन्होंने स्वीकारा है तो छोड़ना ही चाहिए।

जिसने स्वीकारा ही नहीं, तो छोड़ने की क्या आवश्यकता? परन्तु अज्ञानियों ने विपरीतता क्या लगा ली है? अब छोड़ना क्या/क्यों? यह ज्ञानी कहता है कि मैं घर नहीं हूँ। क्यों? क्योंकि मैंने स्वीकारा ही नहीं है, तो छोडूँ क्या? इसलिए मस्ती में जीवन जीता है। ज्ञानी! ऐसा नहीं है। तूने स्वीकारा नहीं है तो कौन रह रहा है? बुद्धिपूर्वक तू नहीं गया था क्या? सिद्ध भूमियों में घूमकर आ गये, सम्मेद शिखर होकर आ गये, निर्वाण भूमियों में होकर आ गये, तब भी आये तो कहाँ? अपने छोटे-छोटे शहरों में। यह शहर इतना अच्छा लग रहा है जो सम्मेद शिखर छोड़कर यहाँ आ गया? भैया! तू यह उपदेश सुनने बैठा जरूर है, परन्तु मुझे मालूम है कि तू चला जायेगा? ध्रुव सत्य है कि जब-तक भीतर का राग नहीं छूटेगा तब-तक तुम कुछ नहीं छोड़ पाओगे? आप कह सकते हो कि 'महाराज! मेरा कल्याण कैसे हो?' जब तुम छोड़ ही नहीं रहे, तो कल्याण कैसे होगा? यह मत कहना कि कोई दूसरा पकड़े हुए है। कोई किसी को पकड़े हुए नहीं है। आप कल जाओ, इससे अभी जाओ। कोई नहीं पकड़े है। भीतर राग बैठा है।

'कपड़े उतार देना सरल है, मोह को उतार देना सरल नहीं है।' कपड़े उतार देने के बाद भी नागा बाबाओं के पास हाथी, घोड़े होते हैं। शरीर पर धागा नहीं रखा और हाथी लिये घूम रहे हैं।

वह हाथी नहीं है, वह है मोह का हाथी। कपड़े तो उतर गये, परन्तु मोह का हाथी नहीं उतरा।

'मन वश करो, जगत् वश करने की कोशिश मत करो। क्यों तुम जगत् का विरोध कर रहे हो? इच्छाओं का विरोध करो। मन वश करो, तब जग वश होगा। कोटि-कोटि जीवों की हिंसा से बच जायेगा। मन वश में नहीं है तो किसको करो वश में? विदेशी भारत से सारे ग्रन्थ चुरा-चुरा कर ले गये। जर्मन में ग्रन्थ हैं, उनने सत्तर हजार ग्रन्थों की सूची बनाई है। तत्त्वार्थ सूत्र, पंचास्तिकाय, नियमसार, प्रवचनसार ग्रंथों के अन्दर से रासायनिक तत्त्वों का विवेचन निकाल निकाल कर बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्य चल रहा है। जयपुर में, हस्तिनापुर में, दिल्ली में प्रतिवर्ष सैकड़ों विदेशी आते हैं, वह जैनदर्शन पढ़ने आते हैं, वहाँ उनकी व्यवस्था की गई है। जयपुर में भट्टारक की नसिया, वहाँ पर हर वर्ष विदेशी आते हैं अध्ययन करने। जापान से एक प्रोफेसर तीन बार आ चुका है। आठ-दस दिन रुकता है। मैंने पूछा, क्यों ? 'जैनदर्शन पर काम कर रहा हूँ। अच्छा हुआ महाराज जी आप मुझे मिल गये। वह इतनी सामग्री लेकर गया और खुश हो गया कि में कई वर्षों से खोज रहा था, वह मिल गया। खजुराहो में मन्दिर की छत पर बैठे हुए थे। श्रीलंका से यात्री आया। वो मेरे पास आकर बैठ गया। मैंने सोचा कि कैसा जीव है? दूसरे को केमरा दिया और कहने लगा कि फोटो खींच लो। मैंने पुछवाया कि ऐसा क्यों कर रहा है? बोला जैन योगी हैं। महाराज साहब! मैं वर्षों से जैनदर्शन में थीसिस लिख रहा हूँ, वर्षों से काम किया, प्रतिमा मिल गई, मन्दिर मिल गया, मूर्तियाँ मिल गईं, साहित्य मिल गया, लेकिन साधु नहीं मिल रहे थे। यह फोटो मैं खींच रहा हूँ, अपने ग्रन्थ में मैं छापने वाला हूँ कि जैन साधु ऐसे होते हैं।

आपको पता नहीं है, जैनदर्शन पर देश-विदेश में काम चल रहा है। जब भारतीयों को मालूम नहीं था तब शिकागो में 'लघु तत्त्व स्फोट' ग्रन्थ का अनुवाद हो चुका था। रशियन भाषा में। वहाँ से अनुवाद हुआ तब जैनियों को मालूम चला कि इतना महान् कोई ग्रन्थ है। तब यहाँ संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद हुआ। पण्डित पन्नालाल शास्त्री ने हिन्दी में अनुवाद किया, उसी अनुवाद को उत्तम चन्द्र जी सिवनी वालों ने छापा है, यह वही ग्रन्थ है।

'लघु तत्त्व स्फोट' ऐसा ग्रन्थ है कि उनका उच्चारण ही किया जाये तो सारे लोग रोने लग जायें, सारे लोग हँसने लग जायें। ऐसी ध्वनि का प्रभाव है। आप यहाँ दो घण्टे से शांत बैठे हो, किस बात पर बैठे हो? तुम्हें कौन बाँधकर बैठाले हुए है? यह तत्त्वदृष्टि है। यह शब्दशक्ति है। शब्द शक्ति जब इतनी प्रभावी है, तो भाव शक्ति क्यों न प्रभावित करेगी ?

'गंधहस्ती महाभाष्य' जो 'तत्त्वार्थ सूत्र' पर टीका है, ऐसा अलौकिक ग्रन्थ है, सुना है कि विदेशों में सुरक्षित है। जो भारत में है, अभी वह कहीं बड़ी पेटी के अन्दर जमीन में रखा हुआ है। यहाँ पर ऐसे

ग्रन्थ थे, अंग्रेजों के जाने के पहले। वो तुम्हारा पहले सबकुछ ले गये फिर अपनी संस्कृति दे गये। धन-सम्पत्ति महत्वपूर्ण नहीं है, वह तो कोई भी अर्जित कर सकता है। विद्या है महत्वपूर्ण।

सम्राट कहता है मंत्रियों से, 'मुझे भारत पर चढ़ाई करना है।' उनका मंत्री कहता है 'स्वामी! आप भारत पर चढ़ाई करना चाहते हो, यह ठीक है, लेकिन ज्ञानी लोग पहचान पहले करते हैं।

जो बुद्धि से काम करते हैं वे बिना अस्त्र-शस्त्र चलाये विजय को प्राप्त होते हैं। आप यह खोज करो कि भारत में बुद्धिमान लोग कौन हैं? सम्राट् ने भारत एक अंजन भेजा जो मात्र इतना ही था कि वह दो आँखों में और दो ही सलाखों में लग सकता था। उस अंजन में इतनी सामर्थ्य थी कि कोई कितना ही पुराना नेत्र रोग हो वह तुरन्त ही नेत्रों को ठीक कर देता था। जब भारत के सम्राट के यहाँ भेजा गया तो राजा सोचता है मेरा वृद्ध मंत्री वर्षों से पीड़ित है, इतनी राज्य की सेवा की है, क्यों न उसे दूँ? यह अंजन उसी मंत्री को दिया जाये। मंत्री जी को राज्यसभा में बुला लिया गया और कहा यह विदेश से अंजन आया है, आप तो इसको नेत्रों पर लगा लो जिससे तुम्हारी चिरकाल से गई हुई रोशनी वापस आ जायेगी। मंत्री देह से बूढ़ा हो गया था, बोला- अब देखने से फायदा नहीं है महाराज! राजा तो राजा है। मंत्री तो मैं हूँ। विदेश से अंजन भेजना और मात्र दो आँखों के लिए भेजना, कुछ रहस्य होना चाहिए। कैसे गूढ़ काम होते थे राजा महाराजाओं में। आज भी अपने देश में ऐसे स्थान हैं जहाँ ताला कहीं बना हुआ है, कहीं चाबी बनी हुई है। वह यंत्र है एक प्रकार से। अब उसके रहस्य को समझ नहीं पाये लोग, वह विषय अलग है। बड़े-बड़े तीर्थों में पहाड़ों के ऊपर कहीं ताला, कहीं चाबी बनी हुई है। कहीं तीर्थ जैसा बना हुआ है। उसको समझने के लिए विद्या चाहिए, उसका रहस्य है। पूरी राज्यसभा खुश थी कि आज तो अपने वृद्ध मंत्री को दिखाई देना प्रारंभ हो जायेगा। मंत्रीजी ने क्या किया? एक शलाखा ली और अपनी दाँयी आँख में लगायी, लगाते ही आँख खुल गई । अब राजा मुस्कुराया कि जीवन में कुछ तो किया। अब जल्दी दूसरी शलाखा लगाये, जिससे काना न बन जाये। दूसरी शलाखा थी वह आँख पर न लगाकर जीभ पर लगा ली। अब तो राजा बोला यह क्या किया ? इतने में तो अंजन खा जाता है। आँखों का अंजन जिह्वा पर लगा लिया। बीमार वे होते हैं जिनके स्वयं के भोजन करने का विवेक नहीं होता है। भोजन करते ही जिह्वा पर वस्तु पड़ते ही मालूम होना चाहिए कि यह हमारे स्वास्थ्य के लिये लाभकारी है या हानिकारक है। जिह्वा पर अंजन लगा लिया। कहने लगा, महाराज! विलम्ब मत करो, मुझे कागज पेन चाहिए। शीघ्र कागज लेखनी दी। लिखता चला गया। इतना बुजुर्ग मंत्री था। इतना विवेक था। जीभ पर अंजन क्यों लगाया? अंजन का स्वाद ले रहा था, उसने स्वाद में जान लिया कि अंजन में क्या पड़ा हुआ है। रोटी खाओ, उसमें नमक-मिर्च पड़ी हो तो क्या नहीं जान पाते हो आप ? तुरंत नोट

किया। कहता है, महाराज! मैं दूसरी आँख भी खोल लूँगा आप चिन्ता मत करो। आप विदेशी दूत को भी रोक कर रखना। उसे कल वापस भेज देना। रात्रि में ही सम्राट से कहकर गया। जितनी सामग्री उसमें पड़ी हुई थी, सारी सामग्री संग्रहित कीं और उसने अंजन बना लिया, राज्यसभा में पेश किया पहले अपनी आँख में लगाया। दूसरी आँख खुल गई। जैसे-ही आँख खुली, एक डिब्बा पैक करके दे दिया। महाराज! यह वापस कर दो। जब अंजन वापस पहँचा तो कहता है राजदूत कि महाराज! अब भारत से युद्ध करोगे क्या? क्यों ? दो आँखों के अंजन को लेकर गया था, और एक डिब्बा वापस हुआ है। जिसका मंत्री इतना समझदार हो, जीभ पर अंजन लगाकरके औषधी को समझ सकता है, तो आप वहाँ की बुद्धि से लड़ नहीं सकते, शांति से बैठो।

ज्ञानी लोग हाथ-पैर नहीं चलाते। ज्ञानी लोग बुद्धि चलाते हैं। अज्ञानी हाथ-पैर चलाते हैं। ज्ञानी लोग जीभ भी नहीं चलाते। जीभ चलायी द्रोपदी ने तो महाभारत हो गया। इसलिए हाथ-पैर भी नहीं चलाना चाहिए, जीभ भी नहीं चलाना। मात्र प्रज्ञा से काम करो। तुम्हें जो करना है सो करो। विवेकी लोग अपना काम प्रज्ञा से करते हैं। 'बोले कि फँसे।'

यह कथा इसलिए सुनायी है कि भारत में जो वह प्रथा है, यहाँ से लोगों ने प्रथा का हरण किया है। **सारे विश्व में मात्र विचारक हैं। भारत की भूमि पर मात्र विचारक नहीं, आचारक भी हैं।** आचरण करके सारे विश्व में विचार भेजे हैं। यहाँ से अध्यात्म भेजा है। यहाँ साधुओं को दिया है, यहाँ भगवान् को दिया है।

कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थों से आप जो भी खोजना चाहो तो वह तुम्हें मिलेगा। मरने की विधि भी है, जीने की विधि भी है और सोना बनाने की विधि भी है यह ज्ञानी जैनी यही सोचते होंगे कि महाराज बाकी सब बातें बन्द करो, आप तो पहले यह बताओ कि सोना बनता कैसे है? इस ग्रन्थ में सोना बनाने की विधि लिखी हुई है, परन्तु साथ में लिखा हुआ है कि बनेगा तभी यदि पुण्य है तो।

नागफणी, हथिनी का मूत्र, शीशम, जस्ता इत्यादि द्रव्यों को मन्द धौंकनी पर धोंकने पर सोना बन जाता है, लेकिन पुण्य होगा तो।

सोना तो बहुत बड़ी चीज है, जितनी यहाँ माताएँ बैठी हैं, सबसे रोटी बनाते भी नहीं बनती है। ऐसे ही मुनि तो बनना सरल है, लेकिन स्वानुभूति की अनुभूति तब ही होगी जब पुण्य होगा।

संयम परवस्तु नहीं है। निज संयम ही संयम है। खड़िया तो खड़िया है, खड़िया पर नहीं है। ऐसे-ही श्रद्धान तो श्रद्धान है। श्रद्धान परवस्तु नहीं है, श्रद्धान निज वस्तु है। इस प्रकार से निश्चय नय का व्याख्यान किया। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र व्यवहार है तो उसे संक्षेप से जानना चाहिए।

यहाँ तक निश्चय का व्याख्यान किया, अब पाँच गाथाओं में व्यवहार का व्याख्यान कर रहे हैं।

जैसे परद्रव्य खड़िया अपने श्वेत धर्म से युक्त है, अपने आप तो अपने आप में है ही, परन्तु जिस दीवार पर लग जाती है उस दीवार को भी अपने जैसा दिखाना प्रारंभ कर देती है। यह भी सत्य है। आप देख रहे हो तो दीवार सफेद है, क्यों ? यह पराश्रित है। परन्तु सफेद रंग ही है, दीवार तो दीवार है। व्यवहार से कहा जाता है कि भैया! इस शहर में तो दूसरा शहर भी आ गया। अरे! शहर नहीं आया, परन्तु व्यवहार से ऑटो वाले को बुलाता है तो क्या बोलता है? ए ऑटो वाले? ऐसे चिल्लाने से ऑटो रुकता है क्या? संकेत उस चालक को है, परन्तु बोलते हैं ए आटो। यहाँ तो लोग आटा पिसवाते हैं। सीधा बोलोगे आटा पिसाने जा रहा हूँ। व्यवहार है। व्यवहार में पानी की भी बाल्टी होती है और दूध की भी बाल्टी होती है, परन्तु आज तक बनते नहीं देखी। व्यवहार से दीवार सफेद है, निश्चय से दीवार तो दीवार है सफेदी तो सफेदी है। जैसे खड़िया पर को प्रभावित करती है, ऐसी-ही ज्ञायकभाव से निज को जानता है, ज्ञायकभाव से वह पर को जानता है। जैसे खड़िया परद्रव्य को अपने आत्मस्वभाव से परिणत कर लेती है, वैसे ही आत्मस्वभाव में जैसे खड़िया खड़िया है, वैसे-ही पर को भी सफेद कर लेती है। इसी प्रकार से यह जीव निज द्रव्य को जैसे देखता है वैसे व्यवहार से परद्रव्य को भी देखता है। जैसे परद्रव्य को खड़िया-खड़िया रूप से परिणत करा लेती है स्वभाव से, आत्मस्वभाव से, ऐसे-ही परद्रव्य को जीव ग्रहण कर लेता है। परद्रव्य को भी देखता, जानता है, श्रद्धान करता है। परद्रव्य में भी संयमित भाव को भी प्राप्त होता है। परद्रव्य पर भी श्रद्धान करता है सम्यग्दृष्टि स्वभाव से। इस प्रकार से व्यवहारनय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जानना चाहिए। जैसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र की व्याख्या निश्चयनय से की है, इसी प्रकार से अन्य पर्यायों को भी आपको ऐसे-ही जान लेना चाहिए।

बता दिया है, अन्य विषय आप जान लो जैसे खड़िया और दीवार का उच्चारण देकर समझाया है इसी प्रकार से निश्चय व्यवहार की व्याख्या जानना चाहिए।

विस्तृत रूप से विषय को समझाना है । निश्चय व्यवहार की उलझन जो मस्तिष्क में भरी हुई है, वह सुलझ जाये, तो वस्तु है।

चिद् पिण्ड अखण्ड चैतन्य द्रव्य निज स्वभाव से कभी भिन्न होता नहीं, जैसे खड़िया मिट्टी अपने स्वभाव से भिन्न नहीं है, वैसे ही आत्मा ज्ञान-दर्शन से भिन्न नहीं है। ज्ञाता अपने स्वभाव पर लक्ष्य ले जाता है उस काल में पर ज्ञेयों से निज को भिन्न करता है। जहाँ पर-ज्ञेयों पर कर्तादृष्टि प्रवेश करती है, वहाँ संक्लेषता का जन्म होता है। जहाँ संक्लेषता का जन्म है, वहाँ विशुद्धि का अभाव है। जहाँ विशुद्धि का अभाव है, वहाँ बंध का स्वभाव है। बंध की सत्ता जहाँ है, वहाँ संसार है। परकृत मोक्ष नहीं मेरा,

परकृत संसार नहीं मेरा। स्वकृत ही संसार है, स्वकृत ही मोक्ष है। परनिमित्ताधीन दृष्टि है। माया दृष्टि। कर्त्ता स्वयं है और निमित्त को दोष दे रहा है। यह संतुष्टि है। अपने पाप की प्रवृत्ति की संतुष्टि है। पाप करने के भाव हैं और निमित्त को दोष देने आदमी अपने मस्तिष्क में बिठाकर रखे है कि ऐसा निमित्त मिला, इसलिए ऐसा हो गया। **मेरे मित्र! निमित्त पर वस्तु है। बहिरंग निमित्त कभी स्ववस्तु होता ही नहीं। बहिरंग निमित्त परवस्तु ही होता है। परवस्तु मुझे परिणत कराये, तो मेरा परिणामी पर हो गया। परवस्तु जड़भूत है, तो जड़ से मेरा परिणमन होने लग गया, तो मैं जड़भूत हो जाऊँगा अथवा परवस्तु होकर परिणमन करायेगी तो मुझे जड़ कर लेगा।** निज वस्तु होकर परिणमन करायेगी तो वह चेतन हो जायेगी। जबकि परवस्तु चेतनभूत है, जीव ही है, तो पुनः प्रश्न है? उस चतुष्टय से परिणमन करायेगी कि पर चतुष्टय से परिणमन करायेगी? यदि अपने चतुष्टय से परिणमन करायेगा, तो उसके अन्दर जो अविकारी भाव होंगे, तद्रूप मैं हो जाऊँगा। अथवा मेरे में परिणमन करायेगा तो वह मेरेभूत हो जायेगा, जबकि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। एक-एक जीव स्वतंत्र है। जीव के अन्दर सदृश्य अस्तित्व तो है। जीव के अन्दर ज्ञायकभाव, ज्ञान-दर्शन भाव सदृश्यभूत है, परन्तु एकत्वभूत नहीं है। मैं जीव द्रव्य हूँ, तुम जीवद्रव्य हो। हम दोनों में सादृश्य अस्तित्व की दृष्टि से एका होता है, स्वरूप अस्तित्व की दृष्टि से भिन्नरूपता ही है। मेरे और आप में सादृश्य अस्तित्व चेतना की दृष्टि से है। जो चेतनत्व गुण मेरे अन्दर है, वैसा तेरे अन्दर भी है। वैसा सिद्धों में भी है। इस दृष्टि से, सादृश्य अस्तित्व की दृष्टि से, एकत्व भाव है, परन्तु स्वरूप अस्तित्व की दृष्टि से भिन्न भाव ही है। यदि में स्वरूप अस्तित्व से एकभूत हो गया, तो मेरी सत्ता का क्या होगा? मैं ऐसे प्रभु को पसन्द नहीं करता जो मेरी सत्ता का नाश कर दे। मैं ऐसे परमेश्वर को स्वीकारता नहीं हूँ जो मेरी सत्ता को स्वयं गिरा दे, और अपनी सत्ता को मेरे में मिला दे। व्यभिचार दोष हो जायेगा। अनेकान्तिक दोष हो जायेगा।

स्वसत्ता तो स्वसत्ता है। परसत्ता तो परसत्ता है। स्वसत्ता में परसत्ता का लेशमात्र भी अंश नहीं है। परसत्ता में स्वसत्ता का लेशमात्र भी नहीं है। वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन स्वानुभूति की अनुभूति में जब लीन होते हैं उस समय स्वसत्ता को ही देखते हैं। स्वानुभूति के काल में जिनदेव नहीं, जिनवाणी नहीं, निर्ग्रन्थ अन्यगुरु नहीं, मात्र निजनाथ को देखते हैं। न धर्म के विस्तार का भाव है, न धर्म के प्रचार का भाव यह सारे भाव निज-भाव के शत्रु भाव हैं। जब धर्म के शत्रु भाव कहलाते हैं तो पाप के भाव मित्र भाव कैसे? यहाँ स्वसत्ता की व्याख्या है, यहाँ निजानन्द की व्याख्या है, यहाँ परालम्ब व्याख्या नहीं है और इस विषय में किसी अन्य को लेकर खड़ा करना मत।

निज उपादान ही अंश-अंशी भाव है। **निज उपादान ही अनन्यभूत अन्शअंशी भाव है। पर उपादान मेरा अन्शअंशी भाव नहीं है। निज उपादान भाव ही मेरा उपेय है, पर उपादान मेरा उपेय**

नहीं है। अधिक निमित्ताधीन दृष्टि ले जाओगे तो संक्लेषता के अलावा कुछ नहीं मिलेगा आपको। जब-जब निमित्ताधीन दृष्टि में जायेगा, मात्र संक्लेषता ही लेकर आ पायेगा, विशुद्धि का कोई स्थान नहीं। अनादि के संस्कार तुम्हारे हो रहे हैं कि मैंने तो निमित्तों को भी दोष दिया है। यदि तेरे घर में कोई शुभ हुआ, तब भी तू ईश्वर को दुहाइयाँ दे रहा है और अशुभ हुआ है तब भी तू ईश्वर को धिक्कार रहा है। जबकि सच्चा परमात्मा न तुम्हारे घर में शुभ करने आयेगा न अशुभ करने आयेगा। अशुभ परमात्मा करने आ गया तो परमात्मा ही कहाँ बचेगा? दूसरी दृष्टि।

हम यह कहें कि अमुक व्यक्ति ने मेरे साथ ऐसा कर दिया, इसके नियोग से मेरे घर में अशुभ हो गया है, हे जीव! उसके आने से तेरे ही घर में अशुभ क्यों हुआ ? जिस घर में था, उस घर में अशुभ क्यों नहीं हो रहा था? दियासलाई की काड़ी ने लकड़ी को ही क्यों जलाया, पत्थर को क्यों नहीं जलाया? इसलिये कि जलने की योग्यता पाषाण में नहीं थी, लकड़ी में थी। **हमारा निमित्त वो ही बनेगा जिसका उपादान जैसा होगा। उपादान जैसा नहीं है, तो वह उसमें निमित्त नहीं बनता है। जिसकी भवितव्यता पवित्र है, उसके लिए अर्हन्त बिम्ब सम्यक्त्व का कारण है। जिसकी भवितव्यता पवित्र नहीं है, उसके लिए अर्हन्त बिम्ब मिथ्यात्व का कारण है।** अर्हन्त बिम्ब मिथ्यात्व का कारण कैसे हो सकता है ? अर्हन्त का बिम्ब मिथ्यात्व का कारण बना या नहीं ? वो तो अर्हन्त के बिम्ब को देखकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो रहा है, क्यों? उसके भाव अशुभभूत हैं। जैसे कि बहिरपने में नानत्व है, भावप्रमेय में एकत्व है। बहिरपने की दृष्टि से देखोगे तो नाना अवस्थाएँ दिखाई देती हैं। भावप्रमेय की दृष्टि से देखोगे तो पदार्थ दिखाई देता है। बहिरपने से देखोगे तो आपका पुत्र, बेटा, शिष्य पर दृष्टिगोचर होते हैं। भावप्रमेय की दृष्टि से देखोगे तो आपको जीवद्रव्य दिखाई देता है। जिसको जीवद्रव्य दिखाई दे रहा है, उसको मात्र आप में जीवद्रव्य दिख रहा है,

जीवास्तिकाय को देख रहा है, जीव पदार्थ को देख रहा है और

''तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ।। त.सू.।।

उसको जीव द्रव्य दिखाई दे रहा है तो उसका श्रद्धान सम्यक्त्व का साधन बन रहा है। जो जीव द्रव्य में असमान जाति पर्यायों के संबंध को देखता है वह जीव राग और द्वेषात्मक दृष्टि से दृष्टिगोचर होता है। **समता की रक्षा करना चाहते हो तो रिश्तों और संबंधों को देखना बन्द करना पड़ेगा।** समता की रक्षा करना चाहते हो तो आपको भाव प्रमेय लाना होगा। इसलिए मुनि बनना पड़ता है कि यहाँ व्यवहार से ही सम्बंध छूट जाते हैं। अपने निश्चय की दृष्टि में होता हूँ। इसलिए मुनि बनना पड़ता है कि लोक भी तुमको अपना रिश्तेदार नहीं मानता, तो अब तुम क्या अपना रिश्तेदार मानोगे? ज्ञानी!

यदि तू दीक्षा ले लेता है तो तेरी बहू दर्शन करने आयेगी तो घूँघट डालकर नहीं आयेगी, कहेगी मुनिराज के दर्शन करने जा रही हूँ। उसने तुम्हारा सम्बंध तोड़ दिया है। तब भी तेरे संबंध बैठा हुआ है कि मेरे बेटे की पत्नी है। हे अज्ञानी! वह जीव ज्ञानी है जिसने घूंघट डालना बंद कर दिया है। तू अज्ञानी है। उसने ससुर का संबंध छोड़ दिया है, तेरे अन्दर बहू का संबंध बैठा हुआ है, इसलिए तू रागी है। **बन्ध से बचना है तो पहले संबंध से बचिये।** जड़-चेतन का संबंध, मिश्र का संबंध, दिगम्बर वीतरागी निर्ग्रन्थों से कहा हे भावलिङ्गि श्रमणो! पिच्छिका-कमण्डलु भी तेरा महाव्रत नहीं है महाव्रत भाव है वह अन्तरंग भाव पिच्छिका-कमण्डलु लेने से महाव्रत आ जाता है यह अनेकांतिक दोष है। मुमुक्षु! पिच्छिका-कमण्डलु में महाव्रतपना मानते हो अनेकांतिक दोष पिच्छिका-कमण्डलु से महाव्रती और भावलिङ्गि श्रमण की पहचान यदि मानते हो तो अभव्य जीव निर्दोष संयम का पालन कर रहा है उसके पास भी पिच्छिका-कमण्डलु है, लेकिन भाव संयम कहाँ है? **जो लक्ष्य में भी जाये, अलक्ष्य में भी ले जाये उसका नाम अनेकांतिक दोष है। इसी को दर्शन की भाषा में व्यभिचारी दोष भी कहा जाता है।** तू अनेकांतिक दोष से युक्त है। पिच्छिका-कमण्डलु मुनि के लक्षण बनाते हो तो अनात्मभूत लक्षण कभी आत्मा भूत नहीं होता है।

तीर्थंकर मुनि, स्नातक मुनि पिच्छिका-कमण्डलु लेते हैं क्या ? स्नातक मुनि 'मुनि' नहीं होते क्या? मुनि होते हैं। जैसे पशु का लक्षण सींग कर दो तो कौन-सा दोष हो जायेगा ? अव्याप्ति दोष। क्यों ? सारे पशुओं का लक्षण सींग नहीं है। कुछ पशुओं का लक्षण सींग है। इसलिए अव्याप्ति दोष है। समयसार को समझने के लिए दर्शनशास्त्र समझना होगा। ऐसे ही यदि दिगम्बर मुनि का लक्षण मात्र पिच्छिका-कमण्डलु बनाते हो तो स्नातक मुनियों में नहीं जायेगा तो अव्याप्ति दोष आ जायेगा। जो प्रमत्त दशा में है, उस समय दिगम्बर मुनि का लक्षण पिच्छिका-कमण्डलु है। ध्यान अवस्था में निर्ग्रन्थ योगी किसी भी समिति आदि का पालन करते हुए दृष्टिगोचर नहीं होते, तो क्या समितियाँ नहीं हैं? मूलगुण नहीं हैं? सारे हैं।

क्रियाभूत न करते हुए दिखाई देने पर भी सारे गुण हैं। यदि आप क्रिया-क्रिया को ही मुनि मानोगे तो ध्यान में कब बैठोगे? क्रिया करने के लिए मुनि बनोगे तो ध्यान में कब बैठोगे? **मात्र क्रिया करने के लिए मुनि नहीं बनना पड़ता है। स्वभाव में जाने के लिए मुनि बनना पड़ता है। यह भी कठिन है। पूरी पर्याय करने-करने में नष्ट कर ली है और करने के संस्कार इतने जटिल हैं कि घर गृहस्थी से छूट कर तू बाहर भी चला गया, अब तू शांति का जीवन जी सकता था, लेकिन यहाँ पर भी समाज के कार्यों में उलझ गया तो कर्तापन को कहाँ छोड़ पाया? मुनिपने की अनुभूति कहाँ ले पाया? अरे अभागे! तूने अपनी पर्याय का नाश कर डाला।** जिस शांति के लिए मैं दिगम्बर मुनि बना

हूँ, उसकी अनुभूति कितने अंश में ली है? द्रव्यसंयम भी कितना पल रहा है? सीमंधर स्वामी के ज्ञान में झलक रहा होगा। एक ईंट के बनने में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती है। **भूमि पर एक गड्ढा करने पर गर्भवती नारी के गर्भ को गिराने के समान है।** आप पिच्छिका लेकर खड़े हो रहे हो और गड्ढा खुदवा रहे हो, आपके महाव्रत का क्या होगा ? यह प्रश्न केवली भगवान् से करना और स्वयं से करना। जब तुम्हारे अन्दर से द्रव्यहिंसा ही नहीं टल रही, तो भाव अहिंसा कहाँ है? यहाँ तो यह कह रहे हैं कि पिच्छिका बनाना भी मुनि का धर्म नहीं है। पिच्छिका भी श्रावक को ही देना चाहिए। उद्गम उत्पादन दोष से रहित, यह पिच्छिका आदि उपकरण देने की शिक्षा श्रावकों को ही सीखना चाहिए। जैसे तुम निर्दोष आहार देते हो, ऐसे ही निर्ग्रन्थों को मयूर पिच्छिका भेंट कीजिए। एक पिच्छिका बनाने में कितने सारे उपकरण लगते हैं। केंची, धागा आदि सब चलाने पड़ते हैं, जबकि आरंभ का त्याग हो चुका है। यह राजमार्ग है कि श्रावक को ही पिच्छिका भेंट करनी चाहिए स्वयं बनाकर और श्रमणों को सहज भाव से स्वीकार कर लेना चाहिए। इसमें यह नहीं सोचना चाहिए कि सुन्दर हो।आपके महाव्रत का पालन होना चाहिए। संस्कृति की परिभाषा सीखना पड़ेगी ? मेरे मित्र! जैनदर्शन का क्रिया धर्म दो पक्षों में विभक्त है। श्रमण, श्रावक। यदि श्रमण की क्रिया श्रावक करें तो श्रमण धर्म का लोप होता है, इसीलिए श्रमण की क्रिया श्रमण करें।

यदि तूने निर्ग्रन्थों को श्रमण संस्कृति की रक्षा के राग में श्रावक धर्म में लीन कर दिया तो किसी म्यूजियम में भूतार्थ मुनि को देखने जाना पड़ेगा। आज शहरों में घर में चूल्हा दिखाई नहीं दे रहा है, हाथ की चक्की दिखाई नहीं दे रही है।

सागर में बच्चे-युवा सब बैठे हुए थे, उनसे कहा 'मथानी कैसे चलती है?' तो वे एक दूसरे का चेहरा देख रहे थे, मथानी है कौन-सी वस्तु? तब दृढ़मति माताजी के पिताजी कहीं से खोज कर एक पुरानी मटकी और मथानी लेकर आये, उन्होंने फिर कक्षा में रखी, चलाकर दिखाई कि यह है रई और मटकी। एक को ढीला करो, एक को खींचो। एक नय को ढीला करो, दूसरे को गौण करो। एक को प्रधान करो। छोड़ना एक को भी नहीं। यह जैन नीति है।

मटकी उठाकर दिखाने लाये, सोचो चूल्हा ऐसा होता है? मिक्सी का जमाना है, मथानी कैसी होती है यह जानते भी नहीं हैं? चम्मच घुमाई दही में, जरा-सा पानी डाल दिया, बन गई छाछ, दही का त्याग है, पर मायाचारी का मठ्ठा पिया है। छाछ का अर्थ होता है जिससे पूरा मक्खन निकल जाना चाहिए, उसका नाम मठ्ठा है। चम्मच घुमा दी दही में और पानी डाल दिया, यह दही है मठ्ठा नहीं हैं।

दही का त्याग है और मायाचारी का मठ्ठा पीकर अपने व्रत को भंग कर रहे हो। दूध का त्यागी छेना खा रहा है मस्ती में। गोरस के त्यागी के लिए सबकुछ का त्याग। लेकिन दूध का त्यागी दही ले सकता है, दही का त्यागी मठ्ठा ले सकता है, परन्तु मायाचारी का मठ्ठा नहीं ले सकता है। दूध का त्यागी मठ्ठा, घी ले सकता है, लेकिन मावा नहीं ले सकता, क्योंकि मावा दूध का ही घट्ट रूप है, भले ही पर्याय बदल गई।

पिच्छिका-कमण्डलु को मुनिपना मानते हैं तो अनेकांतिक दोष है, क्योंकि जीव भी पिच्छिका कमण्डलु धारण करता है वह मुनिभेष में होता है, लेकिन मुनि नहीं होता। ऐसे ही तापसी आदि मुनि हैं, ये पिच्छिका-कमण्डलु लिये होते हैं, दिगम्बर होते हैं, तब भी श्रमणाभास हैं। संस्कृति की रक्षा के लिए तो कुछ कर सकते हैं, तो उनसे प्रश्न किया कि संस्कृति कहते किसको हैं? यह श्रमण संस्कृति है। यह द्वैतभूत है। मूल विषय पर आइये। द्वैतभूत से तात्पर्य जो पुण्यरूप धर्म है, वह दो रूप है। जिसे आप लोग धर्म कहते हो, वह यथार्थ में पुण्यास्रव भाव है। अब इस सत्य को कोई कह दे तो आप कहोगे कि यह तो धर्म का नाश करा रहा है। आपको समझना चाहिए कि यह धर्म का नाश नहीं कराया जा रहा है, यह धर्म की वास्तविकता बतायी जा रही है। **पुण्य को धर्म कहना उपचार वृत्ति है, परन्तु वास्तव में धर्म तो तेरी आत्मा का ज्ञान-दर्शन है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र रत्नत्रय धर्म है। इस धर्म में जो स्थिर नहीं हो पाता है तो अशुभ से बचने के लिए शुभभूत धर्म भी करना चाहिए।** निषेध नहीं कर रहा हूँ। अन्तर क्या है ? कथनकर्ता ने गड़बड़ी कहाँ की है? व्यवहारपक्ष ने उसे ही धर्म मान लिया, निश्चयाभासी पक्ष ने उसको सर्वथा अधर्म ही कह दिया, जबकि आचार्यों ने कहा है कि यह पुण्य धर्म है। इसे भी स्वीकारना चाहिए, जब-तक आप भूतार्थ धर्म पर नहीं पहुँचे हो तब-तक। **पुण्यभूत धर्म को आप अशुभ से बचने के लिए ही करना, भोगाकांक्षा के लिए मत करना। आप जब पुण्यभूत धर्म करोगे तो पुण्य शुभभाव है, पाप अशुभ भाव है।** शुभ आस्रव का कर्ता पुण्यभाव है, अशुभ आस्रव का कर्ता पाप भाव है। इन दोनों का कर्ता तेरी आत्मा ही है, कोई भिन्न द्रव्य नहीं है।

जो लक्ष्यभूत धर्म है वो तो मात्र मैं ज्ञान-दर्शनमयी हूँ। मेरा लक्षण ज्ञान-दर्शन है। **पानी का धर्म शीतलता है, अग्नि का धर्म उष्णता है, आत्मा का धर्म ज्ञान दर्शन है। ज्ञान-दर्शन तत्त्व जो भाव है, उसकी प्राप्ति ही धर्म की प्राप्ति है।** 'वत्थुस्वभावो धम्मो' वस्तु का स्वभाव है वह धर्म है। वस्तु का स्वभाव धर्म है वह पर आश्रयभूत नहीं है। वस्तु स्वभाव स्वाश्रय ही होता है। वस्तुस्वभाव पराश्रय नहीं होता। इस विषय को स्वीकारना नहीं, इस विषयभूत ही आप हो। धर्म को धारण किया जाता है। धर्म का पालन जो किया जाता है, वह पुण्यभूत धर्म है। धर्म को न पाला जाता है, न धारण किया जाता है। धर्म तो होता है। स्वभाव है। जैनी इस को न कह पाये तो विश्व में और-कौन कहने की ताकत रखता

है? क्योंकि **लोक में तो बहुत लम्बा-चौड़ा धर्म चलता है। कोई भूत पूजा को ही धर्म मानता है, कोई रोज स्नान कर लेता है उसे ही धर्म मानता है। स्वच्छ कपड़े पहन लिये, उसे ही धर्म मानता है। अभी धर्म के पास नहीं हो। कुछ पशु-पक्षी को सुबह से दाना डालते हैं उसे ही धर्म मानते हैं। कुछ अज्ञानी ऐसे हैं जो हिंसा करने को धर्म मानते हैं। इसलिए लोक धर्म कोई धर्म नहीं है। जो वस्तु का स्वभाव है, वह धर्म है। आपकी श्रमण संस्कृति में पुण्यभूत धर्म है, क्रियाभूत धर्म है, आचरणभूत धर्म है।** आप चरणानुयोग के धर्म को भी साथ में स्वीकारिये। आचरण पक्ष जो धर्म है, वह दो रूप में है। श्रमणधर्म, श्रावकधर्म। मित्रो! जिनालयों की स्थापना, मूर्तियों की स्थापना, तीर्थों की स्थापना, यह श्रमण धर्म के अन्तर्गत आयेगी या श्रावक धर्म के अन्तर्गत आयेगी? श्रावक धर्म में आयेगी। मुमुक्षु! जो भी करना है उसे कर लेना, मुनि बनने के बाद नाटक नहीं करना। अभी तो आप करोड़ों का दान देने की सामर्थ्य रखते हो, लेकिन इसके बाद यह भी असाध्य है कि मुझे मूर्ति स्थापित करना है ? अभी आपने शांति को समझा नहीं है।

जब शरीर अस्वस्थ हो जाता है, उस काल में यह लेखनी तो बहुत वजनदार है, स्वयं का हाथ उठाना कठिन हो जाता है। तब मालूम चलता है कि हमने वीर्यान्तरायकर्म का कितना दुरुपयोग किया है। समाधि के काल में आँखें बन्द करके सोता है, इतनी शक्ति क्षीण हो चुकी होती है, क्योंकि आँख की पलक उठाने में भी शक्ति लगती है। आचार्य विरागसागर महाराज का मैं बहुत उपकार मानता हूँ इस विषय में, कि शायद मैं भी होता तो दीक्षा नहीं देता ऐसी स्थिति में। एक सौ चार-पाँच डिग्री बुखार चढ़ा था, इक्कीस दिन तक बुखार, जब मैंने उनसे कहा कि क्या मैं योगी बने बिना अभी मर जाऊँगा? आप समाधि के लिए लंगोटी निकलवा दो, आप मुझे मुनि बना दो। श्रेयांसगिरि में इक्कीस दिन तक बुखार चढ़ा। उस काल में आचार्यश्री स्वयं आकर कहीं हाथ दबा रहे, कहीं पैर दबा रहे कहीं सिर दबा रहे थे। आँख खोलने में कितनी मेहनत लगती थी मुझे पता है। उस समय बुखार आया, अच्छा है, इससे मुझे पता चला कि समाधि के समय कितनी शक्ति चाहिए पड़ती है, कितना वीर्यान्तरायकर्म का क्षयोपशम न्यून हो जाता है। आप व्यर्थ में कितना आँखें घुमा रहे हो, कितना कुछ कर रहे हो। यहाँ पर कहना चाहिए विरागसागर महाराज जी की अनुकम्पा, एक सौ पाँच डिग्री बुखार में भी उन्होंने मुझे दीक्षा दे दी। केशलुंचन भी हो गये, पूरी दीक्षा भी हो गई। ओह! देखो संयम का बहाव, संयम का प्रभाव। जब-तक दीक्षा के संस्कार होते रहे, तब-तक तो शरीर काँपता रहा। जैसे-ही आचार्य महाराज ने मुनिदीक्षा के संस्कार किये, और रोपण किया, उसके बाद आज तक दुबारा वैसा बुखार आया ही नहीं है। यह है चारित्र का प्रभाव। यह अनुभव किया है और हर व्यक्ति को साधना के काल में अनुभव की कसौटी पर आना ही चाहिए। जो साधारण द्रव्य था वह विशुद्धि और समय के प्रताप से

असाता का उदय साता में संक्रमित हो गया। धर्म की रक्षा, संस्कृति की रक्षा के लिए हमारे आगम में बहुत व्यवस्थित व्यवस्था की गई है। हे श्रावको! आपने धन अर्जन तो किया है, उसको आप श्रमणसंस्कृति की रक्षा में लगाओ। उससे आप चेतन तीर्थ की, चतुर्विध संघ की रक्षा करो। अचेतन तीर्थों में जिनमन्दिरों की स्थापना करो। यह आगम बोल रहा है श्रावकों के लिए -

'दाणं पूया मुक्खं सावयेधम्मे ण सावया तेण विणा।'

दान देना, पूजा करना श्रावक का मुख्य धर्म है। इस गाथा को जहाँ से ली है उसे तुमने अप्रमाणित घोषित कर दिया। अपनी बात को सिद्ध करने के लिए कुछ भी घोषित कर सकते हो। 'रयणसार' जी की गाथा है, उस ग्रन्थ को ही अप्रमाणित घोषित कर दो तो प्रश्न ही नहीं खड़ा होगा।

झाणाज्झयणं मुक्खं जइधम्मं तं विणा तहा सो वि ।। 11 'रयणसार'।।

ध्यान करना, अध्ययन करना यति का धर्म है। अब प्रश्न यहाँ यह है कि यदि मुनीम का काम मुनि करने खड़ा हो जायेगा तो मुनि की पहचान का क्या करूँगा? बिना पैसे का मुनीम तो मिल गया, परन्तु मुनि कहाँ खोजने जाऊँगा? इसलिए अब यहाँ सुनिये ध्यान से, कुन्दकुन्द की वाणी का विपर्यास नहीं होना चाहिए। **हे ज्ञानी! 'श्रमण धर्म जो है वह निर्बद्ध होता है। श्रावक धर्म है वह साबद्ध होता है।'** 'प्रवचनसार' जी में वैयावृत्ति की व्याख्या है। श्रावक की वैयावृत्ति बद्ध और निर्बद्ध दोनों होती है। श्रमण की वैयावृत्ति निर्बद्ध ही होती है। जिसमें षट्काय के जीव की हिंसा नहीं होती है वह निर्बद्ध है। जो साबद्ध क्रिया है वह श्रावक करेगा। निर्ग्रन्थ मुनि क्रिया का उपदेश भी नहीं करेगा, क्योंकि यह षट्काय के जीवों की हिंसा के त्यागी हैं। आप कहो कि मध्यकाल में ऐसे उदाहरण मिलते हैं तो मैं उनकी व्याख्या करूँगा।

पण्डित दरबारी लाल कोठिया का नाम सुना होगा आपने? जैनदर्शन के मूर्धन्य विद्वान्, न्यायाचार्य थे। मैंने उनसे 'न्याय दीपिका' का अध्ययन किया है। पण्डित जी ने बहुत ग्रन्थों का लेखन भी किया है। मध्यकाल की मुनि व्यवस्था का भी विवरण उन्होंने किया है। मध्यकाल में अनेक दिगम्बर आचार्य मुनि को जब आवश्यकता पड़ गई तो राजाओं को प्रभावित करके इन्होंने कई मठ, मंदिरों का निर्माण कराया और जो भट्टारक संघ की परम्परा, यापनीय संघ की परम्परा है यह सब उस मध्यकाल की देन है। यदि हम पूर्व की किसी बात को प्रमाणित मानते हैं तो आचार्य शांतिसागर छाणी, शांतिसागर दक्षिण इनके काल में जब एक मध्य भी मुनिराज नहीं थे ,वहाँ पर लोग जो थे वे निर्वस्त्र रहते थे, लेकिन चर्या आदि को जाते समय कपड़ा ओढ़ लेते थे। यह मानते हो आप कि क्षेत्र विभाग कर सकते हैं, काल नहीं कर सकते हैं। शांतिसागर छाणी उत्तर भारत में थे, शांतिसागर दक्षिण भारत में थे। इन दोनों ने प्रयोग

नहीं किया, लेकिन इनके काल में ऐसा होता था कि जो अन्य मुनिगण थे वे कपड़ा ओढ़कर चर्या को जाते थे। आचार्य महाराज को पसन्द नहीं आया, कितने ही दिनों तक चर्चा को नहीं निकले। तब लोगों ने पूछा कि ऐसा क्यों? उन्होंने कहा कि यह मार्ग सत्य नहीं है। उन्होंने उपवास किये है, क्योंकि मार्ग सत्य नहीं है। दक्षिण में लकड़ी के झोपड़े बनाकर उस पर कपड़ा लगा है, उस झोपड़ी में साधु प्रवेश कर जाते हैं, उसी झोपड़ी में टॉर्च अथवा लालटेन है। अब लालटेन वहाँ की परम्परा बन चुकी है। साधु लालटेन लेकर उसमें बैठ जाता है, उसमें स्वाध्याय करते रहते हैं। वे अपनी क्रिया से तो अच्छा कह रहे हैं, लेकिन क्या इस क्रिया को आगमिक क्रिया माने ? और यह दक्षिण में बहुत पुरानी परम्परा चली आ रही है।

भले ही परम्परा तुम्हारी हो, तुम अपने शरीर की असमर्थता के कारण ऐसा कर रहे हो, लेकिन उसे आगम नहीं कहा जा सकता, ऐसे-ही मध्यकाल में कोई एक किसी उदाहरण को लेकर आप यह नहीं कह सकते हो कि यह काम ऐसा ही है। किसी श्रावक आदि ने कन्यादान, स्वर्णदान, गौदान आदि किये होंगे, इसका मतलब तुम उन दोनों को आगम नहीं बना सकते। हमारे यहाँ तो औषध, शास्त्र, अभय, आहार चार दान ही हैं। इनके अलावा हमारे यहाँ पाँचवाँ दान नहीं है। भूमिदान कन्यदान, गौदान इत्यादि दानों का वर्णन है पद्मपुराण हरिवंश पुराण में इनको कुदान में रखा हुआ है। यदि कोई चैत्यालय के लिए भूमि दे रहा उसका निषेध नहीं किया श्रावक के लिए। जिन प्रान्तों में दुग्ध आदि से अभिषेक हो रहा है, उन्होंने उसके उपयोग के लिए गाय को दान में दिया है, वहाँ तो दान में स्वीकार कर लिया है। लेकिन तुम किसी बेटा-बेटी, ब्राह्मण आदि को गाय दान दे रहे हो तो उसको हमारे यहाँ दान स्वीकार किया ही नहीं है। यह बछिया दान की परम्परा श्रमणसंस्कृति में नहीं है। इसलिए आशाधर जी का बहुत सारा चिन्तवन निजी है और मूल आम्नाय से कुछ पृथक् है। मुझे तो कुन्दकुन्द स्वामी दिखाई देते हैं। मूल आचार्य दिखते हैं। उनको मैंने भी बहुत अच्छे से पढ़ा है, सुना-समझा है। वह तो भटा (बैंगन) खाने की भी अनुमति देते हैं, लेकिन आप खाओगे क्या?

उनके अनुसार तो अनाचार फैल जायेगा। बहुत सारी बातों पर प्रश्न चिह्न है ज्ञानी! माना कि तू शीलवंत पुरुष है। स्वदार संतोष नाम का व्रत धारण किये हुए है। आशाधर जी क्या लिखते हैं? यदि आप बाहर जाते हो तो स्व पत्नी का त्याग कर दो और बाजारू स्त्री का उपभोग कर सकते हो। ज्ञानी! हमारे वीतरागी आचार्य इस वेश्यावृत्ति की अनुमोदना नहीं करेंगे। इसलिए मैं विद्वानों को अपने प्रवचन का विषय बनाता नहीं हूँ, क्योंकि मेरे पास वीतरागी भावलिंगी आचार्यों की वाणी है तो-फिर बाहर की बातें क्यों करूँ ?

पण्डित टोडरमलजी साहब ने 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय' ग्रन्थ की टीका लिखी है। जहाँ रात्रि भोजन के त्याग का प्रकरण आता है तो वहाँ पण्डित जी स्खलित हो गये, उन्होंने मृदुल चर्चा की पुष्टि की।

नैवं वासरभुक्तेर्भवति हि रागोऽधिको रजनिभुक्तौ।
अन्नकवलस्य भुक्तौः भुक्ताविव मांसकवलस्य ।। 132 ।।

जितना रात्रि के भोजन करने में राग होता है, उतना दिन के भोजन में राग नहीं होता। जो रात्रि में अन्न का ग्रास खाता है, वह मांस का ग्रास खाता है। ऐसा अमृतचन्द्र स्वामी ने लिखा है। परन्तु पण्डित टोडरमल ने अपनी टीका में लोंग, इलायची, सुपारी आदि, मेवा फल आदि का व्याख्यान कर दिया है, यह समीचीन अर्थ नहीं है।

श्रमण धर्म क्या है, इसे सुनिये। षट् आवश्यक श्रावकों के भिन्न हैं, मुनियों के भिन्न हैं। यदि मुनि श्रावक के षट् आवश्यक का पालन करें, तो आप मुनि मानोगे क्या? मेरे मित्रो! इन निर्ग्रन्थों को अपने आवश्यक पालन करने दो, श्रावको! आप उनसे अपने आवश्यक पालन मत कराना। जब योगी सराग अवस्था में होते हैं, कुन्दकुन्द देव 'प्रवचनसार' जी में लिखते हैं, तो श्रावकों को दान, पूजा, शील, उपवास आदि के पालन का उपदेश देते हैं, लेकिन आदेश कभी नहीं देते । मैं बहुत सारे पंचकल्याणकों में गया हूँ, लेकिन मैंने आज तक एक भी पंचकल्याणक नहीं कराया। (जो कथन है आप उस पर ध्यान दो) जो प्रतिष्ठाचार्य है, उसको भी हमारे यहाँ आचार्य कहा गया है। ग्रन्थ का विषय तो वास्तु शास्त्र ग्रन्थ है। हमारे वीतरागी आचार्यों ने संकेत मात्र दिये हैं, उनमें उलझे नहीं। सूत्रधारों के अनुसार नेमिचन्द्र स्वामी ने भी आशीष दिया है, परन्तु सूत्रधार नहीं बने, सूत्रधार कोई दूसरा था। गोम्मटेश बाहुबली स्वामी की प्रतिमा में आचार्य नेमीचन्द्र स्वामी ने प्रतिष्ठा के काल में सूर्य मंत्र तो दिया है, लेकिन प्रतिमा जो प्रतिष्ठित हुई है वो तो चामुण्डराय ने बनवायी है। शिल्पकार से बनवायी है, वहाँ सूत्रधार अनेक बड़े-बड़े लोग थे। कर्नाटक में पण्डिताचार्य होते हैं। वहाँ सारा काम पण्डिताचार्य देखते हैं। सार की बात इतनी-सी है कि **निर्ग्रन्थों को श्रमणसंस्कृति की रक्षा के लिए निर्ग्रन्थ चर्या का निर्दोष पालन करना ही श्रमणसंस्कृति की रक्षा है, परन्तु श्रावकों को द्रव्य तीर्थ की रक्षा करना चाहिए, निर्ग्रन्थों को अपने भावतीर्थ की रक्षा करना चाहिए। व्यवहार तीर्थ की रक्षा नहीं करोगे तो निश्चय तीर्थ समाप्त हो जायेगा।** अमृतचन्द्र स्वामी ने 'समयसार' जी की 'आत्मख्याति' टीका में एक प्राचीन गाथा लिखी, वहाँ स्पष्ट कहा है कि **जो जीव व्यवहार को नहीं मानता, वह व्यवहार तीर्थ का शत्रु है। जो निश्चय को नहीं मानता, वह आत्म तत्त्व का शत्रु है।** परमार्थ और व्यवहार इन दोनों का समन्वय लेकर चलना चाहिए। श्रावक अपनी क्रिया करे, उसका निषेध साधु नहीं करे और पुण्यभूत सम्यक्बर्धिनी क्रिया कोई श्रावक कर रहा है, तो उसे आशीर्वाद दे दो ठीक है, तेरे योग्य काम है।

सम्यक्बर्धिनी क्रिया है। पंचकल्याणक होते हैं उसमें तीर्थंकर भगवान् की दीक्षा, उनके केवलज्ञान आदि के संस्कार, सूर्य मंत्र के लिए सूरि की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए मैं जाता हूँ। प्रतिष्ठा ग्रन्थ में जयसेन स्वामी ने लिखा है कि जब भी श्रावक प्रतिष्ठा कराये तो सबसे पहले उसे दिगम्बर मुनि से आशीर्वाद लेने जाना चाहिए, उनको निमन्त्रण देना चाहिए। इसके बाद आगे का काम प्रारंभ करें।

हमारे आचार्यों ने ज्ञेय के रूप में व्याख्यान किया है। उपादेय के रूप में उसी का व्याख्यान किया है जो ग्राह्य है। विधि तो बहुत सारी होती है कल्याणकारक में स्वतंत्र अधिकार है, उसमें मांस-औषधियों का खण्डन किया गया है। रसायन और वनस्पति औषधियों को ही प्रधानता है। जैविक द्रव्यों का खण्डन किया है।

रक्षा करनी चाहिए, परन्तु जिसकी जितनी सीमा है उतनी ही। नहीं तो कल यह विहार बन्द हो जायेंगे। राग बहुत बड़ी वस्तु होती है। एक छोटा-सा मकान है तेरे पास, उसे छोड़कर नहीं आ पाता। जो कई हेक्टेयर में भूमि है, उस पर बैठ जाये, उस को छोड़ पाना बहुत कठिन है। आप ऐसा बोल सकते हो कि महाराज इतना स्पष्ट क्यों बोलते हो ? जब तक तुम इनमें उलझे नहीं हो तब तक बोल पाओगे। जिस दिन तुम भी उलझ जाओगे, तुम्हारी शक्ति क्षीण हो जायेगी। मुझे भी बहुत सारे सलाह देने आते हैं महाराज! आपका प्रभाव है, महाराज आपकी ख्याति फैल रही है, कोई तीर्थ गोद लेलो, अथवा कोई तीर्थ बनाओ। मैंने प्रेम से कहा 'मेरे मित्र! तू सत्य कह रहा है। मैंने तीर्थ गोद ले लिया है। पहले से ही।' कौन-सा महाराज! मैंने कहा रत्नत्रयतीर्थ। अब मैं एक को ही ठीक करूँगा दूसरे तीर्थों को गोद नहीं लेना चाहता। भोपाल में विशाल नंदीश्वरद्वीप बना हुआ है। मुझसे कमेटी बोली महाराज जी! आप नंदीश्वर द्वीप में चातुर्मास करलो। मैंने कहा क्यों? कहने लगे चातुर्मास करने से अच्छा दान आयेगा और तीर्थ बन जायेगा। मैंने कहा पहले आप बना लो, फिर जब पंचकल्याणक होगा तब मैं आ जाऊँगा। मैं दान के लिए अपनी मुनि पर्याय को बलिपीठ नहीं बनाना चाहता हूँ। ओऽम् शांति। पपौराजी में नंदीश्वरद्वीप बन रहा है, वहाँ की कमेटी ने बहुत निवेदन किया मैंने कहा ओऽम् शांति। क्योंकि मुझे मालूम है मैं चातुर्मास करूँगा और मैं प्रवचन करूँगा आत्मा के, सो कोई दानदातार आपके पास आयेगा नहीं, फिर तुम कोसोगे मुझे, कि खर्च बढ़ गया, दान आया नहीं। अतः शांति से बैठो। तुम तो बनाओ। जब भगवान् बनने का समय आये तब बुला लेना। जितने भी निर्ग्रन्थ तपोधन हैं, सब सम्यक्त्व का ही काम कर रहे हैं। मंदिर तो बन रहे हैं, तीर्थ बन रहे हैं, बहुत अच्छा है, लेकिन मुनिपने का आनन्द नहीं ले पायेंगे, क्योंकि सामायिक काल में विकल्प मन में आयेगा। एक छोटी-सी पत्रिका निकालने लग जाते तो आप गेट के बाहर बैठने जाओगे ग्राहक बुलाने के लिए। धिक्कार हो। **जब-तक पर में उलझे रहोगे, तब-तक आनन्द नहीं आयेगा। आनन्दमय जीवन जीना चाहते हो तो 'समयसार' में जीवन बिताओ।**

टीका - यदि खड़िया दीवार होती है, तो फिर दीवार खड़िया हो जायेगी अथवा खड़िया ही दीवार हो जायेगी। जैसे आत्मा ज्ञानी है, ज्ञानी आत्मा ही है। वैसे खड़िया ही है खड़िया, दीवार नहीं है। ऐसे ही आत्मा ही आत्मा है, ज्ञान ही आत्मा है, आत्मा ही ज्ञान है। परवस्तु आत्मा नहीं है। खड़िया दीवार होती है, तो फिर दीवार ही हो जायेगी। ऐसा होने पर खड़िया में स्वद्रव्य का उच्छेद हो जायेगा, क्योंकि खड़िया दीवार हो गई तो उसके निज धर्म की सत्ता का अभाव हो गया। द्रव्य का द्रव्यान्तर में संक्रमण नहीं होता है। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अत्यन्ताभाव है। पुद्गल की पर्याय का पुद्गल में अन्योन्याभाव है। एक जीव द्रव्य का दूसरे जीव द्रव्य में अत्यन्तअभाव ही है। ज्ञानी! आज तो भक्तों की क्या लीला कहूँ महाराज श्री! मेरी तो आपमें ऐसी अकाट्य श्रद्धा है कि मेरा और आप का शरीर भिन्न दिखता है, आत्मा तो दोनों की एक ही है। हे रागी! तू कर क्या रहा है ? और यह पण्डित सागर बन गया तो वह कहता है, ज्ञानी! तू मेरा भक्त है, तेरे ऊपर कष्ट है तो मेरी पूरी तपस्या तुझे समर्पित है, तेरा कष्ट दूर हो जाये। ओ हो! एक रागी के लिए आप अपनी साधना दे बैठे हो। क्या एक दूसरे के कष्ट, कर्मों को बाँटने की व्यवस्था आपके दर्शन में है?

हे ज्ञानी! द्रव्य क्षेत्र काल का प्रभाव पड़ता है, लेकिन यह तो बताओ तीर्थंकर ऋषभदेव छः महीना भूखे रहे उनका द्रव्य क्षेत्र काल भाव कहाँ चला गया था? ऋषियों का प्रभाव होता है। मैं तीर्थंकर के अतिशय को नकारात्मक दृष्टि से नहीं देख रहा हूँ, मैं सकारात्मक दृष्टि से देख रहा हूँ। द्रव्य क्षेत्र काल भाव को मैं स्वीकारता हूँ। इसलिए तो मैं आहार करने जाता हूँ। किसी की किचन में आहार करने नहीं जाता हूँ। जहाँ द्रव्य शुद्धि, भाव शुद्धि, काल शुद्धि है उसका नाम चौका है। द्रव्य क्षेत्र काल भाव का प्रभाव पड़ता है। परन्तु मेरे मित्र! इतना ध्यान रखना कि द्रव्य क्षेत्र काल भाव का प्रभाव पड़ता है तो भव्य जीव ने तीर्थंकर को देखा तो उसको सम्यक्त्व प्रकट होता है। अभव्य भी देख रहा था तो उसको कुछ भी असर नहीं हुआ। ऐसा क्यों? मेरे मित्र! '**बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च**'

जिसके शक्त्यांश अधिक होंगे, वह अपने रूप परिणमन कर देगा, लेकिन शक्त्यांश किसको परिणमन करायेगा? मेरे मित्र! गुड़ तो मिट्टी हो जाती है, मिट्टी तो गुड़ हो जाता है, लेकिन यह कभी नहीं सुना कि गुड़ लोहा हो गया, या लोहा गुड़ हो गया। साधक अनन्त हो सकते हैं, साधकतम एक होता है। 'साधकतंकरणम्।'

जो कार्य होते हैं वे भी कार्यभूत परिणत नहीं होते हैं, जैसे कि आटे की लोई। इसमें क्या-क्या है? लोई में कुछ भी दिखता नहीं है। अब तेरी दृष्टि में जो होता है, सब लोई में होता है। लोई रोटी बनेगी कि बेलन या चौकी रोटी बनेगा? इसमें साधन क्या है? बेलन, चौकी और लोई। बेलन, चौकी साधन है, लोई साधकतम् है। कारण का विनाश ही कार्य है। जो साधकतम् हेतु है, साधकतम् कारण है उसका

विनाश नहीं है? लोई का विनाश नहीं होगा तो रोटी नहीं बनेगी। लोई का विनाश करोगे, तभी तेरा पेट भरेगा। रोटी का विनाश नहीं करोगे तो तेरा पेट नहीं भरेगा। जैनदर्शन है। इसलिए लोग घबरा गये कि इन जैनियों से बात मत करो, इनके स्याद्वाद में फँस जाओगे। जबकि यह स्याद्वाद में फँसाते नहीं हैं, यह स्याद्वाद की चिमटी से फँसते लोगों को निकालते हैं।

ण य कोवि देदि लच्छी ण कोवि जीवस्स कुणदि उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ।।319 का.अ.।।

कार्तिकेय स्वामी लिख रहे हैं कार्तिकेयानुप्रेक्षा में हे जीव! न कोई लक्ष्मी देता है, न कोई उपकार करता है, न अपकार करता है। उपकार या अपकार जो भी होता है, तेरे शुभ-अशुभ कर्म के नियोग से होता है। जब तेरा उपादान अशुभ होता है तो निमित्त तेरे लिए अशुभ कार्य कर जायेंगे, उपादान शुभ होता है तो शुभ निमित्त भी कार्यकारी हो जायेंगे और ऋद्धिधारी मुनियों की ऋद्धियाँ सहकारी हो जायेंगी। पुण्य की तीव्रता नहीं है तो ईशत्व, वशत्व, अणिमा इत्यादि आठ ऋद्धियों से समन्वित देव भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर पाता है। ज्ञानी! जब पुण्य प्रबल होता है तो व्यन्तरों की कोठी में प्रद्युम्न कुमार, स्वयंभू कुमार को रत्नों के घट मिलते हैं और मोतियों के थाल मिलते हैं। ऐसा क्यों?

क्षेत्र का प्रभाव आपके भाव को लेकर चलता है या बिना भाव के चलता है? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के प्रभाव को हम नकार नहीं रहे हैं। परन्तु द्रव्य क्षेत्र भाव का प्रभाव उपादान पर ही आलम्बित है। क्या मैं द्रव्य क्षेत्र काल भाव को नहीं मानता हूँ? नहीं मानता तो मिथ्यादृष्टि। परन्तु कालाधीन नहीं, क्षेत्राधीन नहीं।

निमित्त-नैमित्तिक संबंध स्वीकारिये। मैं यहाँ उपदेश कर रहा हूँ। शुभक्षेत्र है, मंगलभूत है, परन्तु मेरे मित्र! समयसार की वाचना में दोपहर के समय तीन हजार लोग सुना करते थे। उन तीन हजार लोगों में मात्र एक ही व्यक्ति ब्रह्मचारी बनने क्यों आया? सुनते तो सभी थे। तीर्थंकर के समवसरण में चार गति के न सही, तीन गति के जीव तो होते हैं। तीन गति के जीवों में सभी मुनि नहीं बनते। मुमुक्षु! पहले यह बताओ कि जन्म, जरा, मृत्यु से बड़ा कौन-सा है? प्रभाव तो पड़ता है। जीव की कैसी योग्यता है उन पर वैसा प्रभाव पड़ता है। इसे आपको स्वीकारना पड़ेगा अन्यथा पर की उपाधि तेरे सिर पर चढ़ जायेगी। प्रभाव तो पड़ता है, मंदिर जाने पर भाव बदल जाते हैं, मैं मानता हूँ, परन्तु सभी के नहीं बदलते हैं। बदलते हैं क्या?

1997 में मैंने दुर्ग में चातुर्मास किया, उसमें आपने देखा था। मात्र दो बालक निकले थे। उसके बाद सैकड़ों बालक निकले, परन्तु जो बालक सबसे पहले मेरे पास आया था वह तो अभी पण्डित

बनकर बैठा हुआ है। सी.ए. बन गया, लेकिन यह मुनिराज बन गये। आप पण्डित जी बन गये, सबसे पहले तो आप ही आये थे। ऐसा क्यों? राग क्यों नहीं छूटा था? द्रव्य क्षेत्र काल का प्रभाव कार्यकारी होता है, परन्तु सहकारीभूत कार्यकारी है, परन्तु कार्यकारीभूत कार्यकारी है तो उपादान ही है।

आजकल पूरे शहर में वाइरल फैला हुआ है, सभी को बुखार आ रहा है, लेकिन सभी को बुखार फिर भी नहीं आ रहा है। ऐसा काल चल रहा है कि घर-घर में कोई न कोई बीमार चल रहा है, लेकिन उसी घर में कोई न कोई स्वस्थ भी है, ऐसा क्यों?

मित्र! सभी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सभी पर प्रभावी नहीं होते हैं। यदि ऐसा मान लोगे तो अभव्य जीव को भी सम्यक्त्व प्रकट कराना पड़ जायेगा। जो शक्ति नहीं है, उसे ही मैं उपादान की योग्यता कह रहा हूँ। जिसमें शक्ति है, उस शक्ति का नाम ही तो उपादान की योग्यता है।

भगवान् समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं। जहाँ समन्तभद्र बोल दें, वहाँ मौन ले लेना चाहिए, क्योंकि समन्तभद्र द्वारा रचित आप्तमीमांसा पर अष्टसहस्री ग्रन्थ लिखा गया है। कवियों में तीर्थंकर कौन? आचार्य समन्तभद्र स्वामी। वे कह रहे हैं। जीव और पुद्गल में दो शक्तियाँ हैं। शुद्ध शक्ति, अशुद्ध शक्ति। मूँग के अन्दर दो शक्तियाँ हैं। पाक शक्ति, अपाक शक्ति। ठर्रा मूँग अपाक शक्ति से युक्त है, जो सीजती है वह पाक शक्ति से युक्त है। क्या ठर्रा मूँग के लिए पानी नहीं है, अग्नि का सहयोग नहीं है? क्यों नहीं सीज रही है? सिद्धांत जो रहते हैं वह अकाट्य रहते हैं। चमत्कार आदि में आपको थोड़ा ढीला होना पड़ता है। सिद्धांत से बात करो तो तुम्हारे चमत्कार भ्रमित हो जायेंगे। पाक शक्ति, अपाक शक्ति । दो शक्तियाँ जीव और पुद्गल के अन्दर हैं। शुद्ध शक्ति, अशुद्ध शक्ति। ऐसा क्यों? यह स्वभाव है, इसमें किसी का तर्क नहीं चलता है। अभव्य में अभव्यता है। उसमें शुद्ध शक्ति नहीं है, शुद्ध होने की योग्यता नहीं है। सिद्धत्व सत्ता शक्तिरूप है, शक्ति की प्रकटभूत शक्ति नहीं है। इसी प्रकार से जीवों को जो तद्रूप प्रयोग होने की योग्यता है वे परिणत होने की योग्यता रखते हैं। तद्रूप होने की योग्यता नहीं वे निमित्त से परिणत नहीं होते हैं। 'प्रवचनसार' जी ग्रन्थ में टीकाकार ने जपापुष्प की व्याख्या की है। स्फटिक मणि के सामने जपापुष्प आता है, पीला, तो स्फटिक वैसी दिखती है। स्फटिक के अन्दर तद्रूप होने की योग्यता है, तभी वह पुष्प कार्यकारी हो पाता है। जपापुष्प काष्ट के सामने रखा जाये तो काष्ट नीला-पीला क्यों नहीं करता? यह कब कह रहे हैं कि भगवान् के अतिशय में कमी है। अरे! जपापुष्प की कमजोरी है यह मैं कब मना कर रहा हूँ। जपापुष्प में कमजोरी नहीं है। पुष्प का धर्म नीला-पीला है, परन्तु वह उसी में प्रभावी होता है, जिसमें तद्रूप होने की योग्यता है। बिना पुष्प के स्फटिक नीली-पीली हो सकती है क्या? लेकिन स्फटिक में नीले-पीले की योग्यता न होती तो स्फटिक को पुष्प नीला-पीला कर सकता था क्या? नहीं कर सकता था।

समन्तभद्र स्वामी ने बहुत बड़ी व्याख्या की है, इस पर आचार्य विद्यानंद स्वामी ने अष्ट सहस्री ग्रन्थ में इस कारिका पर बहुत बड़ी टीका लिखी हुई है। जो सम्प्रति वर्तमान काल में लोगों के मन में तत्त्व के प्रति विकल्प आते हैं, यह यथार्थ मानकर चलिये कि अध्ययन की न्यूनता है। तर्कशास्त्र में अध्ययन का अभाव है, इस कारण से बाहरी चमत्कारों पर ज्यादा लक्ष्य ले जाते हैं। क्या मैं मंत्र नहीं मानता हूँ ? जैनकुल में जन्म हो तो उसके तो कान में जन्म से ही मंत्र फूँका जाता है। आप मंत्र वादी नहीं हो क्या ? मैं तो मंत्रवादी हूँ। क्या मैं णमोकार नहीं जानता हूँ? जानता हूँ। चौरासी लाख मंत्रों का स्वामी है महामंत्र। ऐसे मंत्रों को मानते हो या नहीं? यह मंत्र आगम के वचन हैं, अपराजित मंत्र है, महामंत्र है। आकर्षक है, स्तम्भक है, उच्चाटक है, सबकुछ है। ज्ञानी! तेरे हाथ में औषधि है, उसमें सब गुण मिले हुए हैं और तद्रूप कार्य भी करती है, परन्तु मेरे मित्र! इतना ध्यान रखना, उपादान की योग्यता उसके लिए ही कार्य करेगी, जिसका आयुकर्म अवशेष है। जिसका आयुकर्म क्षय हो चुका है, उसके लिए तेरी औषधि काम नहीं करेगी ।

''मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरतें न बचाबै कोई''

आयु कर्म है, इसलिए निमित्त सहकारी बनेंगे, इसलिए बच जायेगा। बच गया, ठीक है , लेकिन यदि आयुकर्म नहीं है तो कितने सारे लोगों को कितनी सारी औषधियाँ चलती हैं, लेकिन धनवंतरी जिसको कहा जाता है, वह भी बचा क्या ? जिनके अतिशय से सुभिक्ष होता है, परन्तु आयुकर्म अच्छा होता है उनको भी पण्डित-पण्डित मरण होता है।

बहुत सारी व्याख्या भक्ति के अनुसार की जाती है। जयवंत हों तीन लोक के नाथ वर्द्धमान स्वामी। तीनलोक के नाथ तीनलोक में पूज्य हैं। तीनलोक में श्रेष्ठ हैं, इस बात को तुम्हें स्वीकार करना होगा। तीनलोक में श्रेष्ठ हैं इसलिए त्रिलोक पति हैं, परन्तु तीनलोक के लोग उन्हें मानते हैं ऐसा कभी मत कह देना। आपके जितने भी मुनि हैं, उनकी प्रशंसा करने बैठ गये तो आप यही कहोगे कि विश्व में यही साधु हैं। परन्तु मेरे मित्र! यह आपके दर्शन के पक्ष से आप बोल रहे हो, लेकिन विश्व के सभी लोग उनको मानते नहीं हैं। कितने लोग मानते हैं आपको? आपकी समाज के ही पूरे लोग नहीं मानते हैं। भले ही राष्ट्रसंत बन जाओ, आपको मालूम होना चाहिए कि यह उपाधि कमरे में भी दी जा सकती हैं, लेकिन सारे विश्व के सारे लोग इसका चुनाव नहीं करेंगे। मेरा पुनः प्रश्न है। मैं भगवान् की प्रभुत्व शक्ति पर प्रश्न खड़ा नहीं कर रहा हूँ। मैं यह कह रहा हूँ कि इस बात को भूल जाइये कि तीन लोक के नाथ को तीन लोक के लोग मानते थे। यदि ऐसा होता तो तीर्थंकर महावीर के साथ पाँच अपने आपको तीर्थंकर कहने वाले नहीं होना चाहिए थे? ऋषभदेव के सामने मिथ्यामत नहीं होना चाहिए था। उनके पोते ने नहीं स्वीकारा। इसलिए भक्ति की भाषा को भक्ति के साथ समेट कर रखिये। वस्तु की व्यवस्था वस्तुरूप

रखिये। तीनलोक में ऐसे तो जीव होते हैं जो उनको तीनलोक के नाथ मानते होंगे, इसलिए त्रिलोकीनाथ हैं। तीन लोक में सुख शांति झलकती है। प्रभु! तीनलोक में आपसे अधिक कोई महान् पुरुष नहीं है, इसलिए आप त्रिलोकीनाथ हैं। इसमें कोई शंका नहीं है। किसी के नहीं मानने से मेरे प्रभु में दोष आ जायेंगे, इसको मैं नहीं मानता हूँ। अरे भाई! हाथी को हाथी न मानने से घोड़ा तो नहीं हो जायेगा। वह हाथी ही रहेगा। ऐसे ही हमारे लोक के नाथ सर्वज्ञ हैं सो हैं। यह मत कहना कि सभी मानने वाले हैं। यदि सभी मानने वाले हैं तो आपके न्यायशास्त्रों में सर्वज्ञता की सिद्धि क्यों करना पड़ गई? सर्वज्ञ को भी असर्वज्ञ कहने वाले लोग हैं और असर्वज्ञ को भी सर्वज्ञ कहने वाले लोग हैं। यह तो लोक में बहुत सारा तत्त्व आपको आगम के साथ-साथ अनुभव में लाना चाहिए और प्रत्यक्ष विषय को भी देखना चाहिए। आप भूत में जाकर बहुत सारे शत्रुओं को खो देते हो, कैसे ? आप वर्तमान की सत्ता का सत्य क्यों नहीं मानते हो? मैं वर्तमान में हूँ। मेरा वर्तमान में होना ही मेरे भूत की सिद्धि कर रहा है

'त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कम्'

मैं वर्तमान में हूँ, यह मेरे भविष्य की सूचना कर रहा है। मेरा वर्तमान में क्षयोपशम इतना है, तो मेरे कुन्दकुन्द देव का क्षयोपशम भी मुझे समझ में आता है। कुन्दकुन्द का क्षयोपशम उनके ग्रन्थों से समझ में आता है। ऐसे भी निर्ग्रन्थ हुए हैं जिन्होने कोई ग्रन्थ नहीं लिखे हैं फिर भी उनका क्षयोपशम विराट था। जिनके उपदेश से ग्रन्थ लिखे गये हैं उन सर्वज्ञ के ज्ञान का क्या कहना? यदि वर्तमान के सत्य को सत्य नहीं मान पाओगे तो भूत और भविष्य के सत्य को नहीं समझ पाओगे। एक ग्रुप, कक्ष उसमें आपको बाँधकर रखा जाता है तो आप उससे प्रभावित हो जाते हैं। उसके प्रभावित होने से क्या होता है? हम बहुत सारे शत्रु को समझ नहीं पाते। यदि कोई व्यक्ति वैश्यालय चला गया। एक सज्जन बता रहे थे महाराज! वहाँ का वातावरण इस प्रकार होता है कि सज्जन पुरुष भी प्रवेश कर जाये तो उसके भाव असंयम में प्रवेश कर जायें। क्यों? उस क्षेत्र का वातावरण ऐसा करके रखा गया है। मित्रो! ऐसा तुमको भ्रान्त करके रखा गया है कि आप उसे ही सर्वस्व मान रहे हो।

डॉ. साहब! आप जब डॉक्टरी पढ़ रहे थे, जिस कालेज में पढ़ने जाते थे वह मेडीकल था, वहाँ के क्षेत्र में पूरा वातावरण मेडिकलमय था, तो वहाँ तुम्हारा मस्तिष्क वहीं-वहीं चलता था। कभी-न-कभी तू कॉलेज के काल में जिस दिन बाहर निकल कर आया था तो अपने आपको हल्का महसूस करता था कि नहीं ?

मस्तिष्क है, यह संवेदनशील है। अध्यापक मुझे जो कक्षा में पढ़ाते थे मैं यही मानता था कि इस विषय को अच्छी तरह से तैयार करना है। जैसे ही वह अध्यापक उस कक्षा से बाहर हुए और दूसरे आ

जाते थे, फिर मन करता था कि इनके विषय का भी ध्यान रखना है। आचार्यश्री पास जाऊँ तो वहाँ का वातावरण देखता हूँ तो वहाँ का वातावरण यह है। अमुक-अमुक संघों से बाहर निकलता हूँ तब मैं अपने आपको हल्का महसूस करता हूँ। 'जो है, सो है।'

किसी को अपने मस्तक से हाथ नहीं लगाने देता हूँ। इसको सुरक्षित रहने दो । तुम्हारे गर्म हाथ हैं और पता नहीं तुम्हारे भाव कैसे चल रहे हैं। वो प्रभावित कर रहे हैं। इतना ज्ञान हो जाना चाहिए साधु जीवन में कि किस व्यक्ति के मन में क्या बात चल रही है। अब यहाँ **''बंधेऽधिकौपारिणामिकौ च''**

जिसके शक्त्यांश अधिक हैं वह आपको आकर्षित कर रहा है। आकर्षित कर रहा है और तुम अधिक समय दे दोगे तो आप अपने सत्य से दूर हो जाओगे। इसलिए जहाँ आपको महसूस होने लगे अरे मैं इनसे आकर्षित हो रहा हूँ वहाँ से उठकर चले जाना चाहिए। परन्तु जो परिवर्तन है, वह निज भाव से है। मैं यह इसलिए कह रहा था कि कहीं-कहीं ऐसा वातावरण करके रखा गया है कि ऐसा पर से प्रभाव होता ही है। क्षण को सत्य मानने ही लगेगा, क्योंकि मंत्रशास्त्र को भी मैंने ऐसे ही पढ़ लिया। जब मंत्र शास्त्र पढ़ता हूँ तो हाँ ऐसा हो जायेगा। फिर आयुर्वेद शास्त्र पढ़ता हूँ तो दवाई से ऐसा होगा। जब कर्म सिद्धांत पढ़ता हूँ तो यह कर्म का निपाक है। अरे ज्ञानी! तो फिर क्या करना चाहिए? सारी जगह कर्म को ग्रहण करना चाहिए। यह तंत्र-मंत्र, औषधियाँ। यह नोकर्म है। इनको नहीं मनोगे तो भी तुम्हारा काम बनने वाला नहीं है, बिगड़ जायेगा। भोजन भी औषधी है। वह नोकर्म है। मिर्ची खाते ही तेरी आँख में आँसू क्यों आते हैं? इसके पहले क्यों नहीं गिरते थे ? यह नोकर्म है। जब शरीर में शुक्र की वृद्धि होती है तो व्यक्ति को विकारी भाव आते हैं। फिर तुम्हारे द्रव्यकर्म को प्रभावित करता है। इसलिए आगम में लिखा है कि गरिष्ठ भोजन नहीं करना। यह नोकर्म है। वेदान्त, वेद और जैनदर्शन आयुर्वेद इन सब का मैंने दो साल तक सामूहिक अध्ययन किया । तब मैंने पकड़ लिया कि कौन कहाँ फिसल रहा है। जिसे हमारे यहाँ नोकर्म संज्ञा दी गई है, वेद क्या बोल रहे हैं? अन्न। अन्न से अण्डे आदि की उत्पत्ति होती है और उससे संसार चल रहा है। अरे! तुम यदि इतनी बात को सर्वथा झूठ कह देते तो आप भी कहीं-न-कहीं फिसल रहे हो। आप इनकी बात को समझिये। वेद अन्न से संसार की उत्पत्ति मान रहे हैं। अन्न धान्य है। अन्न से शरीर में रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि, शुक्र बनेगा। शुक्र बनेगा तो उससे संतान होगी। तो उन्होंने कहा है कि अन्न से चलती है संतान परम्परा। उनका ऐसा कहना आयुर्वेद के हिसाब से ठीक है। जैनदर्शन के हिसाब से बोलेंगे तो यह नोकर्म है। नो कर्म से रचना होकर भावकर्म, वेद विकार, द्रव्य कर्म, वेद उदय। इनके निमित्त से जो तुम्हारे संयोग हुआ है उससे संतान ने जन्म लिया है। कर्म सिद्धांत कहेगा कि पुत्र ने आयुकर्म का बंध किया तो उसने आकर जन्म लिया। यह निमित्त-नैमित्तिक कितने सारे सम्बन्ध हैं। एक वक्ता को तत्त्व की सम्यक् प्ररूपणा करना है। उसको कई दर्शनों का, कई ग्रन्थों

का अध्ययन करना पड़ेगा, तब आप निर्णय की स्थिति में पहुँच पाओगे, अन्यथा एक जगह बोलकर आपने ऐसा वातावरण बना दिया है कि आप वहीं-वहीं घुमा देते हो। एक कमरे में मुझे ऐसा उलझा लिया कि यह होना चाहिए, यह होना चाहिए, तस्वीर, फोटो, क्षेत्र प्रभावनादि। एक समय के लिए उन्मत्त हो गया कि क्या हो रहा है। मैं तुरन्त कमरे से बाहर निकला, तो अपने आप में शांति महसूस की। हे भगवान्! शिष्यों को ऐसे बांधकर रखा जाता है, वही-वही बातें भरी जाती हैं। वे बेचारे अपने मस्तिष्क को विकसित ही नहीं कर पाते हैं। यह आपको पता होना चाहिए कि आजकल शिक्षा में यही चल रहा है कि गुरु की फोटो में चित्र में प्रभावना करना यही धर्म है तो बेचारे यही सोचते हैं कि यही करते रहो।

अज्ञ प्राणी संबंध में स्वभाव को खोजता है, जबकि संश्लेष संबंध जिसमें है, वह भी मेरा स्वभाव नहीं है। जो संबंध सहयोगभूत है, वह मेरा स्वभाव कैसा? जितना जीव को संश्लेष संबंध में राग नहीं है, उससे कई गुना राग जीव को संयोग संबंध में है। संयोग वियोग से युक्त है। जिसका वियोग नियत है, ऐसे संयोग में राग करके मात्र वियोग की विडम्बना को ही सहन करना है। **संयोग का वियोग नियत है। संयोग में स्वभाव खोजना, संयोग में राग को वृद्धिमान करना, अपने वियोग की वेदना को वेदित करना है। जिस जीव ने समझ लिया है कि संयोगों का वियोग नियत है, वह पर संयोगों के साथ रहता अवश्य है, परन्तु संयोगों को धर्म किंचित् भी नहीं स्वीकारता।** जो वचन मैं कह रहा हूँ, वही जीवन में रह रहा हूँ, लेकिन प्रत्येक वस्तु का परिणमन अपने-अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यता से युक्त है। जब उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के प्रसंग से प्रत्येक द्रव्य का परिणमन सहज है, तो उस सहज परिणमन को सहज भाव से देखना चाहिए।

यह लेखनी है, इसका परिणमन इसी में चल रहा है। इसको देखकर आप अच्छे या बुरे भाव ही कर सकते हो, लेकिन अच्छे या बुरे भाव जो आ रहे हैं वे लेखनी में नहीं जा रहे हैं, वे आपके अन्दर आ रहे हैं। जो आपके अन्दर रागात्मक-द्वेषात्मक परिणाम इस लेखनी को देखकर आ रहे हैं, इसमें न राग है, इसमें न द्वेष है। राग-द्वेष की उत्पत्ति हो रही है वह आपके विभाव गुण व्यंजन पर्याय में हो रही है। राग-द्वेष की उत्पत्ति हो रही है, वह आपके ही अंतरंग में विकारी भाव चल रहा है। आपके परिणामों में विकार है, जबकि **लेखनी में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अपने सहज भाव में है। आपके देखने से इसमें उत्पाद नहीं हो रहा है, आपके देखने से इसमें व्यय नहीं हो रहा है, आपके देखने से इसमें ध्रौव्यत्व भी नहीं है। आपके निमित्त से इसमें किंचित् भी परिणमन नहीं हो रहा है। आप अपने परिणामों को विकारी करने का परिणमन करा रहे हो, यह इस द्रव्य का दोष नहीं है, यह तेरे निज की परिणति का दोष है।** ऐसा हम आज से नहीं कर रहे हैं। मेरे मित्र! जैसे तू पेन में कुछ नहीं कर रहा है, ऐसे तू अपने माता, पिता, पुत्र, पत्नी आदि में भी कुछ नहीं कर रहा है। न तू भवन में कुछ कर रहा

है, न तू घर में कुछ कर रहा है, न तू संबंधियों में कुछ कर रहा है। इनका परिणमन भी जैसे इस लेखनी में चल रहा है, ऐसे ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त परिणमन चल रहा है तो उनके परिणमन को देखकर तेरे भीतर राग और द्वेष की ज्वाला झुलस रही है, उनसे इनका कुछ भी नहीं हो रहा है, परन्तु तेरे शुभ भावों का नाश नियम से हो रहा है।

खड़िया तो खड़िया है, दीवार तो दीवार है। दीवार का परिणमन दीवार में है, खड़िया का परिणमन खड़िया में है। अज्ञानी कहता है दीवार सफेद है, जबकि दीवार की सफेदी किंचित् भी नहीं है, सफेदी तो खड़िया की है। जब-तक तत्त्व का चिन्तवन इतना गहरा नहीं होगा, तब-तक मोह का विगलन नहीं होगा।

जब लेखनी स्वतन्त्र है, मैं इससे अत्यन्त भिन्न हूँ, फिर भी इसको देखकर मेरे भाव क्यों बिगड़ रहे हैं? ध्रुवसत्य है, यह आपके भाव नहीं बिगड़ रहे हैं। क्या लेखनी के माध्यम से आपके भाव बिगड़ रहे हैं ? व्यवहार से निमित्त की दृष्टि से कथन करोगे तो इसको देखकर मेरे भाव बिगड़ रहे हैं। प्रश्न पुनः है, इसमें ही भाव बिगड़ रहे हैं, कि भावों में ही भाव बिगड़ रहे हैं ? प्रयास करो समझने का। दीवार पर खड़िया है, तो व्यवहार कहेगा कि हाँ, सफेद दीवार है। दीवार में परिणमन चल रहा है क्या? हाँ, दीवार में परिणमन चल रहा है। लेकिन ध्रुवसत्य क्या है? खड़िया में खड़िया का ही परिणमन है, दीवार में दीवार का परिणमन है। ऐसे ही चारित्र का परिणमन चारित्रभूत है, देह का परिणमन देहभूत है। देह का परिणमन देही का नहीं है। आपके नेत्रों ने दूसरे के शरीर की चमड़ी को देखकर, गोरे काले शरीर को देखकर, आपके अन्तरंग में, नयनों में ऐसा निहारा कि दूसरे के शरीर को देखकर तुम्हारा शरीर रोमांचित होने लग गया, परन्तु ध्रुव सत्य है कि शरीर को देखने से शरीर रोमांचित नहीं हुआ है। तेरे विकारी भावों ने विकारी भूत परिणति करके रोमांचित किया है। शरीरों को देखने वाले अनन्त होते हैं, पर के शरीर को देखने से विकार मात्र होते हैं, परन्तु जगत् का ऐसा कौन सा शरीर है जो सर्वज्ञदेव के कैवल्य में न आ रहा हो? तो उन्हें रोमांच होना चाहिए? शरीर, शरीर को देखने में रोमांच नहीं है। राग और विकारी भावों से, राग विकारों को निहारने से विकार हो रहा है। **जो-जो विकारी हुए हैं, वे विकारों से हुए हैं, परद्रव्य से नहीं हुए हैं। अपने विकारी भावों से विकारी हुए हैं। यह जीव जिस द्रव्य को देखकर विकृत हो रहा था, जब आत्मबोध होता है, भेद विज्ञान का जागरण होता है, जब वैराग्य की धारा होती है, फिर वे द्रव्य विकार पैदा क्यों नहीं कराते ?**

जो राज्य बाहुबली स्वामी को युद्ध के लिए प्रेरित कर गया, जो राज्य भरत को चक्र चलाने के लिए उत्साहित कर गया, वही राज्य, भवन, भूमि, वही सम्पत्ति बाहुबली स्वामी को वैराग्य के बाद क्यों दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी? मित्रो! कुछ नहीं है। आपको नियंत्रण करना है तो वस्तु को हटाने में, वस्तु

को छुड़ाने में मत लगाइये, अपनी दृष्टि को हटाने में कीजिए और हटा कर रहोगे तो वस्तु अपने आप छूट जायेगी। दृष्टि हटाये बिना वस्तु को छोड़कर आ गये हो, वस्तु से छूटकर आ गये हो, अब भी सामायिक करने बैठोगे तो तेरी आँखों के सामने वस्तु ही घूमेगी। बारह वर्ष तक पुष्पडाल मुनिराज को कानी स्त्री की याद नहीं छूटी, क्योंकि छूटकर आ गये थे, छोड़कर नहीं आये थे। शिविरार्थियो! अपने मन में सोच लेना कि मैं कैसे दस दिन छोड़कर आया हूँ, इतना ध्यान रखना कि देह से छूटा न बैठा रहूँ, तू ही इतना सहयोग कर देना कि दस दिन तक तू घर में मत जाना। अन्यथा बैठे रहोगे, स्मरण में घर ही होंगे और आस्रव घर का ही होगा। **तन्दुल मच्छ बनकर साधना में नहीं बैठना। किसी भी जीव का घात करता नहीं है, परन्तु विराधना के भाव भाकर सातवें नरक जाता है।** महामच्छ के कान में बैठा चिन्तन करता है। एक भी जीव को भक्षण नहीं करता है, लेकिन छः माह महामच्छ सोता है, उसके मुख में जीव आ-जा रहे हैं। सोचता है कि यदि मैं इसके स्थान पर होता तो एक को भी नहीं छोड़ता। एक का भी सेवन नहीं करता है, परन्तु भाव में सबकी हिंसा का भागी है।

परिणामों के संतुलन से चलना। मित्र! परिणामों के समीकरण करने की आवश्यकता नहीं, अनिवार्यता है। भूमि में गड्ढे हों तो समीकरण करते हैं। समतल करना। समीकरण अर्थात् बराबर कर देना। **जैसे भूमि में गर्त होने पर आप गड्ढे में मिट्टी डालकर समीकरण कर लेते हो, ऐसे ही मुमुक्षु! तेरे परिणामों में खोटे भावों के जो गड्ढे पड़ रहे हैं उनको परिणामों की विशुद्धि से समतल कर लीजिए। स्वाध्याय का उद्देश्य मात्र समीकरण करना है, भावों के गर्त का समीकरण कैसे हो इतना मात्र जानना है।**

एक क्षण को सम्पूर्ण द्रव्यों से भिन्न होकर, प्रपंचों से भिन्न होकर अपने आपको मात्र एक स्वीकारना, तब तो आप यहाँ रह पाओगे। अपने आपको यहाँ होकर, यहाँ के ही होकर, यहाँ के भीतर नहीं होकर, वहाँ के होना जहाँ तुम आज तक हुए नहीं हो। वहाँ बनकर आत्मप्रदेशों के बनकर रहना। जहाँ के हो वहाँ के हुए नहीं हो और जहाँ के नहीं हो वहाँ कहते हो मेरी भूमि मेरा देश। यह स्वद्रव्य स्वप्रतिष्ठित है। यह द्रव्य परमार्थ से प्रतिष्ठित है। जहाँ है वहाँ का कभी स्वीकार नहीं कर पाया था, वहाँ का ही है। जिसे स्वीकार रहा है वहाँ का तो तीन काल में हुआ ही नहीं है। जहाँ का कभी था नहीं, हुआ नहीं, कभी छोड़ूँगा नहीं, होऊँगा भी नहीं, वहाँ का तू अपने आपको कहता है, परन्तु जहाँ का हूँ वहाँ तो स्वप्रतिष्ठित आत्मप्रदेशों में हूँ। जब आत्मप्रदेशों में प्रवेश करता है, उस काल में सारे क्षेत्र समाप्त हो जाते हैं। अब आप चिन्तवन करो कि निर्ग्रन्थ वीतरागी दिगम्बर तपोधन किन प्रदेशों में बैठकर आत्मशांति का वेदन करते हैं? तब निर्णय होता है कि अभी तक किन-किन प्रदेशों में है शांति। कोई तीर्थभूमि में खोज रहा था, कोई भवनों, मंदिरों में खोज रहा था, परन्तु सत्यता यह है कि उन प्रदेशों में निज प्रदेशत्व है ही नहीं। मंदिर में जब तुझे शांति का वेदन होता है, तो विश्वास रखना, कि **मंदिर के**

प्रदेशों में शांति का वेदन नहीं होता है। शांति का वेदन तो आत्मप्रदेशों में ही होता है। आत्मप्रदेशों में पहुँचता है तभी अनुभव करता है। आप अपने ही शरीर के अंगों पर जब-तक अपने उपयोग को नहीं ले जाते तब-तक मालूम नहीं होता कि मेरे शरीर में कितने अंग हैं। कभी-कभी अपने मस्तिष्क में चिन्तन करना। मस्तिष्क भी है आपके पास अब महसूस हुआ है कि माथा है, मैं माथे पर हूँ। ध्यान दो। नाक भी है क्या? अब तू नाक पर पहुँच गया। कान है क्या? कान पर पहुँच गया। नेत्र है? मुख है? ध्याता का यही ध्येय है।

ज्ञानी! नासिका का अग्रभाग, मुख, कर्ण, मस्तिष्क, कण्ठ, हृदयस्थल, वक्षस्थल, नाभि, कपाल इत्यादि जो हैं यह आपके ध्यान के केन्द्रों में तू घूमने लग जाये तो जगत् में कितने केन्द्र हैं? सिनेमा हाल, आदि सब भूल जाओगे, मेरे पास इतने केन्द्र हैं। जो मैं इनमें घूमता रहूँ। जिन केन्द्रों को मात्र मैं स्मरण कर रहा हूँ, वे भी केन्द्र मेरे निज केन्द्र नहीं हैं। वह भी पर केन्द्र हैं। जब जगत् के सम्पूर्ण ध्याताओं के, अध्याताओं के, आध्यात्मिकों के सारे केन्द्र शून्य हो जाते हैं तब कुन्दकुन्द स्वामी के 'समयसार' का ध्यान प्रारम्भ होता है। भैया! जगत् कहाँ घुमायेगा? या तो संयोगी द्रव्यों में घुमायेगा, या संश्लेष सम्बन्ध में घुमायेगा, परन्तु स्वभाव में नहीं ले जा पाता। या तो आँखों पर केन्द्रित करा रहा है या फिर मस्तिष्क आदि अंगों पर केन्द्रित करा रहा है। यह सब अत्यंत स्थूल अवस्थायें हैं, अत्यंत स्थूल धारा है। बाहर में भ्रमण करते हुए चित्त को पास में संग्रहित करने के लिए उस बल्ब आदि को देखो। कोई कहता है दीपक की ज्योति को देखो, कोई कहता है सूर्य की किरण देखो, कोई कह रहा है नासाग्र देखो। यह सब यथार्थ में बहुत स्थूल चेष्टायें हैं। यह सब बहिर् ध्यान है। आत्मध्यान नहीं है। पंचपरमेष्ठी को देखो, यह भी बहिर् ध्यान है। जिस क्षण आत्मस्थ हो जायेगा, उस क्षण में किसी को नहीं देखेगा, मात्र देखनहार को देखेगा? देखनहार कौन है?

जो देख रहा है, दिखा रहा है, उसे एक बार तो देख लो। जो जगत् को दिखा रहा है, वह एक बार दिख जाये। वह खुली आँखों से नहीं दिखेगा, वह बन्द आँखों से भी नहीं दिखेगा। वह आँखों से दिखेगा ही नहीं। वो तो देखनहारा देखनहारे को देख ही लेगा। आप चाहो मैं खुली आँखों से देखूँ, बन्द आँखों से देखूँ, वह दिखनेवाला नहीं। परन्तु है, अवश्य है। परन्तु आप आँखों से नहीं देख पाओगे। जो आँखों से नहीं दिखता है, जो कानों से सुनायी नहीं पड़ता है, हाथों से स्पर्शित नहीं होता है, नाक से सूँघा नहीं जा सकता है, ऐसे द्रव्य को कैसे जानूँ, कैसे देखूँ?

वह दृश्य का विषय नहीं, वह वर्ण का विषय नहीं, वह नाक का विषय नहीं, वह आँख का विषय नहीं, वह स्पर्श का विषय नहीं। मुमुक्षु! जिसे तू जानना चाहता है, वह मात्र अनुभव का विषय है। अनुभव करके ही जाना जाता है, परन्तु अन्य किसी इन्द्रियों से जाना नहीं जाता है। है, अवश्य है। बस

यही निर्णय करना है आपको, साधना करके, जगत् में अनन्यभूत द्रव्य हैं यह सारे द्रव्यों को छोड़कर निज मात्र को ही वेदन करना है। निर्ग्रन्थ योगी की निर्ग्रन्थ धारा की जो वृत्ति है, वह कैसी हो सकती है? उसे समझने की चेष्टा करो। यहाँ अमृतचन्द्र स्वामी टीका का विस्तार करके समझा रहे हैं।

यदि खड़िया दीवार हो जाती है, जब वह होती है तब दीवार को भी खड़िया होना पड़ेगा। जैसे आत्मा का ज्ञान आत्मा ही होता है, आत्मा का ज्ञान तद्भूत नहीं होता है। उस सम्बन्ध से ही जीव जीता है। आत्मा का ज्ञान आत्मा से ही होता है, पर से नहीं होता है। आत्मा से भिन्न ज्ञान भी नहीं होता है, ज्ञान से भिन्न आत्मा भी नहीं होती है। यदि खड़िया दीवार होती है तो फिर दीवारभूत ही होती है इस प्रकार से होने पर, यदि खड़िया दीवार हो जाती है तो खड़िया अपने द्रव्यत्व का नाश कर देती है। जैसे खड़िया दीवार हो जाने पर अपने धर्म का नाश कर लेगी, ऐसे-ही आत्मा यदि पर ज्ञेयभूत हो गई, मेरी आत्मा का ज्ञानगुण परज्ञेयभूत हो गया, तो मेरी आत्मा परद्रव्यभूत हो जायेगी और परद्रव्यभूत होने से निज द्रव्य का नाश हो जायेगा, जोकि त्रैकालिक संभव नहीं है। **ज्ञानियो! स्वद्रव्य का विनाश होता नहीं और निज में परद्रव्य का उत्पाद होता नहीं। प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से स्वतंत्र ही है।** इस सिद्धांत को कहने के लिए जगत् में कोई दर्शन है उसका नाम जैनदर्शन है। इतना भीतर प्रवेश किसी ने किया ही नहीं। सम्पूर्ण विश्व में जितने अध्ययन के क्षेत्र हैं, वो सब तीन का ही अध्ययन करते हैं। लोक में जितने प्रकार की विद्याएँ, अध्यापन क्षेत्र हैं, जितने प्रकार के विश्वविद्यालय हैं, एक प्राथमिक शाला से लेकर विश्वविद्यालय तक जो भी ज्ञान दिया जा रहा है, वह मात्र तीन का है। विश्व का कितना ही बड़ा वैज्ञानिक आकर बैठ जाये, परन्तु वीतराग विज्ञान के आगे उसका कोई ज्ञान लगता नहीं। चारों अनुयोगों में जो कुछ भी लिखा हुआ है, मात्र तीन का वर्णन है। द्रव्य, गुण, पर्याय। जिस भी द्रव्य की तुम व्याख्या करोगे, या तो द्रव्यत्व की दृष्टि से करोगे, या पर्याय की दृष्टि से करोगे, या गुण की दृष्टि से करोगे। हल्दी के मिश्रण से चूने में कुछ परिवर्तन हुआ। परन्तु क्या द्रव्य का द्रव्य में परिवर्तन, द्रव्य से पर्याय में परिणमन, द्रव्य का गुणों में परिवर्तन हुआ है? इंजीनियरिंग में रसायनशास्त्र भी है। जो-जो प्रयोग किया जा रहा है, वह द्रव्य-गुण-पर्याय का परिणमन है। द्रव्य में द्रव्यत्वशीलता है। जो द्रव्य की द्रव्यत्वशीलता है, वही परिणमनशीलता है। परिणमन द्रव्य में हो रहा है। जो परिणमन देखा जा रहा है, वह पर्याय है। जो गुण में परिणमन है, वही तो पर्याय है।

अरे भाई! तू अपने ज्ञान का अच्छा उपयोग करना। गुण की प्रधानता से कथन कर दिया, अपने आप सँभालना। 'अच्छे से बैठो' जब मैंने कहा तो अच्छे से बैठा, तुरन्त पर्याय को बदल लिया, परन्तु बिना परिणमन के पर्याय में हलन-चलन हुआ कैसे ? द्रव्य में जो परिणमन हो रहा है, उसे जब गुण की प्रधानता से बोलते हैं; द्रव्य में परिणमन हो रहा है, कभी उसे पर्याय की प्रधानता से बोलते हैं; लेकिन

वास्तविकता यह है कि जो गुण और पर्याय से युक्त है, वही द्रव्य है।

जगत् में जितने भी प्रमेय हैं। अर्थात् ज्ञेय, जाननेयोग्य द्रव्य के विषय। वे सारे प्रमेय द्रव्य-गुण-पर्याय से युक्त हैं। छः द्रव्य के बाहर जगत् में कोई भी वस्तु नहीं है। सम्यक्-मिथ्यात्व आदि की जो व्याख्या है सर्वथा गुण की दृष्टि से है। वह श्रद्धा गुण की अपेक्षा से है। भ्रमित नहीं होना, पूरी बात सुनना। जो भी जगत् में सम्यक् मिथ्यात्व की व्याख्या है, वह श्रद्धा गुण की दृष्टि से है। जब हम वस्तु की दृष्टि से देखते हैं, तो छः द्रव्य के बाहर क्या सम्यक्त्व का विषय है और क्या मिथ्यात्व का विषय है?

यमुना के पानी को लोटे में लेकर आया तो हाथ नीचा करके ले गया, तो बताओ क्या होगा ? उस पानी की क्या हालत होने वाली है ? यमुना के पानी को कलश में लेकर आया और ऊँचा करके लेकर गया तो क्या होगा? एक कलश में आया यमुना का पानी श्री जी के मस्तिष्क पर डालकर गंधोदक बनने वाला है और तुम जो लोटे में नीचा करके ले गये थे, संडास में उपयोग करने वाला है। आपके विषय से पानी का विषय बदला है, परन्तु पानी कहाँ बदला है? आप एक को गन्धोदक में लगा रहे हो और एक को कहीं छू भी जाओ तो स्नान करने जाते हो। यह पानी में बदलाव आया है या आपकी परिणति में बदलाव आया है? ज्ञानियो! ऐसे-ही जीव अपने ज्ञान के लोटे को नीचा करके ले जा रहा है तो उसका ज्ञान मिथ्याभूत हो रहा है और जो अपने ज्ञान को कलश की भांति ऊपर करके ले चलता है वह गंधोदक रूप ज्ञान बन रहा है। परवस्तु न मिथ्याभूत है न सम्यक्भूत है। जगत् में किस-किस को ठीक करने जाओगे? किसी को ठीक करने मत जाओ, बस अपनी परिणति को ठीक कर लो तो सारा विश्व तुझे ठीक दिखाई देगा ।

यथार्थ में मैत्रीभाव की परिभाषा ही नहीं जानते हैं। मैत्रीभाव है एक रासायनिक क्रिया **पर को पीड़ा न हो, ऐसा भाव तेरे भीतर हो, इसका नाम है मैत्री। न किसी की जूठन खाना मैत्री है, न किसी के शरीर से लगकर पसीना चिपकाना मैत्री है, न किसी के हाथ को दबाना मैत्री है, न किसी के मुँख का पीक मुह में डाल देना मैत्री है।** यह सब पागलपन है। मैत्रीभाव होने से तीर्थंकरप्रकृति का बंध होता है। प्राणिमात्र की पीड़ा समाप्त हो जाये। **मैत्रीभाव आते ही ऐसी विशुद्धि अंतरंग में जन्म लेती है कि जीवन में किसी का तू अहित कर ही नहीं सकेगा।** जिसे तू ग्रहण करके बैठा है मस्तिष्क में, उसे छोड़ दो। ढीला करना सीखो। बिना कार्य के तुम काम कर रहे हो इससे पूर्ण स्फूर्ति होना चाहिए तुम्हारे शरीर में। जितना काम करके नहीं थके हो, उतना काम करके थके हो। योगी क्यों प्रसन्न रहता है? साधु की बात नहीं कर रहा हूँ। साधुओं को तो काम करना पड़ता है। प्रतिक्रमण करो, सामायिक करो, प्रत्याख्यान करो, यह करना- करना लगा है तब तक योगी नहीं है, साधु है। साधु को साधना करना

पड़ती है। योगी जो है **'अप्पा अप्पम्मि रओ'** आत्मा को आत्मा में लगाये हुए है। उसे कुछ नहीं करना पड़ता, उसका सब हो जाता है। योगी और साधु में बहुत अन्तर है। साधु ही योगी बनता है। साधु तो बनना ही पड़ेगा। **योगी जो है वह उच्चधारा है। जहाँ मन-वचन-काय योग की दशा से भी विराम ले लिया हो। निज में निज को जोड़ लिया हो। योग का अर्थ जोड़ना होता है। निज में निज को जोड़ लिया हो जिस जीव ने, उसका नाम योगी है।** इससे पहले साधु है।

सबसे बड़ी साधना है अपने आप को खाली करके छोड़ो । एक सैकंड के करोड़वे भाग प्रमाण भी तू अपने आपको खाली नहीं छोड़ रहा है। कुछ तो हल्का करो। देह की निरोगता में कमी आयेगी, खाली छोड़ने में प्रसन्नता आयेगी।

जब-तक आप सब साधना करो, वह सब साधना होती रहेगी। पूजन भी करोगे, उपवास भी करोगे, शुभ कर्म है, करते रहना, लेकिन मैं देह के अन्दर की बात बता रहा हूँ कि इन सब के साथ हर क्रिया में अपने आपको खाली करना सीखो। मैं सब तरह बाहर से मुक्त हूँ। बिना मिठाइयों के आनन्द आयेगा। बिना कुछ किये आनन्द आयेगा, आप विश्वास मानो। स्वद्रव्य का विघात मत कर बैठना। होता ही नहीं है, परन्तु श्रद्धा में कर लेता है जीव। मेरे ऊपर तो प्रभु की कृपा है। माता-पिता की कृपा है। सभी कृपाओं से ही काम हो रहा है, तो तेरा किया क्या? देवी की कृपा से ही काम होगा तो हाथ पर हाथ रख ले, कुछ करने की जरूरत नहीं है। तू तो करना ही छोड़ दे, तेरे काम कृपा से होते रहेंगे। व्यर्थ में क्यों क्लेश में पड़ा है? आज से दुकान पर नहीं जाना, क्यों? जब कृपा से काम हो ही जाते हैं, तो व्यर्थ में दुकान पर बैठकर चौबीस घण्टे देखते रहना बिल्ली जैसे कि कौन इधर आये, जैसे बिल्ली चूहे के बिल के पास बैठी रहती है कि कब चूहा दिखे। चूहा आये या न आये, लेकिन बिल्ली चौबीस घण्टे पापिन है। बताओ, बिल्ली पर्याय कितनी निकली है? क्या देह की पर्याय को ही बिल्ली पर्याय मानते हो? मैं तो परिणामों की बात कर रहा हूँ। बिल्ली-जैसे परिणामों की पर्याय कितनी निकाली है।

माना कि तुझे मालूम है कि यह पण्डित जी तुझे भोजन परोसने आ रहे हैं। मन में आ गया कि यह अमुक सामग्री लेकर आयेगा। वह आप तक नहीं आये। फिर पीछे चले गये और दूसरी पंक्ति में चले गये, लेकिन आप तक नहीं आये और टेंट में वह सामग्री रख आये। बताओ, कौनसी पर्याय चल रही है इस समय? वो तो बार-बार आकर पड़ोसी को परोसकर चला गया, आपके पास तक तो आया ही नहीं। तो अब परिणामों से पूछो। थाली में तो सामग्री आ नहीं पा रही, नहीं मिल रही है, परन्तु बार-बार भाव बिगड़ रहे हैं। ऐसे-ही जब रागी जीव दुकान पर होता है, इत्यादि काम करता है, कोई ग्राहक नहीं आ रहा है, तब समझना कि क्या सोचता है?

किसी भी वस्तु के गुम जाने पर चलते-चलते यही सोचता है कि यहाँ पड़ी, ऐसा लगता है। जैसे तू अन्य किसी वस्तु को यह पड़ी देखता है, ऐसे ही निज के भीतर देख ले कि किधर पड़ा हूँ। कहीं बाहर नहीं हूँ, मैं भीतर ही हूँ। अपने द्रव्य को क्यों नहीं देखता है? बिल्ली की पर्याय को छोड़, साधु की पर्याय को प्राप्त कर। मैं आपको बिल्ली नहीं बना रहा हूँ। मैं तो परिणामों की बात कर रहा हूँ। यदि ऐसी परिणति चल रही है, तो इसे आप ज्ञेय बनाना सीखो कि देखो मेरे भावों की दशा क्या हो रही है? भीतर तो कोटि-कोटि लोकप्रमाण परिणाम कर लिये हैं, तब भी उनको ज्ञेय नहीं बनाया। अभी तो परिणामों के साथ बह गये। निज का विनाश मत करो। श्रद्धा में। छः द्रव्य के बिना कोई वस्तु नहीं है। मिथ्यात्व-सम्यक्त्व कह रहा है, वे ही तत्त्व मिथ्यादृष्टि के लिए विपरीत श्रद्धान में आ रहे हैं सो मिथ्यात्व और सम्यग्दृष्टि के लिए समीचीनभूत श्रद्धा में आ रहे हैं, इसलिए सम्यक्त्व है। सात तत्त्व, छः द्रव्य के बाहर जगत् में कोई द्रव्य-गुण वस्तु नाम का है ही नहीं। अपने पास जो आगम है वह केवली की वाणी है। केवली की वाणी है, इसी में विशाल व्याख्या है। छद्मस्थ कहाँ सुन पायेंगे इतना गहरा? नहीं सुन पायेंगे।

यह अहोभाग्य अपना है कि संसार की पर्यायों में प्रतीति तो हो गई, ऐसे क्षेत्र में पर्याय को प्राप्त हुआ हूँ जहाँ तत्त्व का सत्यार्थ बोध है। अपने आपको भाग्यवान धनवान नहीं मानना, क्योंकि विश्व में धनवानों की संख्या बहुत है। अपने आपको भाग्यवान मानना तो भगवान् की वाणी सुनने के भाव हो रहे हैं, इसलिए भाग्यवान मानना।

कभी भी खड़िया दीवार नहीं होती है। जो जिस विषय का छात्र होगा वह समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, तत्त्वार्थ सूत्र का पाँचवाँ अध्याय इनको जो सुनेगा वह अपने विषय को जान लेगा कि यह व्याख्यान की भाषा ही भिन्न-भिन्न है, व्याख्यान की वस्तु तो वही है। अपना सबसे बड़ा अहित कहाँ है? कि विदेशी भाषा को सुनकर आप उसे सबसे बड़ा विद्वान् मान रहे हो, यह अपने साथ सबसे बड़ी विडम्बना है।

अंग्रेजी भाषा, विदेशी भाषा को किसी का बेटा पढ़ लेता है तो पिता समझ लेता है कि मेरा बेटा विद्वान् हो गया। अरे! **बोली कोई ज्ञानीपना नहीं है। भाषा कोई ज्ञानीपना नहीं है। यदि ज्ञान है, तो वस्तु के स्वभाव के भीतर समझना इसका नाम ज्ञान है।** जैसे आप अंग्रेजी को महान् मानते हो, विश्वास रखो आप भी विदेश में जाकर हिन्दी बोलते हो तो उन्हें समझ में नहीं आयेगा। सर्वाधिक भाषी लोग हैं, उसका नाम भारत है।

जिसके संबंध से जीव जीता है, वह चेतना है। पुद्गल आदि तो पुद्गल से ही होते हैं और आत्मा

तो आत्मा से ही होता है। आत्मा परभूत नहीं है, जैसे पुद्गल परभूत नहीं है। आत्मा तो आत्मा को चेतता है, आत्मा तो आत्मा में ही चेतता है। आत्मा तो आत्मा के द्वारा ही चेतता है। अभेददृष्टि। व्यवहार से आत्मा पुद्गल को भी चेतता है, पुद्गल को भी जानता है, पुद्गल को भी समझता है; लेकिन जानने-समझने से आत्मा पुद्गलभूत नहीं होता है। ऐसा कहो कि आत्मा पुद्गलभूत होकर चेतता है, आत्मा पुद्गलरूप से चेतता है, आत्मा पुद्गल कर्म को चेतता है, आत्मा पुद्गल कर्म से चेतता है तो फिर आत्मा का उच्छेद हो जायेगा, आत्मा भी पौद्गलिक हो जायेगा। यह तो सिर्फ दृष्टान्त दिया था अब दृाष्टान्त का कथन कर रहे हैं। फिर तो यहाँ पर स्वद्रव्य का उच्छेद हो जायेगा। जिसको पुद्गल आदि परद्रव्य निमित्त है, ऐसा अपना ज्ञान-दर्शन जो गुण है, अपना ज्ञान-दर्शन तो अपने ही ज्ञान-दर्शन स्वभाव में परिणमन करता है। मेरा ज्ञान-दर्शन पौद्गलिक द्रव्यरूप परिणमन नहीं करता। ज्ञेय तो ज्ञेय है, ज्ञाता तो ज्ञाता है। ज्ञाता ज्ञेयों को जानता है, परन्तु निज ज्ञान से निजभूत ही जानता है, परज्ञेयभूत होकर निज ज्ञान से नहीं जानता यदि परज्ञेयभूत होकर ज्ञान से जानेगा तो जड़ ज्ञेयों को जानते समय ज्ञाता जड़ हो जायेगा।

दर्पण तो दर्पण है। मुकुर तो मुकुर है। दर्पण में मयूर झलक रहा है, परन्तु मयूर दर्पण नहीं है। दर्पण में मयूर नहीं है। यदि दर्पण में मयूर प्रवेश कर गया तो मयूर को जड़ होना पड़ेगा या दर्पण को चेतन होना पड़ेगा, जो कि सम्भव नहीं है। ऐसे-ही जितने जगत् में ज्ञेय हुए हैं वे मेरे ज्ञान का विषय अवश्य हैं, परन्तु मेरा ज्ञान ज्ञेयभूत परिणमन नहीं करता, ज्ञान तो ज्ञानभूत ही परिणमन करता है। दर्पण में जो मयूर का बिम्ब पड़ रहा है, वह मयूर प्रवेश कर गया क्या ? कि दर्पण के ही प्रदेश तद्रूप परिणत हुए? मयूर का किंचित् भी प्रवेश नहीं है। इस कैमरे में मेरा चेहरा चला गया तो वह चेतन हो जायेगा, फिर मेरा चेहरा अचेतन हो जायेगा, अथवा मैं उसमें चला ही गया तो मैं बचूँगा ही कहाँ ? फिर भी उसमें चेहरे का चित्र आ रहा है। अरे! चित्र आ रहा है तो वास्तव में मैं उसमें नहीं जा रहा हूँ। जो लैंस है, वह उन लेंसों का पौद्गलिक परिणमन अपने आप में चल रहा है। उसमें मेरा किंचित् मात्र भी प्रवेश नहीं है। अद्भुत है शुद्ध तत्त्व जिनागम का, रासायनिक तत्त्व चल रहा है। द्रव्य का द्रव्य में प्रवेश होने पर भी द्रव्य में प्रवेश नहीं होता है।

अज्ञानी कहता है कि मेरा ज्ञान-दर्शन परिणत हो रहा है। अरे! ज्ञान-दर्शन परिणत नहीं हो रहा है। ज्ञान-ज्ञान में ही परिणत हो रहा है। साँचे पर मिट्टी रखी हुई है। साँचे के आकार में मिट्टी परिणत हो रही है कि मिट्टी-मिट्टी में ही परिणत हो रही है? साँचे ने मिट्टी का परिणमन कराया या मिट्टी का परिणमन मिट्टी में ही हो रहा है? आकार किसने लिया, आकार किसमें हुआ? अज्ञानी कहेगा कि कुम्भकार ने आकार लिया, साँचे से आकार लिया, परन्तु ध्रुव सत्य है कि उपादान दृष्टि से देखोगे तन्मय दृष्टि से देखोगे तो मिट्टी में मिट्टी को ही आकार दिया है। इसलिए ध्यान दो, व्यवहार से कहा जाता है

कि पुद्गल को देखा, पुद्गल को चेता, पुद्गल से देखा। नहीं। परमार्थ से जीव को देख रहा है, जीव ही जीव से काम करा रहा है। जीव ही जीव को सचेत रहा है। यदि पुद्गल में मानोगे तो स्वद्रव्य का उच्छेद हो जायेगा। एक द्रव्य दूसरे में परिणत नहीं होता। पूर्व में ही निषेध कर दिया कि द्रव्य का उच्छेद नहीं होता है। इसलिए चेतना को ही चेतता है। जो-जो ज्ञान हो रहा है, निज ज्ञाता का ही ज्ञेय बनकर ज्ञान हो रहा है।

इन्द्रधनुष देखा है? होता क्या है?

एक पुरुष दिखाई दे रहा है, इसमें क्या हो गया? पुरुष तो दोनों नहीं हैं। अब समझो जैनदर्शन पढ़ने वाला क्या-क्या होता है? उसको भौतिक, प्रायोगिक सबकुछ आना चाहिए। होता तो सीधा है, दिखता उल्टा है, क्यों? जैसे विकरण की किरणें सूर्य का प्रकाश परपदार्थ पर आता है तो वह प्रकाश स्वयं में ही परिवर्तित होता है। काँच पर प्रकाश पड़ रहा है और उस पर किरणें आ रही हैं और अज्ञानी कह रहा है काँच में किरणें हैं, जबकि यह किरणें काँच की थीं या सूर्य की थीं? यह क्या हो रहा है ? यही तो परिणमन हो रहा है। ऐसे ही ज्ञानियो! अज्ञानी कहता है ज्ञेयों से ज्ञान होता है, परन्तु सत्यता यह है ज्ञेयों से ज्ञान नहीं हो रहा है। मेरा ही ज्ञान जब ज्ञेयों को देखता है तब विकरण रूप अवस्था होती है। लगता ऐसा है मुझे इस से ज्ञान हो रहा है, परन्तु ज्ञान मेरा ही होता है। मेरा ही ज्ञान मेरे को बताता है कि यह अमुक वस्तु है। यह मेरे ज्ञान में प्रवेश नहीं करता है। ज्ञेय में प्रवेश नहीं करता, ज्ञेय ज्ञान में झलकता है। वस्तुस्वभाव यह है।

दूसरे को नहीं चेतता, चेतन ही चेतता है। निश्चय से अन्य का चेतता नहीं है, किन्तु स्वभाव में ही अंशअंशी भाव है। यहाँ पर साध्य क्या है? तो जो प्रश्न किया था, वही प्रश्न दृष्टांत में कर रहे हैं। क्या स्वामी अंश अन्वय भाव है? तो फिर इससे व्यवहार को क्या मिलता है? इससे व्यवहार की क्या सिद्धि है ? व्यवहार में कुछ नहीं। ज्ञाता दृष्टा को देख रहा है, ज्ञाता ही ज्ञाता को जान रहा है। व्यवहार में कुछ नहीं है। अब कहना कि योगी निज में लीन होकर निज के दृष्टा को ही देखता है। निज के ज्ञाता को ही जानता है। तो ज्ञाता को ज्ञाता जाने, दृष्टा देखे, यही आत्मानुभूति है। निश्चय से।

यह 'समयसार' जी की चूलिका चल रही है। सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार चल रहा है। पूरे ग्रन्थ की चोटी का वर्णन चल रहा है यहाँ। इस प्रकार से खड़िया अपने श्वेत गुण से युक्त है। व्यवहार से कहा जाता है कि दीवार सफेद है, परन्तु श्वेत तो खड़िया है। होती है या नहीं होती है? उसकी मीमांसा करते हैं। यदि खड़िया होती है, जो होती है वही होती है। जैसे ज्ञान आत्मा में होता है, आत्मा नहीं होता है। उसी संबंध से जीव है। खड़िया दीवार आदि होती है तो ऐसा होने पर खड़िया के स्वद्रव्य का उच्छेद

हो जायेगा। ऐसा पूर्व में ही निषेध कर दिया है कि द्रव्य का उच्छेद नहीं होता है। यदि आप उच्छेद मानोगे तो द्रव्य का अभाव हो जायेगा। इसलिए खड़िया दीवार नहीं होती। यदि खड़िया दीवार नहीं होती तो खड़िया क्या होती है? खड़िया तो खड़िया ही होती है। किसी भी प्रकार से खड़िया खड़िया होती है क्या? अन्यरूप खड़िया नहीं होती है। सेटिका अपने स्वभाव में अन्वयभूत है। इससे अन्य स्वस्वामी अंशअंशी भाव से कोई सिद्धि होती है क्या? कोई सिद्धि नहीं होती है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र में वही-वही विषय बार-बार बता रहे हैं। इसलिए किसी प्रकार से भी खड़िया पररूप नहीं होती है। खड़िया तो खड़ियारूप ही होती है। ऐसा निश्चय से जानना चाहिए। अब यहाँ दृष्टांत का दृाष्टांत है चेतना, उसमें ज्ञान-दर्शन गुण होता है। दूसरे का त्याग करते हुए, परद्रव्य का अभाव आत्मा का स्वभाव है। उसको व्यवहार से छोड़करके, जो पुद्गल आदि द्रव्य उनको एक दूसरे में छोड़कर चेतना क्या होता नहीं, होता है, ऐसा प्रश्न किया? उन दोनों के कथन की यहाँ पर मीमांसा करते हैं। यदि चेतना पुद्गल होती, तब जो होती वैसी ही होती तो आत्मा-आत्मा ज्ञान रूप होती, उस सन्दर्भ में जीव और चेतना चेतना है। तो फिर पुद्गल ही हो जायेगा। ऐसा करने पर द्रव्य का उच्छेद हो जायेगा, जबकि पूर्व में निषेध कर दिया कि द्रव्य का उच्छेद नहीं होता है। इसलिए आत्मा पुद्गल आदि का चेतक नहीं है। यदि आत्मा पुद्गल आदि को चेतता नहीं है, तो कौन चेतता है ? चेतना ही चेतता अन्य किसी को नहीं चेतता है। स्वस्वामी अंशअंशी रूप है, इससे मेरे व्यवहार में क्या लाभ ? व्यवहार में कुछ लाभ नहीं है।

विद्वानों की गोष्ठी हुई, एक उच्च कोटि के विद्वान् बोल पड़े कि महाराज जी! आपके साथ युवाओं की टीम है, सब साधु व ब्रह्मचारी युवा हैं, इन लोगों से कुछ काम लो। मैं सुनता रहा। क्या काम लूँ? इनके चेहरे ऐसे लग रहे हैं कि यह कोई गरीब के लड़के तो नहीं और पढ़े-लिखे लोग हैं। आप सब इन सबको कम्प्यूटर दिला दो, इससे समाज का कुछ हित होगा, नहीं तो इतने सारे लोग हैं बिना काम हैं । मेरे समझ में आ गया सब विषय। कम्प्यूटर दे दो और जिनवाणी पर काम करें। पण्डित जैसे लोगों ने क्या किया महाराज हैं, उन को कोई काम तो रहता नहीं है, एक काम करो, तीर्थों का उद्धार, तीर्थों का निर्माण, तीर्थों का कल्याण, यह दुनियाँ के मंदिर धर्मशाला, सब इन्हीं को सौंप दो। आप सब फ्री हो, सो इन्हें काम सौंप दो, सो हम फ्री रहें। ज्ञानियो! यहाँ क्या कह रहे हैं। खड़िया खड़िया ही है, खड़िया दीवार नहीं है। यह मुनि का धर्म मुनि का धर्म ही है, श्रावक धर्म नहीं है। मुनि के धर्म में श्रावक के धर्म को मत सौंपो नहीं-तो मुनि के धर्म का लोप हो जायेगा। जैसे दीवार में खड़िया लगने से खड़िया द्रव्य का उच्छेद हो जायेगा ऐसे ही मुनि महाराज श्रावकों में लग गये, श्रावक भूत हो गये तो मुनि धर्म का उच्छेद हो जायेगा। इसलिए मुनि तो मुनि ही है, मुनीम नहीं है। इतनी देर से जो सुन रहे हो, उसका सार इतना है। श्रावको! तीर्थ उद्धार करो, आशीर्वाद है, लेकिन मैं तो मुनि हूँ और दिगम्बर मुनि को

विहार करते देखना चाहता हूँ। विहार ही करते रहें। किसी स्थान पर स्थापित होकर उनको किसी क्षेत्र का मुनीम बनते नहीं देखना चाहता हूँ। मुनि का धर्म विहार करना है। बनकर देखना चाहता हूँ। सार इतना है।

दीवार दीवार है, खड़िया खड़िया है। खड़िया दीवार नहीं है, दीवार खड़िया नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से स्पर्शित होने पर भी एक रूप नहीं होता है। नजदीक होने पर भी तद्रूप नहीं है। एक दूसरे में मिल जाने पर भी तद्रूप नहीं है। इस बात के लिये हम बार-बार समझा रहे हैं कि **आत्मद्रव्य किंचित् मात्र भी पर संबंधों से युक्त नहीं है। आत्मा और द्रव्य देह का संश्लेष संबंध होने पर भी आत्मा देहभूत नहीं होगी, देह आत्माभूत नहीं होगा। देह-देह है, आत्मा-आत्मा है। अज्ञानी जीव संश्लेष संबंध से युक्त शरीर को ही मात्र निज नहीं मानता है, अपितु जो शरीर से भी अत्यन्त भिन्न द्रव्य हैं, जिनका अत्यन्ताभाव है, ऐसे द्रव्यों में आत्मबुद्धि करके, राग और द्वेष दृष्टि करके बन्ध को प्राप्त हो रहा है, संश्लेषता को प्राप्त हो रहा है। किंचित् मात्र भी पर संबंध में विशुद्धि स्थान नहीं है। इस बात को हृदय पर लिख लेना।**

यह बात इस भव में न समझ में आये तो अगले भव में समझ लेना। यदि नरक में पहुँच जाओ तो वहाँ समझ लेना, स्वर्ग में पहुँच जाओ तो वहाँ समझ लेना; लेकिन जहाँ-जहाँ पर शोक करेगा, वहाँ नियम से तेरा सोच बिगड़ेगा।

ज्यादा पर की चिंता करेगा, नियम से तेरा चित्त विकृत होगा। **पंचपरमेष्ठी को छोड़कर जितना भी पर का चिन्तन है, सब अशुभ ही है। पंचपरमेष्ठी के ध्यान में लीन, यदि अहम् भाव नहीं है तो परमेष्ठी का भाव शुभ-भाव है।** अन्यथा यदि कोई जीव शास्त्र-स्वाध्याय करता है और शास्त्र स्वाध्याय के काल में भी ऐसा भाव प्रमेय आ रहा है कि मेरे से अच्छे कोई ग्रन्थ पढ़ नहीं सकता है, मेरे से अच्छे कोई समझा नहीं सकता है। ऐसा भाव आ रहा है कि इस विद्या का मैं ही मात्र ज्ञाता हूँ तो हे जीव! ये श्रुत संबंधी मान का आर्त्त-भाव आ गया। भैया! सामने वाले देख रहे थे कि कितने विद्वान् हैं, ये तो आचार्य, उपाध्याय, मुनि महाराज हैं। कितने ज्ञानी जीव हैं? ये लोग तो अपने से बहुत अच्छे भाव से उपदेश कर रहे हैं।

उपदेश सुनने वाले तो निर्जरा कर रहे हैं, उनके परिणाम विशुद्ध हो रहे हैं और वक्ता के मन में भाव आ गया अन्तरंग में, कि मेरे जैसा व्याख्यान करने वाला कोई दूसरा नहीं है। उस काल में, हे स्वामी! तुम तो सोच रहे थे, कि मेरा जैसा व्याख्यान कर्त्ता दूसरा नहीं है। व्याख्यान तेरी आत्मा का धर्म नहीं है। व्याख्याभूत परवस्तु तेरी आत्मा का धर्म नहीं है। व्याख्यान का चिन्तन कर रहा है, वह चिन्तन भी स्यात्

आत्मा का स्वभाव धर्म नहीं है। स्वभाव में ही विभाव है। **आत्मा का जो शुद्ध परिणमन है, वह तो चिन्तनातीत है, भावनातीत है, भावातीत है।** आपके चिन्तन में आ रहा था कि मैं स्वतंत्र हूँ, मैं सर्वधर्म हूँ। जो सर्वधर्म का भाव चल रहा था, जो ज्ञानीपने का भाव चल रहा था, ये ज्ञान भाव का मद था। इस मद में चिन्तन था। ज्ञान भाव में मद का चिन्तन, आर्त्तध्यान का बन्ध हो गया। सुननेवाले समझ जायेंगे कि इस जीव की सुगति होगी और सुनानेवाले को भाव से आर्त्तध्यान हो गया, तो ज्ञानी! जगत् का बन्ध भी हो सकता है।

इसी प्रकार से सुननेवाले के मन में भाव छिपा है कि अभी तक तो तुम मुझे अच्छा नहीं समझते थे, नहीं मानते थे, कम-से-कम अब मैं धर्मसभा में जाऊँगा, धर्म करूँगा, लोगों के साथ बैठूँगा, धार्मिक क्रियायें करूँगा, तो मेरी लोगों में पहचान होने लग जायेगी। मैं अब तो अच्छा कहलाने लगा हूँ। ऐसा भाव भी मन में आ रहा है, उस जीव के मद की पुष्टि का भाव होने से, उसके भी श्रुत संबंधी मद आ गया। उस मद के माध्यम से, धार्मिक क्रियाओं के अनुष्ठान करते हुये भी, उसके मद संबंधी कार्य भाव चल रहा था। अशुभ परिणाम चल रहा था। वह भी आर्त्तध्यान ही है।

मैं किसी को बता कर नहीं जाऊँगा, नहीं तो सब जायेंगे। मैं धर्म करूँगा, मैं ही साधना करूँगा, ऐसे भाव करके और धर्म में लगकरके वो जाप भी कर रहा है। मैं जिस गद्दी पर बैठा हूँ, वहाँ कोई नहीं आ पायेगा। मैं गुप्त रूप से ध्यान कर रहा हूँ। ऐसे निज के ध्यान के भाव में जो भाव चल रहा है कि देखो आज मुझे आनन्द आ गया, आज मैं अकेला आ गया, किसी को ले नहीं आया हूँ, अब तो मैं ऐसा ही करूँगा, किसी को लेकर आऊँगा ही नहीं। मैं ही साधना करके, सिद्धि को प्राप्त करूँगा। ऐसा मन में चल रहा है, मद भाव उठ रहा है। वह भी साधना का चोरी संबंधी आर्त्तध्यान चल रहा है, क्योंकि व्यवहार से छिपकर कर रहे हो।

साधना का मार्ग कोई विधाता का मार्ग नहीं है। ये तो धर्मप्रभावना का मार्ग है। इसे छिपाने की क्या आवश्यकता पड़ गई? लेकिन अहंकार में उसे भी छुपाकर रखा। ऐसे भाव जीव के आ जाते हैं, जो कि परभाव हैं। महाराज! मुझे कोई से कोई प्रयोजन नहीं है। अरे भाई! जब तुझे प्रयोजन है ही नहीं, तो ये बोल क्या रहा है? इसलिये तू बोल रहा है कि कोई से प्रयोजन नहीं है, तेरा मद बोल रहा है और जब तक मद भाव है, तब-तक अशुभ भाव है। **अशुभ भाव तो अशुभ बन्ध और दुर्गति का कारण है।** अब मालूम चला कि मैं तो धर्म करता था, दुर्गति कैसे?

जितने श्रेष्ठ लोक में पुज रहे हैं, ऐसे उच्च जाति के तिर्यञ्च हैं, हाथी, घोड़ा, गाय, बैल। यह कौन-

से जीव हैं? जो धर्मिक क्रियाओं में मायाचारी कर रहे थे, आर्त्तध्यान कर रहे थे। वे इतना तो पुण्य कमा कर लाये हैं कि तिर्यञ्च पर्याय में पूज्य तो हो गये हैं। ये छिपकर किये हुए धर्म का फल है।

नहीं तो आप देखो, एक बेचारा वो तिर्यञ्च है जिसकी पशु पर्याय होते हुए भी पकड़ा जा रहा है। जिसका जीवन ही इसलिए है। कहीं पक्षी पकड़ रहे हैं, तो कहीं पशु पकड़ रहे हैं और मनुष्य की तो क्या कहना? वो भी पकड़ रहा है। बेचारी मछली के साथ तो कोई भी नहीं है।

मायाचारी की सो बन्दरादि पर्याय में चले गये। जीव पर को देख रहा है कि अब कोई दोष करे तो मैं उसका प्रचार-प्रसार करूँ। बेटा! चिन्ता मत करो, तुम धर्म के क्षेत्र में जाओगे, बन्दर बन जाओगे, जो तुम ऐसे दोष बीनते थे, अब एक-दूसरे के जुआँ बीनकर खाओगे। समझ मैं आ रहा है न **भैया? ये बन्दर कोई दूसरे जीव नहीं हैं। इनने घोर मायाचारी की थी उस माया के प्रभाव से, दूसरे के दोष बीनते रहे, उनके प्रचार से ये बेचारे बन्दर हुए हैं और ये बन्दर बनकर जुआ बीन-बीनकर खा रहे हैं।**

शीघ्र ही भाव बिगाड़ लेता है जीव। कुछ नहीं है। जगत् के परिणमन को तुम परिणमा नहीं सकते हो। जगत् पर दृष्टिपात करो, स्वानुभूति पर लक्ष्यपात करो। निज के वैभव को देखने का प्रयास करो। अनन्त पर्यायें निकल चुकी हैं। वर्तमान की पर्याय को कम-से-कम इतना सम्हाल कर रखो कि अब मेरे आयुकर्म के जितने निषेक अवशेष हैं, इनको पर को न दूँ। रागी तो राग करेंगे ही। यदि आप दीक्षा लेने जाओ, अन्तिम समय में भी तुम चाहो कि मैं अब कल्याण कर लूँ, तब भी परिवार वाले नली लगवा देंगे, बाटल चढ़वा देंगे, तेरे धर्म को नष्ट कर देंगे। लेकिन इनके भाव नहीं बनेंगे कि महाराज जी के पास ले जाकर समाधि करवा दें। जब देखा कि अब कुछ बचा नहीं है, सुनने की शक्ति समाप्त हो गई, बस अन्तिम घड़ी बची है, फिर लेकर पहुँच जाओ, महाराज! समाधि करा दो। क्या समाधि करा दूँ?

भगवती आराधना में शिवकोटि आचार्य ने लिखा, हे जीव! तू रागियों के बीच में रहकर समाधि की भावना मत भा। अपनी शक्ति की सत्ता होने पर ही, पहले निर्णय कर लो, ये रागी तो कभी तुम्हारा हित नहीं चाहेंगे। अपने में जाग्रत होते-होते निर्णय कर लो। जैसे जब आप प्रौढ़ रहते हैं, शरीर में सामर्थ्य रहती है, तेरी जेब भरी रहती है तो जहाँ चाहो वहाँ दाम दे देते हो।

एक ही पर्याय में कितने रूप तुमने देखे ? पूछो तो इन माताओं से, एक समय रहता है कि माता-पिता इनके हाथ जोड़ते हैं। दान भी देता है तो माता-पिता से पूछेगा। अब बीच में एक समय आता है, अब मेरी जेब भरी है, जो चाहे कर लो और कुछ क्षण के बाद पुनः वो ही समय आ जाता है अब बेटा को देखना पड़ता है कि भैया मेरे दान देने के भाव आ रहे हैं। वो दुत्कार के बिठा देता है। बोलता है आपको घर नहीं दिखता? दान ही दान दिखता है। हम लोगों का भी तो सोचो। ऐसा बोल देता है बेटा।

मित्रो! अन्तिम श्वास के समय दान देने की मत सोचना। जो तुमको करना हो, अपनी उम्र के लिहाज से अपनी समता के काल में सबकुछ कर लो। सन्तान भी तुम्हारा साथ देगी, ये नियत नहीं है क्योंकि आपके वैराग्य का समय चल रहा है और उनका राग का समय चल रहा है।

उनका दोष नहीं है। उनको वर्तमान में अपना घर दिख रहा है और तुमको अपनी पर्याय जाते हुए दिख रही है। वो अपना घर देखेंगे और आपको अपना भव दिख रहा है। अब बताओ, संबंध दोनों का कैसा?

जो मैं बोल रहा हूँ, सुनाई पढ़ रहा है क्या? समझ में आ रहा है क्या? इस भ्रम को निकाल देना आज से कि मैं अन्तिम समय में दान करा दूँगा। जरूरी नहीं है कि दान भाव बनें। उसी समय बेटा ने डाँट दिया और परिणाम कहीं तुम्हारे खराब हो गये और अन्तिम श्वास कहीं तुम्हारी निकल गई तो दान के राग के कारण आर्त्तध्यान से तेरा कुमरण हो जायेगा।

मैं दान नहीं दे सका, ऐसा आर्त्तध्यान करके मरा, तो दुर्गति हो जायेगी। बार-बार क्यों कह रहे हैं समयसार जी में? कि ज्ञानी! अब तू धर्म का भी विकल्प मत कर। धर्म भी परिग्रह, अधर्म द्रव्य भी परिग्रह, काल द्रव्य परिग्रह, आकाश द्रव्य परिग्रह और जो सम्प्रदायभूत धर्म है, वो भी परिग्रह। मात्र धर्म है कोई तो स्वभावभूत धर्म ही धर्म है।

भैया! बहुत समय निकाल दिया, गम्भीर समय निकल गया। ज्ञानी! योगियों को बाह्य प्रपंचों से दूर रहने को क्यों बोल दिया ?

श्रावक को कथन किया है कि जिनालय में जिनेन्द्र की पूजा करो, निजप्रतिमा स्थापित करो। श्रावक को बार-बार कहा गया है। क्यों ? तुम घर के विकल्प को नहीं छोड़ पा रहे हो तो कम-से-कम जिन धर्म के विकल्प कर लो। यह शुभ विकल्प है। निर्ग्रन्थ से कह दिया है कि हे स्वामी! धन्य हो आपकी पर्याय को। आप घर का विकल्प छोड़कर के शांति के लिये निकल चुके हो। अब तुम जिन घर का भी विकल्प छोड़ दो। नहीं-तो तुम्हारे जिनधर्म में कुछ हो गया तो संक्लेषता बनेगी। जाओ, तुम बन में बैठो जहाँ कुछ भी न दिखे। प्रकृति को देखो, प्रगति में दिखो, प्रगति करो, प्रगति को छोड़ो और प्रगति का भी नाम छोड़ो। विषय की गम्भीरता में जाओ। जंगल में बैठ जाओ, आकाश में बैठ जाओ, पर्वत पर बैठ जाओ, सबसे ऊपर जा कर। गगन भी दिखेगा, अग्नि भी दिखेगी, सबकुछ दिखाई दे रहा है। आपको समझ में आ जायेगा कि न ऊपर मैं हूँ, न नीचे मैं हूँ। मैं तो अपने मध्य में हूँ। बस, अब ऊपर देखो, सफेद है। अज्ञानी सफेद दीवाल बोल रहे हैं और ज्ञानी खड़िया-खड़िया के ही मध्य में है। दीवाल खड़िया नहीं और खड़िया दीवाल नहीं है।

ऐसे ही मुमुक्षुओ! मेरा निज स्वरूप मैं ही हूँ मेरा निज स्वरूप परस्वरूप नहीं है और परस्वरूप

मेरा निज स्वरूप नहीं है। आनन्द में जीने की कला निर्ग्रन्थ को बताई गई है। पर दुनियाँ तो सोच में, शौक में सूख रही है। एक तुम ही ऐसे हो जो दुनियाँ के शौक के स्वप्न से भी तुम दूर हो। इसलिए दूर रहना चाहिये। देखो भाई! जहाँ कुछ करने का भाव किया और नहीं हो सका, तो हीन भावना और हो गयी। जब मैं करना ही नहीं चाहता हूँ तो न हीन भावना, न अहं भावना। बस मैं मध्य में हूँ। अब यहाँ पर व्यवहार व्याख्या को बोल रहे हैं। व्यवहार से कहा जाता है कि दीवाल सफेद है। परमार्थ यही कहेगा कि सफेदी सफेदी है, दीवाल दीवाल है।

अहो आश्चर्य! भाई! दीवाल तो तूने अपने हाथ से सफेद की है। चूना पोता है, अपने हाथ से पोता है। तुझे ये मालूम है कि मैंने ही पोता है। तब भी दीवाल सफेद है। क्या गहरा राग ? जबकि तूने स्वयं पेन्ट किया है, तूने चूना लगाया है अथवा सफेद सीमेन्ट लगवा दिया है। तूने स्वयं सफेदी की है, फिर भी क्या बोल रहा है कि दीवाल सफेद है। जब स्वयं के द्वारा की हुई दीवाल को सफेद बोल रहा है, फिर अनन्त काल से जो बन्ध आत्मा का है, जिन कर्मों को तू देख पा रहा है, उस को तू आत्मभूत मान रहा है, इसका क्या आशय है?

किसे ज्ञात नहीं है कि दीवाल सफेद है? लेकिन आज तक तुमने कहाँ स्वीकार किया कि दीवाल सफेद नहीं है। दाल नमकीन होती है क्या? लेकिन आपने इस को कहाँ माना है कि दाल नमकीन नहीं है? मालूम, जब इनकी माँ भोजन करने बिठालती है तो बोलता है नमकीन सेव लाओ। नमकीन सेव कहाँ बनते हैं? बाजार में बनते हैं। घर में नहीं बनते? बनते हैं। देखा बेसन को घोलकर के जाली में से निकाल दिया और नमक मिला दिया, तो क्या हो गया ? नमकीन सेव। सेव नमकीन हैं, कि नमक नमकीन है। नमक नमकीन है। वो बोल क्या रहा है ? नमकीन सेव। हे व्यवहार! तू झूठा ही है। पर तेरे बिना लोग जी नहीं पायेंगे। यदि सत्यार्थ जीवन जीना है तो सेव तो सेव है बेसन है, वो नमकीन नमकीन है। उस बेसन ने कब कहा कि मैं सेव हूँ? अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये, इन पुरुषों ने जड़ द्रव्यों को संज्ञा दे रखी है। उनने कब कहा कि मेरा नाम यह है?

अभी आप जिसे ठण्डा पानी कह रहे हो, गरम पानी कह रहे हो, क्या नाम है गरम पानी का ? कन्नड़ में 'विषनीर'। कन्नड़ गये आप, किसी ने कहा आप को विषनीर दे दो, तो तू क्या सोचेगा? अब मैं क्या करूँ ? ये विषनीर दे रहा है। नीर यानि पानी, विष यानि गरम। लेकिन विष का क्या अर्थ लगाते हो? जहर। ठीक है। ये संज्ञा किसने दी? पानी ने न अपने आपको गर्म संज्ञा दी है, न अपने आपको नीर संज्ञा दी है। पानी ने न वारि कहा अपने आपको, न विष कहा अपने आपको। भैया! पानी तो पानी है। वो तो अपने आप में 'जो है, सो है।' वह वस्तु का स्वभाव है। जो-जो कहा जा रहा है, वह आपके द्वारा प्ररूपित है, उपाधि दी गई है। लेकिन वास्तव में कोई वस्तु में कोई उपाधि नहीं है। पानी का नाम क्या है? पानी तो तुमने बोलना

शुरू कर दिया है। वह तो नीर बोल रहा है। वारि, नीर ये पर्यायवाची नाम किसने दिये ? पानी ने। लेकिन भैया! जो पर्यायवाची नाम हैं, वो अपने आप में उस द्रव्य ने रखे हैं क्या?

जो द्रव्य है, वह परिणमनशील है। द्रव्य जो है वह स्वभावभूत है, उसमें कोई नाम नहीं है। संज्ञा नहीं है। वह तो 'जो है, सो है'। जब पानी का कोई नाम नहीं, वो भी अपन लोगों ने दिया है। जब पानी-पानी नहीं है। ऐसे ही जो-जो जीव द्रव्य हैं जगत् के, जितने संबंध हैं, रिश्ते होते हैं वे सब पराधीन हैं। पर आत्म द्रव्य का जो स्वभाव है 'जो है, सो है' बेचारा नहीं समझ पा रहा है, इसलिए उलझा हुआ है।

वह कह रहा है मेरा बेटा, मेरी पत्नी, मेरी दुकान, मेरा मकान। लेकिन उन लोगों ने कभी तुझे अपना नहीं माना है। पर तेरा राग उसे अपना मनवा रहा है। मानते रहो। खेद से मुक्त होना चाहते हो न? भैया! तेरे घर में कुछ अच्छा हो रहा है तो यहाँ मुस्कुराता है और तेरे घर में कुछ बुरा हो जाये तो यहाँ रोता है। भैया! बराबर है कि नहीं? मेरे मित्र! ऐसा सब क्यों हो रहा है? क्योंकि आप परद्रव्य को यहाँ पर लिये बैठे हुए हो, द्रव्यों का भाव छोड़कर बैठते तो वहाँ क्या हो रहा है ? जिस नगर में तुम्हारा वास नहीं है। जिस देश में तुम्हारा वास नहीं है, उस देश में बहुत सारी घटनायें घटती रहती हैं। न हर्ष है, न विषाद है।

किसी का अंश मात्र दुःख भी विषाद का कारण नहीं है। किसी की प्रसन्नता भी तुम्हारी प्रसन्नता का कारण नहीं है। ज्ञानी! अनन्त द्वीप व समुद्र हैं, जिनालयों की दृष्टि से और जितने तुमने खोज रखे हैं, वे तो बहुत कम हैं। ये जितने तुमने खोज रखे हैं, उन्हीं की बात कर लो। उन द्वीप-समुद्रों में कितने हँस रहे होंगे, कितने रो रहे होंगे? पर जहाँ तेरा राग लगा हुआ है, वहाँ कुछ होता है तो तुरन्त समाचार लिखता है।

नगर-नगर के राग का भी प्रत्याख्यान करना होगा, तभी तुम अपने साधुस्वभाव में जी पाओगे। भैया! सम्मेदशिखर की कितनी वन्दना कर लीं? दस वन्दना कर लीं। सम्मेदशिखर में अच्छा लगा कि नहीं लगा? हृदय से बोल रहा है कि कण्ठ से बोल रहा है? भैया! जब सम्मेदशिखर इतना बढ़िया था। तो तू फिर क्यों आ गया? बेटे का राग था। 'जो है, सो है।'

भैया! सुखी होना चाहते हो तो जिन-जिन से राग है, उन्हें छोड़ दो। दूसरे की चिन्ता मत करो। भगवान् महावीर स्वामी भी सिद्धालय से आयें तो तुम्हारे लिए सुखी नहीं करा पायेंगे और वे आयेंगे नहीं और तुम सुखी बन ही नहीं पाओगे। सुखी होना चाहते हो तो एक ही उपाय है। जिसे अपने मान बैठे हो, उस मान्यता को हटाइये। जिसने ये स्वीकार कर लिया कि मेरा संस्थान ही नहीं है कहीं, मैं तो स्वस्थान में हूँ। जो स्वस्थान में होता है, वही सुखी होता है। जो परस्थान में होता है वह दुःखी ही होता

है। व्यवहार से देखो। किराये वाला आदमी अच्छे से रहे, लेकिन उसको टेंशन रहती है कि किराये का मकान है। श्रमण कैसे रहते हैं? हमको मालूम था, छोड़कर जाना पड़ेगा। व्यवहार से आप निजी मकान खरीदने लग जाओ तो क्या टेंशन? कहते हो कि स्वस्थान में हूँ।

जब ईंट-चूने के व्यवहार मकान को अपना मान लेते हो, तो प्रसन्न होते हो। तो ज्ञानी! जो स्वस्थान में होता है, वही सुखी होता है। ईंट-चूने के मकान तो पर हैं और यह देह भी पर है। मात्र आत्मा में आत्मा को भ्रमण कराके रखता है, वही स्वस्थान है। उसमें जो रहता है, वही सुखी है।

वे ही दिगम्बर मुनि दिगम्बरत्व की अनुभूति ले पायेंगे जो स्व-स्थान में हैं और जो परस्थान में हैं, वे दिगम्बरत्व की अनुभूति से भिन्न हो गये हैं। वस्तुस्वभाव में यहाँ दूसरों को मत लाना। भैया! स्वस्थान ही सुख है।

देखो, जो सामने द्रव्य था, हमारे आचार्य वही दृष्टांत लिखते थे। उस समय खड़िया मिट्टी ही चलती थी। जो खड़िया है श्वेत गुण के निर्मल स्वभाव से स्वयं कुण्ड आदि पर द्रव्य स्वभाव से व्यवहार से दीवाल को श्वेत कहा जाता है, परन्तु वास्तव में सफेद क्या है? खड़िया। खड़िया अपने ही द्रव्य में परिणमन कर रही है। दीवाल में परिणमन कर रही है क्या? नहीं कर रही है। दीवाल और खड़िया में कभी आत्मस्वभाव रूप परिणमन नहीं होता है। दीवाल का परिणमन दीवालभूत है, खड़िया का परिणमन खड़ियाभूत है। ऐसे ही **ज्ञानियो! आत्मा का परिणमन आत्म भूत है, देह का परिणमन देहभूत है।**

व्यवहार से कहा जाता है कि ये जीव गोरा है, ये जीव काला है। हे जीव! तूने जाना ही नहीं है कि जीव क्या है? जो न गोरा, न काला, उसका नाम जीव है। गोरा-कालादि रंग होना ये स्थिति भी शरीराश्रित है। आत्मा न गोरी है, न काली है, न लाल है, न पीली है। वह तो 'जो है, सो है।'

कुछ लोग तो कहते हैं कि 'साँवलिया पार्श्वनाथ' को ही देखते रहो, तुम पार्श्वनाथ के गुणों को तो नहीं देख पा रहे हो। किसी को साँवलिया दिखते हैं किसी को गोरे दिखते हैं। इनमें तुमने भगवान् को नहीं देखा। उनकी पर्यायों को देखा, गुणों को नहीं देख सका। राग होता है तो कहता है चन्दाप्रभू का अर्घ्य चढ़ाने से काम नहीं चलेगा। अलग से कहता है कि तिजारा के चन्दाप्रभु स्वामी अर्घ्यं निर्वपामीति, तो कचनेर के पार्श्वनाथ स्वामी अर्घ्यं निर्वपामीति, भातकुली के आदिनाथ, पद्मपुरी के पद्मप्रभूस्वामी, चाँदनपुर के महावीर। ज्ञानी! तूने इतना समय लगा दिया, इतने शब्द अलग से जोड़ दिये, तू भगवान् महावीर को मात्र देखता तो तुझे महावीर स्वामी दिखते। कम-से-कम एक ही पर्याय तो दिखती।

पैठण के मुनिसुव्रत स्वामी की जय हो। पूछा क्यों ? शनि ग्रह हट जायेगा। आजकल पुजारी कहता है यात्रियों से कि तुम तो पैसा लिखवा दो, हम तुम्हारे नाम का द्रव्य चढ़ा देंगे भगवान् को। एक पुजारी था बुन्देलखण्ड का, एक यात्री आया वो भी बुन्देलखण्ड का। अब देखो दोनों फँस गये बुन्देलखण्डी। अब वह क्या बोल रहा था ? तुम एक काम करो, इतने रुपया दे जाओ, तुम्हारे सब शनि ठीक हो जायेंगे। शनिवार की अमावस्या पड़ने वाली है, मैं आपके नाम का द्रव्य भगवान् को चढ़ा दूँगा। सब उतर जायेगा। जब वह मेरे पास आया एक घण्टे बाद, मैंने पूछा-क्यों मुमुक्षु! क्या कर रहा था? अरे महाराज! आपको पता तो है, सब करना पड़ता है पेट के लिये। नहीं-तो भूखे मर जायें। अब सोचो, मैंने कहा कि तू तो यहाँ पंचामृत अभिषेक करा रहा था? अरे महाराज! जब अपने गाँव जायेंगे, सो नहीं करायेंगे। ये पंचम काल है, आदमी को श्री दिखती है।

माना कि वो जीव भक्ति कर रहा था, आराधना कर रहा था, पर उसके लक्ष्य में क्या था? जैसे जगत् में 'पण्डापन' रहता है, वही तो लक्ष्य था। लोग कहते हैं कि मैं इतना दान दे देता हूँ, तुम मेरे नाम की पूजा करा देना। ये पूजा फलित कब होगी ?

एक श्रावक अपनी पत्नी के साथ गोम्मटेश पहुँचा। उसे मालूम नहीं था कि यहाँ विशुद्धसागर महाराज बैठे हैं, भगवान् के पास दर्शन कर रहे हैं। वो आया। अपनी पत्नी को लेकर। बड़ा लोटा लेकर। एक लोटा अपनी पत्नी को पकड़ाया और एक स्वयं लिये था। मालूम क्या हुआ ? जब अपने गाँव में था मेरे से प्रश्न किया 'महाराज! ऐसा होना चाहिए, ऐसा होना चाहिए।' मैंने कहा ठीक। भैया! जब उसने लोटा ढारा, मैं शांत बैठा रहा, कि ढारले तू । गोम्मटेश बाहुबली के चरणों पर अभिषेक कर रहा था। जैसे ही पत्नी ने ढारा, मैंने कहा, भैया! क्या हो रहा है ये? बोले, 'महाराज!' मैंने कहा-अब क्या महाराज? तुम तो तेरापंथी हो, ये कर क्या रहे हो? स्त्री से अभिषेक करवा रहे हो? अरे महाराज! कर लेने दो। अपने देश में नहीं होते, यहाँ हो जाने दो। जीव सब समझता है। किसी ने कर लिया तो अशुभभाषा बोलता है कि नरक जाओगे, वस्तुव्यवस्था समझो। तटस्थ होना सीखो। पूजा-पद्धति में तो मौन रहना सीखो। जिस प्रांत की, जिस देश की जैसी व्यवस्था है, वैसा ही करना। ओऽम्शान्ति।

भगवान् की भक्ति क्यों करते हैं ? शुभ भावों के लिये फिर भी तुम मंदिर में लड़ने लग गये, तुम्हारी भक्ति गई, कषाय आ गई। कुण्ड्यादि जो श्वेत वर्ण है वह कुण्ड्यादि रूप से आत्मरूप परिणमत नहीं होगा, लेकिन व्यवहार से उसको आत्मभूत कहा जाता है कि दीवाल सफेद है।

''**कुंड्यादि परद्रव्यं श्वेतगुण निर्भर स्वभावं**'' आत्मा श्वेत गुण पर्याय से युक्त परिणाम से उपजती हुई, अपने स्वभाव से सफेद करती है। कैसा है परद्रव्य? जिसको सेटिका निमित्त है। व्यवहार

से ऐसा कहा जाता है कि दीवाल सफेद है। किसके निमित्त से? खड़िया के निमित्त से।

उसी प्रकार से '**चेतयितात्र ज्ञानगुण निर्भर स्वभावं।**' ज्ञान गुण किसका है? देह कि आत्मा का? ज्ञानगुण जो आत्मा का स्वभाव है, ऐसे ज्ञानगुण के स्वभाव से युक्त होता हुआ ''**पुद्गलादि परद्रव्यस्वभावेनापरिणममानः पुद्गलादि परद्रव्यं चात्म स्वभावेना परिणमयन्**'' जो पौद्गलिक द्रव्य हैं, उनमें मेरा अपरिणमन है, उनमें मेरा परिणमन नहीं है। ''**पुद्गलादि परद्रव्यं**'' जो पुद्गलादि द्रव्य हैं ये भी अपने स्वभाव में आत्मभूत परिणमन कर लेंगे। जीवद्रव्य से आत्मभूत नहीं हैं। जो आत्मद्रव्य के स्वभाव से अपरिणमनशील है।

''**पुद्गलादि परद्रव्य निमित्तकेना**'' पुद्गलादि परद्रव्यों के निमित्त से, ''**आत्मनोज्ञान गुण निर्भर स्वभावस्य परिणामेनोत्पद्यमानः**'' आत्मा के ज्ञानगुण निर्भर स्वभाव से परिणाम से उत्पन्न हुआ ''**पुद्गलादि परद्रव्यं चेतयितृनिमित्तकेनात्मनः स्वभावस्य**'' ऐसा पुद्गलादि परद्रव्य को चेतता है, ऐसा वहाँ निमित्त का व्यवहार किया जाता है।

अहो! मैंने जाना, किससे? आपने हाथ से जाना, टटोल कर देखा। पर वास्तव में हाथ ने कुछ नहीं देखा, कुछ नहीं जाना। जो आत्मा है, उस आत्मा ने काययोग के माध्यम से वेदन किया है। वास्तव में यदि हाथ वेदता है तो मुर्दे को भी वेदना चाहिए। फिर भी ऐसा व्यवहार नहीं मानेंगे तो अज्ञानी किसी भी जीव को फुसला लेंगे। कहेंगे आत्मा तो भिन्न है, ये जीव भिन्न है। **ज्ञानी! जब-तक बन्ध दशा है, संसार दशा है, तब-तक देह में जीवद्रव्य है। तब उसे जीव स्वीकारना व्यवहार से भी आवश्यक है। नहीं तो अहिंसा द्रव्य का लोप हो जायेगा।** पर जब तुम स्वभाव में जाओगे और तुम मुनिराज बनकर बैठोगे, तुम्हारे ऊपर किसी ने वार कर दिया, आक्रमण कर दिया, उपसर्ग कर दिया, तब ज्ञानी! सोचना कि देह भिन्न है, चेतन भिन्न है। जिस पर वार हुआ है, वह मैं नहीं हूँ।

जो-जो मृत्यु हो रही है, वह मैं नहीं हूँ, इसलिए भय किस बात का ? और जो व्याधि हो रही है, वो देह में हो रही है, इसलिये व्यथा किस बात की? ये निज स्वरूप के चिन्तन के लिये है, परघात के लिये नहीं है। नहीं तो फिर पानी छानने की क्या आवश्यकता? जीव बच जाये, ये भाव करने की क्या आवश्यकता?

परमार्थ को परमार्थ दृष्टि से समझो और व्यवहार को व्यवहार दृष्टि से समझो। स्वभाव में रहता हुआ, स्वभाव से जानता है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। वास्तव में यह जीव तो निज ज्ञान से, निज ज्ञान को ही जानता है। ऐसा कहा जाता है ? ''**किञ्च**'' और भी, ''**यथा च सैव सेटिका**'' जैसे खड़िया ''श्वेत गुण निर्भर'' श्वेत गुण से युक्त ''**स्वभावेन स्वयं**'' से स्वयं में ''**कुड्यादि परद्रव्य**

स्वभावेना परिणमयन्'' दीवालादि पर द्रव्य स्वभाव से अपरिणामी है।

यदि ज्ञाता निज ज्ञान को निज में ही भ्रमण कराये तो जो आनन्द निज ज्ञेय में है वो पर ज्ञेय में नहीं है। जीव! परज्ञेयों में भ्रमण कराते हुये अपनी ज्ञानधारा को विचलित कर रहा है। जो अशुभ हो रहा है, जो-जो अशुभ किया है, जो-जो अशुभ होगा, वह निज ज्ञान का भ्रमण परज्ञेयों में है।

तेरे चित्त में, चिन्तन में, निज ज्ञान का पर ज्ञेयों में भ्रमण है। निज ज्ञान को परज्ञेयों में इतना प्रवेश करा चुका है कि तुझे अपने ज्ञाता ज्ञेय पर लक्ष्यपात ही नहीं है। **देह भ्रमण से तो एक दिन में कितना घूम पायेगा? पैरों के भ्रमण से कितनी भूमि को पार कर पायेगा? पर ज्ञान के भ्रमण में मुहूर्त में सारे विश्व को पार कर लिया।**

देह का भ्रमण मात्र बाहर का, बाहर में भ्रमण कर रहा है। पर तेरे ज्ञान का भ्रमण पर ज्ञेयों के अन्दर में प्रवेश कर रहा है। ऐसे ही अज्ञानीजीव की दशा है? समझो ध्यान से। ज्ञेय का भ्रमण नहीं है, ज्ञान का भ्रमण है। यदि देह से तुमने भ्रमण किया तो जो जीवित होंगे, वे ही करेंगे। देह से तुमने भ्रमण किया, किसी से मिलने चला गया तो जीव उनसे ही मिलेगा। पर तेरे ज्ञान ने उनसे भी मिल लिया जो जा चुका है।

उपहार में मिला क्या? मात्र बन्ध ही मिला। भैया! चाहे तुमने परमात्मा को ज्ञेय बनाया हो, चाहे पापात्मा को ज्ञेय बनाया हो। परमात्मा को ज्ञेय बनाया है तो शुभ मिला और ज्ञानी! पापात्मा को ज्ञेय बनाया तो अशुभ बन्ध मिला पर, पर को ज्ञेय बनाने में बन्ध ही होगा। यही समयसार है।

ये निर्बन्ध स्वभाव पर लक्ष्य जाता है, बन्ध पर कोई ध्यान नहीं। परमात्मा से मिलेगा, पंचपरमेष्ठी से मिलेगा, उनको ज्ञेय बनायेगा, तब भी शुभ का बन्ध होगा। पाँच पापों को ज्ञेय बनायेगा, तब बन्ध होगा अशुभ का। जो जीव निज में निज को ज्ञेय बनाकर रखेगा तो न बन्ध है शुभ का, न बन्ध है अशुभ का। शुद्ध दशा की प्राप्ति का ही उपाय है। ये ज्ञान में भ्रमण चल रहा है। देह को बाँधकर रख सकते हो, पैरों को बाँधकर रख लिया, नियम लेकर बैठ गये, दिग्व्रत कर लिया देशव्रत कर लिया कि मैं भारत की सीमा के बाहर नहीं जाऊँगा, मैं इस कक्ष से बाहर नहीं जाऊँगा। ये तेरे तन को नहीं ले जाने का प्रमाण हो गया, लेकिन जो ज्ञान ज्ञेय बना रहा है सारे विश्व को, उस बन्ध को कौन रोकेगा? ज्ञेय का बन्ध इस जीव ने देह से नहीं किया, **जितना बन्ध इस जीव ने काययोग से नहीं किया, उतना बन्ध वचन योग से भी नहीं किया। उतना बन्ध जीव ने ज्ञान के भ्रमण से किया है।**

कितने लोगों को ज्ञेय बना लेते हो ? पर की अशुभ पर जाति को तुमने ज्ञेय बनाया और ज्ञेय बनाकर उसको हेय कह रहा था। हे जीव! यह क्या है? क्या करूँ? लोक अन्ध है, उसे नहीं है ज्ञात

कि मेरा प्रकाश भी है। ज्ञान के मद में आकरके, ज्ञान के राग में डूब गया और कहता है कि मैं ये नहीं कहूँगा तो लोग कैसे सुधारेंगे? मैं नहीं बताऊँगा तो लोग कैसे जानेंगे? अरे अज्ञानी! तू क्या जान रहा है? जाननहार को जान नहीं रहा है और दुनियाँ के अशुभ को जान कर बैठा है। दुनियाँ के अशुभ भावों की पर्याय को, गुण पर्याय को, द्रव्य पर्याय को अशुभ-अशुभ ही जानता है।

क्षणमात्र में स्खलित हो जाता है जीव। निज ज्ञानभाव का आनन्द चखा ही नहीं है। बार-बार परज्ञेयों में प्रवेश हो रहा है। परज्ञेय शुभभाव नहीं, परज्ञेय पर के अशुभ भाव ही हैं। भूतार्थ मोक्षमार्गी को न पर के अशुभ भावों को देख पाने के लिए समय है, न पर के शुभ भावों को देख पाने के लिए समय है। जब तू भोजन करने बैठता है, हे ज्ञानी! उस समय पर की थाली में क्या-क्या पकवान हैं, ये नहीं देखना। जब भी तू ग्रास मुख में रखता है तो सिर नीचे करके अपनी थाली का भोजन करता है। क्या पर की थाली को देखने से तुझे स्वाद आयेगा? क्या पर की थाली देखने से तेरा पेट भी भरेगा? अरे अभागे! जब तू स्वयं स्वाद लेता है, जिस ग्रास को तू मुख में रखे है, उसका स्वाद लेते समय थाली के ग्रासों को ध्यान में नहीं लाता है।

जब पर की थाली का द्रव्य आपकी उदरपूर्ति का साधन नहीं है, आपकी रसना को स्वाद देने वाला नहीं है, तो फिर पर व्यक्ति के पुण्य-पाप को ज्ञेय बना कर तुझे मिलने वाला क्या है? बहुत बड़ी तपस्या है कि कक्ष में तपस्वियों के बीच में बैठकरके, उसके सभी भावों को और प्रवृत्तियों को निहारते हुये भी अपनी निज की प्रवृत्ति को सँभालकर रख पाना। बहुत बड़ी साधना है। एक ही कक्ष में अनेक लोगों के साथ बैठकर विभिन्न चेहरे देखकर, विभिन्न भावों को संचय करके, भावों को ज्ञेय न बनाते हुये मात्र अपने ज्ञाताभाव को ज्ञेय बनाकर रखना, यही समयसार की साधना है।

चाहे वन हो, चाहे उपवन हो, भवन हो, जितने महान्-महान् योगी हुये हैं, उन सबने पर को ज्ञेय नहीं बनाया। जब तक समयसार जैसे अलौकिक ग्रन्थ को नहीं समझ पा रहे हो, विश्वास रखो बहुत बड़ी अनुभूति से अनभिज्ञ होकरके पर्याय को पूर्ण कर लोगे। बड़ा पुण्य चाहिए, बड़ा पुरुषार्थ चाहिए नहीं-तो बुद्धि के अभाव में शुष्क विषय रहेगा। सबके मस्तिष्क में प्रवेश नहीं करता। पर्याय बुद्धियाँ, पराई बुद्धियाँ जहाँ सताती हैं वहाँ तत्त्व का निर्णय होता नहीं।

पर्याय बुद्धि और पर बुद्धि, ये दोनों ही आत्मतत्त्व में प्रवेश नहीं करने देती हैं भैया! यहाँ कहना चाहिए कि प्रज्ञाशील पुरुष, प्रतिभाशील पुरुष, होशियार पुरुष, ज्ञानी पुरुष, जो संसार के व्यापार को नहीं चला पा रहा है, वो आत्म व्यापार को क्या चला पायेगा? मोक्षमार्ग में हर किसी को आने की आवश्यकता नहीं है। जब बुद्धि नहीं चलती, व्यापार करते नहीं बनता, तो चलो, जीवन जियेंगे अपना साधुसंघ में

जाकरके, ऐसा विचार दुःखद है।

तुम साधुसंघ में आकर, श्रावकों की रोटी तो खाओगे, लेकिन साधुस्वभाव के प्रति बुद्धि नहीं लेजा सकोगे। पर्यायातीत होने में प्रज्ञा का पुरुषार्थ होता है, इसलिये किंचित् भी विकल्प मत लाना, कि ये बुद्धिविहीन होकरके साधु जीवन जी सकते हैं।

बुद्धिविहीन तत्त्व का निर्णय नहीं कर सकता। तीक्ष्ण प्रज्ञा चाहिए। निज के ज्ञान को निज के ज्ञेय में लवलीन करने की सामर्थ जिसके है, वही ज्ञानी कल्याण कर सकेगा। निज को निज के ज्ञेय में भ्रमण करायेगा, रमण करायेगा, स्थिर करेगा, वो ही ज्ञानी निर्वाणलक्ष्मी को प्राप्त कर सकेगा। परमेष्ठी भूतज्ञेय को जब-तक तू निहारता रहेगा तब-तक स्वर्ग का ही वेदन कर पायेगा परमेष्ठीभूत ज्ञेयों को जब-तक निहारेगा, तब-तक यह जीव तू स्वयं का ही बन्ध कर सकेगा, पर सिद्धत्व की सिद्धि चाहिए तो परमेष्ठी को भी ज्ञान से बाहर करना पड़ेगा। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये परमेष्ठीभूत जो ज्ञेय हैं, इन्हें अपने से भिन्न करके जानना चाहते हो तो अपने आपको निर्ग्रन्थ मुनि बनाना ही पड़ेगा।

ज्ञानी! अपने आपको परमेष्ठीभूत ज्ञेयों से भी भिन्न करना चाहते हो, तो सम्यक् की सत्ता के काल में निर्णय करके बैठना ही पड़ेगा। परमेष्ठीभूत ज्ञेयों से निज की रक्षा करना चाहता है, तो उस जीव से कहना कि पहले पाँच पापों से अपनी रक्षा कर। **जो पाँच पापों से अपनी रक्षा नहीं कर पा रहा है, वह परमेष्ठी से रक्षा करने में लग गया, तो अधोलोक का ही पात्र है।**

मेरा निज ज्ञाता का ज्ञेयपना ही साधना है। मेरे ज्ञाता का ज्ञेयपना ही साध्य है। ये साध्य-साधन की जो व्याख्या है, पर साध्य पर साधना कभी होती नहीं। पर साधुपन से पर साध्य होते तो श्री रामचन्द्र को लोगों ने कितना समझाया कि संस्कार तो अवश्य होंगे। इस जीव के प्राण जा चुके हैं। किस जीव के समझाने पर समझ में आया? जब निज का साधन निर्मल होता है तब साध्य सिद्ध होता है। इनमें शंका नहीं करना। पर के कोटि-कोटि जीव उपदेश अपनी बुद्धि से सुनते हैं, पर कौन मुनि बनते हैं। ये क्यों नहीं बना? ये तो बहुत छोटी उम्र में प्रवचन करना सीख गया। कितने विद्वानों के प्रवचन सुने इस जीव ने, लेकिन ये जीव फिर भी साधु नहीं बन पाया। कितना बैरागी जीव है? अभी वैराग्य शून्य हो गया है।

पर के साध्य ने कुछ किया? निज का भीतर का साधन पवित्र नहीं था उतना, जितना मुनि बनने के लिये होना चाहिए था। जो ध्रुव दृष्टि है उस दृष्टि पर दृष्टिपात करो। **पर का उपदेश तभी कार्यकारी होता है, जब भीतर का साधन पवित्र होता है।** एक शिल्पी घड़ी को सुधारने बैठ जाता है उसके

कलपुर्जों को सुधारते समय, तब तक उसकी चिमटियाँ काम की हैं, हाथ काम के हैं, बुद्धि काम की है। जब-तक उतनी ही खराबी आयी हो जिसको सुधारा जा सकता है। जो पूर्ण नष्ट हो चुका हो, उसके लिये कोई शिल्पकार/ कारीगर की बुद्धि काम नहीं आयेगी।

तभी तक यंत्र-तंत्र काम में आयेंगे, मंत्र काम में आयेंगे, जब-तक श्वास है, आयुकर्म शेष है। यदि आयुकर्म शेष नहीं है तो कितनी ही तुम दवा दो मुर्दे को, उसमें श्वास आने वाली नहीं है। कहाँ गये डॉक्टर? एक मुर्दे को हिलाते हैं, उसको बार-बार प्रेशर देते हैं। ताकि श्वास आ जाये। अरे! कब आये? कैसे आये? जब प्राण ही निकल चुके हैं, अब उसको हिला-हिलाकर कहाँ से श्वास दिलायेगा? ऐसे-ही **ज्ञानियो! बहिरंग साधन तभी साध्यभूत फलित होते हैं जब अंतरंग की भावशुद्धि साधन बन रही होगी, तब तेरे बहिरंग परमेष्ठी साधन विशुद्धि के साधन बन सकते हैं। जिसकी भाव विशुद्धि किंचित् मात्र भी बची नहीं है, उसके पंचपरमेष्ठी के साधन विशुद्धि के साधन नहीं हैं।**

गुरु का उपदेश उसे ही सुहाता है जिसके भाव विशुद्ध हैं। गुरु-आज्ञा भी उसके अन्दर प्रवेश करती है जो आज्ञा पालन करने का इच्छुक है। जो गुरु-आज्ञा पालन का इच्छुक ही नहीं है, उसे गुरु देकर स्वयं पागल क्यों बनें? माना कि अपन ने निर्णय कर लिया कि मुझे करना ही है और अब फिर जैसा गुरु कहें। अब जब तुमने निर्णय कर लिया था, कि करना ही नहीं है तो फिर गुरु क्या कहें? गुरु पागल हैं जो तुझे आज्ञा दें।

मोक्षमार्ग का उपदेश मात्र उन्हीं के लिए है, जो मोक्षमार्ग पर चलने की योग्यता रखते हैं। तत्त्व का उपदेश उन्हीं के लिए है, जो तत्त्व प्राप्ति का लक्ष्य बनाये हैं।

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण

जो भव्य अपना कल्याण करना चाहता है तो उपदेश है। जो कल्याण नहीं करना चाहता है, उसके लिये उपदेश नहीं है। जीवन जी लो अपना जैसे जीना चाहो। केवल जैनदर्शन है जिसमें तत्त्व की व्याख्या है, वह जगत् में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। पर उपादान को स्थान ही नहीं है बहिरंग साधन निमित्तभूत है, पर कार्यभूत नहीं है। कार्यभूत निमित्तभूत नहीं होता है, कार्यभूत उपादानभूत होता है।

कार्यभूत निमित्त फलित नहीं होता है। उपादान फलित होता है। उपादान जिसका विगलित हो चुका है, उसके पवित्र निमित्त भी उसको ठीक नहीं कर सकते। मारीचि के लिये भगवान् ऋषभदेव का निमित्त कार्यकारी क्यों नहीं हुआ? जब तक संसार की स्थिति ठीक है, तब तक तीर्थंकर का निमित्त फलित हो रहा है। उसी जीव को सिंह की पर्याय में दो मुनिराज का निमित्त कैसे फलीभूत हो गया?

निमित्त तो मिला, निमित्तकार नहीं मिला। **उपादान की योग्यता पर ही निमित्त कार्यकारी फलित होता है। जब उपादान तुम्हारा प्रज्जवलित होता है, तब पवित्र निमित्त होते हैं।** मैं आपको समझाऊँगा तो आपको बुरा लगेगा, इसलिए आप मौन हो जाओ। एक बार समझाया, समझ में नहीं आ रहा है, ये जीव का कार्यकारण पवित्र नहीं दिख रहा है। इसको समझाना भी हितकारी नहीं होगा, अहितकारी हो जायेगा।

भाई तेरे घर में घृत की वृद्धि हो जाये, उसे बर्बाद मत करना, नहीं-तो तू कहे कि मेरे घर में तो घृत है। कमजोर हो और पीलिया रोग हो गया है, बुखार चढ़ा हुआ है, ऐसे आदमी को घी पिला करके तू बर्बाद नहीं कर रहा है। आचार्यभगवन् पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है -

दुरर्ज्येनासुरक्ष्येण नश्वरेण धनादिना ।
स्वस्थंमन्योजनः कोऽपि ज्वरवानिव सर्पिषा।।इष्ट.।।

जो धन बड़ी कठिनाई से अर्जित किया हो '**सुरक्ष्येण**' असुरक्षित हो '**नश्वरेण**' जो नाशबन्त है '**धना दिना**' ऐसे धन को रखकरके '**स्वस्थंमन्योजनः**' जो मनुष्य स्वस्थ होना चाहता है, उसे ऐसा ही मानकर चलना कि '**ज्वरवानिव सर्पिषाः**' वह घी को पीकर स्वस्थ होना चाहता है। कुछ अज्ञानी होते हैं, 'अरे! हम तो बीमार हैं ही। कुछ खायेंगे-पीयेंगे नहीं, तो ताकत कैसे आयेगी?' ये वैद्यों की नहीं मानेगा, अपनी बुद्धि लगायेगा।

अपनी बुद्धि कहाँ लगा रहा है? कि खाऊँगा-पिऊँगा नहीं तो स्वस्थ कैसे होऊँगा? अरे भाई! तू खाकरके ही तो बीमार हुआ है। ज्वर रोग से पीड़ित पुरुष जैसे स्वस्थ नहीं हो सकता घी के पीने से, ऐसे-ही मुमुक्षुओ! जिस जीव की होनहार खोटी है, उसको रत्नत्रय का उपदेश देकरके अपने उपदेश को व्यर्थ में मत फैलाओ। जिस जीव की होनहार खोटी है, उसका चेहरा देखकरके समझ में आना चाहिए कि बुद्धि का मारीचि है।

चेहरा देखकर समझना चाहिए कि बुद्धि का भाव कैसा है? एक बार में मानने वाला है कि नहीं है। मानने वाला है तो उसको जोर देकर कहोगे वो मान लेगा और जो मानने वाला नहीं है उसके लिये बैठो, 'ओऽम् शान्ति', बैठो शांति से। जो नहीं मानने वाले हैं, किसी भी काल में नहीं मानने वाले हैं। इस काल में तो क्या? ज्ञानी! कौन से काल को मानने वाले हो? जो मानने वाले हैं, वे ही मानने वाले हैं, बाकी के नहीं।

आपने मारीचि को तो पढ़ा है आगम में। इस काल में तो क्या? किसी भी काल में नहीं मानने वाले हैं। जो मानते हैं, वे मानने वाले ही मानने वाले होते हैं। जो नहीं मानने वाले हैं वे सब यहाँ ही, इस काल में आ जाते हैं। आपने मारीचि को तो सुना है। उस समय पंचम काल तो था नहीं। वो कहाँ मानने वाला था?

कहाँ माना? और जब मानने का समय आया तो सिंह की पर्याय में मान लिया। जब लगता है कि ये जीव मानने वाला नहीं है, तो न उसके परिणाम खराब करो, न अपने परिणाम खराब करो।

ये घरों में जो रोगी पड़े हैं, मालूम क्यों पड़े हैं? मानने वाले होते नहीं हैं और मनवाने वाले हो जाते हैं, सो उसका भी दिमाग खराब कर रहे हैं, अपना भी दिमाग खराब कर रहे हैं और समय भी बर्बाद कर रहे हैं। जो नहीं मानने वाले हैं, वहाँ मध्यस्थ हो जाओ। जब तेरी बुद्धि ठीक हो जाये तब मान लेना, जाओ। जब तीन काल में ठीक नहीं हो पाया, तो चतुर्थ काल में ठीक हो गया। तीर्थंकरों के मानने से ठीक नहीं हुआ, तो मुनि महाराजों के मानने से ठीक हो गया मारीचि का जीव।

हर्षग्रहण और आक्रोश, इन ही पर व्यक्ति ने नियन्त्रण कर लिया तो साधुजीवन जी सकेगा, अन्यथा साधुभेष में मर जायेगा। नोट करलेना अपनी डायरियों पर। हठाग्रह, आक्रोश परिणाम इन दो को नहीं सम्हाल पाया, तो साधुभेष में मर जायेगा, पर साधुस्वभाव की अनुभूति नहीं ले पायेगा। साधुस्वभाव की अनुभूति के लिये सरल होना पड़ता है। ठण्डे होने पर स्वाद बदल जाता है। कलाकन्द जानते हो? कलाकन्द कैसे बनता है ? खोवे से बनता है। चासनी में खोवा मिलने से बनता है। कलाकन्द और पेड़े में क्या अन्तर? जो स्वाद कलाकन्द में होता है, वह पेड़े में नहीं होता। समझ में आया? उसका नाम कलाकन्द है।

जब वह चासनी में घुल रहा था मावा और गर्म है। उस समय का स्वाद भिन्न होगा और वही कलाकन्द जब थाली में डाल दोगी और ठण्डा होने पर उसका स्वाद भिन्न होगा। आपको जब संसार की अनुभूति का पता नहीं है तो आत्मा की अनुभूति का क्या पता करेंगे ? जो कलाकन्द होता है गर्म होने पर उसका स्वाद भिन्न होता है और ठण्डा होने पर स्वाद भिन्न होता है। मधुरता बढ़ जाती है। ऐसे-ही ज्ञानियो! जब तेरे भावों का वैषम्य होता है, अशान्त परिणाम होते हैं, उस समय की अनुभूति भिन्न होती है। वही जीव, अपने भावों को ठण्डा कर लेता है तो उसकी अनुभूति बदल जाती है, भाव बदल जाते हैं कि अरे मैं कहाँ सोच रहा था ?

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।'

कभी-कभी जीव को अपने ही परिणाम पर दुःख होता है। जगत् में ऐसे कितने जीव हैं? ये ध्रुव सत्य है कि पर के परिणामों से कोई हँसा भी नहीं आज तक। ये स्थूल व्यवहार में बोल देते हो कि इनके होने से ऐसा, इनके न होने से ऐसा। ये सब व्यर्थ की बातें हैं।

तू रोया भी है तो अपने भीतर, स्वयं के भावों में दुःख प्रकट हुआ है तब रोया है और मुस्कुराया भी है, तो तेरे निज के भीतर के भावों में जो आनन्द आया उससे हँसा है। तू कह रहा है कि

'विशुद्धसागरजी' आ गये सो आनन्द आ गया। अगर उनके आने से तुझे आनन्द आता होता, तो जितने लोग जगत् में हैं उन सभी को देखकर आनन्द आना चाहिए था। कुछ लोगों को तो ऐसा लगता है कि कहाँ से, कैसे आ गये?

ऐसे भी लोग होंगे जो ये सोच सकते हैं कि ये जीव न होता, तो मेरा राज्य चलता। तो ध्यान दो, मेरे होने से न तेरा दुःख है न सुख है। तेरी परिणति अशुभ हो रही है, सो तू मुझे दुःखरूप में देख रहा है। तेरी परिणति अच्छी हो रही है, सो तू मुझे सुखरूप देख रहा है। मैं तो वही हूँ 'जो हूँ, सो हूँ'।

मैं पर के लिये दुःखभूत नहीं हूँ, सुखभूत भी नहीं हूँ। भ्रम को निकाल दो। ये तेरी बुद्धि का ही चमत्कार है कि तू दुःखभूत मानता है। मैं तो अपने में ही दुःखरूप नहीं हूँ तो तेरे में कहाँ से हो गया? मुमुक्षु! मैं अपने में ही दुःखभूत नहीं हूँ, सुखभूत नहीं हूँ। मेरी पर्याय चल रही है, वह सापेक्ष है। मेरे में संसार की सुखानुभूति चल रही है, वो भी कर्मभूत है, कर्म सापेक्ष है। मेरी जो निज की अनुभूति है, वह तो 'चैतन्य-चैतन्य' मात्र है। भैया! सहज सुन रहे हो, इसलिये सामान्य बात सामान्य नहीं है। पकड़ो। मैं तो चिद्चिद् बोधि हूँ। मैं तो मेरे में सुखभूत नहीं हूँ, दुःखभूत भी नहीं हूँ। मेरे भीतर की अनुभूति की सुखानुभूति मेरी है। वो भी कर्मसापेक्षता के राग-द्वेष के कारण हो रही है। रागद्वेष आत्मा का ध्रुव स्वभाव नहीं है। इसलिए यहाँ कलश में आचार्यभगवन् इस बात को कह रहे हैं-

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पित मतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो-
नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित्।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः
किं द्रव्यांतरचुंबना कुलधियस्तत्त्वाच्च्यवंते जनाः॥ 215 अ.अ.क.॥

अमृतचन्द्र स्वामी जी कह रहे हैं- हे सुधी! हे धीमान! धैर्य का प्रयोग किंचित् भी कर ले तो श्री से, स्त्री से दूर हो जायेगा। धी का प्रयोग किया है, इसलिए स्त्री श्री रति में धी जागी है। पर-ज्ञेयों को निज ज्ञान में देखना, उसको भगवान् कह कर के ज्ञानी, शुद्ध हूँ, स्थिर हूँ, ऐसा कहना क्या पर्याय है। ज्ञानी विषय की गम्भीरता को देखने पर ऐसा ही हुआ है। जब अनुभूति का काल आया होगा, तब इस तन में एक जीव होगा। अनुभूति को तन में खोकर, ज्ञान में चले गये।

कितने सिद्धों की आत्मायें, जब वह निर्वाण को प्राप्त कर रहे थे, हमारे आत्मप्रदेशों से स्पर्शित हो चुकी हैं, लेकिन कभी अनुभूति नहीं आयी। कितने केवलियों के समवसरण बन चुके और गंधकुटी में पहुँच चुके होंगे, लेकिन नहीं समझ पाये, कहते हैं, जब-जब तुझे सुनने का समय आया था, तब-तब दूसरे के साथ राग में लीन था। नियोग संयोग मेरे सुन्दर, पर नहीं बन पाया स्वभाव सुन्दर। सुनकर

के भाव बन गया होता तो न सुन्दर बनने की आवश्यकता थी और न ही सुन्दर संयोग की आवश्यकता थी।

नियोग मेरे सुन्दर, संयोग मेरे सुन्दर, पर नहीं मिला स्वभाव मेरा सुंदर। जितने रिश्ते टूटते हैं, वे स्वभाव की खिन्नता से टूटते हैं। जितनी मित्रता भंग होती है, वो स्वभाव की असमता से होती है। नियोग भी हो गया था, संयोग भी हो गया था और जैसे ही दोनों बातें हुई, पता चला भैया! इनसे दूर रहो।

चाहे शब्द व्यवहार में देख लो, चाहे परमार्थ में देख लो। ज्ञानी! नियोग मिला सुन्दर, संयोग मिला सुन्दर, स्वभाव भी मिला सुन्दर, ओहो! क्या गहरा सूत्र है? यदि स्वभाव सुन्दर नहीं मिला तो हर व्यक्ति में असुन्दरता दिखाई देगी। आपके घर में कुटुम्ब में, परिवार में ऐसे भी तो लोग होंगे जिनकी किसी से बनती ही नहीं है। बनती नहीं है सो तकलीफ और कोई इसे स्वीकार लेता है तो दुःखी। फिर कहता है देखो मुझे स्वीकारता ही नहीं। स्वीकारते कैसे? नियोग सुन्दर है, संयोग सुन्दर है, पर तेरा स्वभाव ही ऐसा है। कुछ लोग प्रसन्न होना चाहते हैं, लेकिन प्रसन्न नहीं हो पाते हैं। दूसरे की बात यदि हमको सहन नहीं होती है तो हमको कहने की ताकत भी नहीं रखना चाहिए। विचार ही नहीं लाना चाहिए। जो मुझे पसन्द नहीं, वह दूसरों को भी पसन्द नहीं है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए। गोंद ही गोंद पर चिपकती है। अब आप लोग नहीं जानते हो तो आओ मेरे साथ।

भैया! अज्ञानी कह रहा है कि कागज चिपक गये गोंद से। पर भैया! सत्य बताना, कागज कहाँ चिपके हैं गोंद से? गोंद ही गोंद में चिपकी हुई है। कागज तो फँसे हुये हैं बीच में। कागज के दो टुकड़े आपने गोंद से चिपका दिये और कह रहा है कि गोंद से चिपक गये कागज। पर सत्यार्थ क्या है? गोंद ही गोंद में चिपकी है, कोई कागज नहीं चिपके। राग ही राग में चिपका है, कोई किसी में नहीं चिपका।

व्यवहार से दिखता है कि कागज ही कागज से चिपका है। ये पागलपन की भाषा तुम बोलो। जिसे तुम जानते थे, आँखों से देखते हो, उसे क्या जानना ? जिसे नहीं जान पाया, उसे जानिये। ऐसे तो कोटि-कोटि ज्ञानीजीव हैं जो गोंद से कागज चिपकाये हुये बैठे हैं। उन्हें इसका विवेक ही नहीं है। ज्ञानी ज्ञानगुण से जानता है कि वास्तव में गोंद ही गोंद से चिपकी हुई है, कागज तो बीच में रखे हुये हैं। भीतर जाकर देखो।

तू कपड़ों में है, कि कपड़े तेरे में हैं? हे ज्ञानी! न तू कपड़े में है, न कपड़े तेरे में हैं। कपड़े तेरे पर हैं और देह कपड़ों से अच्छादित है। तू तो तू ही है। जो है, सो है।

तू कपड़ों में नहीं, कपड़े तेरे में नहीं, पर कपड़ों के राग में तू अवश्य है। इसलिए ध्यान दो, कागज तो कागज है, गोंद तो गोंद है। कागज का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य गोंदरूप में नहीं चल रहा है। जो लोक

की आँखें देख रही हैं, उसे जगत् देखता है और जिसे लोक की आँखें नहीं देख पातीं, उसे गूढ़ विद्याओं से देखता है। यही अध्यात्म है।

जो संसार देख रहा है, उसे तुम देखने जाओगे, तो क्या प्राप्त कर सकोगे? किसके लिये तुम मुनिराज बने हो? जो लोक देख रहा है, वही सत्य था, तो तुमने बहुत बड़ी भूल की है। जो आनन्द तुम्हारी दृष्टि में है, इन्द्रिय सुख में है, वो आनन्द यहाँ तुमको कहाँ मिल रहा है? मुमुक्षु! आप मुनि बने क्यों ? क्या तुमको विशुद्धसागर के पास रहने का राग है, पिच्छी-कमण्डलु का राग है? क्या नंगे होने में आनन्द आ रहा था? अब बताओ, आप मुनि बने क्यों हो ? क्या श्रावकों के यहाँ का भोजन अच्छा लगता था इसलिए? जो-जो दिख रहा है, संसार में यह सब दिख रहा है, इस सबके लिये मुनि बने हो क्या? जो दिख रहा है, उसी को देखने के लिये मुनि बने हो क्या? नहीं, अचाक्षुष को देखने के लिये।

मेरे मित्र! जो आपको दिख रहा है, इसके अलावा भी कुछ है, उसको देखने के लिये ही मुनि बने हो। वह क्या है? गोंद से कागज चिपका है, यह तो देख रहा है। गोंद ही गोंद में चिपकी है, इसे जो देख रहा है, वह ज्ञानी है। कर्मों से आत्मा बंधी हुई है। कर्म आत्मा पहने हुए है, यह तो दुनियाँ देख रही है। कर्म तो कर्म है, इनसे भिन्न आत्मा है, इसे देखने के लिये जो बना है, उसका नाम मुनि है।

जिस जीव ने शुद्ध द्रव्य की निरूपणा में 'धी' यानी बुद्धि लगाई है। उसके अन्दर अनुभूति आती है। जिस जीव ने अपनी बुद्धि शुद्ध द्रव्य में लगाई है, उसको तो तत्त्व समझ में आता है, उसको तत्त्व अनुभूति में आता है। एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का किंचित् मात्र भी प्रकाशवान नहीं होता है। प्रत्येक द्रव्य में ही प्रकाशवान है। प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव में ही परिणमनशील है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में किंचित् भी परिणमन नहीं करता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में किंचित् भी प्रवेश नहीं करता तथा प्रभावित भी नहीं करता।

कैसा प्रभावित पर भूत, उपादानभूत प्रभावित नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परभूत हो ही नहीं सकता है। घृत को दुग्ध में डालने के बाद भी जब तू पीयेगा, तो घृत का स्वाद घृत-भूत ही रहता है और दुग्ध का स्वाद दुग्ध भूत ही रहता है।

स्निग्धपना अलग झलकता है और दुग्ध का स्वाद अलग झलकता है। ऐसा ही होता है। नहीं होता क्या? दुग्धमयी घृत है, घृतमयी दुग्ध है, लेकिन घृत तो घृत है और दुग्ध तो दुग्ध है। ऐसे ही मुमुक्षुओ! संसारी आत्मा, संसार की आत्मा, कर्म सहित आत्मा, ये सब शब्द सम हैं, लेकिन कहीं भी आत्मा कर्म नहीं हो सकती और कर्म आत्मा नहीं हो सकता।

यदि कर्म आत्मा हो गये, आत्मा कर्म हो गयी तो मित्रो! संकर नाम का दोष आ जायेगा और जड़ द्रव्य चैतन्य हो जायेगा और चैतन्य वस्तु जड़ हो जायेगी। इसलिए ''**ज्ञानं ज्ञेयवैति**'' हे पुरुष! निज ज्ञान को ही ज्ञेय बना। जो ज्ञान को ज्ञेय बनाता है, ''**तदयम् शुद्ध स्वभावोदयः**'' उसी को शुद्ध स्वभाव का उदय होता है। शुद्ध स्वभाव का उदय क्या होता है? तथा ज्ञान अन्य ज्ञेय पदार्थों को जानता है सो यह ज्ञानके शुद्ध स्वभाव का उदय है। ये लोक हैं वे अन्य द्रव्य के ग्रहण में आकुलित हुए शुद्धस्वरूप से क्यों चिगते हैं?

ज्ञान परज्ञेय में सिद्ध होते नहीं, परज्ञेयों में ज्ञान होता नहीं, पर ज्ञान ज्ञेय में दिख रहे हैं, ये ज्ञान का शुद्ध उदय है। ये हाथ है भैया! ये हाथ कैमरा में आ गया क्या? यदि मेरा हाथ आ गया, तो हाथ यहाँ होना ही नहीं चाहिये, क्योंकि ये तो कैमरे में ही पहुँच गया।

हे मुमुक्षु! मेरा हाथ कैमरे में नहीं गया, ये कैमरे के लैंस के शुद्ध प्रकाश के शुद्धपने का प्रभाव है। दर्पण की स्वच्छता का प्रभाव है कि उसमें मेरा हाथ झलक रहा है, लेकिन हाथ उसमें गया नहीं है। यदि हाथ चला जाता तो मैं हाथ रहित हो जाता। ऐसे-ही मुमुक्षु! ज्ञान की निर्मलता का प्रभाव है उसमें ज्ञेय झलकते हैं, पर ज्ञान में ज्ञेय जाते नहीं। इसको समझो, ज्ञान तो ज्ञान ही होता है, ज्ञेय तो ज्ञेय ही होता है। ज्ञान की स्वच्छता का उदय है। व्यवहार से कहा जा रहा है कि ज्ञान में ज्ञेय झलक रहा है। वास्तव में ज्ञान तो ज्ञान ही होता है।

ये जो विषय चल रहा है शुद्ध द्रव्यानुयोग का, शुद्ध ज्ञान-ज्ञेय भाव चल रहा है। यह ''सर्व विशुद्धज्ञानाधिकार'' की व्याख्या है।

अब क्या कहें भैया! दुग्ध से ही घृत निकलता है, लेकिन फिर भी दुग्ध घृत होता ही नहीं। दुग्ध में घृतपना जो है, शक्तिरूप से, पर घृत में दुग्धपना लेशमात्र भी नहीं है। अशुद्धता में शुद्धता की शक्ति है, पर शुद्धता में अशुद्धता की कोई शक्ति नहीं है। ये भाग्य है भैया कि अपन लोग सुनते आ रहे हैं, नहीं तो सुनने को नहीं मिलता ये। शुद्धता में जीवद्रव्य की विशेषता है। पुद्गल की शुद्धता में अशुद्धता शक्ति रूप है। एक परमाणु एक समय में स्निग्ध हो जाता है, लेकिन एक शुद्धात्मा पुनः अशुद्धात्मा नहीं होती है। जिससे शुद्धता प्रकट होती है, उसे ही पकड़ना चाहिए। पर जब नहीं पकड़ पाता है, तो वह पर में जाता है। यही सत्य है।

घृत में किंचित् भी दुग्ध भाव नहीं है, पर दुग्ध में तो घृतपना है द्रव्य पर्याय दृष्टि से, लेकिन घृत के अन्दर दुग्ध कब प्रकट होगा? अब तो ज्यों-का-त्यों कहो, घुमाने की कोई बात नहीं है। घृत में दुग्धपना है द्रव्य दृष्टि रूप से, कि व्यक्त रूप से?

ज्ञानियो! ध्यान दो। जैसे घृत में अन्दर की न शक्ति है न अभिव्यक्ति है, ऐसे-ही शुद्ध आत्मा में संसार पर्याय की न शक्ति है न अभिव्यक्ति है, इसमें कोई शंका नहीं है। शुद्ध जीवद्रव्य में संसार पर्याय की न शक्ति है, न अभिव्यक्ति है। किस-किस भाव का प्रभाव होता है और किसका अभाव होता है।

जैसे औपशमिक और भव्यत्व भाव का तो अभाव हो गया, ऐसे-ही दुग्धपने का अभाव तो हो गया घृत में, लेकिन जीवत्व भाव, जो अशुद्ध जीवत्व भाव है, उसका तो अभाव हो गया, पर शुद्ध जीवत्व भाव केवल सम्यक्त्व ज्ञान ये सब कुछ तो रहेंगे कि नहीं रहेंगे?

अब प्रश्न है केवल का क्षायिकोपशमिक ज्ञान अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, इनके अन्दर का क्षयोपशम हो भी सकता है। क्षायिक भाव में , केवलज्ञान में मति-श्रुतज्ञान की सत्ता है, शक्ति है। ये घुमाने का प्रश्न नहीं है। मति-श्रुतज्ञान केवलज्ञान में है। क्षायिक ज्ञान अशुद्ध ज्ञान, केवलज्ञान में है। क्षायिक ज्ञान में अशुद्ध ज्ञान, शुद्ध ज्ञान है। केवलज्ञान में सबकुछ है। देखो भाई! बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा। जो तुम लोग कह रहे हो वो ही है। ये ऐसा मत कहो, कि भैया ये अपनी ससुराल गये, इनकी सास बड़ी समझदार थी, बोली, लो बेटा! बिनौला लेजाओ। जितनी पोशाकें होती हैं, इसी के अन्दर सब हैं। लेकिन पर्याय की दृष्टि से बोलो, क्या उसमें पोशाक है? क्या नहीं है? ऐसे-ही कैवल्य में न मति है, न श्रुत है, न अवधि है, न मनःपर्यय ज्ञान है। शुद्ध गुण में तो अशुद्ध गुण होता ही नहीं है। शुद्ध पर्याय तो अशुद्ध पर्याय होती ही नहीं है। शुद्ध द्रव्य में अशुद्ध द्रव्य होता ही नहीं है। आप क्या बोल रहे हो? उनके ज्ञान में सब झलकता है। शुद्ध-अशुद्ध ज्ञानी! वो ज्ञेय रूप है, मैं ज्ञाता के स्वभाव की बात कर रहा हूँ। उनके ज्ञेय की बात नहीं कर रहा हूँ। इसलिए हे ज्ञानी! अशुद्ध पर्याय शुद्ध पर्याय में किंचित् मात्र भी होती नहीं है। एक द्रव्य की दो पर्यायें युगपत होती ही नहीं हैं। चाहे वह जीव हो, चाहे पुद्गल हो। यदि युगपत मान लोगे तो संसार में जितने जीव हैं सब भ्रमित लोग हैं जो अपने आपको वर्तमान में शुद्ध मान रहे हैं।

अशुद्ध पर्याय में शुद्ध द्रव्य की सत्ता तो है, परन्तु शुद्ध द्रव्य में, पर्याय में, शुद्ध गुण में अशुद्ध की शक्ति नहीं है, पर सत्ता है। यदि आप लगाना चाहो तो भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा से वे तद्रूप हैं, लेकिन वर्तमान की अपेक्षा से नहीं हैं। उसी समय शुद्ध-शुद्ध ही है। कब? जो सिद्धालय में विराजे सिद्ध भगवान् हैं, मैं उनकी बात कर रहा हूँ। संसार की दृष्टि से, बन्ध दृष्टि से जब व्याख्या करेंगे तब कहना कि एक समय में शुद्ध भी है, अशुद्ध भी है। संसार दृष्टि से वो कैसे? उसको भी समझो। जो भ्रम है, उसको भी समझो।

ज्ञानी! मिश्री को दूध में मिला दिया जाये, मिश्री दूध में घुल चुकी है, बताओ मीठा कौन है? दूध मीठा है कि नहीं? माँ ने आज तक तुझे फीका दूध दिया है कि मीठा दूध दिया है? फिर भी ज्ञानी। मिश्री

मीठी थी, दूध तो फीका ही था। घुले होने के कारण, सोपादिक दशा में, उतने भीतर नहीं जा पा रहा है। द्रव्य दृष्टि से देखते हैं तो दूध मीठा भी है और फीका भी है। इस दृष्टि से आत्मा में कर्म अनादि से हैं। **यद्यपि आत्मा में कर्म अनादि से भरे हैं, फिर भी आत्मा कर्मभूत हुई ही नहीं है और कर्म आत्माभूत हुये नहीं हैं।** इस दृष्टि से आत्मा त्रैकालिक शुद्ध आत्मा होती है और कर्म कर्मभूत है। जैसे मिश्री के दूध में मिलने से दूध मीठा होता है, वैसे ही इस आत्मा में कर्म होने से आत्मा भी अशुद्ध आत्मा होती है। यहाँ शक्ति और सत्ता दोनों को ग्रहण कर रहे हैं, पर भिन्न-भिन्न बात होती है तो उस समय भिन्न शुद्धात्मा में भिन्न अशुद्धपना होता ही नहीं। हाँ, ऐसा कभी नहीं होता है कि कुछ शुद्ध-अशुद्ध रह जाये और कुछ शुद्ध-शुद्ध हो जाये । ज्ञानी! ये कच्चा आम नहीं है कि बीच-बीच में पक गया, पाल में डालकर और कुछ कच्चा रह गया कुछ पक गया। इसको कहना चाहते हैं तो कह लो भावमोक्ष।

भावमोक्ष की अपेक्षा अरहन्त जो हैं वो अर्धपक्व हैं। आम तो पाल में पकता है, पहले आधा पकता है फिर धीरे-धीरे पकता चला जाता है। ऐसी ही अरहन्त अवस्था में आधे कर्मों का अभाव हो गया है। घातिया कर्म चले गये, अघातिया अब शेष हैं। जो पकनापना है, भावमोक्ष की अपेक्षा से। लेकिन जिस दिन द्रव्यमोक्ष होगा उस दिन कच्चा-पक्कापना नहीं चलेगा, वहाँ तो पक्का-ही-पक्का होगा। संसार अपेक्षा से भावमोक्ष की अपेक्षा से अरहन्त भगवान् के स्यात् मोक्ष, स्यात् अमोक्ष। अरहन्त के अलावा किसी को नहीं बोलना। कभी नहीं बोलना। जब तक चार घातिया कर्मों का नाश नहीं होता, तब-तक नहीं बोलना।

पारिणामिक भाव का क्या होगा? पारिणामिक भाव का यही होगा पारिणामिक भाव के दो भेद करना होंगे।

(1) शुद्ध पारिणामिक भाव, (2) अशुद्ध पारिणामिक भाव।

जो शुद्ध पारिणामिक भाव है, परम पारिणामिक भाव है, वह सर्वज्ञ सिद्धात्मा सिद्धालय में विराजे हैं। अशुद्ध पारिणामिक भाव जो है वह मति-श्रुत ज्ञान से युक्त होकर परिणमन चल रहा है। संसार दशा अशुद्ध पारिणामिक भाव है।

ज्ञानी! ध्यान रखना, मस्तिष्क में, प्रज्ञा में, तत्त्व प्रवेश न करे, तब तक श्रद्धान करके रखना, कहीं विपरीत श्रद्धान रखके न बैठ जाना। उस समय यहाँ गुरु काम में आते हैं। ढाई द्वीप के लोग कथन कर रहे हैं कुछ तो आगम से गुरु परम्परा से जाना, उन पर तो श्रद्धान करना। नहीं प्रवेश कर रहा हो मस्तिष्क में तो कोई टेंशन मत लेना, लेकिन तब तक श्रद्धा बनाके रखना, जब तक गुरु कहें वो सत्य है। जब पुनः तुम्हारी प्रज्ञा बने, पुनः चिन्तन करना, लेकिन चिन्तन आगम का ही करना, अनागम का नहीं करना।

जो अभी यहाँ व्याख्यान चल रहा है वह ध्रुव सत्य व्याख्यान चल रहा है।

शुद्ध द्रव्य की उत्पत्ति में अशुद्धता का प्रवेश होता ही नहीं है। यदि आप अशुद्धता का प्रवेश मानते हो तो शुद्ध उसको मानना पड़ेगा, जब-जब होती धर्म की हानि, अशुभ बढ़ेंगे, तो ऊपर से परमात्मा लौटकर आयेगा।

जब शुद्ध को अशुद्ध मानते ही नहीं हैं, इसलिए तो नहीं लौटते और कहीं तुम अशुद्धता मानोगे तो तुम्हें लौटना भी पड़ेगा।

कालेकल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात्त्रिलोक सम्भ्रांति करणपटुः ।।133।। र.श्रा.।

जिसके मस्तिष्क में समंतभद्र स्वामी के सूत्र गूँज रहे हों, तब भी तुम प्रश्न कर रहे हो। हाँ, यह तो विषय को माँजने के लिये प्रश्न कर रहे हो।

अन्य दर्शनों की मान्यता है कि सौ कल्प बीतने पर परमात्मा पुनः वापिस आ जाते हैं। शिवालय से वापिस आ जाते हैं। जिन दर्शनों की ये मान्यता थी, उनको निसहाय करने के लिए समन्तभद्र स्वामी ने ये कहा है। "**शिवानां न विक्रिया**" शिवगति को प्राप्त हुआ यह जीव पुनः विक्रिया के विकारों को प्राप्त नहीं होता है। तीनों लोकों में कितना ही क्लेश क्यों न फैल जाये, परमात्मा वापिस नहीं आयेंगे।

हे भगवान्! जो ज्ञान अन्य ज्ञेय पदार्थों को जानता है ऐसा ज्ञान शुद्ध स्वभाव से क्यों चिगते हैं?

हे जीव! सब जीव, क्या पर के रूप ही होता है? क्या निज ज्ञेय में ही रमण करता है? परभूत होता नहीं है। जो ज्ञान ज्ञेय को जानता है वह तो शुद्ध स्वभाव का ही उदय है, ऐसा ही यथार्थ ध्रुव सत्य है, तो फिर भी यह जीव अपने निज स्वभाव से क्यों च्युत होता है? अपने निज स्वरूप से क्यों च्युत होता है? ऐसा खेद के साथ कह रहे हैं।

हे जीव! तू अपने निज स्वभाव स्वरूप द्रव्य से क्यों च्युत हो रहा है ?

शुद्ध द्रव्य स्वरस भवनात्किं स्वभावस्य शेष-
मन्यद्द्रव्यं भवति यदि वा तस्य किंस्यात्स्वभावः।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्तिभूमि-
र्ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव॥ 216॥

बहुत गहरा वर्णन है। ये स्थूलबुद्धियों का काम नहीं है। भैया! सूक्ष्म बुद्धि दृष्टि क्या है? पूर्णिमा के चन्द्रमा की चाँदनी सम्पूर्ण भामण्डल को ज्योतिर्मय कर लेती है। क्या भूमि के प्रकाशमय होने से

चन्द्रमा भूमिमय हो गया? या भूमि चन्द्रमामय हो गई?

''शुद्ध द्रव्य स्वरस भवनात्किं स्वभावस्य शेष मन्यद्द्रव्यं भवति'' जो तुम्हारा शुद्ध स्वभाव है, वह अन्य स्वरूप होता है क्या ? ये पूरा का पूरा वर्णन चल रहा है। मात्र निजानन्द भाव है। पर द्रव्यों की पर्याय, निज की अशांत पर्याय, अशांत द्रव्य जाति पर्याय, इसमें भी दृष्टि ले जायेगा, हे ज्ञानी! निज रस का स्वाद नहीं चख सकेगा। भैया! माँ के आँचल से दूध बाहर आया है और बालक के मुख में है। माँ के आँचल का दूध पिचकारी छोड़ रहा है, लेकिन उस स्तन पर रक्त है कि नहीं? चमड़ी है कि नहीं?

ज्ञानी! माँ के आँचल का पान कर रहा है यह क्या है? वह विद्या है उस बच्चे को मालूम है कि कैसे चूसना है। कितना नाजुक स्थान है, असमान जाति पर्यायों के भीतर जो तुम्हारा आत्मा बैठा हुआ है उसकी पूर्ति लेता है। गोंच की तरह आँचल को काटता नहीं है। गाय का बछड़ा भी माँ का दूध पीता है। पाँच इन्द्रिय में से दो इन्द्रियाँ भोगती हैं, स्पर्शन और रसना। ये कामेन्द्रियाँ कहलाती हैं। घ्रान, चक्षु और कर्ण ये तीन भोगेन्द्रियाँ हैं। काम, भोग मिलकर ये पाँच इन्द्रियाँ हैं इस जीव की।

यहाँ पर आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि जो द्रव्य का निज स्वभाव है, वह निज स्वभाव आत्मा का ज्ञान चैतन्य स्वभाव है। जो ज्ञान चैतन्य स्वभाव है, वह शुद्धात्मा का निज ज्ञान चेतना है। जैसे चाँदनी पृथ्वी को उज्जवल तो कर रही है, परन्तु पृथ्वी चाँदनी कदापि नहीं हुई है। चाँदनी तो चन्द्रमा की है। चाँदनी तो चन्द्रमा में ही है। चाँदनी पृथ्वी की नहीं है। झलकते अवश्य हैं। ज्ञान ज्ञेय में, चन्द्रमा की चाँदनी की भाँति, प्रकाशमान हो रहा है। फिर भी ज्ञान तो ज्ञान ही है, ज्ञेय तो ज्ञेय ही है। ज्ञेय ज्ञान में प्रवेश किया ही नहीं है।

''ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव'' ज्ञान ज्ञेय पदार्थों को त्रिकाल जानता है।

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यम्।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं
भावाभावौ भवति तिरयन्येन पूर्णस्वभावः।।217 कलश।।

कण्ठ में एक बात आ रही है। जीवन में हर व्यक्ति को भगवान् की चिंता है। अज्ञानी हैं वे जीव जो वस्तु स्वरूप को समझते नहीं हैं। भाव शुद्धि के लिये पूजा करना चाहिए। कोई ग्रह के राग में चिल्ला रहा है, कोई सूर्य के राग में चिल्ला रहा है। दोनों अज्ञानी हैं। कोई खड़े होकरके पूजा के राग में झगड़ रहा है। कोई बैठकर पूजा करने के राग में झगड़ रहा है। ज्ञानी! तो वे हैं जो न खड़े होकर, न बैठकर। हमें तो भावों की विशुद्धि से प्रयोजन है। अरे! तुम्हारे कपड़े शुद्ध नहीं हैं, तुम अशुद्ध हो गये हो। भगवान्

का नाम मत लेना। अंतिम श्वास का समय चल रहा है और तुझे कपड़ों में शुद्धि दिख रही है।

''ध्याये पंचनमस्कारं'' पंच नमस्कार का ध्यान करने से पापों का मोक्ष हो जाता है। उसे भी सुनाना, तुम भी सुनाना और माला फेरना।

अब्रह्मदशा में मात्र मन में चिन्तन करना। किसी भी अवस्था में हो, भगवान् का नाम लेना मत छोड़ देना। कोई एक मुखिया बना रहा, उसने जो कुछ दिया उसमें जी रहे हो, लेकिन सत्य पर जीने वाले बहुत कम हैं। हमारा अध्यक्ष जो कहेगा वो करेंगे। मुखिया तो मारीचि भी हो गया था, 363 मत बना दिए, जो अब तक चल रहे हैं। चाहे भव दृष्टि से देखो चाहे परमार्थ दृष्टि से देखो। **''राग-द्वेष-द्वय''** राग द्वेष यह दो हैं। **''मुदयतेतावदेतन्न यावत''**, वे भी तब तक उदय में रहते हैं जब-तक ज्ञान का ज्ञान नहीं है। ज्ञान में ज्ञान नहीं है तब तक बाधा है। जिसको ज्ञान पर ज्ञान हो गया, जिसका ज्ञान में ज्ञान चला गया **''न पुनर्बोधतां याति बोध्ये''** ज्ञान-ज्ञान में पूर्ण नहीं होगा तब तक ज्ञेय भाव को प्राप्त नहीं होगा।

''ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृता ज्ञान भावं''

ज्ञेय तभी दिखेगा जब ज्ञान ज्ञान को जानेगा। ज्ञान ज्ञान को और ज्ञेय को जान लेगा। ज्ञेय ज्ञेयभूत दिखेगा और ज्ञान ज्ञानभूत दिखेगा। पर जब-तक ज्ञान अज्ञान भाव दूर करके, ज्ञान ज्ञान-भावों को नहीं जानता। **रागद्वेष तब-तक होते हैं, जब-तक ज्ञान ज्ञानभाव को नहीं जानता। ज्ञान अज्ञान-भाव को दूर करके आता है। निज ज्ञानभूत ज्ञेय है, ऐसा जिसने निर्णय कर लिया है, वह पूर्ण स्वभावी है।**

आत्मद्रव्य निज का ही कर्ता है, निज का ही भोक्ता है। न पर का भोग्य है, न पर का भोक्ता है। परमार्थ दृष्टि से, यानि सहज स्वभाव से युक्त है। जैसे अज्ञानी परकर्तृत्व, परभोगतृत्व में लीन हो रहा है और व्यक्ति यश को प्राप्त होकरके संसारभ्रमण कर रहा है, ज्ञानी कभी विपर्यास को प्राप्त नहीं होता। **किंचित् मात्र भी पर के प्रति सुख भूतकर्ताबुद्धि, पर के प्रति दुःखभूत कर्त्ताबुद्धि यदि है, तो तू पर को सुखी-दुःखी तो नहीं कर रहा है, पर के दुःख-सुख के कर्त्तापने के भाव से निज को दुःखी अवश्य कर रहा है।**

पर को सुखी करने का भाव, पर को दुःखी करने का भाव, दोनों ही भाव स्व को दुःखी करने के ही भाव हैं। आप ये मत समझ लेना कि पर के दुःख का कर्त्ता बनने से दुःखी हो जाऊँगा, पर के सुख का कर्त्ता बनने से सुखी हो जाऊँगा। ज्ञानी! इस अज्ञानता को दूर कर दो। पर के सुख-दुःख के कर्ता बनोगे तो दुःखी ही हो जाओगे। तात्पर्य समझना। मैं इसको करूँ, ऐसा भाव तेरा चल रहा है, तो वो दुःखी

हो या न हो, पर दुःखी करने के भाव से तू अवश्य दुःखी है। कैसे दुःखी कर सकूँ? पर की अनिच्छा वृत्ति है तेरे भीतर, पर झलक रहा है। उसका दुःख कर्तृत्व भाव झलक रहा है। **जिस जीव का तीव्र पुण्य का उदय है, उसे आप दुःखी तो नहीं कर पाओगे, पर दुःखी करने के भाव से अशुभ बन्ध करके नियम से तू दुःखी होगा।**

तू पर को सुखी करने का भाव मन में करके, कि मैं सुखी कर दूँ, इस राग से और उसका तीव्र अशुभ कर्म का उदय है, उसे तू सुखी तो नहीं कर पायेगा, लेकिन उसे सुखी करने के विकल्प में अनेक प्रकार के माया मोह उपक्रम कर रहा है, उससे तू पाप का बन्ध करके दुःखी नियम से होगा।

हे जीव! तेरे इष्ट पुरुष का यदि तीव्र अशुभ कर्म-उदय चल रहा है, तो तू उसे सुखी करने के लिये अनेक प्रकार के लोगों के साथ उपक्रम कर रहा है। मेरे मित्र! उसको सुखी देखने के लिये तू दूसरों से भी माँग रहा है, उसे सुखी करने के लिये दूसरों को दुःखी भी करने से नहीं चूक रहा है। मेरे मित्र! उसे सुखी करने के लिये कितने निन्द्य-निन्द्य कार्य कर रहा है। रात-रात भर नींद नहीं ले पा रहा है, तू तो अपनी वर्तमान की पर्याय में ही कष्ट भोग रहा है और उस आर्त्तध्यान से यदि मृत्यु हो गई, तो तेरी दुर्गति तो नियत होगी। उस ज्ञानीजीव का पुण्योदय होगा तो ही कुछ फल मिलेगा। उसका तीव्र पाप कर्मोदय चल रहा है तो सगे भाई को भी तू सुखी नहीं कर सकेगा।

एक माँ के चार बेटे हैं। चारों का एक-सा परिणमन होता दिखाई देता नहीं। गुरु के सैकड़ों शिष्य हैं, पर सभी शिष्यों का परिणमन एक-सा दिखाई देता नहीं। पर वे सुख-दुःख का कर्ता बनने के लिये, क्यों राग-द्वेष कर देते हैं? पर के सुख-दुःख का कर्ता तो नहीं बन सकता, पर का कर्ता अवश्य बनेगा। तू कर्ता बनके कर्मास्रव तो कर लेगा, लेकिन मेरे मित्र! आप चाहो भी कि मैं इनको सुखी कर दूँ या दुःखी कर दूँ तो वो सम्भव नहीं है। आप पर के सुख-दुःख में निमित्त तभी बन पाते हो, जब सामनेवाले का पुण्य-पाप उदय होता है। सामनेवाले जीव का विपरीत उदय चल रहा है और तू विपरीत उस समय सोच रहा है तो उसका विपर्यास कर नहीं सकता। जब मेरे द्वारा किसी को दुःखी किया ही नहीं जा सकता है, तो मैं व्यर्थ में अशुभ भाव करके संक्लेशता को क्यों बढ़ाऊँ ? इसलिये 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।'

निज के आनन्द में लीन रहो। पर को सुख-दुःख का कर्तृत्व भाव का अभाव भी ध्यान है। **पर को सुखी करने का भाव आर्त्तध्यान है तो पर को दुःखी करने का भाव रौद्रध्यान है।** बिना रौद्रता के, क्रूरता के, दुःख लेकर के भी, यदि तेरे अन्दर क्षेत्र में, मिट्टी में भूमि में राग हो जायेगा तो नियम से आर्तध्यान का जन्म होगा।

निर्णय कर लीजिये निर्ग्रन्थ मुनि बनकर जीना है, तो जगत् की संस्थाओं से शून्य होकर आत्मसंस्था में लीन हो सकेगा, तो ही दिगम्बर मुनि बन सकेगा। पर मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह रहा हूँ कि तू संस्था में लीन हो जायेगा तो नियम से आर्त्तध्यान में डूब जायेगा। क्यों? जो संस्था प्रारंभ करने के भाव उठते हैं, जिस समय जो नये पुरुषार्थ करते हैं वे कुछ समय तक तो कार्य करते दिखते हैं, पर कार्य करने वालों को हटाकरके दूसरों को स्थापित करता है, जब दूसरों को स्थापित कर रहा है, तो उनमें आर्त्तध्यान चल रहा है, इष्ट संयोग और जिनको हटा रहा है, वे हटना नहीं चाह रहे हैं, तो तू शक्ति का प्रयोग करता है, बल का प्रयोग करता है, चेहरा बनाता है, भृकुटी तानता है, आवाज ऊँची निकालता है। ये रौद्रध्यान के लक्षण हैं।

साधुओं को किसी भी संस्था में अगुआ होने की आवश्यकता नहीं है। आप सोचना इस बात को। दो पक्ष संवाद कर रहे हैं और इसमें उतर गये, करो सामायिक कैसे कर रहे हो? करो ध्यान, कैसे कर पा रहे हो? नहीं ले पा रहे हो आनन्द निर्ग्रन्थपने का, नहीं ले पा रहे हो आनन्द मुनिपने का। किंचित् मात्र भी संस्था में गृद्धता आयेगी तो साधुपने की अनुभूति की अनुभूति नहीं ले सकेगा। कोई शंका नहीं है। **सामायिक के काल में सामायिक ही होना चाहिए, सामायिक के काल में सामाजिकता नहीं होना चाहिए।** जब सामायिक चल रही है तो वहाँ कोई सामाजिकता नहीं। आवश्यक के काल में आवश्यक ही होना चाहिए, अन्य कोई अवश्य नहीं आना चाहिए। अन्य अवश्य के वश में हो गये, तो तेरे आवश्यक समाप्त हो गये।

हे श्रमण! आवश्यक के काल में आवश्यक ही होना चाहिए। आवश्यक के वश में रहो, अन्य किसी के वश में चले गये, तो तेरे आवश्यक नष्ट हो गये। जब व्यवहार आवश्यक नहीं कर पा रहे, तो निश्चय आवश्यक कहाँ? वहाँ निश्चय आवश्यक की तो कल्पना ही छोड़िये। जहाँ नियमसार है, वहाँ नियमसार है। ज्ञानी! समयसार को चाहते हो, तो नियमसार को पकड़ो पहले। नियम से तात्पर्य, ये छोटे-मोटे नियम कोई नियमसार नहीं हैं।

रत्नत्रय की जो विशुद्ध आराधना है, वह नियम है। मिथ्या दर्शन, ज्ञान, चारित्र से रहित है, यही उसमें सार है। ऐसा सारभूत नियम है, वो नियमसार है। उस सारभूत नियम को पालन कर लेगा, तब **मिलेगा तुझे समय। समय यानि आत्मा और आत्मा की अनुभूति का जो सार है, उसका नाम 'समयसार' है।**

क्या ग्रन्थ समयसार है? क्या नियमसार ग्रन्थ नियमसार है? नियमसार की प्राप्ति का उपाय जिसमें लिखा है, उन ग्रन्थों का नाम नियमसार, समयसार है। पर वास्तव में रत्नत्रय से युक्त आत्मा ही नियमसार

है। उसकी अनुभूति की अनुभूति में लवलीन अखण्डता की शांतिपूर्ण अवस्था है। उसका नाम ''समयसार'' है।

द्रव्यानुयोग की भाषा का ही आभास नहीं आ रहा है, वहाँ द्रव्यानुभूति का आभास कहाँ? ज्ञानी! हर क्षेत्र में अपनी भाषा है। जब आप ज्योतिष की बात करोगे, तो ज्योतिष का पाठ आपकी भाषा में होगा। जब आप आयुर्वेद की दुकान पर बैठे हो, तो आपकी भाषा परिवर्तित हो जाती है। जब स्वानुभूति की अनुभूति ले रहे होंगे, तब जगत् की सारी भाषा शून्य हो जाती हैं। जिसे अब्रह्म की सिद्धि हुई है, उसे आत्म सिद्धि कहाँ हुई है? और कहाँ हो सकती है? शब्दब्रह्म जो है, वह आत्मब्रह्म का घात करने का साधन है।

ज्ञेय तो ज्ञेय है और ज्ञाता तो ज्ञाता है। हेय को, ज्ञेय को जानो, परन्तु मुमुक्षुओ! निजज्ञान को जानो, निजज्ञान से ही जानो। ये ज्ञान में ज्ञान की अनुभूति है। किंचित् भी पर की ओर दृष्टि डाली है, वह बहिरत्व है। तीन प्रकार के तत्त्व हैं, सुनिये (1) अंतस् तत्त्व, (2) बहिर्तत्त्व, (3) प्रमाण तत्त्व। जो जड़ द्रव्य है, अचेतन द्रव्य है, पर ज्ञेय है, बहिर् तत्त्व है। निज आत्मा अंतस् तत्त्व है। निज आत्मा में जो कर्म भाव है, वो भी अन्तस् तत्त्व नहीं है। निज आत्मा ने, जो कर्म कर लिये, बहिर् तत्त्व है। आत्मा में, तेरे ज्ञान में जो नारी, पुत्र, मित्र आदि आ रहे हैं, ये भी तेरे बहिर तत्त्व हैं।

मुमुक्षु! तेरे ज्ञान में पाँच पाप के साधन आ रहे हैं, वे भी बहिर् तत्त्व हैं। तेरे ज्ञान में स्यात् पंचपरमेष्ठी भी आ रहे हैं, तब भी वे बहिर् तत्त्व हैं। पाँच पाप के साधन अन्तस् तत्त्व कैसे? बहिर् तत्त्व हैं।

छानिये निज के ज्ञान को, आपको ज्ञान में, चिंतन में कभी जड़भूत द्रव्य झलक जायेंगे, कभी पंचेन्द्रिय तत्त्व झलक जायेंगे तो कभी रति भाव झलक रहा है। जुगुप्सा भाव झलक रहा है, कभी शोक भाव आ रहा है, कभी-कभी बैर भाव आ रहा है। ये सभी बहिर् भाव चल रहे हैं।

कभी एकांत मिथ्या चल रहा है, कभी विनय मिथ्या चल रहा है, कभी संशय मिथ्या चल रहा है, कभी विपरीत मिथ्या चल रहा है, कभी अज्ञान मिथ्या चल रहा है, शोक विहीन भाव चल रहा है, स्त्री-पुरुष वेद चल रहा है भावों में। ये सभी समझो बहिर भाव चल रहा है भावों में। ये सभी बहिर् भाव है।

चाहे विपर्यास हो, चाहे रति, अरति, भय, जुगुप्सा, हास्य, शोक, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, इसमें से कोई भी नोकषाय हो बहिर् भाव है। कषाय का भाव भी तेरा है वो भी शुद्ध अन्तस् भाव होने से बहिर् भाव है। अब सोचो, 24 घण्टों में अंतस् तत्त्व में कितना रहता है जीव ?

मित्रो! लगता है कि मैं खाली फिर रहा हूँ, अन्तस् तत्त्व समझ में आने के लिये तेरे पास कोई समय नहीं। ज्ञानी! अन्तस् तत्त्व को समझने का प्रयास कितना कर रहे हो? यहाँ योग धारण नहीं करना पड़ेगा, क्योंकि हो जायेगा, अन्तस् तत्त्व में डूब जायेगा, बहिर् तत्त्व से दूर हो जायेगा, वही निज में रमण प्रारंभ कर देगा। उसको उपवास भी नहीं करना पड़ेगा, नीरस भी नहीं करना पड़ेगा, उसको कुछ भी करना ही नहीं पड़ेगा। वह तो अन्तस् तत्त्व में डूबा है और जब अन्तस् तत्त्व में डूबा है, तो बहिर् में दृष्टि ही नहीं है।

क्या सोच रहे हो? जो कथन चल रहा है, असम्भव लगता है आपको जबकि पूर्ण सम्भव धारा है। फिर तुम भी कितना ही पालो। निर्ग्रन्थ स्वभावी अंतस् तत्त्व को। सोचिये, लोगों के बीच में रहकर तू रागद्वेष के घर में ही बैठा रहेगा। निर्ग्रन्थ जीवन जीना है तो लोगों से दूर रहना पड़ेगा। एक दिन तो उसकी अनुभूति कर लो। **अहो श्रमणो! जिसके लिये श्रमण बने हो, एक दिन उसकी अनुभूति लेकर के तो देखो। 'अहा! मैं सबकुछ छोड़कर आया।' पर जिसके लिये छोड़ा था, उस तक पहुँचे क्या?** वर्तमान काल में एक नया प्रयत्न किया है। श्रमणों के अन्तस् तल में। वो नया प्रेत क्या है? अभिनव तीर्थ स्थापना का प्रेत है। वो अभिनव तीर्थ के प्रेत ऐसे पिशाच लग गये हैं कि इन बेचारों को अपनी शुद्धि पर ध्यान नहीं है।

कोई दिल्ली का सेठ बैठा हुआ है, कोई इन्दौर, कोई कलकत्ता का सेठ बैठा हुआ है। जो मुझे 'समयसार' में डुबकियाँ लगाना चाहिए थी, वे अभिनव तीर्थ स्थापना के राग में, तीर्थक्षेत्र की कमेटी बनाने के राग में लगे हुये हैं। ये वर्तमान काल का, समयसार को भंग करने का प्रेत है। बहुत बड़ा प्रेत है। हरेक आचार्य /मुनि ये ही सोचता है कि मेरा नाम कैसे चलेगा? इसके लिये मुझे कोई काम करना पड़ेगा। कोई धाम करना पड़ेगा, कोई उदय प्राप्त करेगा। ज्ञानी! कर्मोदय को तो देख लिया, उदय पर क्यों भाग रहा है? शुद्धात्म-धाम को तो देख लिया है, तो ईंट-चूने के धाम में क्यों लगा है? कर्मों को तो देख, क्या दुनियाँ को देखने बैठा है। बहुत बड़ा प्रेत लग गया है।

मस्तिष्क में काटता है कीड़े जैसा कि अब क्या होगा? अब क्या होगा? जब इस अलौकिक ग्रन्थ को पढ़कर लगता है कि **अहो! निर्ग्रन्थ का स्वरूप क्या है ? अरहन्त बनाने वाला है।** अभी हम लोग ''नियमसार'' जी ग्रन्थ का स्वाध्याय कर रहे थे, ''नियमसार'' जी ग्रन्थ में कुन्दकुन्द देव ने और टीकाकार पद्मप्रभ मलधारि देव ने जो लिखा उससे तो लगता है कि ये लोक जो मैं देख रहा हूँ, वो तो कोई धर्म है ही नहीं। वहाँ तो मात्र शुद्ध रत्नत्रय की व्याख्या है।

अन्तस् तत्त्व जो है, वह निज स्वभावभूत है। यदि अंतस् तत्त्व में संसारी जीव भी आ रहे हैं, तो

परमार्थ तत्त्व जो है, वह संसारातीत दशा है जो आत्मा की है। **अंतस् तत्त्व में प्रवेश किये बिना परमार्थ तत्त्व की सिद्धि सम्भव नहीं है।** परलक्षित होकर के नहीं समझना है, स्वलक्षित होकर समझना है। ज्ञानी! भूताविष्ट और मोहाविष्ट, इन दोनों धाराओं पर ध्यान देना पड़ेगा। भूताविष्ट को ठीक करना तो सरल है, पर मोहाविष्ट को ठीक कर पाना बहुत कठिन है।

किसी को भूत लग जाये तो उसको तो झड़वा-फूँकवा कर ठीक कर पायेगा, लेकिन जो मोह का भूत है, उसके लिये कोई मंत्र नहीं चलता। मंत्र वाले विफल हैं। भगानेवाले भी मोह नहीं भगा पाये, इसलिये भूत भगाने के विकल्प छोड़ो और जो मोह का भूत/व्यन्तर है उसको भगाने के लिये साधना करो। जो मोह को भगाने के लिये साधना करेगा, उसके पास तो कभी भूत आ ही नहीं पायेंगे।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरेः।।

अन्तर की आस्था, संकल्प शक्ति और चारित्र की दृढ़ता जो है, उसके सामने भूत भी माथा टेक कर चले जाते हैं। इसलिये न कोई भूतों की उपासना है, न भभूतों की उपासना है। यहाँ भूतनाथ की उपासना है। जो भूतनाथ हैं, वे सर्वज्ञ तीर्थंकर देव चौबीस तीर्थंकर देव हैं। भय लगे तो भक्तामर काव्य पढ़िये। मुझे किसी का डर नहीं लगता, क्योंकि मेरा इष्ट देवता जो है वह भूतनाथ है। आपका कौन-सा देवता है? कोई देवता है क्या आपका? यहाँ पर सिद्धि की बात नहीं कर रहे। तीन प्रकार के देव होते है, इष्ट, अबाधित, अभिप्रेत। मेरा इष्ट भी कोई है तो भूतनाथ है, अबाधित है तो भूतनाथ है, अभिप्रेत है तो भूतनाथ है। मेरे सर्वज्ञ तीर्थंकर देव हैं।

जो मेरे इष्ट हैं, वे किसी से बाधित नहीं हैं, इसलिये अबाधित हैं और सभी को स्वीकृत हैं, अभिप्रेत हैं सर्वज्ञ तीर्थंकर देव हैं। किसी ने किसी रूप में देखा, किसी ने किसी रूप में देखा, लेकिन ऋषभ देव भगवान् को सभी ने देव माना। चाहे कोई तीर्थंकर के रूप में देखा हो, चाहे कोई बाबा के रूप में देखा हो, चाहे अवतार के रूप में देखा हो, लेकिन हमारे ऋषभदेव को तो सभी ने देखा है। इसलिये अभिप्रेत हैं। मेरे तो देव भूतनाथ हैं। उसका नाम है ऋषभदेव।

अब जहाँ भूतों के ही नाथ हों, तब भूत कहाँ रहेंगे वहाँ ? जगत् के जितने भी प्राणी हैं, वे सभी भूत, और उन भूतों का कोई स्वामी है, तो उसका नाम तीर्थंकर देवाधिदेव अरहन्त सर्वज्ञ है। वह परमार्थ तत्त्व है। तीन प्रकार के तत्व की व्याख्या की (1) बहिर् तत्त्व, (2) अंतस् तत्त्व, (3) परमार्थ तत्त्व। हमारा भूतनाथ ही परमार्थ तत्त्व है। व्यवहार से और निश्चय से अशरीरी निजानन्द चैतन्य पिण्ड, ज्ञानस्वरूपी भगवती आत्मा ही मेरा भूतनाथ है।

इस बात को समझाते हुये कुन्दकुन्द स्वामी ने, जहाँ दीवाल और खड़िया की चर्चा की है, उस बात को आगे विस्तृत करते हुए जयसेन स्वामी अपनी टीका में लिख रहे हैं।

अभी तक आपने अमृत चन्द्र स्वामी को थोड़ा-बहुत जटिल भाषा में सुना। अब उसी खड़िया मिट्टी की व्याख्या सरल भाषा में सुनो। आचार्य अमृत चन्द्र स्वामी ने प्रौढ़ भाषा में व्याख्यान किया। अब बालकों के बोध के लिये जयसेन स्वामी कह रहे हैं कि '**ज्ञानं ज्ञेयं वस्तु जानाति**' ज्ञान ज्ञेयवस्तु को जानता है। ज्ञानी! तूने झूमर को देखा। जाना कि झूमर टँगा हुआ है। तूने झूमर को देखा ही तो है, जाना ही तो है। ज्ञेय ही तो है, ज्ञान तो नहीं है। तूने झूमर को देख लिया, जान लिया, लेकिन न तू झूमर में गया, न झूमर तेरे में गया। ऐसे-ही मुमुक्षुओ! न ज्ञान ज्ञेय में प्रवेश करता है, न ज्ञेय ज्ञान में प्रवेश करता है। परज्ञान में तन्मयीभाव का अभाव है, निज ज्ञान-ज्ञेय में तन्मयीभाव का ही सद्भाव है।

निज ज्ञान-ज्ञेय में जैसे तन्मयी भाव है, वैसे परज्ञान में तन्मयी भाव नहीं है, अतन्मयी भाव है। ''**वस्तु ज्ञानं ज्ञेयं जानाति**'' ज्ञान ज्ञेय वस्तु को जानता तो है, ''**तथापि**'' फिर भी '**धवल कुड्ये श्वेत मृत्तिकावन्निश्चयेन तन्मयं न भवति**' मुमुक्षु! दीवाल श्वेत है, श्वेतपने में तन्मयभूत नहीं है। श्वेत दीवाल नहीं है, श्वेत खड़िया, श्वेत चूना है, श्वेत पेंट है। पर व्यवहारी लोग दीवाल को श्वेत बोल रहे हैं। श्वेत है क्या? अम्बर श्वेत है, स्वभाव श्वेत नहीं है। मुमुक्षु! पर में, श्वेताम्बर में लीन हो गये कि श्वेत स्वभाव ही भूल गये। क्या मूढ़ दृष्टि है। हे ब्रह्मचारियो! अम्बर श्वेत है, देह श्वेत नहीं है, मगर भाव श्वेत नहीं हैं। समझ में आ रहा है? भैया कपड़ों में धर्म उतार लिया, कपड़ो में धर्म मान लिया, कपड़ों से पहचान मान ली है। भाई! समझो, मेरे मित्र-श्वेत वस्त्रों के आकार ने अपनी बुद्धि को ठग लिया और श्वेत पने में लिप्त होकर के उसे अपना धर्म मान लिया कि यही धर्म है। लाठी हाथ में है, श्वेत पट्ट है, मुख बन्द है और उसे धर्म मान लिया और श्वेत पट्टों में मुनित्व की खोज कर रहे हैं, श्वेत पट्टों में भगवान् आत्मा को जान रहे हो। सुनो-सुनो मैं क्या कह रहा हूँ? जितने ज्ञानी विद्वान् लोग हैं, जो श्वेत टोपी, श्वेत कपड़े पहनकर घूम रहे हैं जैसे कि श्वेत बनकर, श्वेत बनेंगे ये पर वस्तु कपड़े हैं। संश्लेष सम्बन्ध है।

ज्ञानी! श्वेत वस्त्र से, श्वेत शरीर/भेष से भगवत्ता की सिद्धि होती हो तो बगुले को सबसे शीघ्र सिद्धि हो जाना चाहिए। देखो, मैं अपने मन से कुछ नहीं कह रहा हूँ, सत्य की प्ररूपणा कर रहा हूँ। तुम्हें बुरा लगे तो उतारके फेंक दो। पर को देखोगे तो बहिर्भाव है, निज में रह सको तो फेंकना। मेरे निमित्त से आओ, तो घर में रहना। अरे भाई! प्रत्येक द्रव्य व्यवहार से लोक में है और निश्चय से निज लोक में है। ध्रुव सत्य यही है। भैया! तू सुन्दर कपड़े पहनकर आ गया। कुर्ता-धोती-दुपट्टा, सिर पर टोपी। मेरे मित्र! न लाठी में धर्म है, न श्वेत धोती में धर्म है, न दुपट्टे में धर्म है। दीवाल पर चढ़ा

हुआ रंग दीवाल नहीं है, तो देह पर पड़े हुये ये वस्त्र धर्म कब से हो गये?

ऐसा अज्ञान का चोला कब तक पहनोगे? अब तो भविष्य में आने वाला कोई तीर्थंकर होगा, वो ही मिटा पायेगा, वर्तमान में तो कोई मिटाने वाला नहीं है। अब तो काल जैसे-जैसे बृद्धिमान होगा और छोटे-छोटे वस्त्र प्रारम्भ होते चले जायेंगे। इतना कोई सोचने वाला पुरुष नहीं हुआ, इतना प्रज्ञावान पुरुष नहीं हुआ। सदियाँ निकल गईं, हजारों वर्ष निकल गये श्वेत कपड़ों में धर्म मानते-मानते। कहीं चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग वृत्ति का प्रयास मार्ग जारी है। मुमुक्षु! श्वेतपट्टाम्नाय का सिद्धांत अपनी गलती से मत फैलाओ।

अब तो विद्वानों से डरना नहीं, स्पष्ट कहना कि इसका स्पष्ट कथन कीजिये। ये सिद्धांत लेकर कहाँ से आये हो व्यवस्था में? व्यवहारता में धर्म कैसा? वस्तु की अवस्था में धर्म कैसा ? ओहो-कोई कार्य करके ही मोक्ष जाना चाहता है, कोई धोती-दुपट्टा पहन कर मोक्ष जाना चाहता है।

मित्रो! कोई गेंहुआ, कोई भगवा, अनेक प्रकार के वस्त्रों से मोक्ष जाना चाहता है। कोई कपड़े उतारकर मोक्ष जाना चाहता है। इनसे मोक्ष होता तो पता नहीं जगत् में कितने मोक्षमार्ग हो जाते। **ज्ञानी! न कपड़े उतारना मोक्ष है, न कपड़े धारण करना मोक्षमार्ग है। वीतराग भेदाभेद रत्नत्रय की आराधना मोक्षमार्ग है। रत्नत्रय आराधक तभी हो पायेगा जब अंतरंग-बहिरंग परिग्रह से रहित होगा।** जब बहिरंग परिग्रह छोड़ेगा, फिर किसे ओढ़ेगा? ज्ञानी! नंगे होने को मोक्ष-मार्ग नहीं कहा। निसंग होने को मोक्षमार्ग मानते हैं। निसंग होने को कपड़े फैंकते हैं। कपड़े फेंके कहाँ हैं? निसंगता के लिए कपड़े छोड़े हैं, कि नंगे होकर मोक्ष जाने के लिये कपड़े छोड़े हैं? निसंग होकर मोक्ष जाया जाता है। चिन्ता से मुक्त होने के लिये दिगम्बर भेष धारण किया जाता है। वह निसंगता तभी आयेगी, जब अन्तरंग-बहिरंग से नग्नत्व को प्राप्त हो जायेगा।

नग्नत्व मोक्षमार्ग है, नंगापन मोक्षमार्ग नहीं है। निःसंगता मोक्षमार्ग है। नंगेपन में एकान्तिक दोष है। नंगे तो जगत् में और सम्प्रदायों में लोग होते हैं, पर नग्नत्व जो है वह वीतराग शासन है। इस नग्नत्व में कोई चरस नहीं होती, कोई भांग नहीं होती, गांजा-अफीम नहीं होता, हुक्का-मुक्का नहीं होता है। इस नग्नत्व में मात्र वीतराग भाव ही होता है। मात्र नंगे होने में बहुत सारी विपत्तियाँ खड़ी हैं।

परमार्थभूत जिनशासन में जो ऋषि परम्परा है, वह मुझे स्वीकार है। पर लोक में ऋषि-पुत्र वाली परम्परा है, वह परम्परा हमारे यहाँ स्वीकार नहीं की गई है। सभी दर्शनों में अपने-अपने ग्रंथ हैं। ऋषि-पत्नियाँ, ऋषि-पुत्र होते थे। जो ऋषिपत्नियाँ वाले ऋषि हैं, ऋषिपुत्र वाले ऋषि हैं, हमारे आगम में उसे स्वीकार नहीं किया। जो ब्रह्म ऋषि हैं, जो देवर्षि हैं, उन ऋषियों को स्वीकार किया गया है अपने यहाँ।

संज्ञा की संज्ञा रह गई है। अनात्मभूत भेष में धर्म मान लिया है, उसी में मस्त हो गये। भेष बनाकर बैठ लो और अच्छा व्यापार करो। ये विषय ही नहीं है आपका यहाँ पर। **''ज्ञानं ज्ञेयं वस्तु जानाति तथापि कड़्वेश्वेतमृत्तिका वन्निश्चयेन तन्मयं न भवति''** जैसे धवल दीवाल को देखने पर भी श्वेत है, ऐसे-ही दीवाल स्वयं श्वेत नहीं है।

''इति निश्चयमुख्यत्वेन गाथा पञ्चकम्'' इस प्रकार निश्चय की मुख्यता से पाँच गाथा सूत्र समाप्त हुए।

''तथैव च श्वेतमृत्तिका कुड्यं श्वेतं करोतीति'' यदि मिट्टी दीवाल को श्वेत करती है **''व्यवह्रियते''** ऐसा व्यवहार करते हैं। **''तथैव च ज्ञानं ज्ञेयं वस्तु जानात्येवं''** वैसे ज्ञान ज्ञेयवस्तु को जानता है। **''व्यवहारोस्तीति''** ऐसा व्यवहार होने पर भी **'व्यवहार मुख्यत्वेन गाथा पंचकम्'** व्यवहार की मुख्यता से ही पांच गाथा ये हैं।

जैनदर्शन में क्या है ? निश्चय, व्यवहार इन दोनों को ग्रहण किया, इसलिए कोई यहाँ मिथ्या शब्द का प्रयोग नहीं कर सकता। लोकव्यवहार भंग नहीं हुआ और परमार्थ भी भंग नहीं हुआ, जहाँ पर मात्र ब्रह्म अद्वैत है, वहाँ लोकव्यवहार का नाश हो जाता है। जहाँ व्यवहार मात्र एक है, वहाँ परमब्रह्म अद्वैत का नाश हो जाता है। जहाँ परमब्रह्म अद्वैत मात्र है, वहाँ लोक व्यवस्था भंग हो रही है। जहाँ तत्त्व व्यवस्था को ग्रहण किया गया है, वहाँ परमार्थ व्यवस्था भंग हो रही है। पर जैनदर्शन में स्यात् निश्चय दृष्टि स्यात् व्यवहार दृष्टि। अब भैया क्या हो रहा है? जैसे आप यहाँ बैठे हुये तत्त्व सुन रहे हो। यथार्थ में इस बात को सभी विद्वान् निर्णय कर चुके हैं। मन में सभी उनके समझ में आ रहा है। जो नहीं सुनते, वो टी.वी. पर सुनते हैं। उनको समझ में आ रहा है कि तत्त्व की प्ररूपणा उभयात्मक है, लेकिन बेचारे क्या करें?

अब वह यह करता है कि मैं सबसे संतुष्ट हो चुका हूँ। देना-लेना सबसे फ्री हो चुका हूँ। अब जो बचा हुआ है, अपने पुण्य में लगाऊँगा। **भैया! मेरी बात मान लो, आयुकर्म के निषेक जितने अवशेष बचे हुये हैं किसी को नहीं देना। अब चिन्ता को नहीं देना है, अब चिन्तन में देना है। अज्ञानी आयु के सारे निषेक चिन्ता में नष्ट करता है और ज्ञानी जीव चिन्तन में लगाता है।**

आचार्यभगवन् जयसेन स्वामी पुनः इस विषय को समझा रहे हैं कि तुम कर्मोदय से अपनी दृष्टि को पूर्ण पृथक् कर लो, ज्ञानी जीव सुखकारी कार्यों को करने वाले हैं। जो-जो चिन्ता में हैं, इन सबने अन्तरायकर्म किया है।

ज्ञानावरणी कर्म में अन्तराय डाला है और ज्ञानमयी उपयोग नहीं किया है। निषेध नहीं कीजिए सम्यक् उपदेश देना चाहिए। निषेध में क्या हुआ ? आकर्षण बढ़ा। उससे तो जो अगमिक प्ररूपणा थी,

उसको सुनने को उसका मन और मचल गया। मध्य में इतने ज्ञानी आचार्य मुनि हो गए। वो लोग चाहते तो बहुत अच्छा काम हो सकता था, पर क्या करें? पानी का द्वेष नहीं है। उसका काम तो बहना है। चाहे तुम सोने की थाली में बहाओ, चाहे शौचालय में, पानी का तो काम ही बहना है।

प्रज्ञा का काम बहना है, चाहे तो भोग में बहाओ चाहे तुम तत्त्व की प्ररूपणा में लगाओ। एक लीटर पैट्रोल लेकर गाड़ी में डाल दिया। तू चाहे उस गाड़ी को वेश्यालय की ओर ले जाये, तू चाहे तो उस गाड़ी को जिनालय की ओर ले जाये। क्या हुआ? उस गाड़ी के एक लीटर पैट्रोल से तू जिनालय भी पहुँच सकता था और वेश्यालय भी पहुँच सकता था। मेरे मित्र! वही प्रज्ञा के साथ होता है। जिसको पूर्व पुण्य के योग से प्रज्ञा मिली होती है, एक व्यर्थ में नष्ट करता है दूसरा मोक्ष में पूर्ण करता है। कुछ ऐसे जीव हैं जिन्होंने कुछ नहीं किया। न इधर गये, न उधर गये। पैट्रोल डाल दिया, गाड़ी चालू कर दी और खड़ी किये रहे, उसमें ही जीवन निकाल दिया, जला दिया पूरा पेट्रोल और निकाल दिया जीवन। कुछ नहीं कर पाये इस प्रज्ञा का।

यहाँ पर पाँच गाथायें व्यवहार प्रधान है। अब सोचिये, आचार्यभगवन् ने कितना सम्यक् निर्णय किया। निश्चय की भी पाँच गाथायें। अब निश्चयाभासी, निश्चय मात्र की पाँच गाथायें पढ़कर छोड़ देंगे और व्यवहाराभासी व्यवहार मात्र की पाँच गाथायें पढ़कर छोड़ देते हैं। जबकि होना क्या चाहिए था? निश्चय-व्यवहार दोनों की पाँचों-पाँचों गाथाओं को पढ़कर दसों गाथाओं का अर्थ समझना चाहिये था।

''**एवं समुदायेन दशकं**'' इस प्रकार से समुदाय रूप से दस गाथा सूत्र हैं। ''तद्यथा-यथा लोके'' उसको अब कहते हैं। जैसे लोक में ''**श्वेतिका श्वेतमृत्तिका**'' श्वेत द्रव्य वाली जो श्वेत मिट्टी खड़िया। यहाँ स्पष्ट कर दिया, कोई भ्रम में न पड़े। श्वेत मिट्टी कौन-सी है? ''सेटिका'' यानि खड़िया मिट्टी। ''**परद्रव्यस्य कुड्यादेर्निश्चयेन श्वेत मृत्तिका न भवति**'' खड़िया के श्वेत होने से दीवाल श्वेत नहीं होती। ''**तन्मयो न भवति**'' तन्मयभूत नहीं होती है ''**बहिर्भागे तिष्ठतीत्यर्थः**'' वह तो बहिर्भाग में ही ठहरती है। यह तन्मयभूत हो जाती तो लम्बा समय होने पर पपड़ी-की-पपड़ी नीचे गिरती क्यों दिखती?

ज्ञानी! चाहे खड़िया पोतो, चाहे चूना पोतो, वो श्वेतपना ऊपर है, भीतर से तो परत की परत झड़ जाती है। इसका मतलब क्या है? दीवाल और खड़िया के बीच में भी भेद था। दीवाल तो दीवाल रूप थी और खड़िया की सीमेंट की परत परभूत थी। जैसे आपने किसी वस्तु से पुताई कर दी। वो चिपकी अवश्य है, लेकिन वो वस्तु अपने आप में स्वतंत्र है। ऐसे-ही दीवाल और चूना स्वतंत्र ही है। वो तो स्निग्धता के कारण, उसमें स्निग्धपना है, इसलिये चिपका हुआ है। चिपका ही हुआ है, लगा ही हुआ

है, पर तन्मयभूत नहीं है। "**तर्हि किं भवति**" तो क्या होता है? "**श्वेतिका श्वेतिकैव स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थः**" जब तन्मय भूत नहीं है तो फिर श्वेत क्या है? खड़िया तो खड़िया ही है, श्वेतिका तो श्वेतिका ही है। '**तथा श्वेत मृत्तिकादृष्टान्तेन**' ये श्वेत मिट्टी के दृष्टांत से, खड़िया के दृष्टांत से, "**ज्ञानात्मा घटपटादिज्ञेय पदार्थस्य निश्चयेन ज्ञायको न भवति तन्मयो न भवतीत्यर्थः।**" जो ज्ञेयभूत पदार्थ हैं, उन ज्ञेयभूत पदार्थ के ज्ञान से आत्मा निश्चय से ज्ञायक नहीं होती है। आत्मा तो निश्चय से निज ज्ञान को ही जानती है। जैसे खड़िया तो खड़िया है, दीवाल तो दीवाल है, ऐसे ज्ञान से, आप कह रहे हो कि घट से घट को जान रही है, पट से घट-पट को नहीं जान रही है, यथार्थ में तो आत्मा तद्रूप ज्ञान से ज्ञान को ही जान रही है। तेरा ज्ञान तुझे घटपट रूप समझ में आ रहा है। परद्रव्य के आलम्बन से तू कह रहा है कि मैंने घट को जाना, पट को जाना; पर वास्तव में ज्ञान ने ज्ञान को जाना है, क्योंकि ज्ञान तो ज्ञान में तन्मयीभूत है। ज्ञान परभूत ज्ञेय में तन्मयभूत नहीं है।

मेरे मित्र! इस विषय को कौन कह रहा है, कौन जान रहा है? आपका अहोभाग्य है कि ऐसे स्थान पर तुमने जन्म लिया जहाँ खड़िया को खड़िया कहा जा रहा हो और दीवाल को दीवाल कहा जा रहा हो। ये तो दुनियाँ में तुमने श्वेत दीवाल को ही सुना है। खड़िया और दीवाल में भेद ही नहीं जाना। जो ज्ञान में ज्ञेय को, ज्ञेय से ही ज्ञानीपना मानता रहा; जबकि ज्ञेय ज्ञानीपना नहीं है, ज्ञान ही ज्ञानीपना है। ज्ञान से ही ज्ञान है, ज्ञेयों में ज्ञान नहीं है। ज्ञेय तो जड़भूत है और पर के चेतन-भूत भी हुआ हो, लेकिन पर में, परज्ञेय मेरा ज्ञान नहीं है। अतन्मयीभूत है निश्चय से। इस प्रकार से "**तर्हि किं भवति**" तो फिर क्या होता है। '**ज्ञायको ज्ञायक एव**' यथार्थ मानो, मैं तो इस बात को पूर्ण मानता हूँ जरूर आपने पूर्व में कोई विशिष्ट पुण्य किये होंगे, क्योंकि भले ही खोटे काल में आये तब भी तत्त्व का सम्यक् शोध, सम्यक् प्ररुपण, सम्यक् तत्त्व को जानने के लिये मन कर रहा है। सम्यक्त्व को समझने के लिये बुद्धि चल रही है। सम्यक् तत्त्व अपन को प्राप्त हुआ है। नहीं-तो इस खोटे काल में इतने सारे जीव हैं, उनको पता ही नहीं है कि समयसार क्या है ? और क्या ज्ञान ज्ञेय भाव है? ये निश्चय मानिये, आज केवली भगवान् को पता चल रहा होगा कि इसने क्या पुण्य किये होंगे? जरूर ही श्रुत की आराधना की होगी, वीतरागी दिगम्बर साधुओं को शास्त्र भेंट किये होंगे, दान दिये होंगे जिनवाणी के, उसका फल है कि आज तुम्हारे हाथ में जिनवाणी है। नहीं-तो ये हाथ कोई गोबर उठाते मिलता, कोई तराजू तौलते मिलता, तो कोई हाथ में छुरी लिये मिलता।

ज्ञानी! अहोभाग्य मानो जो ऐसे दिन तुम जिनवाणी को हाथ में लिये सम्हाले बैठे हो। भैया एक बार मैंने एक शास्त्र में पढ़ा था दस वर्ष की उम्र में। पण्डित शब्द जो है उसको कहना, ये नियम से प्रबल पुण्य के उदय से मिलता है। आपको पण्डित बोला जा रहा है तो ये आपके पुण्य, ज्ञान, तपस्या का फल

है, ज्ञानाराधना का फल है। जगत् में पण्डित शब्द कोई छोटा-मोटा है क्या? आपको पण्डित जी बोला जा रहा है, नहीं-तो किसी से भी आप कहो कि मुझे तो पण्डित जी ही बोलते हैं। मेरे मित्र! घर में ही आपने सब सदस्यों को देखा है जिनकी प्रज्ञा नहीं चलती, बुद्धि नहीं चलती तो आप भी अपने मुख से बोल देते हो कि ये तो ईंटें ढोने वाला है। मूढ़ बुद्धि बोल देते हो। जड़बुद्धि मूर्ख बोल देते हो। विश्वास रखना **भैया! इतनी-सी बात मानना, कितना ही बड़ा अज्ञानी हो, उसे मूर्ख मत कहना। इतनी गहन पीड़ा होती है, जितना बाण नहीं चुभता उससे कई गुना पीड़ा उस 'मूर्ख' शब्द को सुनने में होती है। आप लोगों को बोध मिला है, बोधि के लिये मिला है, न कि किसी को बुद्धु, कहने के लिये मिला है।** ये हृदय की डायरी पर लिख लो।

जो बोध मिला है, उसका उपयोग बोधि में कीजिये । **बोध यानि ज्ञान, बोधि यानि रत्नत्रय।** बोध मिला है, इसलिए प्रवचन भी करो तो कभी भी सामने वाले को तिरस्कृत भाषा में मत बोलना। ऐसा उपदेश करो कि वक्ता और श्रोता के बीच में अभेद वृत्ति हो जाये, आत्मीय भाव जगे। श्रोता आपको ज्ञानी मानता है और आप श्रोता को अज्ञानी मानते रहे, ये तिरस्कार की भाषा और पूज्यता की भाषा, इन दोनों के बीच में भेद है। इसलिये आपकी बात आनन्द नहीं देती।

भैया! राजिम में कबीरपंथी लोग आते थे प्रवचन सुनने और ब्रह्मचारी भेष में रहते थे, आप-जैसे धोती-दुपट्टा पहनते थे। अब एक दिन तो मैं समझ ही नहीं पाया। एक ब्रह्मचारी जी आये, वो प्रतिदिन प्रवचन सुनने नहीं आते थे। मैंने समझा कि बाहर से ब्रह्मचारी जी आये हैं। अपने ब्रह्मचारी और उनमें बिल्कुल अन्तर नहीं समझ में आया। बिल्कुल एक जैसे रहते हैं। मैंने समझा कि कोई व्रती है, ब्रह्मचारी जी आये हैं। अब प्रवचन के बाद चर्या को उठने लगे तो मैंने कहा भैया आहार नहीं देना क्या? आदमी के भेष से नहीं, भावों से पकड़ में आ जाता है। जैसे-ही मैंने बोला, वो इधर-उधर देखने लगे। मैं समझ गया कि कोई गड़बड़ मामला है। तुरन्त समझ में आ गया। वो डर गया बेचारा। मैंने कहा भैया! कोई विकल्प नहीं है। फिर मैंने धीरे-से जानकारी लेली। लोग बोले 'महाराज जी! यहाँ कबीर लोग हैं, उनके बहुत सारे ब्रह्मचारी लोग आते हैं, वो सिर्फ प्रवचन सुनने आते हैं।' मैंने कहा 'ठीक है, बहुत अच्छी बात है।' तो मतलब है कि अध्यात्म जो है, कबीर ने जो कुछ लिखा है, आपको मालूम कहाँ से लिखा? परमात्म प्रकाश, दोहा पाहुड़ और योगसार इन तीनों ग्रन्थों को निकाल करके जो कथन दिया गया है, वह कबीर दोहों में है।

आचार्य योगेन्दुदेव स्वामी की 'दोहांगी शैली'। ग्रन्थकर्त्ता की भाषा के ज्ञान के साथ माधुर्यपने का ज्ञान और होना चाहिए। भाषा सीख ली, लेकिन माधुर्यपन डालना नहीं सीखा, तो फिर आनन्द नहीं

आता। आचार्य योगेन्दुदेव स्वामी के अपभ्रंश के दो ग्रंथ और कुन्दकुन्द की प्राकृत की गाथायें। इनमें अमृत झरता है।

योगेन्दुदेव का माधुर्य और कुन्दकुन्द स्वामी की गाथायें तो आप रोज सुन रहे हो। ऐसा **ग्रन्थकर्त्ता जो अपने भावों को भरना जानता है, उसके ग्रन्थ अमर हो जाते हैं। जो ग्रन्थकर्ता ग्रन्थ लिखने की विद्या को तो जाने, पर भाव नहीं भर पाये, ऐसे हमारे यहाँ कई ग्रन्थ मौजूद हैं, जिनकी प्रतियाँ/ पाण्डुलिपियाँ ग्रन्थालयों में, भण्डारों में रखी हुई हैं, परन्तु कोई हाथ नहीं लगाता।** जो वैशिष्ट्य होता है, वही सामने आता है। श्रावकाचार छत्तीस हैं, पर 'रत्नकरण्ड, 'पुरुषार्थ-सिद्धयुपाय' अपने आप में विख्यात हैं।

जो सुधरने के भाव रखता है, वो सुधार सकता है। मैं ब्रह्म का खण्डन नहीं करता हूँ। जो जड़ आदि सम्पूर्ण द्रव्यों को ब्रह्मभूत मान रहे हैं, उसका खण्डन है। ब्रह्म को ब्रह्मभूत मैं मानता ही हूँ। आत्मब्रह्म तो आत्मब्रह्म ही है, पर ब्रह्मभूत नहीं है, इसलिये ब्रह्म तो ब्रह्म ही है, ''**ज्ञायको ज्ञायक एव**'' ज्ञाता तो ज्ञाता ही है। ज्ञाता पर ज्ञेय नहीं है। खड़िया खड़िया ही है, खड़िया दीवाल नहीं है। ब्रह्म तो ब्रह्म है, परब्रह्म नहीं है। स्यात् निश्चयनय से। स्वचतुष्टय की दृष्टि से, स्वप्रत्यय की दृष्टि से, स्व-स्वभाव की दृष्टि से सत्य ही है स्व-स्वरूप की अपेक्षा सत् में असत् भी है परस्वरूप की अपेक्षा से। सत् सत् ही है, ये सम्यक् एकांत है। पर चतुष्टय से सत् भी है, ये सम्यक् एकांत को तो मैं मानता हूँ, मिथ्या एकांत को नहीं मानता हूँ। मिथ्या का समूह मिथ्या ही है। अब भैया! तुझे दर्शनाचार्य बनना है कि व्याकरणाचार्य बनना है, कि पी.एच.डी. करना है, कि ज्योतिषाचार्य बनना है, कि निर्ग्रन्थाचार्य बनना है? तू निर्णय तो करले। देखो ज्ञानी! आनन्द सब में है। अब यहाँ आनन्द नहीं आ रहा क्या? परमानन्द है।

हे ज्ञानी! एक-एक विषय के दृष्टांत को ग्रहण करो और सम्पूर्ण देश में '**नमोऽस्तु शासन जयवन्त**' करो। एक-एक विषय को ग्रहण करने का मतलब यह नहीं कि शेष विषय को छोड़ दो। शेष विषय छोड़ दोगे तो एकांत में चले जाओगे। '**ज्ञायको ज्ञायक एव।**'

ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं होता। ज्ञान ज्ञेयरूप से परिणमित नहीं होता। इस कथन की मुख्यता से गाथा समाप्त हुई। उसी प्रकार से श्वेत मिट्टी के दृष्टांत से ''**दर्शकः आत्मा**'' देखने वाला कौन ? अभी ज्ञान की अपेक्षा से कथन किया, अब दर्शन की अपेक्षा से कथन करते हैं। ''**दर्शकः आत्मा दृश्यस्य घटादि पदार्थस्य**'' और दृश्यभूत क्या है? घट-पट आदि पदार्थ ''**निश्चयेन**'' परन्तु निश्चय से ''**दर्शको न भवति**'' आत्मा निश्चय से परपदार्थ का दर्शक नहीं है ''**तन्मयो न भवतीत्यर्थः**'' क्योंकि उनमें तन्मय भूत नहीं होती है। ''**तर्हि किं भवति**'' तो फिर क्या होती है? ''**दर्शको दर्शक एव**'' दर्शक तो दर्शक

ही है। "**स्वरूपेण तिष्ठतीत्यर्थः**" अपने स्वरूप में निज ज्ञायक, ज्ञायक भाव को निज दृष्टांत भाव को ज्ञेयता है। मैं ज्ञाता ज्ञाता हूँ, दृष्टा दृष्टा होता नहीं। जो ज्ञाता-दृष्टा है, वह दृष्टव्य नहीं है। वह ज्ञाता-दृष्टा नहीं है। जो जगत् में दिखाई दिया है। वह जाननेवाला, देखनेवाला नहीं है। जो जानने-देखने वाला है, वह जगत् में दिखाई नहीं देता है। अब बताओ मैं किससे बात करूँ? ये लोग कहते हैं कि महाराज जी खुद ही चुप-से रहते हैं, बोलते नहीं। अरे भाई! बोल तो रहा हूँ। बोलनहार से बोलो, जो दिखाई नहीं दे रहा उससे बात करोगे तो लोग पागल समझेंगे आपको। उससे बात करो जो तन्मयभूत है, चाक्षुष है। मेरा ज्ञान मेरे तन्मयभूत है, मेरा दर्शन मेरे तन्मयभूत है। चाक्षुष है। जो जड़ दिख रहा है आपको, वह तन्मयभूत नहीं है।

आचार्य विरागसागर जी ने क्या नाम रख दिया? विशुद्धसागर। तुमने देखा ही नहीं कौन है विशुद्धसागर। मैं विश्वास के साथ कह रहा हूँ कि तुम्हारे में ताकत ही नहीं है। तुम जिसे देख रहे हो, वह है ही नहीं विशुद्धसागर। सत्यता ये है।

वस्तुस्वरूप। तो जो है, सो है। व्याख्या द्वैतभूत है। वस्तु तो स्यात् द्वैताद्वैतभूत है।

ज्ञानी! व्याख्यान तो द्वैतभूत ही होता है। व्याख्या अद्वैतमय होती ही नहीं। स्वभाव दृष्टि से, परमार्थ दृष्टि से अद्वैत है, व्यवहार से द्वैत है। पण्डित जी! आप द्वैत हो, 'आत्मद्रव्य।' आत्मा एक है। शरीर मिश्रित, असमान जाति पर्याय से युक्त आत्मा से मैं पण्डित बोल रहा हूँ, ये द्वैतभाव है। ज्ञानी! ये आत्मा ही पण्डित है।

मुमुक्षु! 'अन्यथा वेद पाण्डित्यम्' वेद का पाण्डित्य भिन्न है, शास्त्रों का पाण्डित्य भिन्न है, आत्मा का पाण्डित्य भिन्न है। लोग तो व्यर्थ में क्लेश बढ़ा रहे हैं, कि वेद और शास्त्रों में पाण्डित्य है; लेकिन **जो आत्मा को जानता है, वही परम पण्डित है।** आत्मा को कौन जानता है ? आत्मा को आत्मा ही जानती है, इसलिये आत्मा ही पण्डित है। अहो पण्डितो! पोथी का पण्डित छोड़ो। **पोथी का पण्डित शब्दजाल है, आत्म पण्डित स्वभाव है।** ये शब्दों के पण्डितों का परित्याग करो, प्रत्याख्यान कर दो। ये आत्मा ही पण्डित है। आत्मा ही आत्मा को जानती है। पर से कभी आत्मा आत्मा को जानती नहीं है। पर से कभी आत्मा को आत्मा ने जाना ही नहीं है। **आत्म पाण्डित्य ही परम पाण्डित्य है।** दर्शक-दर्शक ही है। "**एवं सत्तावलोकनदर्शनं दृश्यपदार्थ रूपेण न परिणमतीति**" इस प्रकार सत्तावलोकन दर्शन दृश्य पदार्थ रूप से आत्मा पण्डित नहीं होती है। "**कथन मुख्यत्वेन गाथा गता**" दर्शन-ज्ञान कथन की मुख्यता तीनों में व्याख्यान कर रहे हैं। '**त्याज्यस्य परिग्रहादेः**' जो संयत आत्मा है, वह त्याग के परिग्रह आदि को "**परद्रव्यस्य**" पर द्रव्य को "**निश्चयेन त्याजको न भवति**" निश्चयनय से

त्यागी नहीं होती है। "**तन्मयो न भवतीत्यर्थः**" क्योंकि परपदार्थ को मैं क्या छोड़ दूँ? परद्रव्य मेरे में हैं ही नहीं, अब मैं क्या छोडूँ ? मैं परपदार्थ में हूँ ही नहीं। मैं तो मात्र निज की मूर्च्छा का त्यागी हूँ। परवस्तु का त्यागी नहीं हूँ। तू कह रहा है कि ये छोड़ो, वो छोड़ो। अरे मुमुक्षु! तू किसको छोड़ना चाहता है? तेरे हित में मूर्च्छा भाव है, इसे छोड़ दे, अपने आप छूट जायेंगे। जिसका मूर्च्छा भाव नहीं छूटा उसका बाहर का द्रव्य भी छूटने वाला नहीं है। कहीं ये भैया कहे कि मुझे मूर्च्छा भाव नहीं है, मुझे कपड़े में ही नमोऽस्तु करो। अरे भैया! दिगम्बर आम्नाय में कपड़ों को नमोऽस्तु नहीं है। यहाँ मात्र पंचपरमेष्ठी को नमोऽस्तु होता है। वस्त्रधारी को इच्छामि, वंदामि, वन्दना भी हो सकती है, पर इनको नमोऽस्तु करके 'नमोऽस्तु' से वन्दना मत कर देना। नमोऽस्तु तो नमोऽस्तु है। नमोऽस्तु को आप वन्दना मात्र मानते हो तो ऐलक-क्षुल्लक को भी नमोऽस्तु बुलवाइये आप। अभी आपको नमस्कार और आशीर्वाद के भेदों को समझना पड़ेगा। तुम कहो कि राग-द्वेष-किया। ये राग द्वेष नहीं है, ये वस्तुव्यवस्था ही ऐसी है। यदि कोई श्रावक नमोऽस्तु करेगा तो उसको कहेंगे कि तेरे "धर्म में बृद्धि हो" और कोई वृद्ध नमोऽस्तु करेगा तो "समाधिरस्तु" और कोई चाण्डाल आकर नमोऽस्तु करता है तो "पापक्षयोस्तु" तेरे पाप का क्षय हो। कोई मिथ्यादृष्टि नमोऽस्तु करता है तो "दर्शन विशुद्धि" तेरे दर्शन की विशुद्धि हो। अन्तर है। जब-तक पंचपरमेष्ठी रहेंगे तब-तक नमोऽस्तु रहेगा। पंचपरमेष्ठी कब-तक रहेंगे? अरे मुमुक्षु! तुम क्षेत्र को क्यों देखते हो, काल को क्यों देखते हो? सनातन/त्रैकालिक रहेंगे। पंचपरमेष्ठी का लोप है तो जिनशासन, जिनधर्म का ही लोप है।

इस प्रकार से संयत तो संयत ही है। '**निज मनोहरानन्द लक्षण निर्विकार**', निज आनन्द लक्षण से अपने स्वरूप में स्थिर होता है। इस प्रकार वीतराग चारित्र की मुख्यता से गाथा समाप्त हुई। तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन, उसके भक्तिभूत जीवादि पदार्थ, निश्चय से श्रद्धान के कारक नहीं हैं। तन्मयभूत नहीं हैं। तब क्या होता है? सम्यग्दर्शन तो सम्यग्दर्शन ही है, ऐसा समझना है। पूर्व में चारित्र का व्याख्यान किया, ये निश्चयनय के सम्बन्ध से वर्णन किया। निश्चयनय के संबंध से किसके विषय में? "**ज्ञान-दर्शन चारित्रे**" ज्ञान दर्शन चारित्र के विषय में। हे शिष्य! तुम अच्छी तरह से सुनो, किसको? किससे संबंधी? "**व्यवहारनयस्य**" व्यवहारनय के व्याख्यान को।

ज्ञान ही ज्ञान में लीन होता है, ऐसी ध्रुव दृष्टि जिस जीव की नहीं है, उसे कहाँ तत्त्व का निर्णय है? कषाय का वेदन करने वाला कषायीजीव कषायभाव को आत्मा का तन्मयभूत भाव मानता है, जबकि काषायिक भाव सोपादिक है। काषायिक भाव अशुद्ध आत्मा का परिणमनपना है। काषायिक भाव अशुद्ध आत्मा का तन्मयी भाव नहीं है। **जो काषायिक भाव है, वह संसार भाव है, वह निज की आत्मा से निज की आत्मा का घात भाव है।** जिस दिन जीव को कषाय भाव का

बोध हो गया और ज्ञान भाव का बोध हो गया, उस दिन वो घात पर घात करके बैठ जायेगा। मुझे करने का क्या है? करने-करने के राग में पंचमकाल में ही पहुँच गया, अब और क्या करना चाहता है? अब और छटवें काल के दर्शन करने के भाव हैं क्या? छटवें काल में आने के परिणाम हों तो कर्त्ताभाव मत छोड़ना और छटवें काल से छूटने के भाव हैं तो कर्त्तृत्व भाव से अपने को मुक्त कर लो।

भूमि तो भूमि है। भूमि ने आजतक किसी को अपना नहीं स्वीकारा। लेकिन जीव ने भूमि को खरीद लिया और कह रहा है कि मैं इसका स्वामी हूँ। कितने सारे लोग इस पर अपना स्वामित्व बताकर ऊपर चले गये। लेकिन भूमि का इन्च मात्र भी उस स्थान से भिन्न नहीं हुआ। इन्च मात्र भी परिणमन नहीं हुआ। जब किसी खण्डहर को देखते हैं तो उसकी भूत पर्याय दिखती है। जब किसी खण्डहर को देखते हैं तो उसकी भूत पर्याय विशाल भवनों के रूप में दिखती है। मेरे मित्र किंचित् भी तुम्हारे पास विवेक ज्ञान नाम की वस्तु है तो निहारिये, टूटे खण्डहर में भविष्य का भवन दिखता है, तो वर्तमान के विशाल भवन में भी भविष्य का खण्डहर दिखता है। जब दादा का चेहरा देखो, इस जीव के भूत को देखो, भूत में यौवन था कि नहीं? सुना था कि नहीं? युवाओ! अपने भविष्य की पर्याय को भी देखिये, तुम ऐसे होओगे कि नहीं ?

जो वर्तमान में तीन को जानता है, वह तटस्थ हो जाता है। वह ज्ञानी वर्द्धमान हो जाता है। वर्तमान में अपने भूत की पर्याय को भी जानिये, भविष्य की पर्याय को भी जानिये और वर्तमान में वर्तमान को भी जानिये। **वर्तमान की निर्मलता ही भविष्य की निर्मलता है। वर्तमान की पवित्रता ही भविष्य की पवित्रता है।** वर्तमान की पवित्रता भूतकालीन ज्ञान करा रही है कि पुण्यात्मा जीव होना चाहिये। **जिसने पुण्य किये होते हैं, उसकी सोच ही पवित्र होती है। जिसने पुण्य किये होते हैं, उसके भाव पवित्र होते हैं। जिस जीव के पापकर्म का उदय चल रहा है, उसके वर्तमान बिगड़ जाते हैं, क्योंकि भविष्य की दुर्गति निश्चित है।** जिनको भगवान् वर्द्धमान बनना है यानी अपनी आत्मा को उत्कृष्ट करना है। वर्द्धमान से तात्पर्य तीर्थंकर महावीर ही नहीं समझना। वर्द्धमान का अर्थ होता है विकास, उन्नति। तीर्थंकर महावीर जैसी उन्नति चाहिए है तो आपको वर्तमान को पवित्र करके चलना पड़ेगा, तब कहीं तुम भविष्य में वर्द्धमान बन सकोगे।

सोच आज ही ठीक करना है। किसान आषाढ़ के दिनों में कभी प्रमाद नहीं करते। जब बारिश, फिर धूप, फिर बारिश, फिर धूप। क्या शरीर को कष्ट देने का मौसम होता है? खेत में हल-बखर जोत करके बोनी कर लेते हो, और बोनी कर लेने के उपरान्त अंकुर हो गया। बड़े-बड़े पौधे दिखना प्रारंभ होते हैं, तब भी साता नहीं लेते हो। फिर वहीं छोड़ देते हो पौधों को। फिर एक-एक पौधे के पास बैठकरके उसकी खर-पतवार निकालते कि नहीं निकालते हो? हे कृषक! खेत को बो दिया, अंकुरण

हो गया, पौधे आ गये, लेकिन व्यर्थ की वनस्पति को नहीं हटाया तो विकास होगा क्या? बोया गया बीज क्या उतना धान्य दे पायेगा?

मित्रो! ध्यान दो, जैसे कृषक बीज बोने के उपरान्त, उसके व्यर्थ के खर-पतवार को निकालता है, उसी प्रकार से तत्त्वज्ञानी/ योगी संयम को स्वीकार करने के उपरान्त यूँ ही नहीं बैठता। प्रतिक्षण चारित्र की खेती में विकारी भावों के खर-पतवार आते हैं। कभी मान, कभी माया, कभी लोभ कषाय के बीज बीच में स्पर्शित होने लगते हैं, उनको खर-पतवार की तरह निकालता रहता है। जिसको लोकेषणा है ये सब चारित्र की खेती में खर-पतवार है। भैया! न आपकी प्रशंसा मेरे लिये कार्यकारी है न आपकी मित्रता मेरे लिये कार्यकारी है। चाहे ज्वार बोओ, चाहे बाजरा बोओ, चाहे गेंहूँ बोओ, चाहे शालीधान्य बोओ, लेकिन खरपतवार निकाल करके ही खेती करना पड़ती है।

कहीं लोक प्रशंसा में, कहीं की निन्दा में उलझा साधक, तो ज्ञानी विशुद्धि से हाथ धो बैठेगा। अमरबेल की लता हरे वृक्ष पर लग जाय, लिपट जाय, तो वह निकलती नहीं है, वह छोड़ती नहीं। स्वयं हरयायेगी, पर हरे वृक्ष को भी सुखा देगी। देखा कभी? अमरबेल जो होती है, वह हरे वृक्ष पर घूम-घूम कर के, बिना जड़ के, उस पर हरी रहती है और हरे वृक्ष की सम्पूर्ण हरियाली को खींच लेती है। उसको सुखा देती है, लेकिन बढ़ती है। ऐसे-ही मित्रो! ये काषायिक भाव जो है अमरबेल है।

श्रमणो! ये मोक्षमार्ग है, प्रमाद का नहीं है। ये काषायिक भाव और काषायिक भाव में पच्चीसों ग्रहण कर लेना। काषायिक भाव है, वह अमरबेल है। ये यदि चारित्र के वृक्ष पर लिपट गयी तो स्वयं तो हरयायेगी, लेकिन चारित्र के वृक्ष को सुखा देगी। समझ में आ रहा है? भैया। ये अमरबेल है। कौन? कषाय, प्रमाद, विकथा। ये सब अमरबेल। चारों संज्ञायें अमरबेल हैं। मनुष्य के लिये और साधु के लिये तो महान मोटी अमरबेल है मान कषाय।

भैया सत्य है, मान कषाय, यानि अब मेरे से ऐसा बुल गया, तो वही होना चाहिये। बड़े-बड़े त्यागी गण भी मान के मगरे पर चढ़ जाते हैं। जिस नदी के प्रवाह में हाथी बह जाये, वहाँ चूहा कहाँ बचेगा? चतुर्थकाल-जैसे काल में, मृदु मति-जैसे मान में आकरके नाम छुपा बैठे थे और फिर हाथी बन गये। **बाहरी आचरण भिन्न विषय है और भावों का आचरण भिन्न विषय है।**

आहार संज्ञा पर नियंत्रण, मैथुन संज्ञा पर नियन्त्रण, परिग्रह संज्ञा पर नियंत्रण, भय संज्ञा पर नियंत्रण। चारों संज्ञाओं से हटकर कोई संज्ञा है या नहीं है? कैसे नहीं है? व्याकरण में संज्ञा है कि नहीं? चार निक्षेपों में संज्ञा है कि नहीं? नाम निक्षेप क्या है? चौबीस घण्टे आकुलता में भरा हो जीव और उसका

नाम 'संतोष' है। नाम से संतोष है, पर संतोष नहीं है। जो शांत रहते हैं, पर उनका नाम प्रलय है। जो चूहों को देखकर डरते हैं और नाम शेर सिंह। बेचारा शांत रहता है, भगवान् का नाम लेता रहता है, नाम ज्वाला प्रसाद है। ज्वाला की तरह फफक रहे हैं, उसका नाम है शांति लाल। ओहो! ये सब क्या है? ये संज्ञा है, संज्ञा। ये नाम है, नाम। आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये जो चार संज्ञायें हैं, इनसे तो जीव बच जाये; पर जो ये नाम वाली संज्ञा है, उससे सबसे ज्यादा परेशान है। सबसे ज्यादा परेशानी तब होती है, जब मेरा नाम क्यों नहीं होता? क्या हो गया भाई? नाम वाली संज्ञा परेशान कर रही है सारे जगत् को। बेचारे का चेहरा तो मुरझाया हुआ है। नाम 'कमल' जो खिल रहा है, उसका नाम रख दिया फूलचन्द। मुमुक्षु चारों संज्ञाओं से भिन्न कोई संज्ञा है तो नाम संज्ञा है। आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि चारों संज्ञाओं पर तो तुमने विजय प्राप्त कर ली, लेकिन हे श्रमण! समाधि की अंतिम घड़ियाँ चल रही हों, तब आहार संज्ञा को दबाने के लिये उपवास कर रहे हो। समाधि की शैय्या सिर पर हो, सल्लेखना का समय चल रहा हो और संज्ञा के लिये क्षपक आहार छोड़ चुका है, यहाँ तक कि गर्म पानी भी छोड़ चुका है। धन्य हो उस जीव को, लेकिन फिर भी सबसे कठिन संज्ञा सता रही है। क्या? कि मेरी समाधि के समाचार अखबारों में गये कि नहीं? स्वामी! एक माह का उपवास किया और मेरे उपवास के समाचार पत्र-पत्रिकाओं में पहुँचे कि नहीं? हे योगीश्वर! तुमने शरीर को सुखा डाला, भोजन से विलग हो गये, लेकिन नाम को और सुखा लेते तो व्यर्थ में किसी से कहना तो नहीं पड़ता। पत्रिका में छपने के लिये उपवास नहीं किये, कषायों को कृश करने के लिये उपवास किये। भैया! बहुत समय लगेगा। जीवन निकल जाये, लेकिन नाम वाली संज्ञा जीव को सर्वाधिक परेशान किये है, जबकि ये बोध होना चाहिये कि ज्ञान तो ज्ञान ही है, ज्ञान ही आत्मा है। भैया! ज्ञायक-ज्ञायक भाव ही आत्मभाव है। ज्ञायकभाव से भिन्न जो कुछ है, वह आत्मभाव नहीं है।

''**ज्ञायको ज्ञायक एव**'' ज्ञाता ज्ञाता ही है। ज्ञाता परज्ञेय नहीं, ज्ञाता पर ज्ञायक नहीं है।

आप लोग जो मैं कह रहा हूँ उसे मत सुनो। जो मैं कह रहा हूँ, उसे अपना बनाकर सुनो। मेरे ज्ञान को अपना ज्ञेय बनाकर मत सुनो। अपने ही ज्ञान को अपना ज्ञेय बनाइये। मेरे मित्रो! जो विद्वान् हैं वे एक को, अपने परिणामों को, ज्ञेय बनाकर निहारें कि जब किसी को अपने नाम का पत्र मिलता है तो मुस्कुराहट आती कि नहीं? जब कोई तेरे नाम के प्रति अशुभ सोचे तो दुःख होता कि नहीं? जबकि असमान जाति पर्याय मैं नहीं हूँ, ये तो असमान जाति पर्याय का नाम रख दिया है, मैं वह नहीं हूँ। न मैं प्रशंसारूप में हूँ, न मैं निन्दारूप में हूँ। मैं तो मात्र ज्ञायक ही हूँ। ऐसा वेदन जब-तक आ रहा है, तब-तक ही सुख है। जिसने अपनी निन्दा, प्रशंसा दोनों को छोड़ दिया है वह जीव सुखी-ही-सुखी है।

श्वान के मुख में रोटी, अच्छा बढ़िया फुलका, उसके पीछे पचासों श्वान वह दुःखी है कि सुखी?

पचासों श्वान पीछे पड़े हैं। कोई इधर से काट रहा है, कोई उधर से। न तो वह खा रहा है, न छोड़ रहा है। दौड़ रहा है, और दौड़ता रहेगा। तब-तक अन्य श्वान वहाँ उसे सतायेंगे कि नहीं? श्वान! यदि इस दुःख से मुक्ति चाहते हो तो, या तो शीघ्र खा लो या छोड़ दो। तो सारे श्वान तुझे छोड़ देंगे।

हे मित्रो! ऐसे-ही हम मनुष्यों का है। हम नाम के पीछे दौड़ रहे हैं तो दुनियाँ तुझे काटने के लिये दौड़ेगी-ही-दौड़ेगी। जब-तक वस्तु में राग है, तब-तक बन्ध-ही-बन्ध है। यही समयसार है। इन्सान के सुख का राग छूटता है तो इन्सान भगवान् बनता है। मैं क्या करूँ ? क्या न करूँ ? तू अपने कार्यों से स्वतंत्र होकर सो जा, तुझे नींद तभी आयेगी जब तू दूसरों की चिन्ता छोड़ देगा। दूसरों की चिन्ता रहेगी, तो अच्छे-से-अच्छे गद्दे बिछाकर सोना, लुढ़कता ही रहेगा, लेकिन नींद नहीं आयेगी। नींद कब आती है व्यक्ति को? जब निश्चिंत हो जायेगा, लेकिन जब चिन्ता होगी, तब नींद नहीं आयेगी। चिन्ता किसको हो रही है, किसके लिये हो रही है? मेरी आत्मा को हो रही है, पर ज्ञेय के लिये हो रही है। बेटी के पिता से पूछना, जब उसकी शादी होगी तो उसे कौन रखेगा? जिसके साथ शादी होगी वह रखेगा, लेकिन उसका पिता क्यों सूख रहा है? बेटी की चिन्ता में।

जीव ने जीवन के जो निषेक हैं, वह पर के दुःख या पर के सुख के लिये ही नष्ट किये हैं। अपने लिये क्या किया? जीव के जो आयुकर्म के निषेक हैं, वे या तो पर के दुःख के चिन्तन में गये, या पर के सुख के चिन्तन में। स्वयं के लिये कितना किया? ज्ञात नहीं था क्या?

बेचारा रात्रि विश्राम भी करता है तब भी मोबाइल कान पर रखकर सोता है कि बेटे से बात करूँगा। ज्ञानी रह रहा है आत्मा में, धर्मध्यान में लगा है, व्यापार कर नहीं रहा है और आश किससे लगाये है? बेटा! क्या हुआ? दुकान पर क्या हुआ है? मेरे मित्र! तुझे कुछ भी कहना नहीं है, तुझे कुछ भी करना नहीं है। तुझे मालूम है कि आश्रय किसके ऊपर होता है। भैया! तू तो दृष्टांत मात्र है। माना कि ये ब्रह्मचारी जी हैं, समाज इनको भोजन किस बात का देती है? रहने को बढ़िया भवन (धर्मशाला) कोई विकल्प ही नहीं है। कोई जीव तो तलाशता है भोजन और भवन। दोनों ही समाज ने दे दिये। अब भी ये जीव किसी के बारे में सोच रहा है कि मेरे बड़े भैया कैसे हैं? मेरे छोटे भैया कैसे हैं? हे जीव! तू भैया, बड़े भैया के राग में बन्ध कर रहा है, जबकि बन्ध के लायक ये स्थान हैं नहीं। तू तो निश्चिंत होकर जीवन जी रहा था, लेकिन जब भी किसी को राग रहता है, तो कहीं होकर भी बन्धन के भाव को सामने सजाकर बन्ध को प्राप्त हो ही जाता है। यहाँ तो भैया जी हैं, लेकिन भैया छोटे-बड़े कोई हो, इनको क्या है? तब भी भाव क्या करते हो?

मेरे मित्र! सबसे कठिन कोई साधना है तो बन्धुओं को दूर करके बैठ पाना। ये सबसे बड़ी साधना

है। मेरे मित्र! तू महाराज बन गया, तेरे बेटे की माँ आर्यिका बन गई और मुनि बनने के बाद तुम दोनों ही भले ही अलग-अलग बैठ जाओ, पर मन में ये भाव आ रहे हैं कि माताजी कैसी होगी ? हे जीव! तूने पूरा जीवन ही बर्बाद कर दिया।

वर्तमान का सुख मुठ्ठी भर छोड़ा है, भविष्य का सुख मिट्टी में छोड़ा है। कैसे होंगे? जैसे थे, वैसे ही तो होंगे। क्या आपके अनुसार होंगे? वहाँ तुम जा तो पा रहे नहीं, क्योंकि चतुर्मास चल रहा है। पर मित्र! जब से अलग रहकर कर्मों का क्षय हो सकता था, तो जो तेरे नहीं हैं, उसका राग करके कर्मों का बन्ध भी हो सकता है। आज महावीर स्वामी हैं क्या? उनका नाम स्मरण करके भाव विशुद्ध होते कि नहीं ? यदि भाव विशुद्ध न होते होते, तो आप घर छोड़कर यहाँ आते नहीं। अंतरंग का भाव ही तो लेकर आता है। भक्ति भी ले आती है।

ओहो! इस आने के बीच में कितनी उमंग आपके बीच में होती है कि चलो महाराज जी के पास चलें। जब से ये उमंग तुम्हारे तन में हुई है, तब से यानि उसी क्षण से कर्मों की निर्जरा प्रारंभ हो चुकी है। कुछ खाने को मिला नहीं, पीने को मिला नहीं, मात्र आँखों से देख रहे हो रूप को। देश के कोने-कोने से क्यों आये जीव ? पाषाण की प्रतिमा के प्रतिष्ठित होने पर उस में शक्ति का संचार हो जाता है कि देखने मात्र से अपने भीतर एक अभिनव शक्ति का संचार होता है। जितनी प्राचीन प्रतिमा होगी विशिष्ट आचार्य द्वारा सूरि मंत्र हो, विशिष्ट प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठा हो, उस प्रतिमा को निहारो। अलग से शक्ति संचार होता है। बस कुछ नहीं करना। जैसे भगवान् न होने पर, भगवान् का नाम स्मरण करने मात्र से कर्मों की निर्जरा होती है कि नहीं? ऐसा-ही मित्र! जो तुम्हारे बीच में नहीं है, हमको छोड़कर क्यों चले गये? ऐसे रागी लोगों के नाम का स्मरण करने मात्र से कर्मों का बन्ध होता है।

जो चले गये उनको कभी गाली दे देते हो, कभी प्रशंसा कर देते हो, पर आपको पता नहीं है वहाँ पर भी बंध हो रहा था। तुम स्वयं चिन्तन करो कि जो नहीं है फिर क्यों बन्ध हो गया? निश्चेतन होकर कर्मबन्ध कर गया। यहाँ आया और सोचने लगा, कि यहाँ आये तो हैं ही, चलो कोई स्मारक देख लेते हैं। किसी को सुन्दर लगते हैं, जबकि उसकी दीवार मात्र भी तुम्हारी नहीं है और सुन्दर लग रहे हैं। कोई सोचता है कि ये मात्र पत्थरों के ढेर लगे हैं, क्यों यहाँ आ गये? और असुंदर लग रहे हैं, वहाँ भी मात्र लेकर नहीं आये, पर मित्र कर्मबन्ध करके जरूर लाये हो। भैया! अभी तुझे पता नहीं है कि मुझे यहाँ राग है कि नहीं है। अभी किसी से भी पूछो कि महल में राग है, तो वो मना करेगा कि मुझे कहीं भी नहीं है। अभी मित्र ठहरो। तुम विदेश जाओ। वहाँ कोई कहे कि कहाँ से आये हो? मैं आगरा से आया हूँ। अरे! वो ही आगरा, जहाँ ताजमहल और लालकिला है, वो ही आगरा? इसके अन्दर तुरन्त ही इसे पता ही नहीं था कि मुझे महल से राग था। राग था कि नहीं? भैया तेरी पड़ोसी की दीवाल से दीवाल

लगी है और तुम आपस में बोलते नहीं हो और वो ही पड़ोसी तुम्हारा आज यहाँ मिल जाये, तो ज्ञानी आप यहाँ अलग से मुस्कुरा के बोलोगे बस मालूम चल गया, सत्ता में रखा राग, वासना में रखा राग भी होता है। जिसे आप लोग पहचान नहीं पाते हो, पर है।

किसी भी क्षेत्र का, जिसे आपने कभी भी देखा हो, अगर वो आजाये तो अलग से बात करते हो उससे। आपके भाव कहाँ जाते हैं? अन्य प्रांतों के लोगों को देखकर के आप उत्कण्ठित हुये क्यों हो ? हाँ ये हमारे देश के हैं, ऐसा भाव आता है कि नहीं आता। मेरे मित्र! आप इनसे मिले भी नहीं पर ये भाव करता रहा कि ये मेरे देश के हैं। आगम कहेगा कि अभी रति भाव का विनाश नहीं किया। रतिभाव का विनाश नहीं हुआ जब-तक, तब-तक मुमुक्षु मोक्षमार्ग बहुत दूर है।

मुमुक्षु! गृहस्थावस्था में राग दूर करना चाहता है, तो पहले जो परिग्रह का संग्रह करके रखा है उसको दूर कर अपने आप से। बेल कितने ऊपर तक जा सकती है। मेरे मित्र तू बेल को छोटा करना चाहता है। जितनी लम्बी (बल्ली) रस्सी गई होगी बेल उतने ऊपर तक जाती है। तू बेल को छोटा मत कर तू बल्ली को उखाड़ के फेंक दे, रस्सी को काट दे। तू बल्ली को उठाना नहीं चाहता है और बेल को छोटा करना चाहता है और राग की सामग्री को हटाना नहीं चाहता, पर राग को कम करना चाहता है।

राग तो लता है, राग तो बेल है वहाँ। कहाँ तक बढ़ेगी? जहाँ तक सहारा दिखेगा, वो बेल दौड़ती है। ऐसे-ही ज्ञानियो! जहाँ-जहाँ सहारा होता है, वहाँ राग दौड़ता है। समझ में आ गया? अब क्या करोगे? 'समयसार' जैसे ग्रन्थ को भैया! ऐसे समझना पड़ता है। नहीं-तो ये लोग कहेंगे कि सूखा विषय चल रहा है। पर भैया! ये सूखा विषय नहीं है। लता को मत तोड़ो। राग को बढ़ानेवाली सामग्री से तो दूर नहीं हो रहे हैं और कह रहे हैं कि राग कैसे कम होगा? अगर राग को कम ही करना है तो राग के कारणों को हटा दीजिये। पर देखिये, नई-नई सामग्री तो लेकर आता है और जब नई सामग्री होती है, तो नया राग उत्पन्न होता है।

पूजा को जा रहा था मंदिर, उसके पहले बेटे की माँ ने बोल दिया 'स्वामी! आज तो नई मिठाई बनाई है, आप जल्दी आना।' ज्ञानी! तूने तो बोल दिया कि जल्दी आना, पर वो तो गया ही नहीं, अब आये क्या? वो शरीर को लेकर तो मंदिर पहुँच गया, पर मन तो उसका यहीं है मिठाई पर। अब उसकी पूजा देखो, पूजा का तरीका ही बदल गया। अब पूजा का स्वाद नहीं, नई मिठाई का स्वाद आ रहा है। आगम कह रहा है कि जो-जो मूर्च्छा के साधन हैं, उनसे निज को दूर करो साधन दूर नहीं करना चाहते हो और मूर्च्छा कम करना चाहते हो, राग कम करना चाहते हो, तो ये सम्भव नहीं है।

खाद-पानी डालकरके तू बेल को सुखाना चाहता है। घर छोड़े बिना, गृहस्थी छोड़े बिना तू राग

को हटाना चाहता है। ज्ञानी! समझ गये क्या ? गृहस्थी में राग नहीं छूट सकता। अरे ज्ञानी! गृहस्थ का राग छूटता है, तभी तो मुनि बनता है। ओहो! आप बोल क्या रहे हो? गृहस्थ का राग छूटे फिर तो मुनि बन ही नहीं सकता।

शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। कामदेव, चक्रवर्ती, तीर्थंकर। इतनी उपाधियों से लिप्त, छह खण्ड के स्वामी गृहस्थ थे कि नहीं? फिर राग कैसे छूटा? और नेमिनाथ स्वामी को राग था कि नहीं? वो छूटा कि नहीं? राग नहीं होता तो स्नान करने गये क्यों? और राग नहीं होता तो अपनी लंगोटी दूसरों पर छोड़कर गये क्यों? राग नहीं होता तो नागशैय्या पर गये क्यों? राग नहीं होता तो शंख बजाया क्यों? मुख से बजने वाली वस्तु को नाक से बजा दिया। राग नहीं होता तो मौर बाँध करके, रथ पर बैठ कर गये क्यों? अरे ज्ञानी! राग तो था, पर राग होने पर भी क्या अवस्था होती है।

यथा-यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा-तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।।37।।
यथा-यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा-तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।।38।। इष्टो.।।

जैसे-जैसे भीतर संवित्ति का जागरण होता है तो सुलभ से सुलभ प्राप्त विषय के द्रव्य से भी, अपनेआप अरुचि हो जाती है। जैसे-जैसे अरुचि हो जाती है, फिर सुलभ से सुलभ विषय भी कुछ नहीं कर सकते हैं जैसे-जैसे वो तृप्त करते जायेंगे, वैसे-वैसे अरुचि होती जायेगी और जीव द्रव्यों से दूर होता जायेगा। अभी तुझे अरुचि नहीं हुई। मुझे मालूम है कि इतने सारे लोग सीधे-सादे नहीं बैठे। शेर को सीधा मत समझो। ये सब मेरे सामने शेर दिख रहे हैं। माँ के सामने कैसे थाली फेंकते हैं? और पत्नी के सामने कैसे थाली फेंकते हैं ? याद है कि नहीं? टुन्ना गया। टुन्ना जाना जानते हो? रूठ गया।

गुस्सा में आकरके, भुकरके बैठ गया। अगर सामने आ गया तो मैं तो कहूँगा रह भूखा। एक-दो दिन और बैठे रहो, अपने आप ठीक हो जाओगे। तात्पर्य समझो, मेरे मित्र! ये थाली क्यों फेंकी? रुचि का नहीं मिला सो थाली फेंकी। भैया! सत्य बताना, थाली फेंकी कि नहीं? कब फेंकी? जब गुस्से में आया। गुस्से में क्यों आया? जब मन का खाना नहीं मिला। जब मन का नहीं मिला तो ये क्यों करता है? बस-बस, बहुत अच्छी बात बतायी तूने। ज्ञानी! अभी तेरी अरुचि पूर्ण नहीं हुई, जब अरुचि हो जाती, तो फेंकता नहीं, थाली छोड़कर ही भाग जाता। अभी तेरी विषय-कषाय से अरुचि नहीं हुई, इसलिये भरा हुआ दिख रहा है। अरुचि हो जायेगी तो तू जैसे थाली फेंक कर भाग जाता है, वैसे-ही तू घर छोड़कर भाग जायेगा। अरुचि करो, अरुचि।

आपको मालूम तुलसीदास जी कालिया नाग को पकड़करके ऊपर चढ़ गये। पत्नी ने पूछा 'स्वामी जी! आ कैसे गये?' बोले-रस्सी पड़ी थी उसको पकड़करके आ गये। पत्नी बोली दीपक से देखो ज्ञानी! ये रस्सी है कि कालिया साँप है? जितना राग मेरे प्रति है, उतना राग परमात्मा के प्रति हो जाये, तो कल्याण ही हो जाये।' उसी क्षण पत्नी से कहते हैं कि तू मेरी गुरु है। ये रुचि नहीं है, विश्वास मानो। सम्पूर्ण विषय-कषाय के प्रति अरुचि उत्पन्न नहीं होती है और वैराग्य एवं चारित्र से क्यों डरता है? क्योंकि रुचि नहीं है उसमें। **जितनी वैराग्य में रुचि हो जायेगी, उतना ही चारित्र में आनन्द लेगा।** आपके चेहरे पर फीकापन दिख रहा है, साधु बनकर के भी, इसका मतलब है कि तुम जीवन ढो रहे हो, पिच्छी-कमण्डलु ढो रहे हो, रुचि नहीं है। रुचि होना चाहिए है, अरुचि होना चाहिये है। इसी का नाम प्रीति है, इसी का नाम अप्रीति है।

यहाँ पर ''आचार्य जयसेन स्वामी'' परमार्थ दृष्टि से कह रहे हैं कि दीवाल तो दीवाल है, खड़िया तो खड़िया है। वह तन्मयभूत नहीं है। यह व्याख्या पाँच गाथाओं से कर दिये हैं। व्यवहार दृष्टि से पाँच गाथाओं की व्याख्या कर रहे हैं। समझ में आया आप सबको? मस्तिष्क ठण्डा करना पड़ता है। **तत्त्व को गहराई से समझना पड़ता है, तभी साधुजीवन जी सकते हो।** पर ध्यान रखो, धर्मायतनों का बड़ा रहस्य है। धर्मायतनों का राग तेरी समाधि को भंग करता है। वृद्धावस्था के आते-आते इन धार्मिक प्रपंचों से दूर नहीं हो पाये तो समाधि नहीं हो पाएगी। भैया! समाधि के काल के आते-आते, जो आज तक धार्मिक अनुष्ठान किये हैं, वो भी हमारे लिये प्रपंच होते हैं।

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहार बहिः स्थितेः।
जायते परमानंदः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥47 इष्टोपदेश॥

'**आत्मानुष्ठान निष्ठस्य**' न पंचकल्याणक, न गजरथ, न विधान, न पूजा, न पाठ, कुछ भी नहीं। फिर क्या ? 'आत्मानुष्ठान' **आत्मानुष्ठान ही मेरा परम अनुष्ठान है।** आप लोग सुन रहे हैं? फिर कुछ समय बाद आप मेरे से कहना कि महाराज आपने आगरा में समयसार की वाचना में कहा था कि सबसे विराम ले लो और एकमात्र अनुष्ठान बचा है, सारे अनुष्ठान कर चुके हो, अब अन्तिम अनुष्ठान है तेरी समाधि।

जितने वृद्ध बैठे हों, वो ध्यान दो। जितनी यात्रायें करनी हों, अभी करके आ जाओ। जितने विधान, पंचकल्याणक का आयोजन करना हो, अभी कर लो। लेकिन अन्तिम श्वास के काल में ये विकल्प भी मत रखना कि सम्मेद शिखर के लिये दान देना है। लोग तो कहेंगे कि हाँ, कितने अच्छे भाव हैं? दान देने के परिणाम हैं अन्तिम समय में। पर आपको मालूम है, आपने एक करोड़ का दान

बोल दिया और बेटों में उतनी सामर्थ्य नहीं थी, अब सबके सामने बोल दिया तो देना ही होगा। तुमने तो घोषणा कर दी, उनके भावों की हिंसा होगी। इधर लग रहा है कि बेटे देंगे कि नहीं? तुम्हारे परिणाम खराब हो गये। जब-तक भैया तुम्हारे हाथ-पैर चल रहे हैं, खूब दान कर लो। जितना दान करना है अभी कर लेना। अंत में दान के लिये भी त्याग दे देना कि मुझे अब कहीं दान नहीं देना। कोई विकल्प नहीं, निश्चिंत होकर जाऊँगा।

आचार्य विरागसागर जी महाराज ने मेरे से दीक्षा के पहले पूछा कहीं तीर्थवंदना को जाना है क्या? मैंने कहा 'कहीं नहीं जाना।' बोले 'भैया! सुनो, जाना हो तो चले जाओ।' मैंने कहा 'मैं सम्मेद शिखर की वंदना करके आता हूँ।' सम्मेद शिखर की वंदना करके आ गया, फिर बोले-और कहीं जाना है? गिरनार बगैरह? मैंने सोचा कि इनको क्या मतलब? अब जीवन भर तो पड़ा है वंदना के लिये। बोले, 'भाई! सुनो। **तीर्थवंदना के राग में वन्दनीय की वंदना भी भूल जाता है जीव।**

जब तुम वंदना के लिये जाओगे तो किसे बुलाओगे कि मुझे सम्मेद शिखर की वंदना करना है, मेरी व्यवस्था बनाओ? तो क्या तुम मुनि होकरके भीख माँगोगे वंदना के राग में? अब आप वंदनीय बन रहे हो, तुम जहाँ रहोगे लोग तुम्हारी वंदना करने के लिये आयेंगे। तुम वंदना का राग छोड़करके वंदनीय बनकर बैठ रहे हो, फिर संक्लेशता मत रखना। जहाँ सहजता में तीर्थ मिले, उनकी वन्दना करना। बहुत बड़ा विकल्प होता है कि अब मैं नमक छोड़ता हूँ, अब मैं मीठा छोड़ता हूँ, क्यों? मुझे अमुक तीर्थ की वंदना करना है। मेरे मित्र! कदाचित नहीं पहुँच पाये और खाने के भाव आ गये, तो संक्लेशता बढ़ेगी। या फिर आप संघ में हो तो संघ के अनुशासन में रहना पड़ रहा है। यदि संघ नहीं जा रहा है तो या तो आप संघ का विच्छेद करोगे या प्रवेश करोगे तो घुटन होगी। सोचोगे कि कहाँ फँस गया, वंदना भी नहीं करने दे रहे हैं। भैया! ऐसे भाव नहीं करना भगवान् की भक्ति करो एक कक्ष में बैठकर। चाहे नंदीश्वर हो, चाहे सुमेरु हो, चाहे कृत्रिमाकृत्रिम जिनबिम्ब जहाँ भी हो "**यत्र प्रसादेन**" जिसके प्रसाद से तीनों लोको की यात्रा हो जाती है एक कक्ष में बैठकर के। किससे? सरस्वती के प्रसाद से। जिनवाणी का अध्ययन बैठकर कर लो, जहाँ तुम कहीं गये नहीं हो, जा नहीं पाओ, वहाँ की भी वंदना हो जाती है जिनवाणी के चरणों में बैठकर।

ध्यान के माध्यम से चराचर की वंदना कर सकते हो, इसलिये भ्रमण का नाश करने के लिये यहाँ आये हो, भ्रमण करने के लिये नहीं आये। फिर आप कहोगे कि विहार क्यों करते हो इतना लम्बा ? ज्ञानियो! लम्बा विहार भ्रमण के लिये नहीं कर रहा हूँ। कहीं राग में भ्रमण न होने लग जाये, इसलिये मुनियों को भ्रमण करना चाहिये। भैया! आप लोगों का सोच बहुत अच्छा है, मुनियों के प्रति आस्था है, श्रद्धा है, अनुराग है। आपको लगता है कि कष्ट सहन कर रहे हैं, पर मेरे मित्र! ये सभी दीक्षा लेने आये

थे, कष्ट तो होता है, पर कष्ट मिटाने के लिये कष्ट सहन किया जाता है। जब काँटा लग ही नहीं रहा है, तो काँटा निकालने के लिये क्यों लगवाओगे? वो तो धोखे में लग गया था, अब निकालने के लिये जानकर लगवाना पड़ता है। तो ज्ञानी! बन्ध पूर्व में किये थे, इसलिये भ्रमण चल रहा है। अज्ञानता में किये थे, अब उस भ्रमण को नाश करने के लिये भ्रमण करना पड़ेगा। एक जगह बंध जाओगे तो राग के काँटे और लग जायेंगे, इसलिये भ्रमण करो।

आज यहाँ, कल वहाँ। ऐसे-ही विचरण करो। दुनियाँ भले ही तुम्हें अपना कहे, तो उसका कल्याण है, पर मैं दुनियाँ को अपना कहूँ, ये मेरा अकल्याण है। आप सब मानो कि महाराज मेरे हैं, पर महाराज नहीं मानें कि तुम मेरे हो। साधु का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता। धन्य हो, धन्य हो।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति ॥ 41 ॥

जो बोलते हुए भी नहीं बोलते हैं, चलते हुए भी नहीं चलते हैं, देखते हुये भी नहीं देखते हैं, वो तो तत्त्व में ही स्थिर रहते हैं।

अब व्यवहार को कहते हैं। जितना गहरे से निश्चय का व्याख्यान किया, उतने ही गहरे अब व्यवहार का व्याख्यान कर रहे हैं। जो अन्तर नहीं समझ पायेगा, उस व्यक्ति को यहाँ का व्यवहार भी निश्चय जैसा लगेगा। भैया! मैं बहुत सारा व्याख्यान व्यवहार का करता हूँ, पर लोगों को लगता है कि महाराज जी निश्चय से बोल रहे हैं। सागर में चार महीने रयणसार' जी चला। रयणसार जी में किसका वर्णन है? व्यवहार का। श्रावकाचार का। लेकिन तब भी लोग ये नहीं समझ पाये कि ''श्रावकाचार'' चल रहा है कि ''समयसार'' चल रहा है, जबकि श्रावकाचार ही चल रहा था। भैया! जिसे आप व्यवहार मानते हो, वह तो लोकाचार है। एक नेता जी मेरे से बोले महाराज जी! व्यवहार का व्याख्यान तो करो। मैंने कहा कि बड़ा विचित्र जीव है। मैं व्यवहार से ही तो बोल रहा हूँ। वह बोला, महाराज जी! यह तो बताओ कि व्यवहार में कैसे रहा जाता है? मैंने कहा ठीक है। लेकिन जब मैंने व्यवहार का वर्णन किया तो मालूम क्या बोलता है जीव? कि महाराज! मुझे जीने दोगे कि नहीं जीने दोगे?

मैंने कहा-भैया! अभी तो कह रहा था कि व्यवहार का वर्णन करो और अब मैं कर रहा हूँ तो हे स्वामी। मैंने कहा 'जो पत्ती चरे, सो बकरी बने' धनिया पत्ती का राग नहीं छूट रहा है, धनिया पत्ती खाने में लगा हुआ है और मेरे से कह रहा है कि व्यवहार का वर्णन करो। ये व्यवहार ही तो है, निश्चय थोड़े ही है। अभक्ष्य का त्याग करो, व्यवहार है कि नहीं? मेरी समझ में आ गया कि ये न तो व्यवहार को जानता है न निश्चय को जानता है। ये मात्र जानता है लोकाचार को। उनका उद्देश्य था कि महाराज

ऐसे प्रवचन करो जिसमें नेतापना झलके, जिसमें आप कहो कि समाज में ऐसा होना चाहिये वैसा होना चाहिये। मैंने कहा ज्ञानी! ये व्यवहार नहीं है। ये लोकव्यवहार है। अन्तर समझ में आया कि नहीं? व्यवहार, निश्चय और लोकव्यवहार। जो व्यवहार धर्म है, वह तो परम्परा से मोक्ष का कारण है और जो निश्चय धर्म है, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है; लेकिन लोकव्यवहार न परम्परा से और न ही साक्षात् बिल्कुल ही मोक्ष का कारण नहीं है। घर जाकर सासू के पैर दबाओगी, कौन-सा व्यवहार है? मात्र लोकाचार है। मैं मना नहीं कर रहा हूँ। इसे व्यवहार धर्म मत कहना, लोकव्यवहार कहना। कोई ने नमस्कार किया, यह तो व्यवहार धर्म में आ जायेगा; पर आपने अपने पति के पैर छू लिये, यह व्यवहार धर्म नहीं है, यह लोकव्यवहार है।

अन्तर डालो, नहीं तो घर जाकर जितने भी कारण हैं वे सब मोक्ष-मार्ग हो जायेंगे। हाँ, ऐसे भी लोग हैं जो दुकान खोलने के पहले देहरी के पैर छूते हैं। ये भी मोक्षमार्ग हो जायेगा उनका। किसान भी अपने हल की मुठिया के पैर पड़ता है। बनिया अपनी तराजू के पैर पड़ता है। नहीं-तो ये सब मोक्षमार्ग हो जायेगा। पूछो दुकानदारों से, दुकान खोलने के पहले दोनों हाथ से जय भगवान्, ताले के पैर पड़ते हैं जीव, तो वे भी परमात्मा हो जायेंगे। 'तालेनाथ।' यहाँ लोकव्यवहार की बातें नहीं चल रहीं हैं यहाँ व्यवहार की भी बात होगी तो परमार्थ को सिद्ध करने वाले व्यवहार की ही बात होगी। व्यवहार को थोड़ा बुद्धि से समझना, नहीं-तो यह आपको निश्चय-जैसा लगेगा।

लोक में परद्रव्य दीवालादि को व्यवहार नय से, श्वेत वर्ण देखा है। दीवाल सफेद दिख रही है। क्यों ? खड़िया मिट्टी पोत दी है। चूना पोत दिया है। व्यवहारनय से दीवाल सफेद कर दी है, तो कह रहा है कि सफेद कर दी है। सफेद तो नहीं है न? भैया! महाराज जी को मीठा दूध दो। इसका मतलब दूध मीठा नहीं है, दूध मीठा कर दिया है। मतलब यह कि दूध में तुमने मीठा डाल दिया। यानि कि दूध में बूरा पड़े होने के बाद भी, बूरे के द्वारा दूध मीठा हो जाने पर भी, तन्मयभूत नहीं है। जो श्वेत वर्ण से दीवाल श्वेत हो गई है, परन्तु फिर भी तन्मय भूत नहीं है। ''**का कर्त्री**'' कौन करता है श्वेत? श्वेतिका यानि खड़िया मिट्टी। क्या करके श्वेत करता है? जब दीवाल को खड़िया श्वेत कर रही है, तो दीवालभूत होकर कर रही है कि खड़िया खड़ियाभूत होके कर रही है? समझो, व्यवहारनय ही चल रहा है। खड़िया खड़ियाभूत होके ही श्वेत कर रही है, खड़िया दीवालभूत होके दीवाल को श्वेत नहीं कर रही है। स्वकीय कहा है, अपने श्वेत भाव से। ये तो हुआ दृष्टांत। श्वेत खड़िया मिट्टी के दृष्टांत से ''**परद्रव्यं घटादिकं**'' मैंने घड़े को जाना। तो परद्रव्य कहता है ''**ज्ञेयं वस्तु**'' तो घट क्या है? ज्ञेयवस्तु यानि जाननेयोग्य वस्तु। '**घटादिकं व्यवहारेण जानाति।**' हाँ, ठीक तो है, मैंने व्यवहार से घड़े को जाना। '**न च परद्रव्येण सह तन्मयोभवति**' अरे! घड़े को देखकरके घड़ा है, मैंने घड़े को घड़ारूप में

जाना तो है। अपने ज्ञान घट रूप जाना, परन्तु घटभूत होके घड़े को जाना क्या ? जाना तो मेरे ज्ञान ने, मेरे ज्ञान से जाना, फिर भी मेरे ज्ञान ने घटभूत होकर घड़े को नहीं जाना। खड़िया है, खड़िया ने दीवाल को श्वेत किया, पर खड़िया ने दीवाल बनकर नहीं किया। मेरे ज्ञान ने घड़े को जाना, फिर भी घटरूप होके मेरे ज्ञान ने घड़े को नहीं जाना। आपने रोगी की नाड़ी देखी। डाक्टर साहब! रोगी की नाड़ी अपने हाथों से अपने ज्ञान से तूने जानी। मेरे मित्र! तू रोगी की नाड़ी से रोग को तो जान रहा था पर अपने ही ज्ञान से, अपने ज्ञान में रोग को जान रहा था, पर रोगी बन के रोग को नहीं जान रहा था, तू वैद्य बनके ही रोग को जान रहा था। तू रोगी बन के रोग को जानेगा तो हे ज्ञानी! फिर डाक्टर के लिये डाक्टर चाहिये पड़ेगा। अब जब तू ही बीमार हो गया, किसी को 105 डिग्री बुखार था और वो आपके यहाँ आया क्लीनिक में, और उसने कहा डॉक्टर साहब! थर्मामीटर लगाकर के देखो अर्थात् नाड़ी से पहचानो। अरे! इसको तो 105। 105 स्वयं में चढ़ाके जानेगा तो बताओ इसको स्वयं को भी डॉक्टर चाहिये पड़ेगा कि नहीं? अब तू रोग ठीक करेगा कि दूसरा डाक्टर तेरे लिये आयेगा? अब दूसरा डाक्टर भी आयेगा वो भी 105 बुखार चढ़ायेगा, उसको भी डाक्टर चाहिये पड़ेगा, फिर कैसे ठीक होगा? अब जितने भी डाक्टर आयेंगे, सब 105 चढ़ायेंगे, अब बताओ कि भविष्य अनभिज्ञता का दोष आयेगा कि नहीं? इसलिये कभी ज्ञेय ज्ञान बनके जानता नहीं और ज्ञान ज्ञेय बनता नहीं, परन्तु ज्ञान से ज्ञेय को जाना जाता है। वो भी व्यवहारनय से। क्या करूँ? ये भी लोभ है। लोभ क्या? सब स्पष्ट कर दो, सबको समझ में आ जाये। मालूम, ज्ञानी क्या बोल रहा था? बस 'समयसार' पूरा हो जाये 'प्रवचनसार' करूँगा, वो भी अच्छे विस्तार से करूँगा। ये भी लोभ है। दूसरे का कल्याण हो जायेगा, ये भी लोभ है।

ज्ञानी! सर्वाधिक लोभ अगर किसी गुणस्थान में होता है तो छटवें गुणस्थान में होता है। प्रश्न करो क्यों होता है? क्योंकि जगत् में जितने जीव हैं, जैसे भिखारी होता है, ये मत समझना कि भिखारी पापों से मुक्त होता है। वो जिस मकान से निकलता है तो वो ये ही सोचता है कि यही मेरा होता। झोंपड़ी से निकलता है तो सोचता है कि कम-से-कम ये ही होती। यानि कि विश्व में जितनी जगह से निकल रहा है, सबका पापास्रव कर रहा है, क्योंकि सब पर दृष्टि जा रही है। ऐसे-ही जो छटवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज हैं, उनको सबसे ज्यादा लोभ होता है। क्यों? जो-जो उनके सामने दिखता है, अरे! तू भी व्रती बन जा, तू भी महाव्रती बन जा, तू प्रतिमा लेले, तू कल्याण कर ले। ये जो दूसरों के कल्याण का राग लगा है, ये बहुत बड़ा लोभ है, लेकिन वह लोभ प्रशस्त है। नहीं-तो छटवें गुणस्थान में हो, सराग अवस्था में हो, तुम रोकना चाहोगे तो रोक नहीं पाओगे और ऐसा नहीं करोगे आप तो नीचे अशुभ राग में जाओगे। भैया! तुम भी व्रती बन जाओ, आप भी ऐसा कर लिया करो। ये लोभ ही तो है। लेकिन ज्ञानी! मोक्ष तभी मिलेगा जब इस ज्ञान से भी दूर होयेगा। आचार्यों को भी सिंहासन छोड़ना ही पड़ेगा, तभी समाधि

होगी और नहीं छोड़ पा रहे हो तो समाधि भी नहीं कर पा रहे हो। वो तो छोड़ना ही पड़ता है, क्या करें? विधि का विधान ही ऐसा है। वस्तु ऐसी है। भैया! जब देख लो कि चलती बिरियाँ है, जाने का समय आ गया, तब अपने धन का विभाग करके, दानादि करके, सबका त्याग करके या तो चैतन्यालय में चले जाओ, या गुरु के चरणों में चले जाओ और वहाँ जाके समाधि करो। व्यवस्था तो ये है कि पिताजी को जीतेजी बेटे को पगड़ी बाँध देना चाहिये। भैया! गड़बड़ मत कर देना अपने जीतेजी पगड़ी बाँधोगे तो वो तुम्हें गाली नहीं देगा और समाज ने पगड़ी बाँधी तो ये लड़ेंगे और तेरा नाम बदनाम होगा। हमारे आगम में भी ये व्यवस्था है कि आचार्य को अपने जीतेजी ही शिष्य को आचार्य बना देना चाहिये। आगमिक व्यवस्था है। ''भगवती आराधना, मरण कण्डिका'' इन सभी ग्रन्थों में पढ़लो, अपने जीतेजी पद छोड़ करके शिष्यों को आचार्य बना दो, नहीं-तो आप चले गये और संघ में झगड़े शुरू हो गये। वे कहते हैं कि मैं पट्टाचार्य, मैं पट्टाचार्य! संघ में तीन-चार पट्टाचार्य हो गये। समझ गये? जीतेजी ही व्यवस्था बनाओ, नहीं तो झगड़े होते हैं। वस्तुव्यवस्था ही ऐसी है। बताओ कौन-से आगम में ऐसा लिखा है कि पिता के मरने के बाद ही पगड़ी बाँधो? शास्त्रों में भी लिखा है कि राजा भी अपने जीतेजी बेटे को युवराज बनाता है और अपना राजपाट देकर, फिर सन्यास ले लेता है। व्यवहार की बातें सिद्धांत नहीं बनती। क्यों भैया! आप अपनी सासू के पैर छूते हो, कि सास आपके पैर छूती है? अच्छा, आपकी सास आपके पैर छूती है। देख लो कैसा अभागा है। ये बूढ़ी माँ से पैर छुलवाता है। भैया! तुम ससुराल गये तो सासू माँ ने तुम्हारे पैर छूये, कि तुमने सासू माँ के पैर छूये। बताओ भैया! इन दोनों में कौन सत्य है? अब समझ में आ गया कि परम्परा ही अलग है। जहाँ सास पैर छू रही है अपने दामाद के, तो उसे ज्येष्ठ मानकर सम्मान से छू रही है पर जहाँ सासों के पैर छूता है दामाद, वो ज्यादा अच्छा है। क्योंकि जैसे मेरी माँ, वैसे ही पत्नी की माँ। वो ज्येष्ठ है, सम्मानीय है, इसलिये वह वृद्ध माँ (सासू माँ) के पैर छूता है। भैया! मारवाड़ी में छुलवा लेना, पर उत्तर भारत में, दक्षिण भारत में, मध्य भारत में जाओगे वहाँ तो सास ही पैर छूती है, अब कौन सही है? झगड़ो मत यहाँ, आगम लगा लो। जैसा है, वैसा ही अपनी-अपनी परम्परा है। आप मालवा तरफ जाओ तो मत कहना कि सासू माँ मेरे पैर छू ले और यहाँ आये तो सास से न कहें कि मेरे पैर छू ले। बस ये जनपद सत्य है, कि जहाँ की जो प्रथा है उसमें सिद्धांत की कोई रोक नहीं है। अज्ञानी लोग जो दोनों की व्यवस्था को जानते नहीं हैं और अपने क्षेत्र की व्यवस्था को दूसरे में लगायेंगे तो वहाँ विसंवाद होगा।

'समयसार' जी में लोक की छोटी-से-छोटी बात की व्याख्या है और बड़ी-से-बड़ी बात की व्याख्या है। स्वकीय भाव की व्याख्या करने वाली प्रथम गाथा समाप्त हुई।

अब ज्ञान की व्याख्या के बाद दर्शन की व्याख्या कर रहे हैं। श्वेत मृत्तिका से घटादिक को देखते

हैं। परद्रव्य को व्यवहार से देखते हैं, परन्तु परद्रव्यों के साथ तन्मयभूत होकर नहीं देखता, कौन? कौन देखता है? ज्ञान आत्मा। **केन पश्यति ?** किसको देखता है? अपने उसी श्वेत मिट्टी खड़िया के दृष्टांत से परिग्रह आदि परद्रव्यों को जो व्यवहार छोड़ता है, परन्तु परद्रव्यों के साथ तन्मयभूत नहीं होता है। वह कौन कर्त्ता है? ज्ञान आत्मा। क्या करके छोड़ता है? स्वकीय निर्विकल्प समाधि के परिणाम से तृतीय गाथा का अर्थ समाप्त हुआ।

तब फिर उसी श्वेत मिट्टी के दृष्टांत के जीवादिक परद्रव्यों के व्यवहार से परद्रव्यों के साथ तन्मयभूत नहीं होता है। कौन करता है ? '**सम्यग्दृष्टिः।**' श्रद्धान किसको होता है? सम्यग्दृष्टि को। ''केन कृत्वा त्यजति चतुर्थ गाथा गता'' स्वकीय श्रद्धान के परिणाम से चौथी गाथा समाप्त हुई।

इस व्यवहार से कहा, किससे कर्म उत्पन्न करके? इस प्रकार से कहा, पर प्रत्याशीभूत होकर के पूर्व की चार गाथाओं में, परन्तु इन चार गाथाओं से जो व्यवहार का कथन किया है, पर व्यवहार का अनुयायी उसे निश्चित ही जानता है। हाँ, जानना ऐसा ही होता है। मुमुक्षु! ध्यान दो, पेपरों में जो दैनिक समाचार पत्र होते हैं, उन्हें देखा, उनमें कभी-कभी लिखा रहता है ''अध्यात्म'' उनका अध्यात्म क्या होता है?

यहाँ पर प्रवचन हुये, यहाँ पर विधान हुआ, फिर यहाँ शिविर लगे, यहाँ भजन हुये ये सब किसमें डाल दिये? अध्यात्म में। जबकि एक भी अध्यात्म नहीं है। ये सब क्रिया काण्ड है। क्या लोग जो चार बातें धर्म की कर रहे हैं वह आध्यात्म हो जाता है? जबकि **ज्ञानी! बात करना अध्यात्म का भाव नहीं है। अध्यात्म जो है, वह अवाच्य है। अध्यात्म जो है वह स्वानुभूतिगम्य है।**

कोई साफ-सुथरे कपड़े पहनके घूमने लग जाये, दिन में स्नान बगैरह कर ले, अच्छे तिलक वगैरह लगा ले, तो लोग कहते हैं कि ये बड़ा आध्यात्मिक पुरुष है। **प्रपंचों से शून्य होकर के आत्मा में लवलीन है, उसका नाम आध्यात्मिक पुरुष है। आध्यात्मिक भाषा बोलना मात्र आध्यात्मिक पुरुषपना नहीं है।** आध्यात्मिक भाषा तो, ये सीडी बन रही है ये भी लगा लो कम्प्यूटर आदि में, तो वो भी बोलना शुरू करेगी। **शब्दों का होना आध्यात्मिकता की पहचान नहीं है। आध्यात्मिकता की पहचान जो है, वह निरीहवृत्ति, निस्पृह भाव, प्रपंचों से शून्य वृत्ति और स्वच्छ भाव की लीनता है और अभेद परिणति, अभेद चर्या, अभेद उपचार ये है निश्चय।** लोक में व्यवहार क्रियाभूत धर्म को ही निश्चय अध्यात्म कह दिया जाता है, पर यह कोई अध्यात्म नहीं है, ये तो लोक की भाषा है। ऐसे-ही अभी जो इनका व्यवहार चल रहा था, उस व्यवहार को नहीं समझते हैं, वे यही समझते हैं कि निश्चय ही भाषा है, लेकिन प्रश्न क्या था ? व्यवहार का 'व्यवहारनुयायी' यानि आचार्यभगवन्तों को कितना

ध्यान रखना पड़ता है? कि इस बात को भी स्पष्ट कर दिया कि व्यवहार अनुयायी जो है वो यहाँ के व्यवहार को भी निश्चय मानते हैं, ऐसा समझना। यथार्थ में हे श्रावको! न आप निश्चय धर्म में हो, न व्यवहार धर्म में हो।

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥7स.सा.॥

इस गाथा के अनुसार, सुधी श्रावको आप न निश्चय धर्म वाले हैं, न व्यवहार धर्म वाले हैं। अब बताओ आप लोग लड़ क्यों रहे हो? अहो आश्चर्य! जो व्रत शून्य, महाव्रतशून्य, रहता हो, उसके पास न व्यवहार धर्म है न निश्चय धर्म है। मात्र विवाद धर्म है। आपके पास व्यवहार धर्म नहीं है, नहीं है, नहीं है। व्यवहार धर्म क्या है? **हे जीव! दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो भेदज्ञान है, भेदरूप पालन है, इसका नाम है व्यवहार चारित्र। जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन ध्येयों से रहित मात्र एक ज्ञायकभाव की लीनता है, उसका नाम है निश्चय धर्म।** अब बताओ मुमुक्षुओ! क्या तुम्हारे पास दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार से हैं, निश्चय से हैं? न व्यवहार धर्म है तुम्हारे पास, न निश्चय धर्म है। दिगम्बर मुनि बने बिना व्यवहार-निश्चय धर्म का प्रारंभ होता ही नहीं है। भैया! ऐसा ही है। गाथा नं. 7 नोट कर लेना और कोई प्रश्न करे तो अच्छे से समझा सकते हो आप। फिर कोई कहे कि महाराज, मेरा क्या? अरे! आप देशव्रती हो तो एकदेश धर्म है तुम्हारे पास। समझ गये? और देशव्रती हो तो नहीं, फिर धर्म है क्या तुम्हारे पास? श्रद्धाभूत धर्म है तुम्हारे पास।

गोम्मटसार-जीवकाण्ड में लिखा है, जो इन्द्रियों से विरक्त नहीं है, प्राणि हिंसा से विरक्त नहीं है, त्रस हिंसा से विरक्त नहीं है, उस व्यक्ति के पास कौन-सा धर्म है? जो जिनेन्द्रदेव ने कहा है, उस पर श्रद्धा मात्र है। बस इतना ही उसके पास है। वो अविरत सम्यग्दृष्टि जीव है। आगम वचन ये है। विद्वानों को अपना भ्रम तो निकालना पड़ेगा, क्योंकि भ्रम निकाले बिना मोक्षमार्ग होता नहीं।

भैया! सत्य ये है कि एक अनुभव करके व्याख्यान होता है और एक तन्मयभूत व्याख्यान होता है और एक अतन्मयी होकर व्याख्यान होता है। जैसे कोई डाक्टर होता है, मेरे मित्र! मेरे हाथ में फोड़ा हो गया, उसका उपचार तो आप ही करोगे न? आप इसे जानोगे नहीं, पहचानोगे नहीं क्या? जानोगे, पहचानोगे। अपने ज्ञान से जानोगे-पहचानोगे कि ये फोड़ा है, इसका उपचार करोगे। लेकिन मेरे मित्र! जैसे फोड़े का तन्मयभूत होकर मैं वेदन कर रहा हूँ, वैसे तन्मय होकर तू वेदन नहीं रहा है। उपचार अवश्य कर रहा है। ऐसे-ही ज्ञानियो! निर्ग्रन्थ हैं, वे निर्ग्रन्थ तन्मयभूत होकर समझते हैं और सग्रन्थ अतन्मयी होकर समझते हैं। आगम की भाषा को, जहाँ तक है मित्रो! आगम की ही भाषा में बोलना, तो आनन्द आता है।

आगम की भाषा को आगम की भाषा में बोलिये, वो ही आनन्द देती है। हम वर्तमान की भाषा को वर्तमान की भाषा में समझाने के चक्कर में अपनी भाषा का नाश कर लेते हैं। आप वर्तमान की भाषा में आगम की बात समझाओगे तो वर्तमान के लोग आगम को सीखने का प्रयास नहीं करेंगे, वे यही समझेंगे कि इसी भाषा में ही आगम बोलना चाहिए। जिससे सुनने वाले ये तो सोचेंगे कि अरे! यहाँ सीखना चाहिये आगम की भाषा कितनी मधुर है। मिट्टी तन्मयभूत होकरके घट नहीं बनाता, अतन्मयी होकर घट बनाता है। क्या है ? मात्र भाषा की सोच। भावों की भंगिमा को बदलने का सामर्थ्य किसमें है? शब्दों में। जैसा गहरा संगीत होता है, मनुष्य वैसा ही नाचने लगता है। देखा कि नहीं? बाजे बजे सुन्दर, बीन बजे, संगीत बजे, तो घोड़े को छोड़ो, नाग भी नाचने लगता है, मनुष्य की तो बात ही क्या है? और तुम्हारे संगीत में दम नहीं है तो न नाग नाचता है और न ही घोड़ा नाचता है, तो मनुष्य की तो बात ही छोड़ो।

मेरे मित्र! आपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये भेद कर दिये, ये व्यवहार हो गया और मात्र एक ज्ञायकभाव है, ये निश्चय मात्र है। भेदरूप व्यवहार, अभेद रूप निश्चय। जो भेद है, वह व्यवहार है और जो अभेद है, वह निश्चय है।

'' **इदमोदनादिकं मया भुक्तं**'' यहाँ पर कह रहे हैं कि ये जो मेरे द्वारा खाया गया ''**इदमहि विषकण्टकादिकं त्यक्तं**'' यह भोग विषयकण्टक आदि से छोड़ा गया, ''**इदम् गृहादिकं कृतं**'' ये गृहआदिक मैंने बनाया है ''**तत्सर्वं व्यवहारेण**'' ये सब व्यवहार है। ''**निश्चयेन पुनः स्वकीय रागादि परिणाम एव कृतो भुक्तश्च**'' निश्चय से यह जीव स्वकीय रागादि परिणामों का ही भोक्ता है। यह कौनसा निश्चय है? अशुद्ध निश्चय है। ''**एवमित्याद्यन्येष्वपि पर्यायेषु निश्चय व्यवहार-नय विभागो ज्ञातव्य इति**'' इत्यादि अन्य और भी पर्यायाओं से निश्चय-व्यवहार नय के विभागों को जानना चाहिये। ''**किंच यदि व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति**'' यदि व्यवहारनय से परद्रव्यों को जानता है, ''**तर्हि निश्चयेन सर्वज्ञो न भवतीति**'' तब निश्चय से सर्वज्ञ नहीं हुये । ये बहुत बड़ा प्रश्न है, समझने लायक है। एक प्रश्न है कि व्यवहारनय से परद्रव्यों को जानता है।

व्यवहारनय से केवली भगवान् सम्पूर्ण द्रव्यों को जानते हैं देखते हैं, पर निश्चयनय से तो निज आत्मा को ही जानते-देखते हैं। सर्वज्ञ तो सर्वज्ञ हैं और निश्चयनय से सर्वज्ञ तो आत्मज्ञ हैं। इस बात को लेकर यहाँ पर कह रहे हैं। अब प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न पर ध्यान दो। ''**व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति तर्हि निश्चयेन सर्वज्ञो न भवतीति**'' जो व्यवहार से परद्रव्यों को जानता है, वह निश्चय से सर्वज्ञ नहीं होगा। ''**पूर्वपक्षे परिहारमाह**'' ऐसा किसी ने प्रश्न किया कि पूर्वपक्षवत् परिहार है यथा- ''**स्वकीय सुखादिकं तन्मयोभूत्वा जानाति**'' जैसे जीव सुख-दुःख में तन्मय होकर जानता है ''**तथा बहिर्द्रव्यं**

न जानाति'' वैसे बहिर्द्रव्य को जानता तो है, पर तन्मयीभूत होकर नहीं जानता, **'तेन कारणेन व्यवहारः'** इस कारण से वह व्यवहार है।

''**यदि पुनः परकीय सुखादिकमात्मसुखादिवत्तन्मयोभूत्वा जानाति**'' यदि पर के सुखादिक को आत्मा सुखवत् तन्मयभूत होकर जानता है ''**तर्हि**'' तो फिर ''**यथा स्वकीय सुख संवेदने सुखी भवति**'' यदि यह जीव पर के सुख-दुःख को सुखीभूत होकरके तन्मयीभूत होकरके जानता है, तो जैसे स्वकीय सुख के संवेदन से सुखी होता है ''**तथा परकीय सुख-दुःख सम्वेदनकाले सुखी-दुःखी च प्राप्नोति**'' अरे भाई! जैसे अपने फोड़े होने पर, तन्मयभूत होकर दुःख को जानता है, वैसे पर के फोड़े होने पर तू जानता तो है, देखता तो है, पर वैसे ही सम्वेदना को प्राप्त होता है क्या ? पड़ोसी के बेटे का कष्ट भैया पड़ोसी के पिताजी खत्म हो गये तो उसके लिये भी सम्वेदना देने भी गये पर मेरे मित्र तेरे पिताजी भी खत्म हुये उस समय की अनुभूति दोनों में अन्तर है कि नहीं? पर आपने दोनों को अपने ज्ञान से जाना कि नहीं। जाना तो है, पर अपने दुःख को अपने रूप जाना है, पर के दुःख को अपने रूप नहीं जाना। तो जो पीड़ा तुझे अपने सिरदर्द में है, वैसी-ही पीड़ा तेरी पत्नी के सिरदर्द में हो रही है, लेकिन पत्नी के सिर में पीड़ा है उससे तो तू दुःखित हो रहा है।

ज्ञानी! मात्र राग में ही तू दुःखी हो रहा है, तन्मयभूत होकर दुःखी नहीं हो रहा है। पर सिर में तेरे जो दर्द हो रहा है, उसकी सम्वेदना तू तन्मयभूत होकर कर रहा है। इतना अन्तर है। समझो व्यवहार को।

लोक की व्यवस्था भी समझना है तो इस विषय को आप गृहस्थी के विषय में भी चिन्तन करोगे तो इन्द्रियों का दमन तो हो जायेगा। इतनी गहरी सोच में बैठेंगे न तो उसमें इन्द्रियाँ उत्तेजित नहीं हो पायेंगी जो विषय नहीं लेता, उसकी इन्द्रियाँ भटकती हैं। गहरा सोचोगे, उसमें इन्द्रियाँ कहाँ जायेंगी ? जितना तुमने खाया-पिया है, सबकी शक्ति इसमें जायेगी। इतना गहरा सोच नहीं पाओगे। विश्वास मानना भैया! अत्यन्त रूखा-सूखा खाया है तो उनके ज्ञान का क्षयोपशम धीरे-धीरे मन्द हो जायेंगा। हाँ, उसका ज्ञान ही ज्ञान में लीन हो जायेगा। देखो भैया! आप सुन रहे हो न ध्यान से? मैं तपस्या का निषेध नहीं कर रहा हूँ। नहीं-तो आप कहें कि महाराज तपस्या का निषेध कर रहे हैं। मैं तो यह कह रहा हूँ कि तपस्या के काल में यदि कहीं हृदयाघात हो गया, समाधि की साधना करनी पड़ी, उस समय क्षीणता आयी है तो क्षीण हो जाने दो, लेकिन जब-तक क्षीणता नहीं आयी, आपको समाधि के लिये नहीं कहा जायेगा। बुद्धि काम कर रही है, चर्या का पालन कर रहे हो, जिनशासन की प्रभावना कर रहे हो, आप ध्यान-सामायिक कर रहे हो तो फिर समाधि की क्या आवश्यकता ? और मरना चाहते हो, इसका क्या मतलब ?कहीं साधना भयभीत कर रही है क्या ? समझो, वस्तुव्यवस्था है यहाँ आगम में।

हे मित्र! जब तू अपनी सत्ता को ही नहीं स्वीकार रहा है, अपनी सत्ता को ही नकार रहा है, तो फिर इससे निकृष्ट क्या है? समझना किसे चाह रहे हो ? जब द्रव्य का ही नाश हो जायेगा, जब सब कुछ क्षणिक है, अनित्य है, फिर भी अहिंसादि पर विचार चल रहा है, तो किस लिये?

पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः।
बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः 40/आ.मी.।।

हे मुमुक्षु! क्षणिकवादियों के यहाँ न पुण्य फलित होता है, न पाप फलित होता है, न बन्ध फलित होता है, न मोक्ष फलित होता है। क्षणिकवादी के यहाँ जिस समय बंध होगा वह किसी दूसरे के लिये होगा और मोक्ष जो है वह किसी दूसरे अन्य के लिये होगा। इसलिये क्षणिकवादी के यहाँ न बन्ध की व्यवस्था घटित होती है और न ही मोक्ष की व्यवस्था घटित होती है।

विश्व में ऐसे अनेकानेक एकांकी लोग हुए जिन्होंने अपनी पूरी प्रज्ञा को तत्त्व के विपर्यास में एवं आत्मा के हित-अभाव में ही नष्ट किया है। व्याख्यान भी किया तो तत्त्व के विपरीत ही किया है। विपरीत तत्त्व के व्याख्यान से सम्यक् तत्त्व का विपर्यास ही होता है। **विपर्यास का व्याख्यान स्वयं की प्रज्ञा की विपरीतता के लिये ही है, परन्तु पदार्थ की विपरीतता के लिये कोई भी व्याख्यान नहीं होता है।**

विपर्यास का व्याख्यान स्वयं की श्रद्धा की विपरीतता के लिये स्वयं के चरित्र की विपरीतता के लिये, स्वयं के ज्ञान की विपरीतता के लिए, स्वयं के मोक्षमार्ग की विपरीतता के लिए हो सकता है, लेकिन विपर्यास का व्याख्यान वस्तु को विपरीत करने की सामर्थ्य नहीं रखता है।

कितने निंद्य पुरुष, कितने ही कुमार्ग दर्शक हों, उनने व्याख्यान कितने ही प्रकार से कर लिया हो, लेकिन सद्मार्ग का कभी भी अभाव नहीं होता है।

हमने व्यवहार से सर्वज्ञ को सर्वज्ञ कहा और निश्चय से सर्वज्ञ को आत्मज्ञ कहा है। हे ज्ञानी!तन्मयभूत दृष्टि से देखेंगे तो वे सर्वज्ञ ही आत्मज्ञ हैं। जैसे तन्मय होकर स्वयं के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, वैसे तन्मय होकर पर द्रव्य-गुण-पर्याय को नहीं जान पाते हैं।

जैसे खड़िया स्वयं में श्वेत है, वैसे खड़िया दीवाल को श्वेत नहीं कर रही है परन्तु खड़िया से दीवार श्वेत हो गई है।

व्यवहार से खड़िया से दीवाल श्वेत हो रही है, ऐसे-ही व्यवहार से हम जगत् के सम्पूर्ण द्रव्यों को जानते हैं। उनकी पर्यायों को जानते हैं। उनके गुणों को जानते हैं। लेकिन जेसे तन्मयभूत होकर स्वयं

के द्रव्य गुण-पर्याय का वेदन करते हैं, ऐसे पर का तन्मयभूत होकर वेदन नहीं करते हैं। पर का वेदन नहीं करते हैं, आत्मा का ही वेदन करते हैं। ऐसे ही सर्वज्ञ भगवान् भी जगत् के द्रव्यों को तन्मयभूत होकर नहीं जानते। तन्मयभूत जानते हैं तो निज को ही जानते हैं। निज के द्रव्य में होते हैं, निज के गुण में होते हैं, निज की पर्याय में होते हैं । इस दृष्टि से सर्वज्ञ आत्मज्ञ हैं। पर व्यवहार से खड़िया से युक्त दीवाल सफेद दिखाई देती है, ऐसे ही ज्ञानियो! व्यवहार से सर्वज्ञ देव ही जगत् के चराचर द्रव्यों को देखते हैं, जानते हैं, उनके कैवल्य में सब झलकता है। यदि हम सर्वज्ञ को ऐसा सर्वज्ञ नहीं मानेंगे तो असर्वज्ञ आयेगी अथवा कहना चाहिये।

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्य चिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ संस्थितिः।।5।।आ.मी.।।

वर्तमान में जो ये विषय चल रहा है, ये बात गूढ़ है। हमारे सर्वज्ञ तो सर्वज्ञ हैं। व्यवहार से इस सर्वज्ञ को नहीं स्वीकारेंगे तो प्रश्न है कि सूक्ष्मवर्ती, दूरवर्ती जो विषय चलता है, उन विषयों को कैसे जानेंगे ? परिणाम को बताने वाला कोई है। सुमेरु पर्वत, नंदीश्वर द्वीप आदि को कोई बताने वाला है, कोई जानने वाला है, तो वह कौन है? वह सर्वज्ञ है। यदि सर्वज्ञ को सर्वज्ञ नहीं मानेंगे, सर्वज्ञता नहीं स्वीकारेंगे, तो सूक्ष्मवर्ती दूरवर्ती इन द्रव्यों को हम जान पायेंगे क्या? क्योंकि ये छद्मस्थ के ज्ञान का विषय नहीं है, सर्वज्ञ के ही ज्ञान का विषय है। द्रव्यानुयोग तो दोनों बातें कह रहा है। यहाँ द्रव्यानुयोग की दोनों बातें ये हैं कि सर्वज्ञ तो सर्वज्ञ हैं और सर्वज्ञ आत्मज्ञ भी हैं। यदि आपने आत्मज्ञता की सिद्धि में सर्वज्ञता की असिद्धि कर दी तो तू इन ज्ञानों से शून्य हो जायेगा।

इन ज्ञानों से शून्य का मतलब आप सर्वज्ञ नहीं हो, आप छद्मस्थ के ज्ञान में सूक्ष्मवर्ती, अत्यन्त दूरवर्ती निर्णायक विषय आपके ज्ञान में विषय बनते नहीं हैं, परोक्ष बनते हैं। कितना झूठ बोल रहे हो? जिस दृष्टि से मैं कह रहा हूँ, हे जीव! उस दृष्टि से तू नहीं समझ रहा है क्या? भैया! देखो, बोलनेवाले का चेहरा पढ़ना चाहिये। इस जीव ने क्या किया ? ये बोलता है कि जानता हूँ, मेरे ज्ञान का विषय बनते हैं। मेरे मित्र! ये राम-रावण आदि, ऋषभदेव आदि तो दूरवर्ती हैं, ये तेरे ज्ञान का विषय बनते हैं, अवश्य बन रहे हैं, पर मेरे मित्र! ये तो बताओ कि प्रत्यक्षभूत बन रहे हैं कि परोक्षभूत बन रहे हैं? जो परोक्षभूत हैं, वे आपके दृष्टिकोण में हैं क्या ? जो आपके दृष्टिगोचर नहीं हैं, वे परोक्ष में हैं कि नहीं? जो तेरे दृष्टिगोचर नहीं हैं, वे होंगे कि नहीं? समझो, समझो, भैया! प्रश्न क्या बोल रहा है और उत्तर क्या है? जो तेरे सामने नहीं हैं, वे होंगे कि नहीं? जो तेरे सामने नहीं हैं, वे थे कि नहीं ? इनको जानने वाला कोई प्रत्यक्ष होता है कि नहीं? मुमुक्षु! उनको प्रत्यक्ष जानने वाला कोई है, उनका नाम ही सर्वज्ञ है। हम सर्वज्ञ को नहीं स्वीकारेंगे और आत्मज्ञ-आत्मज्ञ ही कहते रहे, तो ज्ञानी! जो आपको परोक्षभूत ज्ञान है,

ये परोक्ष भूत ज्ञान आपको हुआ कैसे ? ये परोक्ष भूत ज्ञान क्या पूर्व में आपने इसको जाना था? उसकी स्मृति से है। भैया! सुनना इन प्रश्नों को। हे जीव! क्या आपने इन द्रव्यों को पूर्व में जाना था उसकी स्मृति से ज्ञान है, कि किसी ने कहा था उसकी श्रुति से ज्ञान है? दो ही तुम्हारे सामने प्रमाण हैं परोक्षभूत। भूतश्रुति, स्मृति, तीसरा है स्तवन, चौथा है तर्क, पाँचवाँ है प्रवचन। प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम। भैया! ये जो बोल रहे हैं वे श्रुति से बोल रहे हैं स्मृति से बोल रहे हैं कि परमाणु है। महाराजश्री! दोनों से बोल रहे हैं। भैया! दोनों से आप कैसे बोल रहे हो? आपका जो अनुमान है वह स्कंध के खण्ड होने पर, जो व्यवहार देख रहा है ये जो अनुमान है इस अनुमान को मात्र आप अनुमान से जान रहे हो कि अनुमान को आप आगम से मान रहे हो? मेरे मित्र! जो तेरे अनुमान के भी विषय नहीं बन रहे हैं उसे तू किससे मानता है? आगम से मानते हो। इसलिये ध्यान दो। जो स्मृति में नहीं होता, वो श्रुति से प्रमाण होता है। जो श्रुति है वह आगम है। इसलिये श्रुति प्रमाण है। स्मृतियाँ आपकी गलत भी हो सकती हैं, लेकिन श्रुति गलत नहीं है। श्रुति वही है जो जिनदेव के द्वारा भाषित है। जिनदेव द्वारा भाषित शब्द श्रुति है। जिनभाषित ही आगम है। अनागम संज्ञा मत दीजिये। आप्त के वचन ही आगम हैं। इसलिये विषय को गहराई में जाकर पकड़िये कि व्यवहार से तो सभी सर्वज्ञ मान रहे हैं और आप सर्वज्ञ मान रहे हो तो दोनों सर्वज्ञ में अन्तर क्या है? ये प्रश्न है मेरा। भैया! कहीं ज्ञान में आ रहा है विषय? ये तर्कसंगत है और तर्क की बात चल रही है। यदि द्रव्यानुयोग के गूढ़ रहस्यों को नहीं समझा और किसी जीव ने समझ लिया कि सर्वज्ञ नहीं आत्मज्ञ ही हैं और आत्मज्ञ की सिद्धि में तुमने सर्वज्ञता का लोप कर दिया, तो मेरे मित्र! तेरी सम्पूर्ण कथनशैलियाँ हैं अप्रमाणित हो जायेंगी, क्योंकि जो तुम प्रमाण जानते हो उस सर्वज्ञ की वाणी को मानते हो, और आप अपने मुख से सर्वज्ञ को आत्मज्ञ मात्र मान रहे हो, बोला किसने ? और ये लिखा कैसे गया? और ग्रन्थ में कैसे आये ?

यदि आप सर्वज्ञ को एकांत से आत्मज्ञ मानते हो, सर्वज्ञ नहीं मानते हो, तो हे असर्वज्ञ-वादियो! आत्म-एकांत-वादियो! आपकी प्रत्येक बात मृषावाद है, क्योंकि हम आपकी बात को मात्र इसलिये स्वीकारते हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञाता कोई है, प्रत्यक्ष दृष्टा कोई है, उसने प्रत्यक्षभूत होकरके वहाँ देखा है। हम श्रुति को प्रमाण मान रहे हैं। पर जब आप सर्वज्ञ को ही नहीं मानोगे, तो श्रुति किसकी होगी? और जब श्रुति ही तुम्हारी सम्यक् नहीं है, तो स्मृति किसकी कर रहे हो? स्मृति तुम्हारी सम्यक् नहीं है, तो अनुमान ज्ञान किसका ? इसलिये जो हमारा सर्वज्ञ है, वह सर्वज्ञ वैसा सर्वज्ञ नहीं जैसा स्वतंत्र सर्वज्ञ है। हम अपने सर्वज्ञ को अतन्मयी होकर जाननहार मानते हैं। ज्ञेयों को तन्मयीभूत होकरके जाननहार नहीं मानते हैं। स्वज्ञेयों को तन्मयीभूत होकर जानते हैंऔर परज्ञेयों को अतन्मयीभूत होकर मानते हैं। ठीक है? इसलिये जो प्रश्नकर्त्ता का ज्ञान है **'सौगतोऽपि ब्रूते'** बुद्ध भी कहते हैं। **'व्यवहारेण सर्वज्ञः'** व्यवहार से सर्वज्ञ

''**तस्य किमिति दूषणं दीयतेभवद्भिरिति**'' ? आप उनको दोष क्यों देते हो ? बुद्ध जब थे तब उनका प्रचार धर्म के नाम पर था। उसके उपरान्त, बुद्ध के समाप्त होने पर, उस दर्शन में दार्शनिक लोग हुये, तार्किक लोग हुये, फिर उन्होंने वर्तमान की सर्वज्ञता को देखकरके, दिगम्बराचार्य की सर्वज्ञता की सिद्धि को देखकरके उन्होंने सोचा कि अब सर्वज्ञ बिना काम चलेगा नहीं, तब उन्होंने धर्मज्ञ बनाया। ऐसा लोक में व्यवहार में भी देखा जाता है कि जब आदमी अपने से जीवित नहीं बचता है तब सोचता है कि अब कुछ सिद्धांत गढ़ना चाहिये। तब उसने असर्वज्ञ को धर्मज्ञ बनाकर सर्वज्ञ की पुष्टि की तर्क देकर के। उनको सर्वज्ञ सिद्ध नहीं किया वो धर्मज्ञ मात्र थे। ''**तत्र परिहार माह**'' यदि आपको '' समयसार'' ग्रन्थ ही पढ़ना है और दार्शनिक, तार्किक बुद्धि से निष्णात विद्वान् बनना है, तो आपको गहरा अध्ययन करना पड़ेगा ''**सौगतादिमते**'' सौगतादि मत में, '**यथा निश्चयापेक्षया व्यवहारो मृषा**' भैया! ध्यान दो। जो व्यवहारपक्ष वाले आपके यहाँ हैं और निश्चयपक्षवाले, उनको भी समझा देना कि ये पंक्ति क्या बोल रही है। जैसे निश्चय की अपेक्षा से व्यवहार को झूठा कहते हैं। कौन ? बुद्ध। ''**तथा व्यवहाररूपेणापि व्यवहारो न सत्य इति**'' वैसे ही व्यवहार की दृष्टि से सत्य नहीं मानते। शंकराचार्य की माया और बौद्ध का व्यवहार असत्य है। ये ज्ञानी असत्य कहने के लिये ही आया है। सभी श्रोता ध्यान से सुनना कि मैं क्या बोल रहा हूँ ? भैया से पूछो कि सब क्या दिख रहा है आपको? भैया! हाल दिख रहा है, भवन दिख रहा है , उसमें लाइटिंग दिख रही है, घड़ी लगी हुई है, तीर्थंकरों/भगवन्तों की तस्वीरें लगी हुई हैं और इतनी सारी श्रावक-श्राविकायें बैठी हुई हैं। क्या यह सब आपको दिख रहा है? भैया! ये सब सत्य दिख रहा है कि असत्य दिख रहा है? ज्ञानी! तत्त्व के बोध में तत्त्व-अतत्त्वपना प्रवेश करा देना। तत्त्व के बोध में , बुद्ध की गवेषणा में कहीं सत्य का तू नाश मत कर देना। अभी इन्होंने क्या कहा ? कि जो दिख रहा है, सब माया है, शून्य जगत्। ब्रह्मअद्वैत वादी कर रहे हैं कि सब माया है और विज्ञान-अद्वैतवादी कह रहे हैं कि भाई! सब शून्य है जगत्। फिर ये प्रत्यक्ष में दिखाई क्यों दे रहा ? अनुभूति में आया है तो भाव ही करते दिख रहे हो, भिक्षा माँगते दिख रहे हो, भोजन करते दिख रहे हो, पानी पीते दिख रहे हो, सन्तान को जन्म देते दिख रहे हो, जन्म लेते दिख रहे हो, सब कुछ तो दिख रहा है ये माया। असत्य ही असत्य, तो है क्या ? ज्ञानी! ये जीव उन्मत्त हो गया, उसे लग रहा है कि कुछ है ही नहीं। सब जगत् शून्य है।

मेरे मित्र! सुनो जिस जगत् को हम शून्य कहते हैं, माया कहते हैं, दृष्टि क्या है? वह दृष्टि ये है कि मेरे चैतन्य धर्म की अपेक्षा से ये मेरे से भिन्न हैं, इनमें मेरा स्वरूप नहीं है। ये पर रूप हैं। ये पररूप मायाभूत है। इनमें मेरा स्वभाव नहीं है। इस दृष्टि से मैंने कहा मैं जगत् से शून्य हूँ, न कि जगत् शून्य है। ज्ञानियो! जो मैं कह रहा हूँ, इस समय अपनी प्रज्ञा को इतना प्रशस्त करके बैठना पड़ेगा कि भविष्य

को निहारिये। मत सोच लेना कि दर्शनों का अभाव हो चुका है, न्यायाचार्यों का अभाव हो चुका है। अभी बहुत लम्बा समय है। बीच-बीच में हर दर्शन में विशिष्ट उठापटकी होगी, उस समय में आप दर्शन के तार्किंत ज्ञाता नहीं हुये तो आप अपनी बात को सिद्ध नहीं कर सकेंगे। इसलिये दर्शन का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बोध होना चाहिये। सत्य व्यवहार निश्चय की अपेक्षा से मृषा है? क्या व्यवहार, व्यवहार की अपेक्षा से भी मृषा है ? आपका उपनेत्र (चश्मा) मेरे लिये अकिंचित्कर है, मेरे लिये मृषा है, मेरे लिये असत्यार्थ है। क्या सचमुच चश्मा असत्य है? जो मेरे लिये अकिंचित्कर है, पर जिसकी आँखों का नम्बर है, उसके लिये? यदि आपने चश्मे को अकिंचित्कर ही घोषित कर दिया, आप लोक के विरोधी हो। बन्ध्या स्त्री के लिये वीर्यवान पुरुष अकिंचित्कर है। बन्ध्या स्त्री के लिए वीर्यवान पुरुष भी, शक्ति सम्पन्न पुरुष भी, पुत्र-उत्पत्ति में अकिंचित्कर है, लेकिन क्या पुरुष अकिंचित्कर ही है? बाँझ स्त्री के लिये अकिंचित्कर है, पर जो स्त्री पुरुष उत्पत्ति की योग्यता से युक्त है उसके लिये अकिंचित्कर नहीं है।

ऐसे ही ज्ञानियो! संसार का सुख माया है, संसार का सुख इन्द्रजाल है, यह व्याख्यान वैराग्य के लिये है, ये व्याख्या विरक्त पुरुष के लिये है। व्याख्यान आसक्त पुरुष के लिये नहीं है। जो आसक्त पुरुष है, वह कहाँ जीयेगा ? विरक्त पुरुष जो जी रहा है, वैराग्य अनुभूति से जी रहा है। वैराग्य की अनुभूति नहीं लेगा तो घर का त्यागी पागल हो जायेगा। भैया! समझ में आया? अगर वैराग्य की शक्ति तेरे भीतर नहीं होगी, ज्ञान-वैराग्य का अभाव तेरे भीतर हो जायेगा, विश्वास रखना, या भीतर संयम का घात कर रहा होगा या फिर पागल हो जायेगा, उन्मत्त हो जायेगा, क्यों ? बिना आनन्द के जगत् में कोई जीव जी नहीं सकता। ज्ञानी! तू भी घर में रह रहा है तो कहीं-न-कहीं तेरे लिये घर में राग लगा हुआ है। यदि आज तूने मुनिराज का पड़गाहन किया, चौका लगाकर के उन को आहार दिया है, ज्ञानी! तेरे को इसमें भी आनन्द था। यदि आनन्द नहीं होता, तो तू ऐसा उपक्रम करता ही नहीं। जब-तक तेरे भीतर आनन्द नहीं आया, तब तक तूने चौका लगाया ही नहीं। बिना आनन्द के कोई पुरुष कुछ कर नहीं सकता है। अब मेरा आनन्द मेरे में है। अब आनन्द जो है, आप उस आनन्द को एक रूप में नहीं देख सकते हो। कौन, किसमें रस ले रहा है ? जिससे तुम पाप को भोग रहे हो, उस वेश्या को उस पाप का भोग में आनन्द आ रहा है। तब ज्ञानी तू लज्जा गुण का नाश करके, सबसे बड़ा घोर पाप, दुनियाँ में किस शब्द से प्रयुक्त हो रहा है, उसमें भी उसको लज्जा नहीं आ रही है। ज्ञानी! कितने-कितने प्रकार के पुरुष से अपने देह को दूषित करवा रही है। उस वेश्या को भी उसमें आनन्द आ रहा है। भैया! उस आनन्द के राग में वह यह बात भी भूल चुकी है कि लोक में मेरी क्या दशा हो रही है? निर्लज्जता में भी व्यक्ति को आनन्द आ रहा है। भैया! वर्तमान के युग में लोग कैसे-कैसे चित्र देख रहे हैं, उसका पैसा दे रहे हैं? उनको ये फिकर भी नहीं है कि मेरी छवि क्या हो जायेगी। कुछ नहीं, ये उन्मत्तता का आनन्द है, उनको आनन्द उमड़ता है। सुनो समयसार को। कहीं इस समयसार में उन्मत्त नहीं हो जाना।

भैया! अब तुम छोटे नहीं हो, दुनियाँ की बातें तुमको मालूम हैं। कितने-कितने प्रकार से लोग जगत् में चित्र देखने को तैयार है? उत्कृष्ट घरों के बालक-बालिकायें, यहाँ तक शादीशुदा लोग भी, अपने शरीर के अशुभ चित्रों को देख रहे हैं, किसके पीछे ? कि मैं भी कुछ हूँ। इसके आनन्द में सबकुछ करने को तैयार हैं। यदि एक पुरुष रोड़ पर झाड़ूँ लगा रहा है, वह भी सन्तुष्ट हुआ है तो ये झाड़ू उसके लिए रस है। भैया! आपके घर में एक ऐसा भी पुरुष आता है जो आपके शरीर में तेल मालिश करके चला जाता है। क्या तुम अपने पिता की मालिश नहीं कर सकते हो? सम्मेद शिखर में लोग पेटी लिये घूमते हैं कि मालिश करा लो। तुम चेहरा देखना, नये जवान लोग घूमते हैं। जो तुम अपने पिता की सेवा नहीं कर सकते हो, वो आपकी ऐसी सेवा करते हैं कि मस्त बना देते हैं। उनको शर्म नहीं आती, कि मैं किनकी सेवा कर रहा हूँ। उस वृत्ति में उनकी सन्तुष्टि है। भैया! कोई किसी के बाल बना रहा है, तो कोई किसी को नहला रहा है, तो कोई किसी के वस्त्र धो रहा है, तो **ज्ञानी! कोई किसी के मल की सफाई कर रहा है। ये सारे कार्य लोक में प्रत्यक्ष दिख रहे हैं कि नहीं दिख रहे हैं? ये वो कर सकते हैं जिनका जैसा पुण्य-पाप का स्तर होता है। उनकी सन्तुष्टि उसमें होती है। यदि वो सन्तुष्टि नहीं लेंगे, तो कोई किसी काम को करने को तैयार ही नहीं है। फिर उन्मत्त, पागल जैसे बैठे रहेंगे।**

दो ही पुरुष पागल होते हैं। लोक में जो पागल दिखते हैं या तो जिनका आनन्द भंग हो गया है बाहर का और भीतर के लेने की शक्ति नहीं है, वे पागल हो जायेंगे। जो लोक में पागल लोग घूमते हैं, वो कौन होते हैं? जो भीतर के आनन्द को पहचाने नहीं और बाहर के आनन्द की क्षमता नहीं है उनके लिये, और वे इसके लिये सोच नहीं पा रहे हैं, वे पागल हो जाते हैं। वो मूर्च्छा से सुसुप्त हो गये, मूर्च्छित हो गये, उन्मत्त हो गये। जो बाहर का आनन्द नहीं ले पाये, सो जगत् में पागल बने घूम रहे हैं और भीतर का आनन्द नहीं ले पाये सो विषयों में आसक्त हो गये। भैया समझो ये दर्शन है। जो भीतर का आनन्द नहीं ले पाये तो बाहर में घूम रहे हैं। **जो बाहर कुछ नहीं कर रहा है, कुछ भी नहीं कर रहा है, तब भी आनन्दित होता है। वो ज्ञानी भीतर के आनन्द में लीन है। लोग उसे उन्मत्त समझेंगे, लेकिन वह उन्मत्त नहीं, वो तो तत्त्वज्ञान में लीन है।** बाहर जो रूप देखेगा, वह भीतर नहीं प्रवेश कर पा रहा, जो भीतर जा चुका है। अरे! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि साँप भी तुम्हें दिखाई देगा जब वह वामी में नहीं होगा। वामी में प्रवेश कर जायेगा, बिल में प्रवेश कर जायेगा, तो तुम्हारी आँखों से साँप दिखाई देगा क्या?

चाक्षुष वही है, जो बाहर है और जो भीतर गया, वह तो अचाक्षुष हुआ। सत्य है, **अध्यात्मलीन पुरुष, आत्मानंदी पुरुष उन्मत्त/ पागल नहीं हो सकता। उसका मस्तिष्क दूषित हो ही नहीं सकता है।** या बाहर का आनन्द ले रहा है, वो भी पागल नहीं हो सकता। जो भीतर-बाहर के दोषों से लिप्त

हो गया है, वह पागल हो जाता है। जिसके मस्तिष्क का रस सूख गया है, आज समझ नहीं आ रहा है, क्षयोपशम बढ़ जायेगा, तब समझ में आयेगा। अगले भव में समझ लेना जो मैं कह रहा हूँ। इधर ध्यान दो। ये भ्रम है तेरा कि तुझे सत्य समझ में आ रहा है। मेरे मित्र! आत्मज्ञ के नाम पर तू सत्य का नाश मत कर देना और सर्वज्ञ के नाम आत्मज्ञ को मत भूल जाना। **व्यवहार सत्य है, व्यवहार दृष्टि से, पर व्यवहार सत्य नहीं है व्यवहार दृष्टि से।** जो शून्यवादी, अद्वैत शून्यवादी हैं उन्होंने सारे जगत् को माया कह दिया। माया-माया कहकर तू पागल ही हो गया।

जिसको पुरुष की गन्ध पसन्द न हो, पुरुष से डरता हो, स्त्रियों से डरता हो, सारेजगत् के द्रव्यों से, ऐसे लोग मिलेंगे संसार में। वो मंदिर आयेंगे तो देखते हैं कि कोई है तो नहीं। वो भीड़ से डरते हैं। ये आधे पागल हो चुके हैं, विक्षिप्त हो चुके हैं, इनकी सहनशक्ति नष्ट हो चुकी है, इसको भीड़ से डर लगता है, ये असमान हो गया है। मेरे मित्र! **वैराग्य का अर्थ असमान होना नहीं है। वैराग्य का अर्थ समबुद्धि है। लोक ने वैराग्य को क्या समझ लिया? कि इनसे चेहरा लटका लो, उनसे बोलो मत, मुझे किसी से मतलब नहीं है, मैं किसी से बात नहीं करूँगा। बात नहीं करोगे आज से, तात्पर्य है कषायी! तू बात नहीं करेगा किसी से, आज से। अरे! निज में रमण कर रहा होगा तो तेरे से बात करने आयेगा कौन? और तू बात करेगा कब? मैं आज से किसी से बात नहीं करूँगा, तू द्वेषी है।** कहीं-न-कहीं तेरे अन्दर कषाय भरी पड़ी है। मैं आज से किसी से बात नहीं करूँगा, ये तो पागलपन है। जैनदर्शन तो आपने समझा ही नहीं। किसी से बात करना नहीं छोड़ना चाहिये, बात करने नहीं जाना चाहिये । ज्ञानी लोग प्राणी मात्र से बात करना नहीं छोड़ते। यदि बात करना छोड़ देंगे तो तुम्हारे दया, करुणा कहाँ जायेगी? ये बात करना नहीं छोड़ते हैं, ये बात करने नहीं जाते।

सुन रहे न भैया? नहीं-तो कुछ लोगों ने वैज्ञानिकों के और वृद्ध पशुओं के फोटो/ चित्र देखे हैं, अब तुमने चित्र तो देख लिये कि वे पागल-जैसे बैठे हुये हैं, पर तुमने ये नहीं देखा कि ये बनके पागल बैठे हैं कि निज में स्थिति बैठे हैं सो पागल दिख रहे हैं। भैया! ऐसे कितने त्यागी व्रती मिल जायेंगे जो दीक्षा लेके मौन होकर बैठ जाते हैं। अरे! झलकना चाहिये कि वैरागी है। मेरे मित्र! चेहरा लटकाकर मत बैठो, तुम ध्यान में बैठ जाओ। जब चेहरे पर सौम्यता होगी, भावों में विशुद्धता होगी, तो लोगों की दृष्टि में सत्यता होगी। इधर देखो, भगवान् का चित्र, ये किसी से बात कर रहे हैं क्या? गुस्सा में दिख रहे हैं क्या? बात नहीं करेंगे तो कषाय है। **'किसी से न बोलने का नाम मौन नहीं है। निज में मग्न होने नाम मौन है।'** नहीं बोलने वाले तो तिर्यंच भी होते हैं। वो बेचारे कहाँ बोलते किसी से? जो नहीं बोलते किसी से, वे तिर्यंच तुल्य हैं। जो निज में मग्न हैं, समय ही नहीं है बोलने का, वे सच्चे मौनी हैं। **गुमशुम बैठ जाना, किसी से मतलब नहीं रखना, ये वैराग्य के लक्षण नहीं हैं। निज का निज से वेदन**

करना, रमण करना, निज में मग्न रहना, इसका नाम वैराग्य है। उसके चेहरे को देखकर लोग मुस्कुरायेंगे कि धन्य हो स्वामी। ज्ञानियो! वैरागी होने पर पीड़ा शमन हो रही है क्या? वैराग्य के लिये क्लास लगा ली तो सोपादिक दशा हो गई। आम पकता है, उसकी कोई क्लास नहीं लगती, डाल पर पकता हुआ आम अपने आप ही सुवासित होता है, सुगन्धित होता है। अपने आप में ज्ञानी सर्वश्रेष्ठ होता है। ऐसे ही वैराग्य से परिपक्व मन जिसका है, उसके भाव टेड़े-मेड़ेपन से शून्य होते हैं। इन सब पर्यायों में वैराग्य का आनन्द ही बन्द हो गया, संघभेद में वैराग्य का आनन्द ही भंग हो गया। मेरा संघ, तेरा संघ, मेरे गुरु, तेरे गुरु, अरे! जिसके पीछे घर छोड़ कर आये थे, उसकी अनुभूति नहीं ले रहा है और गर्व ग्रहों में भटक गया। **जिसकी अनुभूति के लिये घर छोड़ा, वैराग्य धारण किया, उसका वेदन करो, छोड़ो सब पागलपन। निर्बन्ध होकरके, बन्ध से मुक्त होकरके, गर्व छोड़कर, आडम्बर छोड़कर, स्वतंत्र होकर जिओ।** निर्बन्ध होना है तो छोड़ना पड़ेगा कि मैं कौन से पक्ष का हूँ, कौन-सी आम्नाय का हूँ, कौन से मंदिर का हूँ, यदि स्वतंत्र होना है तो ज्ञानी! तुझे छोड़ना पड़ेगा।

जो मनुष्य व्यवहार को असत्य कह रहा है, व्यवहार को उसने अभी जाना नहीं। देखिये आगम ग्रन्थ क्या है और अज्ञानी क्या बोलते हैं। कुछ नहीं, शब्दों का उन्माद भर गया है अन्दर। भैया हम तो निश्चय वाले हैं, हम तो व्यवहार वाले हैं। तुम कहीं के वाले नहीं हो। तुम घर वाले हो। एकांत में जाओगे तो मिथ्यात्व में डूबोगे और मिथ्यात्व का फल दुर्गति होता है। राग कई प्रकार का होता है बन्धुओ! अगर आपको अपने मुँह के विशालपन में राग है वो भी राग ही है। तू नहा-धोकर जाये और आँखें बन्द करके बैठ जाये वो भी राग ही है। वैरागी तो आँखें बन्द करता नहीं है। तुम क्यों आँखें बन्द कर रहे हो? या तो किसी से द्वेष है, या तुम देखना नहीं चाहते, या भीतर किसी को भर लिया है उसको अच्छे से देख रहे हो। सुनो भैया! ये दर्शन है, दर्शन। आँखें बन्द क्यों किये हो? आँखें खोलकर क्यों देख रहे हो? **जिनेन्द्रदेव ने आँखें भी नहीं बन्द की हैं और आँखें भी नहीं खोलीं, केवल नासाग्र दृष्टि की है। मध्यस्थ भाव। हमारे जैनदर्शन में कहीं आँख बन्द करने को तो कहा ही नहीं है। नासाग्र दृष्टि। आँख बन्द करेगा तो सो जायेगा। आँख खोलेगा तो दुनियाँ को देखेगा, नासाग्र करके न सो पाओगे,न दुनियाँ को देख पाओगे।** भैया वास्तविकता ही ऐसी है और ये ही ध्रुवसत्य है।

ज्ञानी! विश्राम करने के लिये तो आँखें बन्द करना चाहिये, थकान को दूर करने के लिये आँख बन्द करना चाहिये, परन्तु ध्यान करने के लिये नासाग्र दृष्टि होना चाहिये। ये भीतर का विषय समझो। **वस्तु स्वरूप अलग है और लोक की व्यवस्था अलग है। जिस दिन वस्तुस्वरूप समझ में आ जायेगा, उस दिन से न किसी का सुधार, न किसी का बिगाड़। निज के सुधार में लग जायेगा।** उसे देखकर तो कोटि-कोटि सुधर जायेंगे।

भगवान् महावीर स्वामी ने किसी को नहीं सुधारा। वे अपने आप में ही इतने सुधर गये, इतने सुधर गये कि उनको सुधरा देखकर जगत् के लोग सुधरना प्रारंभ हो गये। वचनों का विसर्जन कर दिया। उनका देह ही मोक्षमार्ग का उपदेश दे रहा है।

जब ध्वनि खिरती है प्रभू की, कैवल्य की वाणी, ये उस समय खिराते नहीं, स्वयं खिरती है और जिसको खिराने की इच्छा होती है उसको तीन काल में भी केवली की ध्वनि नहीं खिरेगी। जितने केवली बनने की भावना रखते हैं कभी केवली नहीं बन पायेंगे।

''यस्य मोक्षेपि नाकांक्षा, स मोक्षमधिगच्छति।''

जिसको मोक्ष की भी आकांक्षा नहीं होती है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है। किसी भी चीज की कांक्षा मत जोड़ो। भैया! तुझे आत्मा की बात सुनने में भी आनन्द आता है, ये भी कांक्षा है। राग है, प्रशस्त राग। करो-करो, लेकिन सोचना नहीं पड़ेगा। **जब स्वरूप में लीन हो जायेगा, तब आत्मा की बात सुनने की आकांक्षा विलीन हो जायेगी और जब-तक स्वरूप में लीन नहीं हो रहा है, तब-तक तेरे आत्मा की बात सुनने के भाव जग रहे हैं।** भैया! सत्य ये ही है। मैं इतना जोर देकर क्यों कह रहा हूँ? कहीं ये जीव आत्मा की गहराई के नाम पर सर्वज्ञता का लोप न कर दें। सर्वज्ञता का लोप करके, न तुम आत्मज्ञ बन पाओगे और न ही सर्वज्ञ बन पाओगे। यहाँ कह रहे हैं कि जो सुगत ने व्यवहार को असत्य कहा है, वैसा हम लोग असत्य नहीं कह रहे हैं। ''**निश्चयापेक्षया व्यवहारोमृषा**'' हम जैनियों ने निश्चय की अपेक्षा से व्यवहार को मृषा (असत्य, झूठ) कहा है। यहाँ निश्चय की अपेक्षा व्यवहार मृषा है, सुगत व्यवहार की अपेक्षा व्यवहार को भी सत्य नहीं मान रहे हैं। वो सारे जगत् को शून्य कर रहे हैं, जड़ कर रहे हैं ''**जैनमते**'' और जैनमत में ''**पुनर्व्यवहारनयो यद्यपि**'' इन पंक्तियों पर सभी लोग ध्यान दो, क्योंकि 'समयसार' जी के नाम पर आप लोग इतने भ्रमित हो रहे हो, यह 'समयसार' जी ने भ्रमित किया कि आपकी न-समझ ने भ्रमित किया?

लिप्त होकर स्वयं का जीवन जी रहे हो। मेरे घर में इतने ए.सी., इतने पंखे, इतनी सम्पत्ति। ये तुम दुनियाँ की अफरातफरी में लगे हो और दूसरों से कहते हो 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।' दूसरों के लिये आत्मा का स्वभाव भिन्न, ये तुम्हारा झूठ हो गया। ये धर्म का ज्ञान नहीं है, ये भोगों की स्मृति है और अपना ज्ञेयत्व ज्ञान बताने आये हो कि तेरे घर में तो इतनी सम्पत्ति है ही नहीं। यही तो बहिर् व्यवहार है अन्तस्तत्त्व नहीं है, बहिरत्व है। पहले नगर का त्याग, गाँव का त्याग, नाम का त्याग, सबका त्याग। देखो साधुओं के नाम बदल गये, काम बदल गये, नगर बदल गये, इसलिये कहते हैं कि उनकी स्मृति करोगे तो कहाँ जाओगे ?

''एवमात्मा व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति पश्यति निश्चयेन'' इसलिये आत्मा व्यवहार से परद्रव्य को जानती है, देखती है। **''ग्रामादि सर्वं खल्विदं ब्रह्म ज्ञेयवस्तु किमपि नास्ति''** अब सुगत के बाद यहाँ पर ब्रह्म-अद्वैत-वादी के सिद्धांत को कहते हैं ये ग्राम आदि सब क्या हैं? निश्चय से सब ब्रह्म हैं, अन्य कोई ज्ञेय वस्तु नहीं है। यहाँ पर कोई ज्ञेय नहीं है। मात्र ज्ञाता, ज्ञाता, अनर्थ हो गया अनर्थ हो गया। **'खलुधम्मो द्वितीयो नास्ति।'** क्या कह रहे हैं? ब्रह्म ही सत्य है, बाकी मिथ्या है। **''ज्ञेय वस्तु किमपि नास्ति''** अन्य कोई वस्तु नहीं है **''यह ब्रह्माद्वैतवादिनोवदन्ति।'** आपने कल कहा था यहाँ पर, आपसे ये प्रश्न है **''ज्ञेय ज्ञायक एव, ज्ञायक ज्ञायक एव ज्ञाता ज्ञाता एव।''** ज्ञाता ही है, ये आपने कल कहा था न? उपमेय की अपेक्षा जब आप कह रहे हो कि ज्ञाता मात्र ज्ञाता ही है, अन्य कोई नहीं है। अरे! परज्ञेय मेरा निज स्वरूप नहीं है। मेरा निज ज्ञाता ही मेरा ज्ञायकभाव ही निज स्वरूप है। इस दृष्टि से, शुद्ध निश्चयनय से, ज्ञाता तो ज्ञाता ही है, ज्ञाता परज्ञेय नहीं है। परन्तु वहाँ तुम लोग कहते हो **''खलु धम्म एव, ब्रह्म ज्ञेयवस्तु नास्ति''** अन्य कोई ज्ञेय वस्तु नहीं है। आपने तो सारे जगत् को ज्ञेय बना लिया। लेकिन मैं कहता हूँ कि मेरा आत्मा ज्ञायकस्वभावी, मात्र मैं हूँ। मेरे में पर नहीं है और पर थोड़े ही कर्त्ता है। अन्तर समझ में आया? मैं मात्र अपने आप को अपना मान रहा हूँ। मेरे पर नहीं हैं, पर मैं पर को अपना कहाँ मान रहा हूँ? पर आप ने तो सारे विश्व को भ्रममय कर दिया, कोई दूसरा है ही नहीं, उनसे कह रहे हैं कि ज्ञानी! सुनो, **''यद् ब्रह्माद्वैतवादिनोवदन्तितत्''** तो प्रश्नकर्त्ता कह रहा है यदि ब्रह्म-अद्वैतवादी ऐसा कहते हैं तो **''निषिद्धं''** निषेध क्यों करते हो? **''यद्यपि सौगतोवदति ज्ञानमेव''** सौगत कहता है ज्ञानवान **''घटपटादि ज्ञेया कारेण परिणमति''** ज्ञान ही घटपट आदि ज्ञेयरूप परिणमन करता है **''न च ज्ञानाद् भिन्नं ज्ञेयं''** और कोई ज्ञान से भिन्न ज्ञेय नहीं है **''किमप्यस्ति तदपि निराकृतं''** सभी निराकृत कर दिया। वो भी असत्य है। ज्ञान ही रूप परिणमन करता है। मैंने ये क्यों कहा ?

ज्ञानी! कोई भिन्न ज्ञेय होगा, तभी तेरे ज्ञान में तद्रूपपना आयेगा, लेकिन तू सब का कहे कि बाहर में भ्रमण कोई है ही नहीं है, मात्र ज्ञान ही ज्ञान का हुआ है, तो ज्ञानियो! ज्ञानी-ज्ञेय का कार्य अवस्तु में हो रहा है कि वस्तु में हो रहा है? जब वस्तु सहित ही है। ज्ञानी! ये केमरा रखा हुआ है, इसमें वैसे का वैसा ही आ रहा है, मेरा चेहरा जैसा है वैसा ही आ रहा है। चेहरा उसमें किंचित मात्र भी प्रवेश को प्राप्त नहीं हुआ। फोटो कैमरे के लेंश का परिणमन केमरे में चल रहा है, परन्तु यह निश्चय दृष्टि। बराबर सत्य है कि केमरे का परिणमन केमरे में चल रहा है, ज्ञान का परिणमन ज्ञान में चल रहा है, पर, परज्ञेय के लिये मैं क्या ? उस केमरे में यानि मुकुर ने दर्पण में प्रवेश नहीं किया, दर्पण ने मयूर में प्रवेश नहीं किया, इसलिये दोनों भिन्न-भिन्न हैं। दर्पण की स्वच्छता का प्रभाव है कि वह मयूराकार दिख रहा है,

पर हे ज्ञानी ! इसका मतलब ये नहीं समझना कि मयूर नाम की कोई वस्तु नहीं है। मयूर वस्तु है, तभी दर्पण की स्वच्छता में झलक रही है। ऐसे-ही जगत् के ज्ञेय नहीं होंगे तो केवली के ज्ञान में झलकेंगे कैसे ? और यदि केवली का ज्ञान ज्ञेय बन गया तो केवली जड़ हो जायेंगे। केवली का जड़पना यदि सिद्ध हो गया तो चेतन नाम का भाव ही समाप्त हो जायेगा। इसलिये ऐसा मानके मत चलना। मेरे मित्र! इतनी सारी बातें तुम्हारे मस्तिष्क में रहना चाहिये, तभी तो तुम जैनदर्शन की सिद्धि कर सकोगे, अन्यथा जैनत्व से शून्य होकरके मिथ्यात्व में जीओगे। **वैरागी होने के बाद भी वैरागी होना पड़ता है। पहले तुम विषय भोगों से वैरागी होकर आये हो, अब यहाँ इन तत्त्वों का निर्णय करते हुये, विपरीत तत्त्वों से विरक्त होते जाओ, सम्यक् तत्त्वों में लीन होते जाओ।** दूध को भी छाना जाता है और दूध के छानने के बाद घी को भी छाना जाता है। घी को छान कर नहीं रखें तो घी महकने लगता है, सड़ जाता है। ध्यान रखना, घी को छानने के लिये छन्ना रखना, क्योंकि खौलता दूध तो प्लास्टिक की छन्नी में छान लेना, कुछ नहीं बिगड़ेगा; पर घी मत छान लेना, पिघल जायेगी। ऐसा क्यों ? घी में जो घनत्व है वह ऊष्मा खींचेगा, लेकिन दूध नहीं खींच पाता है, इसलिये छन्नी पिघलती नहीं है। ऐसे-ही तुम तपस्या कितनी ही कर लो, सबकुछ कर लो, वह दूध के ही समान है लेकिन घी के समान नहीं है। **जो कर्मों की निर्जरा ध्यान से होती है, वह दूसरी साधना से नहीं होती है।**

''**घटपटादि ज्ञेयाकारेण परिणमति न च ज्ञानाद्भिन्नं ज्ञेयं किमप्यस्ति।**'' जो ऐसा बोलते हैं उनका भी निराकरण किया। ''**इति चेत्, यदि ज्ञानं ज्ञेयरूपेण परिणमति**'' तो सुनो, ज्ञान-ज्ञेयरूप परिणमन करता है। भैया! एक दिन मात्र के प्रवचन समझ लिये, आपने प्रवचनों से घृत निकाल लिया, आपको प्रतिदिन के विषय को समझना पड़ेगा, क्योंकि चार दिन पहले विषय भिन्न था आज का विषय भिन्न है। आगम भिन्न नहीं है, कथन की विवक्षा उसमें क्या थी ? इसमें क्या है? ये ध्यान देना पड़ेगा। तो क्या है? यदि ज्ञान ज्ञेयरूप में परिणमित होता है, ''**तदा ज्ञानाभावः प्राप्नोति**'' यदि ज्ञान का ज्ञेयरूप परिणमन हो गया , तो ज्ञान का अभाव हो गया। ''**यदि वा ज्ञेयं ज्ञानरूपेण परिणमति**'' अथवा ज्ञेय ज्ञानरूप में परिणमित हो गया तो ज्ञेय का अभाव हो गया। एक ओर ज्ञान का अभाव हो रहा है तो दूसरी ओर ज्ञेय का अभाव हो रहा है। फिर यहाँ तो दोनों का ही लोप हो रहा है, दोनों में शून्यता आ रही है, इसका प्रत्यक्ष में ही विरोध है। इस प्रकार निश्चय व्यवहार के व्याख्यान की मुख्यता से, समुदाय रूपेण, दश गाथाएँ समाप्त हुईं।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

उत्थानिका : अज्ञानदशा में राग-द्वेष-मोह जीव के ही अनन्य परिणाम हैं।

गाथा: दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे विसए।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ।।366।।
दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे कम्मे।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तम्हि कम्मम्हि।।367।।
दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे काए।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु काएसु ।।368।।
णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स।
ण वि तहिं पोग्गल दव्वस्स को वि घादो दु णिद्दिट्ठो ।।369।।
जीवस्स जे गुणा केइ णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु।
तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु ।।370।।
रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादि।।371।।

(संस्कृत छाया) दर्शनज्ञानचारित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने विषये।
तस्मात्किं हंति चेतयिता तेषु विषयेषु।।366।।
दर्शनज्ञानचारित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतने कर्मणि।
तस्मात्किं हंति चेतयिता तत्र कर्मणि।।367।।
दर्शनज्ञानचारित्रं किंचिदपि नास्ति त्वचेतनेकाये।
तस्मात्किं हंति चेतयिता तेषु कायेषु।।368।।
ज्ञानस्य दर्शनस्य च भणितो घातस्तथा चारित्रस्य।
नापि तत्र पुद्गलद्रव्यस्य कोऽपि घातस्तु निर्दिष्टः।।369।।
जीवस्य ये गुणाः केचिन्न संति खलु ते परेषु द्रव्येषु।
तस्मात्सम्यग्दृष्टेर्नास्ति रागस्तु विषयेषु।।370।।
रागो द्वेषो मोहो जीवस्यैव चानन्यपरिणामाः।
एतेन कारणेन तु शब्दादिषु न संति रागादयः।।371।।

गाथार्थ - (**दर्शनज्ञानचारित्रं**) दर्शन-ज्ञान-चारित्र (**अचेतने विषये तु**) अचेतन विषय में (**किंचित् अपि**) किंचित् मात्र भी (**न अस्ति**) नहीं है (**तस्मात्**) इसलिए (**चेतयिता**) आत्मा

(तेषु विषयेषु) उन विषयों में **(किं हंति)** क्या घात करेगा। **(दर्शन-ज्ञान-चारित्रं)** दर्शन-ज्ञान-चारित्र **(अचेतने कर्मणि तु)** अचेतन कर्म में **(किंचित् अपि)** किंचित् मात्र भी **(न अस्ति)** नहीं है **(तस्मात्)** इसलिए **(चेतयिता)** आत्मा **(तत्र कर्मणि)** उन कर्म में **(किं हंति)** क्या घात करेगा? अर्थात् कुछ भी घात नहीं कर सकता है। **(दर्शन-ज्ञान-चारित्रं)** दर्शन-ज्ञान-चारित्र **(अचेतने काये तु)** अचेतन काय में **(किंचित् अपि)** किंचित् मात्र भी **(न अस्ति)** नहीं है **(तस्मात्)** इसलिए **(चेतयिता)** आत्मा **(तेषु कायेषु)** उन कायों में **(किं हंति)** क्या घात करेगा? **(ज्ञानस्य)** ज्ञान का **(दर्शनस्य च)** और दर्शन का **(तथा चारित्रस्य)** तथा चारित्र का **(घातः भणितः)** घात कहा है **(तत्र)** वहाँ **(पुद्गलद्रव्यस्य)** पुद्गल द्रव्य का **(घातुः तु)** घात **(कः अपि)** किंचित् मात्र भी **(न अपि निर्दिष्टः)** नहीं कहा है। अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र के घात होने पर पुद्गल द्रव्य का घात नहीं होता। इस प्रकार **(ये केचित्)** जो कोई **(जीवस्य गुणाः)** जीव के गुण हैं **(ते खलु)** वे वास्तव में **(परेषु द्रव्येषु)** परद्रव्य में **(न संति)** नहीं हैं **(तस्मात्)** इसलिये **(सम्यग्दृष्टेः)** सम्यग्दृष्टि के **(विषयेषु)** विषयों के प्रति **(रागः तु)** राग ही **(न अस्ति)** नहीं है। **(च)** और **(रागः द्वेषःमोहः)** राग, द्वेष और मोह **(जीवस्य एव)** जीव के ही **(अनन्य परिणामाः)** अनन्य परिणाम हैं **(एतेन कारणेन तु)** इस कारण से **(रागादयः)** रागादिक **(शब्दादिषु)** शब्दादि विषयों में भी **(नसंति)** नहीं हैं।

॥ समय देशना ॥

आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज समयसार जी में ध्रुव ज्ञायकस्वभावी भगवान्-आत्मा के सहजस्वरूप का वर्णन कर रहे हैं। चिद्रूप चैतन्य पिण्ड, ज्ञान घन भगवान्-आत्मा परद्रव्य से अत्यन्त भिन्न है। चेतन गुण से परिणमित आत्म-द्रव्य पर ज्ञेयाकार परिणत नहीं होता, तद् ज्ञेयों को निज ज्ञानाकार परिणत नहीं करता। पर ज्ञेय ज्ञान में झलकते मात्र हैं, परन्तु ज्ञान परज्ञेयभूत होकरके परिणमन नहीं करता। यदि परज्ञेय ज्ञानभूत हो जायेंगे तो जड़ ज्ञेय चैतन्य हो जायेंगे। ज्ञान, यदि परज्ञेयभूत होता है, तो ज्ञान अचेतन हो जायेगा। जो कि दोनों असम्भव हैं। न ज्ञेय भूत हो सकता है और न ज्ञान ज्ञेयभूत हो सकता है। इस प्रकार से ब्रह्म-अद्वैत की जो भ्रांति थी कि सारा विश्व ब्रह्ममय है, उसका निराकरण हुआ।

ज्ञानी! ब्रह्म चैतन्य है और विश्व में अचेतन द्रव्य भी है। यदि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्ममय हो जायेगा, या तो विश्व को ब्रह्मभूत होना पड़ेगा या ब्रह्म को विश्वभूत होना पड़ेगा। तो बताओ- क्या दोनों सम्भव हैं ? न ब्रह्म जगत्मय है, न जगत् ब्रह्ममय है। आत्मब्रह्म जो जगत् है वह जगत् से स्वतंत्र है। बहुत गहरा चिन्तन किया है वीतरागी आचार्यों ने। लोक की उस अज्ञानता को भीतर से ऐसे निकालकर रख दिया

जो ये सोच कर बैठा था। पूरा जीवन अन्धकारमय बना लिया जिनने, कैसे ? मैं कुछ हूँ ही नहीं, मैं मात्र जी रहा हूँ, मेरे जीवन की डोर तो ब्रह्म के हाथ में है। मेरे जीवन की डोर तो ईश्वर के हाथ में है। तुम जो कुछ भी सोच रहे हो सब ईश्वर के हाथ में है। तुम जो कुछ भी कर रहे हो, सब ईश्वर को अधीन है। ओहोहो- निषेध के अधीन होकर। मेरा सोच भी ईश्वर का सोच है, मेरा भोग भी ईश्वर का भोग है, मेरा वियोग भी ईश्वर का वियोग है, मेरा रोग भी ईश्वर का रोग है। तू समझ नहीं पाया कि सारे-के-सारे ईश्वर में हैं कि तेरे में हैं। जो तेरे में हैं, वे ईश्वर के नहीं और जो ईश्वर में हैं, वे ईश्वर के हो गये, तू ईश्वर के भोगों से लिप्त हो गया। इसलिये ज्ञानियो! ध्यान दो, मैं ईश्वर से अत्यन्त भिन्न हूँ। मैं मेरा ही ईश्वर हूँ। मैं पर एकत्व से अत्यन्त भिन्न हूँ। मैं मेरा ही मैं हूँ। मैं पर ज्ञाता से अत्यन्त भिन्न हूँ। मैं मेरा ही ज्ञाता हूँ। मैं परज्ञेयों से भिन्न ही हूँ। मेरा ज्ञाता मैं हूँ, मेरा ज्ञेय मैं हूँ। न मेरा परज्ञेयभूत परिणमन है, न मेरा परध्येयभूत परिणमन है, न मेरा परज्ञाताभूत परिणमन है।

अहो आश्चर्य! अपनी निज सत्ता को पर को सौंपकर कौन सुखी होगा ? अपनी निजी सत्ता को खोकरके, पर को सौंपकरके सुखी होने की कामना अज्ञानी ही कर सकता है। जो राग-द्वेष करके प्रसन्न हो रहा है, वो अज्ञानी ही है।

ज्ञानी!आनन्द तो राज्य परिणमन है कि सेवक परिणमन है? पर सेवक को तो सेवा में ही आनन्द आ रहा है। जिसका पुण्य क्षीण है, उसको सेवा में ही आनन्द आता है। **ज्ञानियो! ध्यान रखना, पुण्य के अनुसार प्रज्ञा का परिणमन होता है। जैसा पुण्य होगा, प्रज्ञा वैसी ही होती है। जिसका पुण्य अशुभ है, जिसका पुण्य क्षीण हो गया है, उसकी प्रज्ञा भी अशुभ कार्यों की ओर जाती है। पुण्य के क्षीण होने पर प्रज्ञा उत्कृष्ट नहीं चलती, निम्नता को दौड़ती है।** अधोस्थान पर प्रज्ञा जाती है, जबकि मुझे मालूम है कि प्रज्ञा तो उच्चता के लिये है, तो परिणमन तेरा उच्च होगा, गमन तेरा उच्च होगा। बस, मित्रो! वर्तमान के अपने ज्ञान के दमन को सँभालिये। बहुत सुन्दर विषय प्रारंभ हो रहा है यहाँ। ज्ञानी! जो कुछ हो रहा है शुभ-अशुभ, ये तेरा ज्ञाता का ही ज्ञान का विकार है। पर वस्तु न मेरे राग का कर्त्ता है, न मेरे द्वेष का कर्त्ता है। पर वस्तु में तेरा राग नहीं होता, पर वस्तु में मेरा द्वेष नहीं होता। राग-द्वेष का भाव मेरे ज्ञान में ही आता है।

समझदारों को समझना चाहिये कि एक जड़ वस्तु के अन्दर न राग भरा है न द्वेष भरा है। जड़ में न राग होता है, न द्वेष होता है। तेरे ज्ञान में ही राग होता है और तेरे ज्ञान में द्वेष होता है। दोष पर को देता है। भैया! समझ में आ रहा है क्या ? पर वस्तु में न राग है, न द्वेष है। इस गहनतम मिथ्या को समझने के लिये, भीतर जाने के लिये जड़त्व की बुद्धि चाहिये। **ज्ञान में ही राग है, ज्ञान में ही द्वेष है। ज्ञान का ही विकार है। राग करेगा तो ज्ञान से करेगा और द्वेष करेगा तो भी ज्ञान से करेगा।** जब आज

आपको मूल बात समझ में आ गई है, तो इनको भगाओ या न भगाओ, बस सँभाल सको तो अपने ज्ञान को सँभालो। बालक समझ रहा है क्या? बेटा! अगर तू यहाँ मेरे पास भी आया है तो अपने ज्ञान से आया कि नहीं आया? घर जायेगा तो ज्ञान से ही जायेगा कि नहीं? जो यह सोचते हैं कि इससे बचो, उससे बचो, तो किसी से कुछ नहीं बचना है। **ज्ञान का अधोगमन अशुभ भाव है। ज्ञान का ऊर्धगमन शुभ भाव है। ज्ञान का शुभ-अशुभ से भिन्न जो परिणमन है, वह शुद्ध भाव है। पर ज्ञेय मुझे नरक नहीं ले जायेंगे, पर ज्ञेय मुझे स्वर्ग नहीं ले जायेंगे। पर ज्ञेय मुझे सिद्ध भी नहीं बनायेंगे, परज्ञेय मुझे निगोद भी नहीं ले जायेंगे। मेरा ज्ञान का ज्ञेय मेरे में परिणमन करके मुझे सारे जगत् में भ्रमण करायेगा।** मेरे ज्ञान का भाव ही मुझे लोक में भ्रमण करा रहा है। समझ सको तो समझ जाओ, जान सको तो जान लो कि पर की रागबुद्धि ने पंचमकाल में भेज दिया आपको। अब छटवें काल की तैयारी करो। ज्ञान पर लक्ष्य ही नहीं गया था ज्ञान का, इसलिये शीघ्र ही अज्ञानता हावी हो जाती है और दूसरों को दोष देना प्रारंभ कर देते हैं। जबकि ये ज्ञान होना चाहिये कि मेरे ज्ञान में पर का ज्ञान प्रमेय होता ही नहीं।

मुमुक्षु! क्या पर का द्वेष तेरे ज्ञान में प्रवेश कर जायेगा? मेरे मित्र! तू पर के दोषों को जानेगा दुर्बुद्धि जो भी करेगी वह तेरी ही करेगी। मेरी सुबुद्धि मेरे रूप परिणमन करेगी, दुबुद्धि मेरे दोषरूप परिणमन करेगी। पर का राग, पर का द्वेष, पर की सुबुद्धि, पर की दुबुद्धि मेरे ज्ञान में किंचित् मात्र भी परमार्थ दृष्टि ये दुःखभूत नहीं है। यही तो निर्ग्रन्थों की सामायिक है। भैया! ये ही निर्ग्रन्थों की आराधना है, यही प्रतिक्रमण है, ये ही वन्दना है, स्वाध्याय है, ये ही स्तुति है। यानि **निज गुण की लीनता ही निर्ग्रन्थों का सर्वधर्म है, सारे कर्त्तव्य हैं।** सारे मूलगुणों-उत्तरगुणों का पालन होता है यदि कोई योगी निज स्वरूप में लीन है तो और जब निज स्वरूप में लीन नहीं होता है, तो फिर उनको षट्आवश्यक अलग से करना पड़ते हैं, शेष काम अलग करना पड़ते हैं। जो निज स्वरूप में लीन हो चुके हैं, उनको अलग से कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। सबकुछ एकसाथ।

हे जीव! "**दंसण णाणचरित्तं**" दर्शन-ज्ञान-चारित्र "**किंचि वि णत्थि दु अचेदणे विसए**" किंचित् मात्र भी अचेतन विषयों में नहीं है। ध्यान दो, ज्ञान में विषय को अनन्यभूत होकर समझ लो। पर में तन्मयभूत होकर जानेगा तब दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं होगा। जो ग्रन्थों से दर्शन-ज्ञान-चारित्र को आप समझ रहे हो, वो अतन्मय है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जगत् के सारे जीव पढ़ लेते हैं, ग्रन्थों से जान लेते हैं। यह अतन्मय है।

जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र से परे आत्मा है, वह तन्मय है। अतन्मयभूत होकर जान रहा है, वह व्यवहार है और तन्मयभूत होकर जान रहा है, वह निश्चय है। केवली भगवान् निज द्रव्य, ज्ञानगुण पर्याय को तन्मयभूत होकर जानते हैं। केवली भगवान् पर द्रव्य, ज्ञानगुण पर्याय को अतन्मयभूत होकर जानते

हैं। जैसे खड़िया दीवाल को सफेद किये है, अतन्मयभूत है। खड़िया सफेद है, तन्मयभूत है। चूने से पुतकर दीवाल सफेद है तो क्या वास्तव में दीवाल सफेद है ? ये किसके माध्यम से सफेद दिख रही है? चूने के माध्यम से। तो चूना सफेद है, कि दीवाल सफेद है? लोक में दीवाल को श्वेत कहते हैं, पर जो दीवाल का श्वेतपन है वह अतन्मय है और जो चूने का श्वेतपन है, वह तन्मय है।

पर का जानना अतन्मय है, निज का तन्मय है। मात्र दर्शन, ज्ञान, चारित्र को ग्रन्थों से समझ लेना अतन्मय है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को निर्ग्रन्थ बनके जानना तन्मय है। यदि निर्ग्रन्थ भी अपने दर्शन ज्ञान स्वभाव में डूब नहीं पा रहा है, तो उसका भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र अतन्मय है।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अनुभूति नहीं ले पा रहा है, 28 मूलगुणों का पालन निर्दोष करने के बाद भी अतन्मय है। तो फिर क्या होना चाहिये ?

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि।
तह्मा तत्तियमइओ, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा।।40/द्र.सं.।।

हे मुमुक्षु! रत्नत्रय का वर्णन नहीं होता है, कहाँ ? आत्मा को छोड़कर के, अन्य द्रव्यों में। रत्नत्रय कहाँ है? आत्मा में। आत्मा को छोड़करके रत्नत्रय धर्म अन्य द्रव्यों में नहीं है। इसलिये उन तीनों से युक्त आत्मा जो है, वो ही मोक्ष का कारण है। मोक्ष का कारण कौन है? व्यवहार से कथन हो रहा है, '**सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः।**' पर परमार्थ से देखोगे तो इन तीनों से युक्त कौन है? आत्मा। आत्मा ही निश्चय से मोक्षमार्ग है। ये व्याख्यान योगी कर रहा है, योगी के लिये कर रहा है, योग में कर रहा है, योग से लेकर कर रहा है। व्याख्यान को योग के लिये कर रहा है। व्याख्यान को योग के अभाव में, भोग के सद्भाव में ये ही कहता है कि आत्मा ही रत्नत्रय है। लेकिन दिखाओ कैसी आत्मा?

ज्ञानी! भ्रम कहाँ हुआ? ज्ञानी बोलता है कि महाराजश्री! न पिच्छी मोक्ष का कारण है, न कमण्डलु मोक्ष का कारण है, न देह लिंग मोक्ष का कारण है। मोक्ष का कारण तो आत्मा है। पर मेरे मित्र! मोक्ष का कारण आत्मा है, पर कौन-सी आत्मा ? बहिरात्मा या शुद्धात्मा। मोक्ष है क्या? आत्मा की शुद्धि ही तो मोक्ष है। तो मोक्ष का कारण कौन है? आत्मा भर कहने से काम नहीं चलेगा। अन्तरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा मोक्ष का कारण कौन-सी आत्मा है?

ज्ञानी! जो परमात्मा प्रगट है पर्याय की प्रत्यासत्ति से, वही आत्मा शुद्धात्मा है। जो परमात्मा प्रकट है, कर्मातीत है, अशरीर है, वही पूर्ण शुद्ध है, सिद्ध है। यहाँ अरिहन्त को भी ग्रहण नहीं किया।

जो परम अप्पा हुई है, सो सिद्ध अप्पा है, शुद्ध अप्पा है। अरिहन्त आत्मा है शुद्धाशुद्ध आत्मा। आधे घातिया नष्ट हो गये, आधे घातिया बचे हैं, इसलिये अर्द्ध घातेश्वर शुद्धाशुद्ध हैं। **शुद्धात्मा जो है, वह सिद्धालय में विराजी आत्मा है।** आप जो शुद्धात्मा बोलते हो, वह शुद्धात्म स्वभाव का आश्रय लेकर बोलते हो। यदि आपकी आत्मा शुद्ध है, तो आश्रय शुद्धात्मा का क्यों लेना? शुद्ध होने के लिये शुद्ध का आश्रय ले रहे हो, इसका मतलब है कि तुम पर्यायदृष्टि ये अशुद्ध हो। शुद्ध परमार्थिक नय से शुद्ध आत्मा का आश्रय ले रहे हो, लेकिन पर्यायार्थिक दृष्टि से अशुद्धात्मा हो। **द्रव्य से, पर्याय से, गुण से तीनों से जो शुद्धात्मा है, उसका नाम सिद्धात्मा है।** आपका दोष नहीं है। जैसा सुना, वैसा स्वीकारा। जो सुना गया है, वह अतन्मय सुना गया है और जो सुनानेवाला था वह भी अतन्मय था और जो सुन रहा है वह भी अतन्मय है। वस्तु क्या है ? वह तन्मयभूत स्वभाव है। अतन्मय को तन्मय का अर्थ कैसा ? भैया! विश्वास रखना, बड़े-बड़े ज्ञानी बन गये हैं, जीव इस स्वरूप से भिन्न हैं। यह जीव जो यहाँ बैठा है, वह सिर्फ 'समयसार' सुनने को ही बैठा है। निर्ग्रन्थों का ग्रन्थ सग्रंथों से बहुत सुना था पर निर्ग्रन्थों का ग्रन्थ निर्ग्रन्थों से सुनने का मन था, वो आज थोड़ा सा समझ में आया है। अतन्मयी तन्मय का क्या व्याख्यान करेगा ? शुद्धात्मा, परमात्मा बनने का पुरुषार्थ कौनसी आत्मा कर रही है? 'आत्मा' शब्द कहने से काम नहीं चलेगा। आत्मा के भाग कीजिये। अन्तरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा। बहिर्तत्त्व, अंतरतत्त्व और तीसरा है परमात्मा। बहिर्तत्त्व और अन्तरतत्त्व दो संसारी हैं और जो शुद्धात्मा है वह संसारातीत है, अब वह पुरुषार्थ कहाँ कर रहा है? परमात्मा पुरुषार्थ नहीं करता, शुद्धात्मा पुरुषार्थ नहीं करता। पुरुषार्थ कोई कर रहा है तो अन्तरात्मा बनने का पुरुषार्थ बहिरात्मा के हाथ में है और परमात्मा बनने का पुरुषार्थ अन्तरात्मा के हाथ में है। बहिरात्मा का पुरुषार्थ अन्तरात्मा को प्रकट करता है। अन्तरात्मा का पुरुषार्थ परमात्मा बनाता है, लेकिन मेरे मित्र! जगत् की अन्तरात्मा संसारभूत है। जघन्य आत्मा समयसार-उपासक है, मध्यस्थ अन्तरात्मा है। उत्कृष्ठ अन्तरात्मा समयसारभूत है। जब तक इस जीव के अरिहंत दशा है तब तक यह निकल परमात्मा नहीं है, सकल परमात्मा है। शुद्धात्मा की व्याख्या करोगे, तो अनन्त आत्मा शुद्धात्मा नहीं है, अनन्त आत्मा ही हैं। शुद्धात्मा है सिद्धात्मा। अनन्तआत्मा भी शुद्धात्मा बनने का पुरुषार्थ जारी किये हैं। वहाँ पर पुरुषार्थ चल रहा है सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति, व्युपरत क्रिया निवर्तीनि ये दो शुक्ल ध्यान हैं परमात्मा के होते हैं। कौन-से परमात्मा के ? सकलपरमात्मा के। अरहन्त दशा में (तेरहवें गुणस्थान में) अन्त समय में सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति शुक्लध्यान होता है। चौदहवें गुणस्थान में व्युपरत क्रिया निवर्तीनि नाम का शुक्लध्यान होता है। उस शुक्लध्यान की महिमा ही ऐसी है अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन लघु वर्णों के उच्चारण करने मात्र काल में, वो परमात्मा जो सकल परमात्मा है, वह निकल परमात्मा हो जाता है।

ज्ञानियो! निकल परमात्मा की सिद्धि चाहिये, तो निश्चय-व्यवहार के राग को भी निकाल देना चाहिये। **निश्चय-व्यवहार नय का राग भी बन्ध का ही कारण है। राग कभी मोक्ष का कारण होता ही नहीं है। राग बन्ध का ही कारण होता है। प्रशस्त राग होगा तो शुभ बन्ध किरायेगा, अप्रशस्त राग होगा तो अशुभ बन्ध करायेगा, लेकिन है तो बन्ध का ही कारण।** चैतन्य न निश्चय नय है, चैतन्य न व्यवहार नय है। चैतन्य तो मात्र चैतन्य है। क्या भिन्न-भिन्न, क्या भिन्न? ज्ञाता से सब बातें समाप्त हो चुकी हैं। अनुभवन का समय मात्र है और कुछ शेष नहीं। इतने सूक्ष्म में पहुँच चुके हो। अब आप ये स्थूल व्यवहार-निश्चय की चर्चा मत करना। यदि सूक्ष्म में पहुँचे निर्ग्रन्थ तपोधन, अब उनको न पिच्छी दृष्टिगोचर होगी, न कमण्डलु दृष्टि-गोचर होगा और न अब उनको शास्त्र दृष्टिगोचर होगा, न अरहंत बिम्ब दृष्टिगोचर होगा, न अब उनको भिन्न गुरु दिख रहे हैं। अपना दिगम्बर भेष नहीं दिख रहा है। उनको तो मात्र दिगम्बर स्वभाव दिख रहा है। भैया! इस समय तुम कोई बाहर का विषय छेड़ना मत, कोई बाहर की चर्चा मत करना।

जिसे दिगम्बर भेष भी परवस्तु दिख रही हो, मैं अपने भेष को अपना नहीं मानता हूँ, तुम्हारे आडम्बरों को कैसे मान लूँ? जिसने ये सब समझ लिया है कि मेरा दिगम्बर भेष मेरा नहीं है, देहाश्रित है, अब श्रमण बनके जिये और सच समझिये। कल्पना मत कीजिये। मैं ये नहीं कह रहा हूँ कि कल्पना करो। सत्य समझो।

विशुद्धसागर भी विशुद्धसागर नहीं हैं। जिसे तुम विशुद्धसागर बोलते हो, वह विरागसागर जी द्वारा दी गई संज्ञा तो देह की है, मेरी नहीं है। संज्ञा को अच्छा दिया तो अच्छा लगता है, बुरा दिया तो बुरा लगता है। ये संज्ञा तो राग का कारण है, द्वेष का कारण है। कोई नाम लेता है विशुद्ध सागर का, सो फूल गये। किसी ने कहा ऐसा करो, सो दुःखी हो गये। नहीं, इसे मैं स्वीकार करूँ क्यों ? जिसमें सुख-दुःख निहित है, भैया! समझ लेना। एक अत्यन्त स्थूल व्यवहार की चर्चा हो तो सँभाल कर सुनना, नहीं-तो आचार्य महाराज के पास पहुँच कर, 'महाराज! तुम्हारा शिष्य कह रहा था कि मैं आचार्य महाराज का नहीं हूँ।' नहीं हूँ, इसमें क्या शंका है? हाँ, जिस दृष्टि से हूँ, वह स्थूल व्यवहार है। शुद्ध उपचरित असदभूत व्यवहार नय की दृष्टि से मैं आचार्यभगवन् विरागसागर का हूँ, वो मेरे हैं। आप, लोगों को समझ में नहीं भी आ रहा हो तो भी विकल्प मत करना, आप तो सुनते जाओ। इसी पर्याय में आये हो, इतना गहरा जैनदर्शन का अध्यात्म है। मैं अपने शरीर का भी नहीं हूँ। ये संश्लेष संबंध शरीर की मिश्र अवस्था है। कर्म नोकर्म पौद्गलिक पिण्ड है। मेरा आत्मद्रव्य चैतन्य द्रव्य है। चैतन्य से, पुद्गल का एकत्व कैसा ? पुद्गलत्व में चैतन्य भाव कैसा ? मैं त्रैकालिक चैतन्य ही हूँ, मैं त्रैकालिक चैतन्य ही रहूँगा मैं त्रैकालिक चैतन्य ही था। मैं त्रैकालिक जड़ नहीं हो जाऊँगा और न ही जड़ हूँ, न जड़ था। कर्म

तो कर्म है। कर्म चैतन्य धर्म नहीं है। भाव परमाणु का वेदन जो कर रहा है। मुमुक्षु! ये द्रव्य परमाणु, भाव- परमाणु की व्याख्या 'पंचास्तिकाय' और 'सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में वर्णित है। यदि मैं अपने भाव परमाणु का वेदन कर रहा हूँ, मेरा चैतन्य ज्ञानगुण ही, आत्म द्रव्य ही भाव परमाणु है। मेरा चैतन्य गुण ही अखण्ड भाव परमाणु है। मैं मात्र निज भाव परमाणु के वेद-वेदक भाव से युक्त हूँ। जब देह मेरी नहीं है, देह की मुद्रा मेरी कैसे होगी ? अशरीरी होने के लिये दिगम्बर बनना होगा, लेकिन अशरीरी होने के लिये दिगम्बरत्व का राग भी छोड़ना होगा। अशरीरी होने के लिये दिगम्बरत्व का आवरण भी छोड़ना होगा। वस्त्रों के आवरण को हटा दिया तो देह दिगम्बर और दिगम्बर के राग के आवरण को हटा दिया तो भाव दिगम्बर। वस्त्रों को हटाना देह दिगम्बर। देह दिगम्बरत्व तो धारण किया अनंत बार जीवन में, पर दिगम्बरत्व का जो राग है कि मैं मुनि, जो मैं मुनि का भाव है, वह दिगम्बरत्व पर राग का आवरण है। जब इस राग का आवरण हटेगा, तब बनेगा भाव दिगम्बर। दिगम्बर से जो निर्वाण को प्राप्त करेगा, तो वह होगा भवातीत दिगम्बर।

तुम दुविधा में इतने उलझ चुके हो, उन विकल्पों की चर्चा भी तेरी लिये हिंसा है। हे मुनि! हे श्रमण! यदि तू मुनिपने के राग में 'मैं अमुक पंथी को मानता हूँ' अगर ऐसा भाव कोई जीवित है, तो तू दिगम्बरत्व की हत्या कर रहा है।

दाणं पूया मुक्खं सावयेधम्मे, ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं जइ धम्मं तं विणा तहा सो वि ।। 11/ र.सा. ।।

दान देना, पूजा करना श्रावक का धर्म है। श्रावक यदि दान-पूजा नहीं करता, तो वह श्रावक कहाने का अधिकारी नहीं है। हाँ, जबसे तेरे मन में भाव आया कि मुनिराजों का पड़गाहन करके दान दूँगा, ये लोभ कषाय मंद पड़ गई, चारित्र में अनुराग बढ़ गया, यानि कि श्रावक धर्म प्रारंभ हो गया।

गृहस्थ जब दान देता है, पूजा भी करता है, तब श्रावक होगा। लेकिन हे मुनीश्वर!दान देना तो श्रावक का धर्म है, आप तो मात्र उपदेश दे सकते हो, इसमें उलझने के लिये कोई व्यवस्था नहीं है। नहीं तो पिच्छी लेकर खड़े हो जाओ कि एक बार अभिषेक होगा तो मैं देखूँगा, यहाँ अभिषेक होगा तो मैं देखूँगा। जब तुम्हारा अभिषेक धर्म ही नहीं है, तो वहाँ खड़े क्यों हो ? यदि कोई दिखा रहा था तो देख लिया, अधर्म भी नहीं है। वह तो सम्यक्त्व की क्रिया है। कोई श्रावक अभिषेक दिखाये तो मना मत करना, देख लेना, लेकिन ऐसा मत करना कि मैं तब-तक आहार को नहीं उठूँगा जब तक तू मेरी आम्नाय का अभिषेक नहीं दिखायेगा। बस, वहाँ तो श्रावक ने करा दी चर्या, पर तुमने अपनी आम्नाय के अभिषेक के राग में, आम्नाय में आत्मा को भूल गये तुम। नहीं-नहीं, दिगम्बरत्व धारण करने के

पहले इस आम्नाय के विकल्प को यहीं रोक देना चाहिये था।

यदि श्रावक के अभिषेक-पूजन की क्रिया में मुनिराज हस्तक्षेप कर रहे हैं, भेद कर रहे हैं, तो वे ही मुनिराज मुनिपने का घात कर रहे हैं। जहाँ पर जिस प्रकार से अभिषेक-पूजन हो रहे हैं, उसमें जो हस्तक्षेप कर रहे हैं, वो हिंसा ही कर रहे हैं। दूसरों को उपदेश देकरके छुड़ाना, वहाँ वो सबसे ज्यादा हिंसा कर रहे हैं। दान-पूजा भावों की विशुद्धि के लिये थी, आप हस्तक्षेप मत करिये। आपका धर्म क्या है ? ध्यान करना और अध्ययन करना, ये मुनि का धर्म है। अपने धर्म से, व्यवहार धर्म से च्युत होकर तुम श्रावक-धर्म में लीन हो रहे हो। आपको अनुराग उत्पन्न हो, ठीक है, लेकिन इस बात पर ध्यान भी होना चाहिये कि मुनिचर्या का कहीं लोप न हो जाये और ये श्रावक के मन में भी भाव आना चाहिये कि मेरे दान-पुण्य, श्रावक चर्या का लोप न हो जाये।

उपदेशकर्त्ता बनकर उपदेश तो करो, निर्देशकर्त्ता मत बनो। समझना पड़ेगा मूलाचार को, समझना पड़ेगा श्रावकाचार को, समझना तो पड़ेगा समयसार को। नहीं-तो मैंने देखा है कि त्यागी जन आये तो वे विसंवाद कराके चले गये, जबकि उनके आने के पहले श्रावक हिल मिल करके रहते थे और उनके जाने के बाद गुटों में बँट गये। चातुर्मास में ये क्या सिखा गये हो? युद्ध करना सिखा गये हो, कषाय सिखा गये। सिखलाना चाहिये था कि कषाय भाव की हानि कैसे हो, वात्सल्य कैसे बढ़े। समझ में आ रहा है आप सबको? जो मुनि बन चुके हैं वे भी सुनें और जो मुनि बनने के भाव में है वे भी सुनें। जनपद शब्दों का भी आपको ध्यान रखना पड़ेगा। आगम का व्याख्यान आगम भूत ही करना, एक भी अक्षर इधर से उधर नहीं करना। आगम में ऐसा वर्णन है, आपके यहाँ क्या व्यवस्था है आप देखो। जनपद शब्दों पर ध्यान दो, दस प्रकार का सत्य आगम में है उसमें जनपद नाम का सत्य है। कोई भात कहता है, कोई चावल कहता है, कोई तन्दुल कहता है अगर तुम इसी में लगा लो चावल कहो तो ठीक है, भात कहो तो झगड़ा हो जायेगा अरे मेरे भाई भात भी तो वही बना हुआ चावल है, कोदन भी भात का ही नाम है, चोरु भी भात का ही नाम है। **ॐ** नमः सिद्धेभ्यः इस पर भी झगड़े हैं। आपके दिगम्बर आम्नाय में एक ऐसा पंथ है वो ''**ॐ** नमः सिद्धेभ्यः'' नहीं बोलना चाहता वह ''**ॐ** नमः सिद्धम्'' बोलता है। समझो ध्यान से, दोनों का अर्थ क्या है? ''सिद्धों को नमस्कार'' ''सिद्धों के लिये नमस्कार'' एक में चतुर्थ विभक्ति का प्रयोग है एक में द्वितीय का प्रयोग है। एक समूह है जो ''**ॐ** नमः सिद्धेभ्यः'' नहीं बोलना चाहता है। एक समूह ऐसा है जो ''**ॐ** नमः सिद्धम्'' को पहचान कहता है कि मैं तो **ॐ** नमः सिद्धम् ही बोलूँगा ऐसा मेरे ग्रंथ का कहना है। अरे ज्ञानी! णमो अरहंताणं, णमो अरिहंताणं ये भाषा का अन्तर है, वस्तु का अन्तर नहीं है। समझ में आ रहा है? णमो अरिहन्ताणं, णमो अरुहन्ताणं, णमो अरहन्ताणं हमारे दिगम्बर आम्नाय में तीन शब्द मिलते हैं, णमो अर, णमो अरु, णमो अरि, नमः स्वाहा

स्वस्ति इस अर्थ में चतुर्थी नमः स्वस्ति इस अर्थ में चतुर्थी नमः स्वस्ति इसके ऊपर चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है। **ॐ** नमः सिद्धेभ्यः ये व्याकरण सिद्ध है। नमस्कार अर्थ में कहीं कहीं प्राकृत ग्रंथ में द्वितीया का भी प्रयोग होता है। है तो है। विसंवाद किस बात का। दो शास्त्री बैठे हैं एक कहता है **ॐ** नमः सिद्धेभ्यः बोलिये एक कहता है **ॐ** नमः सिद्धम् बोलिये।

मेरे मित्र! मेरा प्रश्न है चाहे सिद्धम् बोलो, चाहे सिद्धेभ्यः बोलो। बोलने का उद्देश्य क्या है? इस बात पर ध्यान दो। सिद्धों की आराधना, अशुभ उपयोग से बचना अगर इतना उद्देश्य ही है। तो मेरे मित्र दोनों बोलो इसे भी स्वीकारो, उसे भी स्वीकारो पर एक समय में एक ही बोल पाओगे। एक दूसरों को झूठा कहना, एक-दूसरों को मिथ्या दृष्टि कहना ये गाली मत दो। आप ये नहीं समझना कि व्यवहार का लोप किया जा रहा है। व्यवहार का लोप नहीं किया जा रहा है। जिस व्यवहार को तुम जानते हो, उस व्यवहार के ऊपर भी व्यवहार है और उस व्यवहार से बाहर भी व्यवहार है।

मुमुक्षु! जगत् का सुहित करने वाली, भ्रमों को हरने वाली ये जिनेन्द्र देशना है, जिनेन्द्र वाणी है। निर्ग्रन्थों के श्रीमुख से तो वही निकलना चाहिये जो जगत् को सुख देने वाली हो और भ्रम को हरने वाली हो। भैया ! हमारे आचार्यों ने विद्वानों ने 'जगत् सुहितकर' शब्द का प्रयोग कर दिया है, सबका उद्देश्य मात्र है जगत् सुहितकर सब अहितहर जो भ्रम मिटाने वाली वाणी है, उसका नाम जिनवाणी है। **ग्रंथ लिखने की स्पर्धा मत बढ़ाना, ग्रन्थ लिखने का भाव मत बनाना, भ्रम निवारण का भाव बनाना। यदि भ्रम निवारण का भाव है, तो तुम्हारे द्वारा लिखे गये ग्रन्थ कल्याणकारी हैं। भ्रम निवारण का उद्देश्य नहीं है तो अकल्याणकारी हो गये। यदि भ्रम निवारण का ग्रन्थ होने पर भी किसी को भ्रम हो रहा है, तो उस जीव की अल्प बुद्धि दशा है, अदशा है।** आपको ये समझना चाहिये कि ये समयसार ग्रंथ भ्रम को खड़ा करने वाला ग्रन्थ नहीं है, भ्रम निवारण करने वाला ग्रन्थ है। इसको पढ़के जो भ्रम में पड़ गये, उनकी प्रज्ञा की न्यूनता है, प्रज्ञा उपशम है, प्रज्ञा की लोचता है, जिनवाणी का दोष नहीं है।

''दंसणणाणचरित्तं'' दर्शन ज्ञान चारित्र किंचित् भी अचेतन विषय नहीं है। तो ज्ञानी! उन अचेतन विषयों में कुछ भी नहीं है। न दर्शन है, न ज्ञान है, न चारित्र है। उन विषयों में आत्मा का क्या घात करे?

ये परम निश्चय नय की व्याख्या चल रही है। **दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा का धर्म है। जो परमदशा में न ले जाये वह न दर्शन है, न ज्ञान है और न ही चारित्र है।** फिर वे दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घात कैसे कर सकते हैं? दर्शन-ज्ञान-चारित्र किंचित् मात्र भी अचेतन कर्मों के नहीं हैं। **''तम्हा किं घादयदेचेदयिदा तम्हि कम्मम्हि''**। उन कर्मों में आत्मा का घात करने के लिये कुछ भी नहीं है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र किंचित् मात्र भी अचेतन शरीर में नहीं हैं।

इसलिये उस शरीर से आत्मा का क्या घात करेगा? अर्थात् कुछ भी नहीं।

''**णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स**''। दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो घात कहा है। ''**ण वि तहिं पोग्गलदव्वस्स कोवि घादो दु णिद्दिट्ठो**''। जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र है वो किंचित् भी ''**भणिदो घादोतहा चरित्तस्स**'' चारित्र का घात कहा है ? दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो घात होता है, पुद्गल द्रव्य न ज्ञान का घात कर सकता है, न दर्शन का घात कर सकता है और न ही चारित्र का घात कर सकता। क्यों? ज्ञानी! चेतन का घात अचेतन कैसे कर सकता है ? निश्चय से अचेतन में चेतन का घात करने की सामर्थ्य नहीं है।

अहो श्रमणो! यदि जीव के घात से दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घात हो जाता है, तो मेरे मित्र! सुकुमार, सुकौशल, गजकुमार आदि-आदि योगीश्वरों पर घोर-घोर उपसर्ग आये हैं, उनके शरीर छील दिये गये, टुकड़े भी किये गये, क्या तब भी उनके दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घात हुआ ? प्रत्येक तीर्थंकर के शासन काल में, दस-दस मुनि घोर-घोर उपसर्ग सहन करते हैं, ये मालूम है आपको और अनुत्तरों में जाकर जन्म लेते हैं। ''अंग पण्णत्ति'' नाम का एक ग्रन्थ है अपने यहाँ प्रकाशित है आचार्य श्री विमल सागर जी के महाराज ने उस पर संस्कृतवचनिका की है। ''अंग पण्णत्ति'' नामक ग्रन्थ का स्वाध्याय करना चाहिये। उसमें द्वादशांग का वर्णन किया है, उनके स्वरूप का वर्णन किया है। एक ग्रन्थ है 'धम्मरसायन' इस ग्रंथ का भी अध्ययन करना चाहिए श्रावकों को। लोगों के जितने मिथ्यात्व हैं 'धम्म रसायन' नामक ग्रंथ में इन सबका बहुत सुझाव रूप से, खण्डन किया गया है बहुत सुन्दर तरीके से।

भैया! किसी से शीघ्र आश्चर्यचकित होना, ये भी दोष है। शीघ्र किसी से प्रभावित नहीं होना चाहिये। अठारह दोषों में जो दोष है 'विस्मय।' ये तो होते आये हैं, होते रहे हैं, होते ही रहेंगे। इसमें आश्चर्य क्या करना ? मैं मान सकता हूँ कि आप ये सोच रहे होंगे कि महाराज आपके कहे अनुसार तो निष्ठुरता आ जायेगी। नहीं, निष्ठुरता नहीं आयेगी, निर्भीकता आयेगी, निडरता आयेगी, स्व पर स्थिरता आयेगी। समझ गये? निष्ठुरता में और निर्भयता में अन्तर है। निष्ठुर कैसा होता है और निर्भय कैसा होता है? न भयभीत करे और न भयभीत हो, वो ही अच्छा है। जो **न किसी से भयभीत होता है और न किसी को भयभीत करता है, वही सच्चा देव है। जो भयभीत करता है, वह हिंसक और जो भयभीत होता है, वह भी हिंसक। पर को भय करे, सो पर का घातक और स्वयं में डरे, सो स्वयं का (घात) हिंसा कर रहा है।** निर्भय होना चाहिये। इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव ही 'सप्त भयों' से दूर होता है, रहित होता है। जितने भी कुमार्ग में जा रहे हैं, चबूतरों को पूज रहे हैं, पार्श्वनाथ की कम वंदना, चबूतरे की ज्यादा वंदना। ये सब भयभीत लोग हैं। इनको कुछ चाहिये इसलिये चक्कर काटते हैं। जिसको परमात्मा दिख रहा है, उसको पार्श्वनाथ दिखते हैं। परमात्मा को भजो, पार्श्वनाथ को निहारो

विशुद्धि घुस गई मेरे भावों में क्या ? नहीं विशुद्धि तो मेरे भावों के अन्दर है, आप निमित्त मात्र हो। क्या आनन्द का जीवन है? मेरे मित्र! कोई कुछ भी कह दे, मुझे पर असर क्यों नहीं पड़ता ? जिस दिन इस सत्य का ज्ञान हो जायेगा। मेरे मित्र! उस दिन सब समाप्त हो जायेगा। निमित्त-नैमित्तिक भाव का आश्रय भी तेरा पराधीन भाव है। जिस दिन तू नैमित्तिक को पवित्र करेगा और प्रभाव पड़ता दिखता है तो कभी मुनि ही नहीं बनेगा। बेटा! तू 24-25 साल की उम्र में आया है यहाँ पर और तेरे घर में भरपूर धन रखा हुआ था, करोड़पति का बेटा है, तेरी शादी की चर्चा शुरू हो गई थी, तू मुनि बन कैसे गया? निमित्त वहाँ पर तुम्हारा था, माता-पिता कन्याओं को लुभाने की बात कर रहे हैं, लेकिन वो आपको प्रभावित क्यों नहीं कर पाये? आपका उपादान पवित्र था तो जगत् का कोई क्या करेगा ? यदि तुम कहो कि मैं वैराग्य का निमित्त बन गया, मैंने तो आपके नगर में चातुर्मास किया है, लम्बे समय तक रहा हूँ, वाचना भी की है, सारे नगरवासी क्यों नहीं आये मेरे साथ ? आपके उपादान में प्रबलता थी, इसलिये मैं आपको सहकारी बन गया। ऐसे-ही आपका प्रथम उपादान पवित्र था, वैराग्यभूत था, इसलिये वे कन्यायें तेरे लिये राग का कारण नहीं बन पाईं। बेटे! इसे स्वीकारो, इसी में कल्याण है। पर निमित्तों में जायेंगे तो वहाँ अपने को खो देंगे। पुरुषार्थ मेरा निमित्तों पर नहीं चलता, पुरुषार्थ तो उपादान पर चलता है।

मुमुक्षु! क्या सोच है यहाँ पर आपका? पुरुषार्थ निमित्तों पर चलता है कि उपादान पर? आगम से बोलना। आप इस युवावस्था में दिगम्बर मुनिराज बन गये हो और कैसे अपने आप को सँभाल रहे हो? तुम अपने निमित्तों को नाश करके सँभाल रहे हो, कि अपने उपादान को ही सँभाल रहे हो? भैया! वो जीव साठ साल की उम्र की ओर जा रहा है उस जीव से पूछना, उसके अनुभव से, कि इस जीव ने अपनी 16 वर्ष की उम्र से लेकर 60 वर्ष की उम्र में जो किये हैं, मध्यकाल, इसको कैसे-कैसे जिया है? कई बार सोचता होगा कि मैं आज पाप नहीं करूँगा पर इसका मन नहीं मानता था और पाप करके आ जाता था वह। धन्य हो जो आप लोगों ने ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकारा है। इसलिये आप कैसे कहते हो कि जगत् के निमित्तों को नाश करके नहीं आया जाता है? जगत् के निमित्तों से अपनी दृष्टि हटाकरके अपने उपादान को दृढ़ करना पड़ता है। ये भी सत्य है।

ज्ञानी! बातों में नहीं फँसा करो। आप तो जो संयम की साधना कर रहे हो, नग्नत्व परीषह है आगम में और जगत् में कितने प्रकार की नारियाँ हैं? कितने प्रकार के नर हैं ? उनके बीच से आप बालकवत् निकल जाते हो। उन निमित्तों को भगा कर निकलते हो, कि उपादान को दृढ़ करके निकलते हो? इतनी-सी बात बता दो। आप यहाँ की गलियों में दिगम्बर मुद्रा की चर्या को जानते हो, वहीं अनेक युवा निकलते हैं, उनकी दृष्टि अनेक कन्याओं पर जा रही है और भीतर विकार से भरे हुये हैं और आप दिगम्बर मुनि निकल रहे हो, अनेक बालिकायें, लड़कियाँ, महिलायें तुम्हारे हाथ पर (अंजुली पर) ग्रास

रख रही हैं और पास में खड़े होकर आहार दे रही हैं, तब भी तेरे भीतर विकार नहीं आ रहे हैं। ये उनका नाश करके किया है, कि उपादान को सँभाले हुये हो? जिस समय आपको कोई माँ, बहन, बेटी आहार देने आई, आप निश्चिन्त होकरके चर्या कर रहे हो और खोटे भाव नहीं ला रहे हो, खोटे भाव का निमित्त तो सामने था, तो उस समय तुम क्या कर रहे हो? आप वहाँ पर अशुभ भाव को प्राप्त क्यों नहीं हो रहे हो ? **आप बहिरंग निमित्त पर क्यों जोर देते हो? बहिरंग निमित्त भी कार्य में सहकारी है, परन्तु कार्यकारी अंतरंग निमित्त ही है। बिना बहिरंग निमित्त के अन्तरंग निमित्त कार्य नहीं कर सकेगा। जब भी कार्य बनेगा, अन्तरंग निमित्त ही परिणत होगा, बाह्य निमित्त कार्यरूप परिणत नहीं होगा।** ये भी एकांकी नहीं है। यदि तुम निमित्तों से अपने आपको प्रभावित होते ही मानते रहोगे, तो चारित्र और संयम नाम की वस्तु तो कभी प्रकट नहीं होगी। न पुण्य का द्रव्य तुमको छोड़ पायेगा न पाप का द्रव्य छोड़ पायेगा।

निमित्तों को भोगना ही पड़ेगा, पुण्य को भोगना ही पड़ेगा। चक्रवर्ती 96 हजार रानियों को छोड़ पायेगा क्या? वह छोड़के जाता है कि नहीं जाता? इसलिये ज्ञानियो! वस्तुस्वभाव को समझो। उपादान को सम्हालो, निमित्त से सुरक्षा करो। यदि आप निमित्त से दूर हो भी गये, आप नगर से दूर होकर जंगल में जाकर बैठ जाओ, शरीर को लेकरके तो बैठ गये, लेकिन आँखों के भीतर नारियाँ नाच रही हैं, वहाँ निमित्त तो नहीं थे, पर उपादान पर तेरा ध्यान नहीं है। मेरे मित्र! यहाँ देखो। पुष्पडाल महाराज के पास 12 वर्ष तक कानी नारी सामने थी क्या ? सामने नहीं थी क्या ? निमित्त वहाँ सामने नहीं होने पर भी उपादान विकृत था तो वो सामने ही निमित्त खड़ा रहा। ये स्पष्ट है कि यदि संयम की रक्षा करना है तो निमित्त के साथ उपादान को आपको सम्हालना पड़ेगा-ही- पड़ेगा। अन्यथा यहाँ बैठे-बैठे भी कहीं और बैठे होगे। यहाँ रहकर भी तुम्हें घर दिखाई दे रहा होगा।

यहाँ सबको समझ में आता है। जैसे-ही यहाँ से बाहर गये, जीव सबकुछ भूल जाता है। यहाँ पर तो लगता है कि ये बिल्कुल यही है। ध्यान रखना, ये उपादान की प्रधानता से कथन हो रहा था। मक्खन कितना ही खट्टा हो, कितना ही जमा हो, अग्नि के संयोग से पिघलेगा-ही-पिघलेगा। मुमुक्षुओ! तुम कितने ही बड़े महा ब्रह्मचारी रहो, नारियों के बीच में रहोगे तो पिघलोगे-ही-पिघलोगे, इसलिये दूर रहना।

चन्दन के वृक्ष पर कालिया नाग लिपटे रहते हैं, परन्तु नाग एक बूंद जहर से प्रभावित नहीं कर पाते हैं चन्दन को। चन्दन अपनी सुगन्धमय ही रहता है। ऐसे-ही जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं, उत्तम पुरुष होते हैं, उनके लिये जगत् के बाह्य निमित्त कुछ भी नहीं कर पाते हैं। यदि निमित्तों में ही लिपटे रहोगे तो उपादान की शक्ति कब करेगी ? स्यात् निमित्त, स्यात् उपादान।

भगवान्-भगवान् हैं, अभिषेक-अभिषेक है और मैं-मैं हूँ। भगवान् का अभिषेक होता नहीं है और भगवान् का अभिषेक होता नहीं है और बिना अभिषेक हुये बिना भगवान् नहीं होते और जो भगवान् का अभिषेक नहीं करते, वे पापी लोग होते हैं और जो अभिषेक करते हैं वे पापी होते हैं। छोड़ नहीं देना, अभिषेक करना। श्रावक अभिषेक न करे सो पापी और मुनिराज अभिषेक करने को खड़े हो जायें सो वे भी अपने मुनिपने को छोड़ दें समझ गये?

लोटा ढारे सो धर्मात्मा, लोटा न ढारे सो अधर्मात्मा और लोटा ढारे सो धर्म विहीन। आत्म धर्म से विहीन है, सो अभिषेक करे। जो निज धर्म से विहीन है सो अभिषेक न करे, इसलिये अभिषेक करना चाहिये श्रावकों को। ठीक है? निर्ग्रन्थों को नहीं। निर्ग्रन्थों को भी अभिषेक करना चाहिये, निज ज्ञान नीर का लोटा ढारना चाहिये।

जीवस्स जे गुणा केई णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु।
तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु।।

यहाँ सम्यक् दृष्टि जीव के विषयों में राग नहीं होता है। जो राग द्वेष मोह है ये सब जीव के एक अभेद रूप परिणाम हैं इस कारण से ये रागादिक शब्दों में नहीं है, ये जीव के ज्ञान का ही अभिप्राय भाव है और जो सम्यक् दृष्टि जीव है वह पुद्गल द्रव्य के घात हुये भी कुछ घात नहीं कहा। इस कारण से जो जीव है वे सब लेश्या से परद्रव्यों में नहीं होते हैं। जो जीव के भाव हैं चाहे रागभूत हों, चाहे द्वेष भूत हों, चाहे स्वभाव भूत हों, वे जीव के ही भाव हैं, पुद्गल के भाव नहीं हैं। जीव के भाव पुद्गल में होते नहीं हैं। इसकी विशेष व्याख्या आगे करेंगे।

रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी।।

जो शब्द आदि हैं, उनमें राग नहीं है, उनमें द्वेष नहीं है। जो राग-द्वेष-मोह है, ये जीव का ही अज्ञान परिणाम है। चिंतन करना कि वस्तु स्वरूप क्या है ? कुन्दकुन्द देव क्या कह रहे हैं ? और समझने वाले ने क्या समझ रखा है ? ये उदारदृष्टि है।

जो जिसका है नहीं, जो जिस में है नहीं, वह उसका उत्पादक नहीं। भूतार्थ दृष्टि से देखें तो लोक में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है, जो उत्पन्न हुआ हो। पर्याय की दृष्टि से उत्पाद-व्यय है, परन्तु ध्रौव्यत्व दृष्टि से पदार्थ अपने स्वभाव में है। जिसमें उतार-चढ़ाव चल रहा है, वह ध्रौव्य है। जो ध्रौव्य है, उसमें उत्पाद-व्यय है। जब जिसमें जिससे उत्पन्न ही नहीं उसका उसमें उत्पाद कैसा, व्यय कैसा ? मैं चैतन्य द्रव्य हूँ, मेरे चेतन में ही मेरा उत्पाद-व्यय है। जड़ द्रव्य का उत्पाद-व्यय मेरे चेतन में नहीं है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य से जो युक्त है, वह सत् है।

''उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्''''सद्द्रव्यलक्षणम्''। त.सू।

सत् ही द्रव्य का लक्षण है। सूत्रधार आचार्य उमास्वामी महाराज इस विषय का व्याख्यान कर रहे हैं। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है की जड़द्रव्य का उत्पाद जड़द्रव्यभूत हो रहा है, चेतन द्रव्य का उत्पाद चेतनद्रव्यभूत हो रहा है। भिन्न द्रव्य का उत्पाद-व्यय भिन्न द्रव्य में नहीं होता। ये निर्ग्रन्थ तपोधन की ध्यानस्थ धारा है। यह निर्ग्रन्थ तपोधन की स्वसंवित्ति की अनुभूति की लीनता की धारा है। ये निर्ग्रन्थ तपोधन के उपसर्ग/ परीषह के काल, विघ्न में निज से विचलित नहीं होने की धारा है। इनकी समयसार की धारा को जब आप निहारते हो तो दिगम्बरत्व से युक्त दिगम्बर मुनि कैसे हुआ करता है? योगी निज में लीन कैसे होता है? इस बात का बड़े सहज भाव से व्याख्यान है। हे श्रमण! अकेले में विराजते हैं आप। वन प्राणी ने आकर आप पर आक्रमण कर दिया।

जीव कोई कितना ही कहे कि मैं ममत्व शून्य हूँ, मेरे ममत्व नहीं है, मेरे राग नहीं है। तेरे में राग नहीं, तेरे में राग नहीं है, तो पदार्थ का संग्रह कैसा? और जब पदार्थ का संग्रह दृष्टिगोचर हो रहा है, तो नियत है कि तेरे में ममत्व है। यदि सुई बराबर भी ममत्व है, धागा बराबर ममत्व है, तो दोष है। वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन अपने पास न धागा रखते, न सुई रखते हैं। सुई रखना भी परिग्रह है, धागा रखना भी परिग्रह है। **ममत्व की हीनता, निर्ममत्व की प्रधानता जहाँ है, वहीं श्रमणत्व है।**

क्या लिखते हैं अमृतचन्द्र स्वामी आत्मख्याति टीका में और कुन्दकुन्द भगवान् क्या लिख रहे हैं गाथा में ? जो निज में, निजता के लिये लघु बना पाये निज को, अपने ही ज्ञान को, अपने ही ज्ञेय बना कर निहार रहे हैं, वे जान रहे हैं निज को ज्ञान को निज तन्मयी भाव से।

''यद्धि यत्र भवति तत्तद्घातेहन्यतएव, यथा प्रदीपघातेप्रकाशो हन्यते''

जो जिसका, जो जिससे, जो जिसमें होता है उसका उससे घात होता है। जो जिसमें नहीं होता है उसका उसमें पर घात नहीं होता। प्रदीप का हनन जहाँ होता है, वहाँ प्रकाश का भी हनन हो जाता है। क्यों? प्रकाश प्रदीप से उत्पन्न होता है तो जैसे दीपक के नाश होने पर प्रकाश का नाश हो जाता है ''**यत्र च यद्भवति तत्तद्घाते हन्यत**'' जिसकी अनुभूति जिसके जहाँ होने पर उसका घात होता है ''**यथा प्रकाश घाते प्रदीपोहन्यते**'' जैसे प्रकाश का घात होने पर प्रदीप का घात होता है। प्रकाश का घात करोगे तो प्रदीप का घात होगा, प्रदीप का घात करोगे तो प्रकाश का घात होगा। ध्यान दो, ये हो गया सूत्र अब सूत्र का विषय क्या है आपके लिये ? ये आपको क्यों कहा जा रहा है? यहाँ 'समयसार' जी सुन रहे हो आप। अपने आप को एक वियावान जंगल में खड़ा कर दो आप। वहाँ आकर सिंह ने आक्रमण कर दिया। योगीश्वर! रक्त देख रहे हो कि सिंह के बंधन को देख रहे हो? निश्चय से पीड़ा को देख रहे हो,

पीड़ा को देने वाले को देख रहे हो, घात को देख रहे हो, कि घातक को देख रहे हो?

हे योगी! क्या देख रहे हो? सिंह ने पंजा मारा, उस सिंह के पंजे मारते ही रक्त की धार बह गयी। जो जिस का होता है, उसका घात होता है। दीपक से ज्योति प्रकट होती है, दीपक नष्ट होता है तो ज्योति नष्ट होती है। देह में रक्त भरा होता है, रक्त देहमय है, देह रक्तमय है। पंजा देह पर मारा, देह का नाश हुआ है। देह का ही नाश हुआ है, पर देही का नहीं। लोगों ने समयसार को मात्र शब्द में समझा है। जहाँ पर समयसार का प्रयोग होता है, वहाँ नहीं समझा। यहाँ जो आप सुन रहे हो, इस समय वह समयसार का सूत्र है और सूत्र समयसार है। उन योगी को निहारिये, जिनके देह पर सिंह ने पंजा मार दिया है। ध्रुवसत्य बोलना, तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी को अजगर ने निगला कि नहीं निगला? तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी को पूर्व पर्याय में अजगर निगल गया। हे भ्रात! जिसके घात के लिए आया है, वो मैं नहीं हूँ। जिसे तू घात रहा है, वह पौद्गलिक है। जिससे तू घात रहा है, वह पौद्गलिक है। पुद्गल से पुद्गल का घात तो सम्भव है, पर पुद्गल से चेतन का घात सम्भव नहीं है। मूर्तिक से अमूर्तिक का घात हो रहा है। मूर्तिक से अमूर्तिक का घात, क्या खायेगा? देह के टुकड़े हो गये। बसूले से भी छीले गये 'कार्तिकेय स्वामी', तब भी किस बल पर जीवित थे?

जो जिससे उत्पन्न होता है, उसके घात से घात होता है। दीपक के घात से प्रकाश का घात होता है, प्रकाश के घात से दीपक का घात होता है। पर मैं शरीर से परे नहीं, शरीर मेरे से परे नहीं है। मेरा उत्पाद-व्यय भिन्न है, शरीर का उत्पाद-व्यय भिन्न है। ये मात्र सुन रहे हैं, यहाँ मात्र सुना रहा हूँ, पर मैं देख रहा हूँ 'गजकुमार महामुनिराज' को सिगड़ी सिर के ऊपर रखी हुई है। मैं देख रहा हूँ कार्तिकेय मुनिराज को जिनके शरीर पर आभूषण पहनाये गये लोहे के, जो झुलसते हुये थे। देख रहा हूँ पार्श्व स्वामी, अभिनन्दन नाथ मुनिराज को, जिनको घानी में पेल दिया गया हो। मैं समयसार को आँखों से देख रहा हूँ, ये यथार्थ समयसार है। किसके बल पर घोर उपसर्ग सहन कर गये ? ये है मुनित्व की धारा। देह अपनी नहीं है, ऐसा कह पाना बहुत सरल है। देह मेरी नहीं स्वीकार कर पाना बहुत कठिन है। भैया! जिसे तुम सुन रहे हो, किंचित् भी बाहर का विषय नहीं। भैया! निहारिये कि समयसार जी मैं कैसी व्यवस्था है? लेशमात्र भी ममत्व को स्थान नहीं है। ममत्व में लेशमात्र भी स्व को स्थान नहीं है। देह का घात हो रहा है तब इस सूत्र का ध्यान आना चाहिए कि मैं कर्म, नोकर्म से उत्पन्न नहीं हूँ। सुधी श्रावको! मैं कर्म, नोकर्म से उत्पन्न नहीं हूँ। कर्म, नोकर्म मेरे से उत्पन्न नहीं हैं। भूतार्थ दृष्टि। वस्तु को किंचित् मात्र भी इधर करने के लिये हाथ उठाने की आवश्यकता नहीं है। योगीश्वर योग को स्पंदित नहीं कर रहा है कि मैं ममत्व को हटाकर देह को हटा रहा हूँ। योग का स्पंदन नहीं कर रहा है, निज के उपयोग को बदल रहा है।

गुरुदत्त स्वामी के शरीर में आग लग गई। द्रौणगिरि पर्वत पर गुफा के भीतर विराजते योगी को आग लगा दी, क्या मिला उसे ? किसान ने अपने खेत के निकट जाकरके दिगम्बर तपोधन को आग लगा दी। लेकिन वहाँ क्या निहार रहे थे ? मुनीश्वर! ज्वलनशील जो है, वही तो जलेगा। जो ज्वलनशील नहीं है, वह तो जलके भी नहीं जला, वह तो जलके भी चमकेगा। ओहो! आपने नोट, कागज तो बहुत जलाये हैं। कपड़ा भी फाड़े हैं। कुछ-न-कुछ जलाते ही रहते हैं। लोक को जलाते रहते हैं, पर कहने में आता है कि लोगों को जला रहे हैं, स्वयं का लोभ जल उठता है। लोक में लगी किट्टिमा, लोक में लगी कालिमा थी, वो जलती है, ज्वलनशील लोक नहीं है, ज्वलनशील जो कालिमा थी, वो जल गई और जैसे ही ऊपर का मैल जाता है, अग्नि बुझ गई और परमाणु चमकता ही रहता है। परमाणु से पूछो। स्वर्ण को भट्टी में झौंकते हो, पर स्वर्ण नहीं जलता। जो स्वर्ण के अन्दर कालिमा होती है, उसे जलाकरके स्वर्ण को तो उज्जवल कर देते हैं, चमका देते हैं।

हे वीतरागी दिगम्बर तपोधन! देह अग्नि में जल रही हो, तब भी ध्यान में चलता है कि जो ज्वलनशील है वही तो जलता है और ध्यान की अग्नि में कर्म जल रहे हैं। ज्वलनशील ही जलते हैं। ज्वलनशील जब जल चुका है, तब मात्र शुद्ध सोना दिखाई देता है और शुद्ध भगवान् आत्मा प्रकट हो जाती है।

ज्वलनशील जल गया। देखो मैं क्या कह रहा हूँ ? आपकी आँखों के सामने नहीं है क्या ? मैं आखों के सामने देख रहा हूँ। ज्ञेय बढ़ रहा है, ज्ञान में झलक रहा है। जलने वाला जल जायेगा। वो जलनेवाला ही तो जल रहा है। जो जलनेवाला नहीं होता, वह नहीं जलता।

जो-जो जलने वाले हैं, वे ही जलेंगे। निश्चय से, व्यवहार से, लोकदृष्टि से देखो तो ईष्यालु लोग जलते हैं। वे ही तो जलते हैं, जो जलनेवाले होते हैं। जलनेवाले ही जलते हैं। लकड़ी जलती है, रोटी पकती है। अग्नि में जलनेवाला जल रहा है, पकनेवाला पक रहा है।

ज्ञानियो! तपस्या के मार्ग में रागी जल जाता है, वैरागी तप जाता है। मार्ग में भी रागी जल जाता है, शरीर को सुखाकर रख देता है कषाय में और वैरागी तत्त्वज्ञानी जलता नहीं है, पकता है, चमकता है, कुन्दन बनता है।

कुन्दन तब बनता है जब जलना छोड़ देता है। विश्वास रखना लकड़ी राख बन सकती है लेकिन कुन्दन नहीं बन सकती है, क्योंकि उसमें धातुपने का अभाव है। जिसमें धातुपने का अभाव होता है, उसे जलना पड़ता है। देह में भी धातुपने का अभाव है, इसलिये उसे जलना पड़ता है, परन्तु आत्मा कुन्दन होती है। क्यों ? क्योंकि वह चैतन्य धातु है।

'चैतन्य धातु स्वरूपोऽहम्', ये ध्रुवात्मा चैतन्य धातु स्वरूप है। वे योगीश्वर समरसी भाव में लीन होकरके जलनेवाले को देखते हैं। चमकनेवाले को देखो, अद्भुत ज्ञायक दृष्टि है ? भैया! दुनियाँ को जलते देखा तो क्या देखा ? ज्ञायक भाव से देखें तो जलनेवाला जल रहा है। जब देह में राग हो जाये, जब देह में पीड़ा हो जाये, व्याधि हो जाये, उसी समय निहारो कि अहो! ये क्या कर रहे हैं? इस देह को आज तक देखते ही आये हैं, दर्पण रखकर भी देखा कि चेहरा दिखेगा तो दर्पण में दिखेगा। नहीं देखना कि मैं सुन्दर लगूँ दर्पण सुन्दर नहीं लगता, इसलिये देखना कि ये सुन्दरता कब तक रहेगी? दर्पण देखना क्यों ? सुन्दर लग रहा हूँ कि नहीं? ये मत देखना। दर्पण में देखना कि मैं ये सुन्दर कब तक देखता रहूँगा, ये कब तक बचेगी? इसमें परिणमन चल रहा है, मेरे देखते-देखते मैं बूढ़ा हो चुका हूँ। पर के परिणमन को मैं कहाँ रोक सकूँगा ? **पर के परिणमन में उलझकरके ब्रह्म का नाश किया है। स्व की पर्याय को सजाया पर के परिणामों को भ्रमित करने के लिये। स्व की पर्याय को सजाया पर की पर्याय को रिझाने केलिये। स्व के गाल को चमकाया पर के ब्रह्मभाव को नष्ट करने के लिये।** सुगन्धित तेल, खुशबूदार इत्र /सेन्ट का प्रयोग किया है कि मेरे शरीर की गंध से दूसरे के भाव परिवर्तित हो जायें। शिकारी फैला रहा था जीवों के प्राण के वास्ते और रागी फैलाता है अपने शरीर पर जाल दूसरों के ब्रह्म के नाश के लिये।

चाहे क्रीम हो, चाहे पाउडर हो, चाहे कितने-कितने प्रकार के सौंदर्य प्रसाधन हों, ये जो कुछ भी लगा रहे हो सब परभावों को विचलित करने के लिये हैं। उद्देश्य क्या है? **''यथा उद्देश्य तथा आदेश''** उद्देश्य जैसा होता है वैसा आदेश होता है। संकेत भी तुम किसी को कर रहे हो तो उसमें उद्देश्य निहित होता है तभी ये आदेश है।

यहाँ निहारो देह को। ज्ञानी! तेरी समझ में आ रहा है क्या ? मित्रो! ये नगरों में भवनों में विराम तेरी सहजता की पहचान नहीं है। उपसर्ग/ परीषह को सहन करते हुये अटवी में विचरण कर रहे हो और वहाँ घोर उपसर्ग चल रहे हों, तब भी वहाँ हे मुमुक्षु! भावों को विचलित नहीं करना। अब मैं स्वयं फंदों में फँस ही चुका हूँ, स्वयं के जाल में आ ही चुका हूँ, अब प्राण तो बचा नहीं पाऊँगा, ममत्व करके बन्ध को प्राप्त ही होऊँगा। **जो बचने वाला नहीं है, उससे ममत्व छोड़ करके निर्ममत्व की शरण में चले जाओ, तो शिवत्व की भूमि में पहुँच जाओगे। ममत्व में मर गये तो नरक की भूमि में चले जाओगे।** ये योगी के भव की रक्षा के लिये व्याख्या नहीं चल रही, ये योगी के भावों की रक्षा का व्याख्यान चल रहा है। भैया! क्या तू भव को बचाकर रख पायेगा? बेटा! भव तो नहीं बच सकता, तू चाहे जितने प्रयास कर ले। रोज समाचार मिलते हैं कि कहीं कोई गया, कहीं कोई गया। ये 'समयसार' जी ग्रंथ में योगी के भावों को बचाने की व्याख्या चल रही है। **भव को बचाने का प्रयास मत करो,**

भावों को बचाने का प्रयास करो। भव का संहार जीवन में एक बार होता है, भावों का संहार (घात) जीवन में बार-बार होता है। हिंसक हो हिंसक। घोर हिंसक। निज भाव से किंचित् भी परिणाम विचलित कर रहे हो, तो आप हत्यारे हिंसक हो।

भव का घात मत करो। ये अहिंसा धर्म है। इस अहिंसा की व्याख्या को कोटि-कोटि लोग मानते हैं। पर के भव का घात मत करो, निज के भव का घात मत करो, इस अहिंसा की व्याख्या तो करोड़ों लोग कर चुके हैं। अन्य मतों में भी इसकी व्याख्या है। **निज भावों का घात मत करो, भाव-घात हिंसा है, इस बात से बचने के बाद ही तुम अहिंसक हो सकोगे। भावों का घात मत करो, इस अहिंसा की व्याख्या करने वाले कोई हुये तो एकमात्र तीर्थंकर वर्धमान स्वामी हुये हैं।**

समझो इस रहस्य को। जगत् में अहिंसा की जितनी भी व्याख्या लोगों ने कही है, सबने शरीर के नाश को मत करो, इस अहिंसा की बात कही है। अन्य धर्मों ने भाव की हिंसा की बात की है क्या ? जब किसी ने हिंसा धर्म की बात की है, दया की बात की है, '**अहिंसापरमोधर्मः**' की बात की है, वो मात्र देह का नाश मत करो, इतनी अहिंसा की बात की है; लेकिन जिनशासन में देह का घात तो करो ही मत, परन्तु निज के भावों का घात भी मत करो। खोटी याद करके देह जलाना भी हिंसा है, मुमुक्षु! ठण्डी श्वास लेना हिंसा ही है, कुशील ही है, चोरी ही है, असत्य ही है, परिग्रह ही है। पाँचों हैं। ठण्डी श्वास ली है, उद्देश्य क्या था? समझ में आ रहा है? ठण्डी श्वास खींची, उसमें पाँचों पाप हो गये। श्वास खींची है। ओ हो! अच्छा लगा, राग हुआ, स्वभाव भाव का घात हुआ है, हिंसा है। किसी को पता नहीं था कि तुम कर क्या रहे हो। लोग कह रहे थे कि त्यागी-जीवन चल रहा है और जो श्वास ली है तुमने खुशबूदार ठण्डी, असत्य जीवन अतेन्द्रियपने का अभाव करके तुमने नरक का भाव किया, जबकि जितेन्द्रिय भाव होना चाहिये था, सो चोरी हो गई। परवस्तु को निज भोग के लिये खींच रहे हो तो अब्रह्म हो गया। आगम देखो, क्या पर ग्रह परिग्रह में लीन श्रमण पाँचों इन्द्रिय से, पाँचों पापों का त्यागी है? समझो आज। न समझ में आये, किसी पर्याय में समझ आये, समझ लेना, पर विषय की गहराई में तो जाना ही होगा। ऐसे निर्ममत्व योगी देह के राख होने पर, मन, वचन, काय के विघात होने पर, दर्शन, ज्ञान, चारित्र का विघात नहीं स्वीकारते। निज स्वरूप का विघात नहीं स्वीकारते। चैतन्य में घात हुयी विशुद्धि नहीं स्वीकारते हैं।

भैया तेरे और उसमें भिन्नता है, ये कह पाना बहुत सरल है, पर देह से भिन्न होकर जी पाना बहुत कठिन है। किंचित् भी इसको कुछ होता है तो भाव बिगड़े, कैसा लग रहा है ? कैसे न लगाऊँ? तू है ही नहीं उसमें। उसे अपना क्यों मानता है?

ज्ञानी! पर्याय के निषेक दर्पण के सामने नष्ट किये हो, क्या देख रहे हो उसमें ? क्या देख रहे हो काँच में ? असमान जाति पर्याय को देखने के लिये दर्पण लगा था। भान नहीं था इस जीव को, कि ये आयु के निषेक नष्ट हो रहे हैं। बहु अन्याय, मौत की लीला ही तो देखो। पहचान ही नहीं कर रहे थे वहाँ कि मेरा जीवन नष्ट हो रहा है। इतना तीव्र राग भाव था। सारे शरीर को आँखों से देख लेते। आँखें आँख को नहीं देख पा रहीं थीं, इसलिये दर्पण रखकर आँखों को देखा आँखों से ।

एक रागी आँखों को देखने के लिये दर्पण रखे हुये है और एक वैरागी आँखों से देख रहा है कि मेरे शरीर को सिंह खा रहा है। तब भी निहार रहा है कि जो मेरा नहीं है, उसे ही तो भक्षण कर रहा है और जो मेरा है, उसमें तो उसका दाँत प्रवेश कर ही नहीं सकता है। जो मेरा है उसमें किसी सिंह का दाँत प्रवेश नहीं करता, सिंह की दाढ़ें प्रवेश नहीं करतीं और जो मैं नहीं हूँ उसी में सिंह के दाँत और दाढ़ें प्रवेश कर रही हैं। हे योगीश्वर! कोटि-कोटि नमस्कार हो आपको। कोटि-कोटि कहो तब भी कम है। आपके उत्कृष्ट धैर्य की वन्दना करता हूँ, आपके उत्कृष्ट चारित्र की वन्दना करता हूँ। यहाँ तो मच्छर काटे तो पिच्छी से भगा लेता हूँ, पर जहाँ काट रहा है , साँप निगल रहा है, अजगर सहित जिनके शरीर को चिटियाँ काट रही हों और वे योगीश्वर महामुनिराज हाथ नहीं हिला रहे हैं, क्योंकि किंचित् भी मेरा नहीं। धन्य हो उस चर्या को। निज की देह को हिलने नहीं दे रहे हैं और स्वयं वेदना को सहन कर रहे हैं। अब क्या खोजोगे 'समयसार' ? इसलिये यथार्थ स्वीकारिये। सागर तो दूर, पानी के प्याले में समयसार झलकता है। इसमें शंका नहीं है भैया! दूध के प्याले में समयसार नहीं झलकता, नहीं झलकता। ये तो शब्दों को सुना रहा है, ये शब्दों का सहारा है।

देह को छील करके छोड़ दिया है, बहिन खड़ी देख रही है, पति छील रहा है। संबंध की दृष्टि से देखें तो साले को बहनोई छील रहा है, बहिन देख रही है। कार्तिकेय स्वामी कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हुये हैं। छील ही लो।

जो दृश्य मैं देख रहा हूँ, वो अचेतन है, वो जानता नहीं है किसी को। जो जाननहार है, वह दिखता नहीं है किसी को । जो मैं जान रहा हूँ, जिसे जान रहा हूँ, वह जाननहार नहीं है। जो जाननहार है, वह किसी को दिखाई नहीं देता। परमब्रह्म की धरा है ये भारत की भूमि। परा विद्या गुंजायमान हुई है इस भूमि से। विद्या को समझ नहीं पाये। सारे योद्धाओं से जब आँखें बन्द हो जाती हैं, तब मौन ले लेता है। विषय विराम ले लेते हैं, तब इस विद्या की अनुभूति प्राप्त होती है। आपने जब तक नहीं सुना, तब तक ये भी मालूम था क्या कि ऐसा भी चिंतन है? ऐसा चिन्तन ही नहीं, ऐसा जीवन है। जो सुन रहे हो, ये मत कहना कि ऐसा भी चिन्तन है। बस, प्रभू! जीना चाहता हूँ तो ऐसा जीवन जीना चाहता हूँ।

वीतरागी, निर्ग्रन्थ, तपोधन का ऐसा ही जीवन है। श्रमणो! सब जीना बन्द करो। जो जीवन धारा जीने में है, उस पर गौर करो, लक्ष्यपात करो। ये ही सम्यक् जीवन है। ये ही सच्चा जीवन है। ये ही भूतार्थ जीवन है। ये ही पंक्तिबद्ध है। कितना गूढ़ रहस्य भरा है। मुमुक्षु! जानते हो व्याख्या किसकी चल रही है इसमें ? प्रथम पंक्ति की व्याख्या चल रही है। अब सोचो भैया! 'आत्मख्याति' टीका में जितनी व्याख्या है क्या उपहास हास्य के योग्य है?

आचार्यभगवन्त पूज्यपाद स्वामी ने ''सर्वार्थ सिद्धि'' ग्रन्थ लिखा। जिनको ग्रन्थों की महिमा का भान नहीं है, वे ग्रन्थों को सामान्य मानते हैं। आज तुम्हारे हाथ में जिनवाणी है सो तुमको उसकी महिमा नहीं आ रही है। 'सर्वार्थ-सिद्धि' महान् ग्रन्थ है। सिर पर रखकर नाचना चाहिये, ऐसा महान ग्रन्थ है। मतलब समझो नाचने का मेरा। एक प्रमुदित भाव, गद्गद् भाव आना चाहिये। एक पूर्वाचार्य को अपने से पूर्व आचार्यों की बहुत महिमा आती थी। अब पता नहीं ये कौन-सा काल आ गया दरिद्रकाल, जिसमें एक आचार्य, एक मुनि को दूसरों के गुणों का यशोगान करने में दरिद्रता आ रही है। भैया! मुख से बोलना तो कठिन है, उनको कानों से सुनने में कंकड़ चुभते हैं, काँटे लगते हैं। ये पंचम काल के खोटे परिणाम हैं।

ओहो! प्रथम पंक्ति में कितना रहस्य भरा है। अब समस्या कहाँ? समयसार देखो। मुमुक्षु! ज्ञान ये है, क्यों लिखा गया? इसलिये लिखा गया है कि जिसे अपना मान रहे हो, उसे मानना बन्द करो और जो मान रहा था उसे पहचानना शुरू करो। जिस परवस्तु को आप अपना मान रहे हो, उसे तो तुम मानना बन्द करो और जो मान रहा था, उसे पहचानना शुरू करो। शब्द समझ में आया क्या ? जिस परवस्तु को आप मान रहे हो, उसे तो मानना बन्द करो और जो वस्तु को अपना मान रहा था, उसे पहचानना शुरू करो। वो कौन है? इसलिये ''**यत्र च यद् भवति तत्तद्घाते हन्यत एव**'' जो जिससे होता है, उससे उसका घात होता है। ''**यथा प्रकाश घाते प्रदीपो हन्यते**'' जैसे प्रकाश का घात होने पर प्रदीप का घात होता है। ''**यत्तु यत्र न भवति तत्तद्घाते घटो न हन्यते**'' जो जिसका नहीं होता है, उसका घात होने पर भी उसका हनन नहीं होता।

भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी अहि क्षेत्र में खड़े हुये हैं और कमठ उपसर्ग करने आया और उपसर्ग के समय ओले-शोले, पत्थर सब बरसा रहा है। तब आ हा- प्रभू के अन्तस् में सूत्र गूँज रहा है। क्या गूँज रहा है ? ''**घटघाते घटप्रदीपो न हन्यते**''। घट के घात होने से घट प्रदीप का घात नहीं होता ''**यत्र च यन्न भवति तत्तद्घाते न हन्यते**'' जो जहाँ नहीं होता वहाँ उसका घात नहीं होता।

जिस भूमि पर आपने पत्थर पटका है, उसके पीछे एक बालक बैठा हुआ है, उसको जाकर लगेगा कि नहीं लगेगा? नहीं लगेगा। क्यों नहीं लगेगा ? क्योंकि वो तो पीछे है। बराबर सही। तो जो जहाँ होगा, उसी को तो लगेगा न? और जो यहाँ है ही नहीं, उसे क्या लगेगा ?

ज्ञानी! तेरी शर्ट को कैंची से किसी ने टुकड़ा कर दिया, तो उससे तुझे पीड़ा हो रही है कि नहीं? पीड़ा हो रही है, कि कष्ट हो रहा है? हमारी शर्ट को कोई कैंची से काट देता है तो मुझे कष्ट होता है, पीड़ा क्यों नहीं होगी? क्योंकि शर्ट जो है वह आत्माश्रित नहीं है, देहाश्रित भी नहीं है। मेरे से भिन्न है। उसमें राग है, इसलिये कष्ट तो होगा, परन्तु यदि शरीर को चुभाते काँटा तो पीड़ा होती। समझ में आ गया।

तुझे शर्ट के काटने पर पीड़ा नहीं होती है, कष्ट होता है, परन्तु वीतरागी दिगम्बर मुनियों को शरीर छिलने पर भी कष्ट नहीं होता है। न पीड़ा होती है। वे तो निज में निमग्न होते हैं, वेदना भाव से दूर होकरके वेदन भाव से देखते हैं। भैया! रोटी क्यों जली, घोड़ा क्यों अड़ा, पान क्यों सड़ा, विद्या क्यों विसरी ? क्योंकि फेरी नहीं थी।

जैसे वस्त्र के पुराने होने पर शरीर पुराना नहीं हो जाता है, वस्त्र के लाल होने से शरीर लाल नहीं हो जाता, वस्त्र के मोटे होने से शरीर मोटा नहीं हो जाता, वस्त्र के पीले होने से शरीर पीला नहीं हो जाता, ऐसे-ही ज्ञानियो! शरीर के नीले, पीले, मोटे होने से, काले कलूटे होने से आत्मा काली कलूटी नहीं होती है। जैसे आत्मा भिन्न है शरीर से, वैसे-ही शरीर भिन्न है आत्मा से।

'**यत्र च यन्न भवति**' जो जहाँ नहीं होता, '**तत्तद्घाते न हन्यते**' वहाँ पर उसका घात नहीं होता, ''**यथा घट प्रदीप घाते घटो न हन्यते**'' ऐसे-ही घटप्रदीप का घात होने पर घट का घात नहीं होता यहाँ तक तो दृष्टांत था। द्रव्यानुयोग का महान् ग्रन्थ है 'समयसारजी', दृष्टांत बाहुल्य है। इस ग्रन्थ में सर्वाधिक दृष्टांत हैं।

दृष्टांत हो गया, अब सिद्धांत सुनो। वस्त्र तो दृष्टांत था, देह भी दृष्टांत है, आत्मा दृाष्टांत है। ''**अथात्मनोधर्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि**'' आत्मा का धर्म क्या है? दर्शन, ज्ञान, चारित्र जहाँ दर्शनज्ञानचारित्र की व्याख्या हो, एक बार सम्यक् शब्द का प्रयोग कर चुके हैं वहाँ पर आप सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही ग्रहण कर लेना '**पुद्गलद्रव्य घातेऽपि न हन्यन्ते**'। अब सुनो भाई! मुनिराज बनने के पूर्व श्रावक थे, सर्वांग सुन्दर थे और अब वो मुनिराज हो गये रत्नत्रयधारी, अब किसी ने अस्त्र फेंक दिया और वो महाराज के कान पर जाकर लगा, कान नीचे गिर गया, वे मुनि कहलायेंगे कि नहीं? कहलायेंगे। मित्र! यदि श्रावक होते और कान नहीं होता, तो दीक्षा नहीं हो सकती थी; लेकिन मुनिराज हो गये और किसी ने उपसर्ग कर दिया तो मुनि ही कहलायेंगे। देह का घात होने से रत्नत्रय का घात नहीं हुआ। कोई मुनिराज पग विहार कर रहे थे, अशुभ कर्म के नियोग से गाड़ी का धक्का लग गया। कई घटनायें घट जाती हैं। प्राणान्त हो गया, प्राण निकल गये। तो अज्ञानी क्या कहते हैं कि वो तो कुमरण

हो गया, उनका तो घात हो गया। भइया! ये तुम्हारा पागलपन बोल रहा है। ये घात किसका हुआ ? देह का हुआ कि रत्नत्रय धर्म का? रत्नत्रय धर्म का घात कहाँ हुआ है? इसलिये अपनी भाषा को सुधारिये, भावों को सुधारिये। भैया! अचानक बोल देते हैं, लोग हँसी करते हैं। माना कि आप दिगम्बर मुनि बन गये और आपने एक माह के उपवास किये। एक माह के उपवास करते हुए, आपकी साधना की ही तो दृढ़ता है, साधना ही तो कर रहे हो। अचानक आयुकर्म क्षीण हो गया। लम्बे समय तक भोजन नहीं मिलेगा, तो आयुकर्म के निषेक क्षीण हो जायेंगे। अकाल मरण भी होता है। आगम वचन है। आहार के न मिलने से आयुकर्म के निषेक नष्ट हो जाते हैं। अब किसी ने उपवास किया और उसकी अन्तिम श्वास निकल गई, अज्ञानी क्या बोलेगा? वे तो मर गये अकाल में । अरे ज्ञानी! जिसके लिये साधना कर रहे थे, वो साधना ही तो कर रहा था जीव। रत्नत्रय धर्म का नाश कहाँ किया? भूख चिल्लाते पानी कहाँ पिया? भोजन-भोजन चिल्लाते आहार कहाँ लिया? उन्होंने तो साधना करते हुए अपनी अंतिम श्वास भरी है और तुझको लगता है कि मर गये। मर गये, ओहोहो! तेरी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये। मेरे मित्र! अहित हो गया तेरा, शुभ भाव मृत्यु को प्राप्त हुआ है। लेकिन वो निर्ग्रन्थ योगी सल्लेखनापूर्वक मरण को प्राप्त हुआ है। देह का घात होने से रत्नत्रय धर्म का घात नहीं हो गया। नहीं तो कोई दुर्घटना घटे, ये व्यर्थ का हल्ला मत करना जीवन में कभी भी। इतना धैर्य तो लाओ।

एक मुनिराज थे, समयसागर नाम था उनका। सम्मेद शिखर की वन्दना को जा रहे थे, विहार करते, अचानक ही विहार में उनको गाड़ी का धक्का लग गया, इतना रक्त बहा कि उनका प्राणांत हो गया। भैया! इस बात को सुनो, इससे मन में दृढ़ता होती है। ये कोई चतुर्थ काल की घटना नहीं बता रहा हूँ। अभी कुछ वर्षों पूर्व की बात है। रक्त बहने लग गया। वो कोई भला आदमी था जिसकी गाड़ी से एक्सीडेंट हुआ। वो गाड़ी रोककर उतरा। महाराज क्या कह रहे थे? बेटा! मेरा बचना कोई सम्भव नहीं है, मैं तो धोके से सड़क पर पड़ा हूँ, लेकिन तुम जानकरके क्यों मरने खड़े हो? तुम यहाँ से शीघ्र चले जाओ, नहीं-तो लोग तुमको छोड़ेंगे नहीं, क्योंकि ये साधु को धक्का लगा है और धर्म का अपमान हुआ है। साधु के शरीर से रक्त बह रहा है। ये है महाव्रती की करुणा और दूसरा होता तो क्या बोलता? इसको पकड़ो। ये है महाव्रती की करुणा कि भैया आप चले जाओ, नहीं-तो लोग पता नहीं क्या करेंगे ? उसको जबरदस्ती भेज दिया। उनके साथ में जो लोग थे, वो थोड़ी दूर थे। लोगों ने पूछा- महाराज! क्या हो गया ? बोले, कुछ नहीं हुआ। नश फट चुकी है। एक बात बोलता हूँ कि अब मैं जीवित बचने वाला नहीं हूँ, इसलिये कुछ नहीं करना। आप सुना सको तो णमोकार सुनाओ। णमोकार सुनाओ, कुछ मत करो। उपचार मत करना। अगर तुम उपचार करोगे, मैं बच भी गया, तो मेरा संयम तो नष्ट होगा ही। तुम मेरा उपचार करके मुझे बचा भी लोगे तो भी संयम से तो भ्रष्ट हो ही जाऊँगा। मैं खड़ा भी नहीं

हो पाऊँगा और मैं अपने जीवन में संयम से शून्य हो जाऊँगा। इसलिये आप बचाने की चेष्टा मत करो। वहाँ चल रहा था सूत्र –''**घटघाते घटप्रदीपो न हन्यते**'' घट का घात होने पर घट प्रदीप का नाश नहीं होता है ये सूत्र बोल रहा था। हजारीबाग के मंदिर में महाराज श्री को ले गये हाथों पर और मंदिर के प्रांगण में ही अंतिम श्वास निकल गई। ऐसे भी महामुनिराज इस भारत की भूमि पर इस काल में हुये हैं। ये तो साधु की चर्चा थी। हमारे यहाँ श्रावक ऐसे हुये हैं। एक श्रावक अपने खेत से आ रहा था, अचानक मोटरसाइकिल वाले ने धक्का मार दिया, वो जाकर गिर गया। बेचारा साईकिल वाला खड़ा हो गया और उठा लिया उनको। वो श्रावक कहता है कि भैया! तू चला जा, नहीं-तो मुझे बचाने वाले तो बहुत आ रहे हैं, पर तुझे मार देंगे। ऐसे श्रावक भी हमारे यहाँ हुये हैं। सोचो, कितना धैर्य होगा ?

मुमुक्षु! मन में भाव आ रहा है कि ये जो शब्द निकल रहे हैं, देखो इसने मेरे साथ ऐसा किया है। ये सब क्रूर परिणाम हैं, रौद्र ध्यान है, चार्वाक वृत्ति है। न मुनित्व है, न श्रावकत्व है। इन ग्रंथों का वाचन, पालन होना चाहिये, तब समझ में आयेगा कि अंदर का विवेक क्या है? चौबीस घण्टे आर्त्त-रौद्र ध्यान में लगे रहे, धरती के राग में लिप्त होकरके तीर्थभूमि के चिंतन में लिप्त हो जायेंगे, तो भीतर का भाव जो साधुता का है, उस पर लक्ष्य नहीं जा पाता और यह सत्य है कि दिन में चौबीस घण्टे में एक बार मंदिर हो आते हो, कम-से-कम भान तो रहता है कि मैं जैन हूँ। प्रतिदिन मंदिर जाना बन्द कर दो, सो भी पता लगता है कि तुम नहीं हो। जिनवाणी सुनते हो तो मालूम पड़ता है कि ये जैन वसुन्धरा है। **स्वाध्याय में बहुत आनन्द आता है। त्यागी बन पाये या न बन पाये, पर त्यागी के स्वरूप का ज्ञान तो हो ही जाये। भगवान् बन पाये या न बन पाये, पर स्वाध्याय करने से भगवान् का बोध तो हो ही जाता है।** इतनी देर से जिस तत्त्व को तुम सुन रहे हो, वहाँ तक पहुँच पाओ या न पहुँच पाओ, कम-से-कम इतना भान हो गया कि निर्ग्रन्थ का यथार्थ स्वरूप क्या है ? दृष्टांत भी दिया तो गहरा दिया है।

दर्शन-ज्ञान तो आत्मा का धर्म है। चारित्र आत्मा का धर्म है। पुद्गल द्रव्य का घात होने पर दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घात नहीं होता। ''**न च दर्शनज्ञानचारित्राणां घातेऽपि पुद्गल द्रव्यं हन्यते**'' और दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घात होने पर भी पुद्गल द्रव्य का घात नहीं होता है। किसी ने दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घात करके भी अपना संयम दिया, सिद्धांत छोड़ दिया, ज्ञान से विमुख हो गया तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घात हो गया, लेकिन शरीर का घात कहाँ हुआ? जो व्रती थे, संयमी थे, मुनि थे, दीक्षा छोड़ दी, दर्शन-ज्ञान-चारित्र छोड़ दिया, पर शरीर का घात कहाँ हुआ? कितने लोग रहे हैं जिन्होंने पिच्छी-कमण्डलु ले लिया था और पिच्छी-कमण्डलु छोड़ दिया और यूँ ही घूमने लग गये। ओहो! दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घात कर दिया, इससे बड़ा घातक और कौन होगा ? **अपने आत्मगुणों का घात करने वाला महाघातक होता है।** भैया! हँसी-खुशी में एक शिखर बन्द मंदिर को गिराना कितना घोर पापबन्ध का

कारण है और एक दीक्षा को छोड़ देना भी पापबन्ध का कारण है।

एक शिखरबंद मंदिर का विध्वंस कर देना और एक बार संयम को तोड़ देना। भैया! सुनो, कम-से-कम लोगों को भय था, एक डर था लोगों को, कि श्री जिनालय की दीवार को गिराने में पाप का बन्ध होता है। लगता था कि शिखरबंद मंदिर गिराने में पाप लगता है। आज मुनि, यति, साधुओं ने मंदिरों का ध्वंस कर दिया तो लोगों का डर ही समाप्त हो गया। मुस्कुरा-मुस्कुरा कर तोड़ दिया, बोली लगा-लगाकर तोड़ दिया। वह 'तीर्थनाशक' है। तुम नये बनाकर खड़े तो कर सकते हो, पर पुराने को नया नहीं कर सकते हो। भैया! जीवन में कुछ नहीं कर पाओ, इतना कर लेना कि दूसरों के बनाये मंदिरों को नष्ट मत कर देना। कभी आप छतरपुर जाओ तो देखना कि एक मंदिर तीन तरह से बना हुआ है। धन्य हैं इन मंदिर बनानेवालों को जो आज प्राचीनता को दर्शाते हैं। जो कल्चर था, आज नष्ट हो गया है। भैया! आपको याद होना चाहिये, एक समय था जब थोड़ी-सी घटना हो गई कि भीड़ एकत्रित हो जाती थी । सम्वेदना थी वहाँ पर। जब से टेलीविजन पर मारो-काटो के चित्र आ रहे हैं और ये मातायें भोजन करते-करते टी.वी. देख रही हैं। अब जो वो देखेंगी, उससे सम्वेदनायें खत्म। भैया! जब तूने पहली बार इन्जेक्सन लगाया था तो तू कितना डर रहा था? मरीज के प्रति अधिक सम्वेदना थी। अब तेरा हाथ सध गया, अभ्यास हो गया है, तुरन्त लगा देता है, कोई सम्वेदना नहीं बची। भैया! आपको स्वीकारना होगा। प्रथम बार, स्वपत्नी भी क्यों न हो, उसके प्रति भी व्यक्ति को लज्जा गुण आ जाता है और जब एक बार सम्भोग कर चुका है, उसकी लज्जा समाप्त हो जाती है। भैया! धर्म के मर्म को समझने की चेष्टा करो। मंदिर से कोई राग नहीं है। पर वस्तु है, हमें क्या लेना-देना ? जो तुम्हारी धर्म में सम्वेदना थी, आस्थायें थीं, अब तुम तुरन्त तोड़ दो, दूसरा फिर बना लेंगे। एक व्यक्ति का स्वस्थ शरीर था, अच्छा पालन होता था संयम का, उस शरीर से हँसी-खुशी में पिच्छी-कमण्डलु छोड़ दिया, कपड़ा पहन लिये, मैं खड़ा-खड़ा देखता रहा। मालूम, मेरे क्या भाव थे? ये तो उनकी मति नहीं चल रही संयम की। रोज उतार दोगे, रोज पहन लोगे, ऐसे तो एक मुनिमुद्रा को देखकर लोग महोत्सव मनाते हैं कि अहो ये मुनिराज बन रहे हैं। तुमने हजारों के बीच में दीक्षा ली होगी, करोड़ों का खर्च कराया होगा और तुमने कपड़े पहन लिये। सल्लेखना श्रेष्ठ है, संयम तोड़ना श्रेष्ठ नहीं।

स्वयं के हाथ से विष वृक्ष भी लगा हो तो आदमी को निकालने में पीड़ा होती है और क्रूर परिणामी पर के अमृत वृक्ष को भी काट देते हैं। श्रेणिक चारित्र पढ़ा कभी आपने अपने जीवन में? क्या पढ़ा ? एक व्यक्ति की दो पत्नियाँ थीं। ज्येष्ठ पत्नी के पुत्र हुआ और छोटी पत्नी निसंतान रही। छोटी पत्नी कहती है कि बेटा मेरा है। घर की बात किसी को क्या मालूम कि तेरा है कि नहीं। जिसका बेटा था ज्येष्ठ पत्नी कहती है कि बेटा मेरा है। जब न्याय नहीं हो सका, तो पति महाराजा श्रेणिक के

पास पहुँचा। जब श्रेणिक निर्णय नहीं ले सके, तब अभय कुमार कहता है कि पिता श्री! इसका निर्णय मैं करूँगा कल राजसभा में। अभय कुमार नंगी तलवार लेकर खड़ा हो गया और कहता है माताओं से कि अब बोलिये, बेटा किसका है? दोनों ने कहा की मेरा है, मेरा है। तब अभय कुमार कहता है कि आप लोग नहीं मानते तो मैं इसके दो भाग किये देता हूँ, अब आप आधा-आधा ले लीजिए। देखो, सत्य कैसे पकड़ा जाता है ? ये विद्यायें हैं। जिसका बेटा नहीं था, वो कहती है कि हाँ- हाँ, ठीक है, कर दो। पर जो माँ थी, वह कहती है कि आप ऐसा करो कि इसी को देदो, इसी का बेटा है, आप टुकड़े मत करो। निर्णय हो गया। अभय कुमार कहते हैं कि पिताश्री! बेटा इसका है। जो टुकड़े की बात कर रही थी, वो माँ कैसे? सत्य ये है कि जिसमें मातृ भाव नहीं बचा, मात्र मानभाव बचा है, ऐसी माँ, बनावटी माँ बेटे के टुकड़े करा देती है। ऐसे ही बनावटी भक्त मंदिरों के तीर्थों के टुकड़े करा देते हैं मात्र मान का राग है। बनाना है सो विशाल खड़े कर दो अलग से, पर खड़े को तोड़ना नहीं। ये मान का राग है।

लगता है आपको कि साधु खड़ा है, पर साधुस्वभाव नष्ट हो चुका है। प्राचीनता खोखली कर दी, नष्ट कर दी। **एक शासन भी प्राचीन स्मारक को सुरक्षित रख रहा है कि हमारे देश में इतनी प्राचीनता है और तुम जैनी पैसों के राग में आकरके अपनी संस्कृति को नष्ट किये दे रहे हो।** मैं जानके कह रहा हूँ भाई! कहीं तुम से कोई राग में आये और कहे कि मैं अरबों-खरबों एकत्रित करा दूँगा। ये अरबों खरबों एकत्रित तो हो जायें, लेकिन प्राचीनता खड़ी नहीं कर सकते हो। ज्ञानी! यथार्थ समझिये। बुरा न मानो। मानो तो मुझे लगता नहीं। मेरा निर्णय है कि मुझे समाधि करना है। भैया! युग चल गया है और उसमें हमारे ज्ञानी भाई समझ नहीं पाये, इनका भी हाथ है उसमें। मंदिरों में प्राचीन जिनवाणियाँ रखी हुई थीं, वो धीरे-धीरे उठाई जाती हैं और अपनी आम्नाय के पंथ के ग्रंथों को रख दिया जाता है, मालूम चला कि मंदिरों के सारे शास्त्र तो गोल हो गये और जो नये छपकर आ रहे हैं, उनमें मिश्रण किया गया है। वे मंदिरों में आ गये। लोग यही समझेंगे कि यही शाश्वत दर्शन है। वर्तमान में देव, शास्त्र, गुरु तीनों के साथ छेड़खानी हो रही है। मंदिर की करा दी प्राचीनता नष्ट, शास्त्र की करा दी प्राचीनता नष्ट और मात्र अपने आपको ही साधु स्वीकार करना, सो सारे साधु नष्ट। अभी समाज सुन रही है, कुछ दिन बाद इसको मालूम चलेगा। भैया! आज की चर्चा तुम गाँव-गाँव में भेज देना। तुम्हारे पास यंत्र रखा हुआ है और इस यंत्र से आप जो निकालोगे वह नगर-नगर में भेज देना। मुझे कोई दिक्कत नहीं है। कम-से-कम लोगों को वास्तविकता तो समझ में आये कि हो क्या रहा है?समयसार दृष्टि नष्ट हो गई, आत्मदृष्टि खत्म हो गई। क्या ऐसा नहीं हुआ ? प्राचीन जिनवाणियाँ उठाकर छिपा दीं या उठा ले गये और नयी-नयी जिनवाणियाँ रखकर चले गये। ऐसा हो रहा है।

मुमुक्षु! एक युग ऐसा चला था कि मैं इन प्रतियों को पुनः छपवाऊँगा, इनकी फोटोकॉपी करायेंगे।

मुझे मालूम है, मैं भी वहीं था। अब क्या करूँ, नियोग ही ऐसा था कि जब ऐसे काम होते हैं मैं वहीं पहुँच जाता हूँ। जो ऐसा काम कर रहे थे, उनके उपसर्ग की घड़ी आयी। ऐसा जो कर रहे थे उनसे मैंने कहा कि तुम यहाँ से चले जाओ, क्योंकि अपना धर्म अहिंसा है। वो भी जीवद्रव्य है, तुम जाओ, पर ये तुमने अच्छा तो नहीं किया। चौक मंदिर में उन्होंने उपद्रव किया और मैं टी.टी. नगर भोपाल में चातुर्मास कर रहा था वो लोग आये, मैंने कहा तुम लोग निकल जाओ, ये तुमने अच्छा नहीं किया। ये कोई ढोंग नहीं है। राग नहीं है, द्वेष नहीं है। मात्र जैनत्व पर भाव उमड़ता है अकलंक स्वामी का, समन्तभद्र स्वामी का, विद्यानन्द स्वामी का।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने 'युक्त्यनुशासन' ग्रन्थ में, आचार्य विद्यानन्द स्वामी ने 'आप्त परीक्षा' ग्रंथ में लिखा है कि मुझे सुगत से द्वेष नहीं, मुझे महावीर से राग नहीं, पर सत्य पर अनुराग उमड़ता है। इसलिये मैंने ऐसा कथन किया है। न अहंकार के वश लिखा, न रोष के वश लिखा। जब स्वयं के प्रति राग आता है, तो ऐसे भाव आते हैं। लंकेश जब कैलाश को हिलाने पहुँच गया था, तब बाली मुनिराज ने भी अंगूठा दबाया था। आश्चर्य एक वे बाली मुनिराज जो कैलाश के बहत्तर जिनालयों की रक्षा के निमित्त बने थे, लेकिन आज के जो मुनि हैं वे मंदिरों को तुड़वा रहे हैं। पता नहीं आचार्यों को क्या हो गया है? इतना अहम् सता रहा है। संस्कृति की रक्षा करना है तो नवीन खड़े कर देना। नये प्राचीनता नहीं बोलेंगे, शेष खड़े खण्डहर प्राचीनता बता देंगे। नये हमारा इतिहास नहीं बतायेंगे, पुराने हमारा इतिहास बतायेंगे। चलो भाई! अब 'जो है, सो है।'

''**अथात्मनोधर्मा दर्शनज्ञानचारित्राणि पुद्गलद्रव्यघातेऽपि न हन्यंते**'' दर्शन-ज्ञान-चारित्र पुद्गलद्रव्य का घात होने पर भी नष्ट नहीं होता है। ''**न च दर्शनज्ञानचारित्राणां घातेऽपि पुद्गलद्रव्यं हन्यते**'' दर्शन ज्ञान चारित्र का घात होने पर भी पुद्गल द्रव्य का नाश नहीं होता। ''**एवं दर्शन ज्ञान चारित्राणि पुद्गल द्रव्ये न भवंतीत्यायाति**'' दर्शन-ज्ञान-चारित्र पुद्गल द्रव्य में नहीं होता है। पुद्गलद्रव्य घातस्य'' पुद्गल द्रव्य के घात होने पर ''**पुद्गलद्रव्यघाते तद्घातस्य दुर्निवारत्वात्**'' पुद्गल के घात से आत्मद्रव्य का घात, आत्मद्रव्य के घात से पुद्गल का घात, यदि ऐसा हो गया तो सारी व्यवस्थायें भंग हो जायेंगी। ''**यत एवं ततो ये यावन्तः**'' इस प्रकार ये यहाँ पर जो ''**केचनापि**'' कुछ भी ''**जीवगुणास्तेसर्वेऽपि परद्रव्येषु न सन्तीति**'' जीवद्रव्य में जीव गुण है, वो अन्य द्रव्यों में नहीं होता है।

''**सम्यक् पश्यामः**'' ऐसा सम्यक् रूप से देखो, सम्यक् रूप से जानो। ''**अन्यथा अत्रापि**'' अन्यथा यहाँ पर जो ''**जीवगुणघाते पुद्गलद्रव्यघातस्य**'' जीवगुण का घात होने पर पुद्गल द्रव्य का घात हो जायेगा और ''**पुद्गलद्रव्यघाते जीवगुणघातस्य च**'' पुद्गल द्रव्य का घात होने पर जीवगुण का घात हो जायेगा। ''**दुर्निवारत्वात्**'' ऐसी व्यवस्था जो है, वह दुर्निवार हो जायेगी। ''**यद्येवं तर्हि**

कुतः सम्यग्दृष्टेर्भवति रागो विषयेषु''? यदि ऐसा है, तो फिर सम्यग्दृष्टि को विषयों में राग कैसे होता है? प्रश्न सुनो- यदि ऐसे घात एक दूसरे से नहीं होता, तो सम्यग्दृष्टि का राग कैसा होता है? ''**न कुतोऽपि**'' उसका कोई राग नहीं होता।''**तर्हिरागस्य कतरा खानिः**'' अरे! राग कर्ता की खान है, राग की खान कौन है फिर? राग का कर्ता कौन है?''**रागद्वेषमोहा हि जीवस्यैवाज्ञानमयाः परिणामाः ततः परद्रव्यत्वाद्विषयेषु न सन्ति, अज्ञानाभावात् सम्यग्दृष्टौ तु न भवन्ति**'' राग-द्वेष-मोह, जीव के ही अज्ञानमय परिणाम हैं, इसलिए वे राग-द्वेष-मोह विषयों में नहीं हैं, क्योंकि विषय परद्रव्य हैं और वे सम्यग्दृष्टि में नहीं हैं, क्योंकि उसके अज्ञान का अभाव है। जो राग-द्वेष है, वही विषयों में जा रहा है। सम्यक् के साथ जो अविरत भाव ले जाता है, राग भाव, वो विषयों में जा रहा है, सम्यक् विषयों में नहीं जाता। समझ में आया? फिर कहना- जितने हिस्से में सम्यक् है, वहाँ बन्ध नहीं है और जितने हिस्से में राग है, वहाँ बन्ध है।

जितने हिस्से में दर्शन है, वहाँ बन्ध नहीं है। जितने हिस्से में राग है वहाँ बन्ध है। जहाँ ज्ञान है, वहाँ बन्ध नहीं है। जहाँ अज्ञान है, वहाँ बन्ध है। राग है तो बन्ध है। जहाँ चारित्र है वहाँ बन्ध नहीं है और जितने हिस्से में चारित्र नहीं है, राग है, वहाँ बंध है। ऐसा ''पुरुषार्थसिद्धयुपाय ग्रंथ'' में कहा है। ''पुरुषार्थ सिद्धयुपाय'' पढ़ना चाहिये। आपको लगता होगा कि महाराज प्रतिदिन कहते हैं कि आपको ये पढ़ना चाहिये। अरे! ये ही तो कहते हैं कि पढ़ना चाहिये। सब पढ़ोगे, तभी तो ज्ञानी बनोगे। भैया! कम-से-कम 'पुरुषार्थ देशना' पढ़ लो। एक बार पढ़ लो। जैसे बने, पढ़ लो।

एकांत मिथ्यात्व जितने-जितने प्रकार के फैले हुये हैं, उस ग्रन्थ में सब समझ में आते हैं। पढ़ लिया, तो इन सारे भ्रमों से दूर हो जाओगे। हित हो जायेगा सारे जीवों का। वर्तमान में कितने प्रकार के जैनत्व मिथ्यात्व फैल रहे हैं इन सबका वर्णन है उसमें।

जो राग-द्वेष मोह है, वह अज्ञानी जीव के अस्तित्त्व में अज्ञान से उत्पन्न होता है। वो ही विषयों में जाता है। कौन ? जब आपके रागद्वेष मोह नहीं है तो विषयों में प्रवृत्ति भी नहीं है। यह विशेषता समझना। वास्तव में यहाँ समयसार की दृष्टि में जिस सम्यक् दृष्टि की व्याख्या है। वीतरागी चारित्र, वीतरागी सम्यक् दृष्टि यानि दिगम्बर मुनि। यहाँ अविरत सम्यग्दृष्टि की प्रधानता नहीं, गौणता है। प्रधानता तो वीतरागी चारित्र, वीतरागी सम्यग्दृष्टि की है। ऐसे निर्ग्रन्थ योगियों के जब रागद्वेष मोह का अभाव है, वहाँ विषयों का भी अभाव है।

मुमुक्षु! पर-द्रव्य के विनाश से शुद्धात्म का विनाश नहीं होता है। पर के विकार से स्व का विकार नहीं होता है। पुद्गल के नाश से ज्ञान-दर्शन-गुण का नाश नहीं होता है। जो जिससे उत्पन्न होता है, वह

उसी से नाश को प्राप्त होता है। परवस्तु में कोई विनाश नहीं होता है। **प्रत्येक द्रव्य का उत्पाद-व्यय स्वद्रव्य-सापेक्ष है , किसी भी द्रव्य का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परद्रव्य-सापेक्ष नहीं है। प्रत्येक द्रव्य का परिणमन, उपादान की दृष्टि से, पर-निरपेक्ष ही है। प्रत्येक द्रव्य का उत्पाद -व्यय-ध्रौव्य उपादान दृष्टि से स्व-सापेक्ष ही है।**

मुमुक्षु! मेरे परिणमन में पर उपादान नहीं है, पर के परिणमन में मैं उपादान नहीं हूँ। परद्रव्य में निमित्त-नैमित्तिक भाव तो सम्भव है, परन्तु उपादान-उपादेय भाव संभव नहीं है। अज्ञानी जीव पर में उपादान-उपेयभाव खोज-करके क्लेश को प्राप्त होता है। मुझे किसी ने कष्ट दिया है, यदि ये भाव आ रहे हैं, तो हे जीव! विचार करो, आप पर से अत्यन्त भिन्न हैं। आप पर में सापेक्ष भाव रख रहे हो, इसलिये आपको पर कृत्य अनुभव में आ रहा है। ज्ञानी! ध्रुव सत्य है, पर निमित्त तो हो सकता है, परन्तु दुःख का अंतरंग निमित्त तेरे असाता कर्म का उदय है। यदि अंतरंग निमित्त न होता, तो बहिरंग निमित्त सामने आता ही नहीं।

अज्ञानी जीव बहिरंग निमित्त को देखकर द्वेष करता है, राग करता है और ज्ञानीजीव बहिरंग-निमित्तों को देखकर मध्यस्थ होकर रहता है। बाहरी कारण दूसरा हो सकता है, परन्तु अन्तरंग कारण तो निज का ही असाता का उदय है। यदि विषमता में समता की शिक्षा लेना हो, विषमता में समता से जीना हो, अशुभ परिस्थितियों में सुख से जीना हो, तो पर को नहीं निहारना, स्व को ही निहारना। मुमुक्षु! परिस्थितियाँ और कर्म पर-सापेक्ष हैं, परन्तु मनःस्थिति स्व-सापेक्ष है। परिस्थितियाँ बंध की कारण नहीं हैं, मनःस्थिति बंध का कारण है। तत्त्वज्ञानीजीव परिस्थितियों को ठीक करने नहीं जाते, अपितु तत्त्वज्ञानी जीव मनःस्थिति ठीक करके जाते हैं। परिस्थिति पर में है, मनः स्थिति निज में है।

बादल गरजते हैं , बिजली कड़कती है, रिमझिम बारिस बरसती है। आप बारिश नहीं रोक सकते हो, परन्तु छाता लगाकर अपने-आपको पानी में भीगने से बचा सकते हो। बारिश को रोकने की सामर्थ्य नहीं है, पर मेघों की बारिश से निज को भीगने से बचाने की सामर्थ्य है।

हे श्रमण! पूर्व कर्म के नियोग से कोई तुम्हें अपमानित कर सकता है, ईर्ष्यावश तुम्हें कष्ट दे सकता है, आपको दोष लगाया जा सकता है, परन्तु तुम अपना साधुत्व मत छोड़ना। यदि साधु साधुत्व में स्थापित रहे, समत्व भाव में लवलीन रहे, तो दूसरा तनाव देने प्रयास कर सकता है, परन्तु किंचित् थी कष्ट नहीं दे सकता है।

जिसके पास बारिश व धूप से बचने के लिए छाता है और प्रज्ञा है, वह भीगने और धूप में झुलसने

की चिंता नहीं करता है। वैसे-ही **जिस जीव की विपरीत परिस्थिति में भी मनःस्थिति संभालने की क्षमता है, वह चाहे श्रमणों के मध्य रहे, श्रावकों के मध्य रहे, चाहे सिंहों के मध्य रहे, वह सुखमय जीवन ही जीता है। समत्व भाव है तो सभी जगह सुख है और समता-भाव नहीं है, तो सिंहासन भी शूल प्रतीत होता है।** जो जीव विपरीत परिस्थिति में मनःस्थिति को बिगाड़ लेता है, वह कहीं भी सुखमय जीवन नहीं जी सकता है।

विषमता में समता रखो। परिस्थितियाँ पराधीन होती हैं, मनःस्थिति पराधीन नहीं होती है। योद्धा एक हाथ में तलवार लेता है और दूसरे हाथ में ढाल लेता है। यदि तलवार घूमे, परन्तु ढाल का हाथ न घूमे तो रक्षा नहीं कर सकोगे। दायें हाथ में तलवार है, शत्रु पर वार कर रही है और बायें हाथ में ढाल है, वह शत्रु से अपनी रक्षा कर रही है। ऐसे-ही परम वीतरागी श्रमणों के पास कर्मों को निर्जीर्ण करने के लिए चारित्र की तलवार है और साम्यभाव की ढाल है। कर्मरूपी शत्रु हैं, उनको नष्ट करने के लिए संयम की तलवार है, संयम की असि है और जो उपसर्ग करने वाले शत्रु हैं उनसे अपने भावों की रक्षा के लिए समत्व की ढाल है।

सम्प्रति साधुओं के चेहरे फीके क्यों पड़ रहे हैं? मुमुक्षु! विश्वास रखना, लोग राजनीति सीख गये। आत्म-नीति में जीना था, वहाँ राजनीति करने लग गये, इसलिये साधुओं के चेहरे फीके पड़ गये हैं। साधुओं के चेहरों पर वीतरागता, सरलता, सहजता टपकती, वहाँ बेचारे कुटिलता से भर गये हैं। ये क्यों हो रहा है? क्योंकि उन्होंने जीवन जीने की शैली को बदल दिया है। जहाँ समरस में जीना था, वहाँ लोक में कैसे जियें इस बात के पीछे जीना सीख लिया है, इसलिये इनके भाव बदल गये हैं।

साधु को समाज में जीना नहीं सीखना चाहिये, समरस में जीना सीखना चाहिये। समाज में जीने के लिये, लोक में जीने के लिए चतुरता चाहिये, चालाकपन चाहिये और साम्यभाव में जीने के लिए सरलता चाहिये, सहजता चाहिये। यह श्रमणों को समझना है कि वक्रता क्यों आ रही है? क्योंकि लोक में साधुभेष में हम लौकिक जीवन जीना चाहते हैं, इसलिये वक्रता आ रही है।

लोक में, साधुभेष में जो आत्मजीवन जीता है, उसमें सरलता रहती है। आप साधुभेष में लौकिक जीवन जीना चाह रहे हो। लोग तुम्हारा साधुभेष देखकर तुम्हारी पूजा कर रहे हैं, वे अपनी समता को प्राप्त कर रहे हैं, तुम लोक में लौकिकता का जीवन जी करके अपनी साम्यता का घात करके माया का जीवन जीकरके निगोद की तैयारी कर रहे हो।

लौकिकता का जीवन बिना माया के जी नहीं सकता जीव। बिना माया के वहाँ जी सकते हो आप। माया चाहिये कि नहीं चाहिये लौकिक जीवन जीने के लिए? माया के लिए माया कषाय चाहिये

कि नहीं चाहिये ?पैसा चाहिये तो माया के लिये माया चाहिये। छल करके कैसे पैसा कमाया जाता है? लौकिक जीवन जीने के लिये माया चाहिए और माया के लिये माया चाहिए। यदि साधुजीवन जीना है, तो माया से वैराग्य चाहिए, माया से मुक्ति चाहिए। माया नहीं चाहिए, तो साधुजीवन जी सकोगे। माया (मायाचारी) और माया (पैसा) दोनों माया आ गयी तो साधुजीवन गया और पशुजीवन तैयार हो चुका है।

ज्ञानियो बहुत सारी जानकारी साधुओं के बारे में भी नहीं रहनी चाहिए। देश में कौन से संघ में क्या हो रहा है, ये भी जानने की आवश्यकता नहीं है।

सत्यता यह है कि साधुजीवन में लौकिक जीवन जीने से यश नहीं फैल रहा है, यह भ्रम तुमने पाल रखा है। पूर्व पुण्यप्रकृति की यशः कीर्ति के उदय से यश फैल रहा है। साक्षात् उनको आगम से विपरीतता नजर आ रही है, तब भी यश फैलता दिख रहा है। इस विपरीतता के कारण यश नहीं फैल रहा है, इस जीव ने पहले प्रबल पुण्य किया होगा, उस यशःकीर्ति नाम के उदय से इस जीव को यश मिल रहा है, जो कि अशुभ क्रिया करते हुये भी यश को प्राप्त हो रहा है।

आप साधना अच्छी कर रहे हो और उस विराधक, यश से युक्त पुरुष को देख लिया। उसके यश को देखोगे, परन्तु पूर्व के पुण्य को नहीं देख पाओगे और अपनी वर्तमान की साधना को विकृत करके और अधोगामी बन जाओगे, इसलिए लौकिक साधकों के बारे में बहुत ज्यादा चर्चा नहीं करनी चाहिए।

दिगम्बर जैन परम्परा में दो प्रकार के साधुओं का वर्णन है। लौकिक साधु और लोकोत्तर साधु। जो साधु नेता, अभिनेता के प्रपंच में पड़ा हुआ है, समाज राष्ट्र, देश के धन्धों में जी रहा है और प्रतिक्षण समाज की संस्थाओं में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है, ऐसे साधु का नाम लौकिक साधु है। ये विशुद्धसागर के वचन नहीं हैं, ये वीतरागी दिगम्बर आचार्यों के शब्द हैं। जो शिथिलाचारी हैं, मृगचारी हैं, ऐसे साधु लौकिक साधु हैं। जो साधक इन सब कार्यों से भिन्न, मात्र दिगम्बरत्व की साधना से प्रयोजन रख रहे हैं, ऐसे श्रमण को लोकोत्तर श्रमण कहा गया है। मोक्षमार्गी लौकिक साधु नहीं, मोक्षमार्गी तो लोकोत्तर साधु हैं। मोक्षमार्ग लौकिक मार्ग नहीं, मोक्ष मार्ग लोकोत्तर मार्ग है।

जैसे गृहस्थों से अपने को दूर रखना चाहिए, ऐसे-ही लौकिक साधुओं से अपनी दूरी बनाकर रखना चाहिए। लौकिक साधुओं के बीच में यदि उलझ गये और उनके भाव तुम्हारे भीतर प्रवेश कर गये,तो ज्ञानी! आप समता से वंचित होकर रह जाओगे। आचार्य अमृतचंद्र स्वामी 218-219 वें कलश में स्पष्ट समझा रहे हैं कि हे ज्ञानी! राग-द्वेष भी जो है, वह कोई वस्तु नहीं है। ध्यान देना, राग-द्वेष नाम की कोई वस्तु जगत् में नहीं है, तेरे ज्ञान का विकार ही राग-द्वेष है।

राग-द्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात्
तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किंचित्।
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्टया स्फुटं तौ
ज्ञान ज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः ।।218/अ.अ.क.।।
रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किंचनापि।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति व्यक्तात्यंतं स्वस्वभावेन यस्मात् ।।219/अ.अ.क.।।

हे मुमुक्षु! राग-द्वेष कोई पृथक् द्रव्य नहीं है। राग-द्वेष परिणाम जीव के अज्ञानभाव से ही होते हैं। आचार्य अमृतचंद्र स्वामी कह रहे हैं कि हे भव्य! सम्यग्दृष्टि होकर, तत्त्वदृष्टि से राग-द्वेष को क्षय कर, जिससे पूर्ण और अचल जिसका प्रकाश है ऐसा दैदीप्यमान सहज ज्ञानज्योति प्रकाशित हो अर्थात् घातिकर्म का नाश होकर केवलज्ञान उत्पन्न हो।

हे मुमुक्षु! कण- कण स्वतंत्र है, अणु-अणु स्वतंत्र है। कोई अन्य, अन्य का कर्ता नहीं है। अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य को गुण उत्पन्न नहीं कर सकता है। ज्ञानियो! तत्त्वदृष्टि से देखा जाये तो राग-द्वेष को उत्पन्न करनेवाला अन्य द्रव्य किंचित् भी दिखाई नहीं देता है, क्योंकि समस्त द्रव्यों की उत्पत्ति अपने स्वभाव से ही होती हुई अन्तरंग में अत्यन्त स्पष्ट प्रकाशित होती है।

हे मुमुक्षु! राग-द्वेष रूप जो परिणाम हैं, वह चेतन के ही परिणाम हैं। अन्य द्रव्य आत्मा को राग-द्वेष उत्पन्न नहीं करा सकता है, क्योंकि समस्त द्रव्यों की उत्पत्ति अपने-अपने स्वभाव से ही होती है, अन्य द्रव्य में अन्य द्रव्य के गुण-पर्यायों की उत्पत्ति नहीं होती है।

ज्ञानी! पंक्ति को सीधा कीजिए। मेरे मित्र! यहाँ पंक्ति नाम की वस्तु आपको दिख रही है कि नहीं? ज्ञानी! मुनियों की पंक्ति को देखो, सीधे बैठे हैं कि टेड़े बैठे हैं? और श्रावकों की पंक्ति को देखो, कतार (लाईन) वो कौन-सी वस्तु है? पंक्ति नाम की वस्तु कहाँ है? आप सभी का एकरूप से कतार में बैठ जाना, लाइन से बैठ जाना, यही तो पंक्ति दिख रही है, अलग से पंक्ति नाम की कोई वस्तु नहीं है। भैया! यदि सब विघटित हो गया, इधर-उधर हो गया, तो पंक्ति क्या है? वस्तु नहीं है, ज्ञान की बात है।

बस इतना समझ में आ जाये, ज्ञानी! विश्वास रख, कोटि-कोटि ग्रन्थों को पढ़ने के बाद भी व्यक्ति को ज्ञान का ज्ञान नहीं हो रहा है, बाकी सबका ज्ञान हो रहा है।

पंक्ति का ज्ञान हो रहा है, ये पता नहीं कर पा रहा है। पंक्ति है कौन-सी वस्तु ? राग का ज्ञान हो रहा है द्वेष का ज्ञान हो रहा है, मेरे मित्र! राग-द्वेष नाम की वस्तु कौन-सी है। मुमुक्षु! राग नाम की वस्तु कौन है? हे ज्ञानी! राग नाम की, द्वेष नाम की कोई स्वतंत्र वस्तु जगत् में नहीं है।

ज्ञान का परज्ञेयों में जाना ही, प्रीति भाव ही राग है और ज्ञान का परज्ञेयों में अप्रीति भाव से जाना द्वेष है। ज्ञान का विपर्यास ही राग-द्वेष है। यदि तू अपने ज्ञान को ही सँभाल ले, तो सारे जगत् में किसी को सँभालने की आवश्यकता ही नहीं है।

अब्रह्म परिणाम हो रहे हैं, तो ज्ञान में हो रहे हैं, ब्रह्म परिणाम हो रहे हैं, तो ज्ञान में हो रहे हैं। छिपकर पाप करने के परिणाम / भाव हो रहे हैं, ज्ञान में आ रहा है। ज्ञानी! धर्म करने के परिणाम आ रहे हैं तो ज्ञान में आ रहे हैं।

जगत् में कोई वस्तु है तो है चैतन्य मात्र! ज्ञान-आत्मा। अपने ज्ञानगुण को ही सँभाल , देख तुझे किसी को सँभालने की आवश्यकता ही नहीं है। न प्राणीसंयम, न इन्द्रिय संयम। मात्र ज्ञान को ज्ञान में स्थिर करके देख लो।

ज्ञानी के प्राणीसंयम और इन्द्रिय संयम दोनों पल रहे हैं। ज्ञान को तूने विकृत कर लिया प्राणी असंयम और इद्रिय असंयम दोनों चल रहे हैं। इसे नहीं पकड़ पा रहा है जीव। ऐसा करो, वैसा करो। कुछ नहीं। परस्त्री ग्रहण कर रहा है कौन? परस्त्री पर खोटी दृष्टि डाल रहा है कौन? आँख। पागलपन या ज्ञान! ओहो! लोक में ऐसे भी पापी जीव हो गये जिनने माँ तक को पत्नी बनाकर रखा है। ऐसे भी पापीजीव इस लोक में हुए हैं, हो चुके हैं, हो रहे हैं। क्या तुमको जगत् में कोई ऐसा पापी नजर आयेगा? मैं क्या कर रहा हूँ? अपनी बेटी तक को पत्नी बना डाला, अपनी बहनों तक को पत्नी बना डाला। जिस भाभी को माँ के तुल्य रखा है, उसे पत्नी की दृष्टि से देख रहा है।

हे अभागे! कौन देख रहा है? ये ज्ञान ही देख रहा है। अन्य को दोष देने की क्या आवश्यकता? सँभालो, ज्ञान को सँभालो। ज्ञान को सँभालना ही चाहिये। **ज्ञान को सँभालना ही सम्यक्त्व है। ज्ञान को सँभालना ही ज्ञान है। ज्ञान को सँभालना ही चारित्र है। ज्ञान को सँभालना ही ध्यान है। ज्ञान को ज्ञान में लवलीन करना ही परम ध्यान, परम चारित्र है।**

ज्ञान की अशुद्ध पर्यायों का अभाव कर लेना ही केवलज्ञान है। चाहे तात कहो, चाहे पिता कहो, चाहे जनक कहो ये सब किसके नाम हैं? ज्ञानी! ज्ञानगुण की अशुद्ध पर्यायों को अपने से भिन्न कर लेना, यही केवल ज्ञान है।

ये विद्वान्गण, त्यागीगण क्यों भ्रमित हो जाते हैं? शास्त्र में लिखा है, महाराज जी ने सब बोल दिया, उनको हकीकत में लिखा नहीं मिलेगा। लिखा मिलना नहीं है और सोचने की बुद्धि नहीं है, तो हे ज्ञानी! क्या बोल दिया आगम के विरुद्ध? आगम के विरुद्ध नहीं बोला, किन्तु बुद्धि तो लगा।

अशुद्ध पर्याय किसमें होती है ? ज्ञानगुण की अशुद्ध पर्याय कौन-कौन-सी हैं? मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय जीवद्रव्य के ज्ञानगुण की विभाव पर्याय हैं।केवलज्ञान, केवलदर्शन जीवद्रव्य की स्वभाव गुण पर्याय हैं।

चौरासी लाख योनियाँ जीवद्रव्य की विभाव, अशुद्ध पर्याय हैं। सिद्ध पर्याय जीवद्रव्य की स्वभाव द्रव्य पर्याय है। रस-रसान्तर, गंध-गंधान्तर ये पुद्गल द्रव्य की विभाव गुण पर्याय हैं। स्कन्ध जो है वह पुद्गल द्रव्य की विभाव गुण पर्याय है। परमाणु पुद्गल द्रव्य की स्वभाव गुण पर्याय है। स्वभाव परिणमन वो ही द्रव्यों में होता है, सभी द्रव्यों में परिणमन होता है।

हे ज्ञानी! तुमने 'आलाप-पद्धति पढ़ी' कि नहीं? जिस ने पढ़ी है, उसे पूरा विषय स्पष्ट होता है। समझ में आता है। उसका चेहरा चमकने लगता है। आपकी बीती पर्याय द्रव्य गुण पर्याय मनुष्य है, विभाव है। न द्रव्य इन्द्रिय-पर्याय से शुद्ध है, न गुण इन्द्रियपर्याय से शुद्ध है, इसलिए संसार में जीव अशुद्ध ही है। शुद्ध होता तो सिद्ध होता। इसलिए अज्ञान ही कष्ट है, अज्ञान ही बंध है, अज्ञान ही मिथ्यात्व है। महामिथ्यात्व। अज्ञान नाम का मिथ्यात्व है। लोक क्या कहता है? अन्य क्या बोल रहे हैं? ये नहीं देखना चाहिये।

मुमुक्षु को, आगम क्या बोल रहा है, ये देखना चाहिए, ये निहारना चाहिए। ''**आगम चक्खू साहू**'' साधु कभी इन आँखों से देखकर नहीं चलता। इन आँखों से तो बाहर के द्रव्यों को देखता है, बाहर की समितियों को देखता है। साधु का जीवन पर आँखों से देखकर चलना है ही नहीं। साधु आगम को देखकर चलता है। साधु का नेत्र आगम है।

क्या आप लोग अध्ययन करते हो? पता नहीं किस तरीके से करते हो। यहाँ ऐसे भी लोग हैं कि ''पुरुषार्थ सिद्धि उपाय'' कितनी ही बार पढ़ चुके हैं, परन्तु ये सोचते भी नहीं कि इतने गहरे विषय इसमें भी हैं।

अध्ययन ग्रन्थपूर्ति के उद्देश्य से नहीं होना चाहिए। कितने ग्रन्थों का स्वाध्याय कर लिया हमने? अध्ययन तो अज्ञान की निवृत्ति के लिए करना चाहिए। अध्ययन ग्रन्थ पूर्ति के लिए नहीं करना चाहिए, मेरी लिस्ट बन जाये ग्रन्थों की कि मैंने इतने ग्रन्थ पढ़ लिये।

ज्ञानी! स्वाध्याय करना अज्ञान की निवृत्ति के लिए, हेय-उपादेय की जानकारी के लिए। परम्परा से मोक्ष फल की प्राप्ति के लिये करना। अब जो भी साधना करो ऐसी मत कर बैठना कि पढ़ने से अज्ञानी बन जाओ। इस बात को आप लोग मानते हो कि पढ़ने से व्यक्ति अज्ञानी बनते हैं। मानते कि नहीं मानते? आपके नहीं मानने से व्यवस्था भंग नहीं होगी। पहले मान लो, फिर मैं समझाता हूँ। ज्ञानी!

अध्ययन करके व्यक्ति अज्ञानी बनते हैं। इसे आप मानते हो। गृहीत मिथ्यात्व क्या होगा?

पंडित जी ने आपको पढ़ा दिया कि पंचमकाल में कोई निर्ग्रन्थ साधु नहीं होते, इसलिए किसी को नमस्कार मत करना। ये वस्त्रधारी ही हमारे सद्गुरु हैं। इसने जो कहा, वह सही है। अब इस सद्गुरु को ही मानो। कैसा मिलजुल करके गृहीत मिथ्यात्व में पटक दिया। दिगम्बर वीगरागी गुरुओं से तो दूर कर दिया वस्त्रधारियों को सद्गुरु कह कर और उसके अन्दर तो ऐसा द्रव्य है कि पैर भी चाँटो तो सम्यग्दर्शन हो जाये।

भैया! ऐसा भी लोग बोल गये हैं। इन माताओं के अन्दर भ्रम भरा हुआ है कि अध्ययन करने से मिथ्यात्व टूट रहा है। पर इनको ये मालूम होना चाहिए किसका अध्ययन। सद्उपदेश, सद्वाणी, निर्ग्रन्थों की वाणी, अरिहंतवाणी से मिथ्यात्व टूटेगा।

यदि आपने विपरीत अध्ययन कर लिया, तो हे ज्ञानी!अध्ययन से तू पहले इतना मिथ्यात्व नहीं कर पाता था जितना अध्ययन के उपरांत मिथ्यात्व में चला गया। कुछ नहीं पढ़ा था, तो कम-से-कम मुनियों के पास तो आ जाता था। जब से तूने पढ़ लिया, तो गुरुओं की भक्ति करना, पूजन करना भी छोड़ दिया। मुमुक्षु! सूने ज्ञानीपने से क्या होगा? ओहो! ये आपका गृहीत मिथ्यात्व है। पर के द्वारा प्रेरित करने से, बुद्धिपूर्वक स्वीकार किया, इसलिए अब समझो कि ज्ञान से जो मिथ्यात्व आया, वह ज्ञान नहीं, अज्ञान ही था। ज्ञान तो वो है।

''अज्ञान निवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्।''

अज्ञान की निवृत्ति, त्याग, ग्रहण और उदासीनता ये प्रमाण के फल हैं।

उपेक्षाफलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः।
पूर्वावाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे।। आ.मी./102।।

दर्शन-न्याय के ग्रन्थों का सिद्धांत आगम के सभी ग्रंथों का व्यवस्थित अध्ययन करना होगा, वह भी आद्योपांत। वास्तव में मिथ्यात्व की जड़ें तब ही निकल पायेंगी। तत्त्व का गहरा निर्णय करना है, तो गहरा अध्ययन करना होगा। यथार्थ निर्णय करना है तो- **''तर्कात्तन्निर्णयः''**। (प.मु.सू.) तर्क से तत्त्व का निर्णय होता है।

हमारे दिगम्बर वीतरागी निर्ग्रन्थ आचार्यभगवन्तों ने तत्त्व के यथार्थ निर्णय लिए आप्त मीमांसा, अष्टसती, अष्टसहस्री, आलापपद्धति, नयचक्र, परीक्षामुख सूत्र, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, प्रमेयरत्न माला, न्याय कुमुदचंद, न्याय विनिश्चय, सिद्धि विनिश्चय आदि ग्रंथ लिखे हैं। ये सब न्यायग्रंथ

हैं, तर्क शास्त्र हैं। हे मुमुक्षु! जिस विद्या में आपकी बुद्धि प्रवेश नहीं कर पा रही है, उसको आपने अनुपयोगी कह दिया है। मुमुक्षु! इन ग्रंथों का पहले आद्योपांत अध्ययन करो, फिर समयसार पढ़ने के पात्र बनोगे। इतने ग्रंथों का अध्ययन करना पड़ेगा, तब समयसार पढ़ने की योग्यता आयेगी और मुमुक्षु! समयसारभूत आत्मा में लीनता की योग्यता प्राप्त करना है तो पहले निर्ग्रन्थ मुनि बनना पड़ेगा। शब्दों का ज्ञान भिन्न है और आत्मा का ज्ञान भिन्न है।

ज्ञानियो! तत्त्व को सुननेवाले बहुत मिल जायेंगे, परन्तु तत्त्व को यथार्थ समझनेवाले जीवों की संख्या अत्यंत अल्प है। तत्त्व को जानने वाले जीव विरले हैं, तत्त्व को भाने वाले जीव भी कम हैं और तत्त्व- निर्णय करके तदनुसार प्रवृत्ति करने वाले यथार्थ ज्ञानियों की संख्या बहुत कम है।

मुमुक्षु!आगम की बात को झूठा मत कहना। मुनि बनने की सामर्थ्य न हो तो कोई बात नहीं, परन्तु मुनियों की भक्ति करना नहीं छोड़ देना। यही सोचना कि मेरे चारित्रमोहनीय कर्म का उदय है, इसलिये मैं मुनि नहीं बन पा रहा हूँ, परन्तु मुनियों का आराधक तो हूँ। वो कल्याण कर सकता है जो उत्कृष्ट चर्या तो नहीं कर पा रहा है, परन्तु अपनी चर्या की हीनता को स्वीकार रहा है; परन्तु जो अपनी हीन चर्या को ही आगम कह रहा है, उसका कल्याण संभव नहीं है।

आगमचक्खू साहू, इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहि चक्खू सिद्धा पुण सव्वदोचक्खू।।

साधु आगमचक्षु वाले होते हैं, सर्वप्राणी इंद्रिय-चक्षु वाले होते हैं, देव अवधि-चक्षु वाले होते हैं और सिद्ध सर्वतः चक्षु अर्थात् सर्व ओर से चक्षु वाले, सर्वात्म प्रदेशों से चक्षुवान् हैं।

हे साधु! आपका नेत्र आगम है। सामान्य जीवों का नेत्र आँख है। अवधिज्ञानियों का नेत्र अवधिज्ञान है। केवलज्ञानियों का नेत्र सर्वांगीण कैवल्य है, परन्तु साधु का नेत्र आगम ही है अर्थात् दिगम्बर साधु किंचित् भी स्वतंत्र विचरण नहीं कर सकते हैं। मुनिराज स्वतंत्र होने पर भी आगम से बंधे रहते हैं, परन्तु स्वच्छंद कभी नहीं होते हैं।

''जैनीवृत्ति स्वेच्छाचार विरोधिनी''

हे मुनिराज! तुम्हारी वृत्ति स्वेच्छाचार विरोधिनी है। तुम्हारी वृत्ति जैनी वृत्ति जिनेन्द्र की वृत्ति है, इसमें स्वेच्छाचार का विरोध है। इसमें स्वेच्छाचार नहीं चलता है। आपकी गुरु-परम्परा कुछ हो सकती है, परन्तु आगम तो आगम ही है। परम्परायें मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो सम्यक् रत्नत्रय की आराधना ही है।

''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।''

हे मुमुक्षु! मुनि बनकर रत्नत्रय की निर्मल साधना करना, परन्तु परम्पराओं में उलझकर अपनी आत्म-विशुद्धि का नाश नहीं करना। जो गुरुपरम्परा से मिला है, वह तो ठीक है; परन्तु जो आगम में लिखा है, उसका निषेध नहीं करना।

द्रव्य निज-स्वभाव से द्रव्यत्वभूत है। द्रव्यशीलता द्रव्य का स्वभाव है। परिणमनशीलता द्रव्य का स्वभाव है। निज-परिणमन में ही परिणमन कर रहा है, ये द्रव्य का निजत्वभाव है। स्व-वस्तुत्वगुण से ही वस्तु में वस्तुत्वपना है; परन्तु पर-वस्तुत्व गुण से वस्तु में वस्तुत्वपना नहीं है और निज गुण के अस्तित्व से ही अस्तित्वपना है, पर के अस्तित्व से मेरा अस्तित्व नहीं है। प्रत्येक द्रव्य का अस्तित्व-गुण स्वाधीन है, प्रत्येक द्रव्य का वस्तुत्व गुण स्वाधीन है, प्रत्येक द्रव्य का प्रमेयत्व-गुण स्वाधीन है, प्रत्येक वस्तु का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वाधीन है।

''अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वम्,
चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वं, अमूर्तत्वं द्रव्याणां दश सामान्य-गुणाः''।9/आ.प.।।

जो अस्तित्व है, वह सत्ता है। मेरी सत्ता निज-सत्ता है। परसत्ताभूत नहीं और पर की सत्ता मेरी निज सत्ता नहीं है। निजसत्ता पर-सत्ता नहीं है। मेरा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वाधीन है और पर का उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व परभूत है।

यहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या है। जो सप्तधातु से बना शरीर था, वह तो राखभूत हो गया, मिट्टी-भूत हो गया; परन्तु द्रव्य के द्रव्यपने का अभाव नहीं हुआ है। शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है। दोनों के स्वतंत्र-स्वतंत्र परिणमन हैं।

हे मुमुक्षु! भावों की दशा बड़ी ही विचित्र है। जब निर्ग्रन्थ- वीतरागी मुनि भी साधना के मार्ग में चलते हुए चौबीस घंटे परिणामों को स्थिर नहीं रख पाते, इसलिए वह षटावश्यकों का, अट्ठाबीस कृतिकर्म का अनुष्ठान करते हैं। सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, प्रत्याख्यान तो कभी वंदना षट्-आवश्यकों का परिणमन चल रहा है। मूलगुणों का परिणमन चल रहा है। श्रमण अशुभ भावों से बचने के लिए प्रतिक्रमणादि अनुष्ठान कर रहे हैं और निरंतर शुद्धोपयोग में प्रवेश का पुरुषार्थ कर रहे हैं।

जैसे मंदिर में पहुँचना मात्र दर्शन नहीं, ऐसे-ही मरना मात्र समाधि नहीं है। अज्ञानी मरने को समाधि समझ रहे हैं। बुद्धिपूर्वक काय से जो यति कृतिकर्मपूर्वक जिनेन्द्र के दर्शन कर रहा है, उसका नाम दर्शन है। ऐसे-ही **बुद्धिपूर्वक जीवन में प्रत्येक क्षण साम्यभाव में जीना और कषायों को कृश**

करते हुए प्राणों का त्याग करना, समाधि है। राग-द्वेष बुद्धि का अभाव होगा, तभी समाधिमरण होगा।

अध्यात्म- दृष्टि से मेरी निर्मल पर्याय का परिणमन मेरे से भिन्न होकर चल रहा है। मेरी द्रव्य व्यंजन पर्याय, विभाव व्यंजन पर्याय का परिणमन मेरे से भिन्न होकर चल रहा है। मेरी वर्तमान की पर्याय का परिणमन मेरे से भिन्न होकर चल रहा है। मेरी इस देह का परिणमन मेरे निज स्वभाव से भिन्न होकर चल रहा है। एकक्षेत्रावगाह होने पर भी, संश्लेष परिणमन होने पर भी, **आप वस्त्र धारण किये हो, ये प्रतिक्षण जीर्ण हो रहे हैं, प्रतिक्षण नष्ट हो रहे हैं, आपका इसमें क्या योगदान है? ऐसे-ही वस्त्रादि के समान ही यह तेरी देह भी प्रतिक्षण जीर्ण हो रही है, नष्ट हो रही है, पुरानी हो रही है।** मेरी देह की अवस्था मेरे से भिन्न होकर परिणमन कर रही है। मेरे शरीर की दशा मेरे से भिन्न परिणमन कर रही है। मेरी असमान जाति पर्याय का परिणमन मेरे चैतन्य गुणों से भिन्न होकर चल रहा है।

हे मुमुक्षु! आप भवन के अन्दर बैठकर भी उसके क्षरण को रोक नहीं पा रहे हो। न चूने के परिणमन को रोक पा रहे हो, न सीमेंट के परिणमन को रोक पा रहे हो। ज्ञानी! क्षण-प्रतिक्षण भवन की चमक फीकी पड़ रही है, भवन का परिणमन मुझसे भिन्न चल रहा है। ऐसे-ही **हे मुमुक्षु! यह देह भी नौ दरवाजों का भवन है, इसका परिणमन भी मुझसे भिन्न चल रहा है। देहरूपी भवन जलकर राख हो जायेगा और उसमें विराजा चेतन भगवानात्मा निकलकर दूसरे देह -भवन में स्थापित हो जायेगा। देह स्वतंत्र है, देही स्वतंत्र है। ऐसी अनुभूति जो ले रहा है, वही समाधि कर सकता है।**

हे मुमुक्षु! समयसारभूत आत्मा में लीन होना है तो जगत् के पर-पदार्थों से भिन्न होकर जिओ। जो निज धर्म में लीन रहता है, वह विकल्पों में प्रवेश नहीं करता है।

महापुराण का स्वध्याय करते-करते अंतरंग में एक भाव आया कि- पर के पुराण कब तक पढ़ूँगा? ये भी तेरा स्वभाव नहीं है। पुराण छोड़ा नहीं, पुराण पूर्ण पढ़ा, परन्तु यही पुनःपुनः विचार आता था कि यह भी तेरा निज स्वभाव नहीं है। जब मैं दस वर्ष का था, तब विचार आया था कि ये आदिनाथ भगवान् का वर्णन है, ये मेरा वर्णन नहीं है। ये तो पढ़ लिया कि भगवान् कैसे थे? वे पुराण होने पर भी पुराण नहीं हैं। ये पुराण तो जिनसेन स्वामी ने लिखा है- इसमें आदिनाथ, तीर्थंकर ऋषभदेव की पर्याय का वर्णन है। ये पुराण नहीं हैं, ये पुराण होने पर भी पुराण नहीं है, परन्तु मेरा ज्ञायक-स्वभाव पुराण है। ये कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ये कभी नष्ट नहीं हुआ ये त्रैकालिक है। इसलिये मैं ही पुराण हूँ। ज्ञानी! कौन कहता है कि मैं पुराण नहीं हूँ? मैं पुराण हूँ। पुराण का मतलब होता है प्राचीन अर्थात्, पुराना। ग्रंथ पुराण तो अक्षरों में है, उसके अध्ययन के लिए द्रव्य-शुद्धि, क्षेत्र की शुद्धि, काल शुद्धि का ध्यान रखना पड़ेगा;

परन्तु निज पुराण के अध्ययन के लिए कालादि शुद्धि की आवश्यकता नहीं है। मेरे पुराणपने का भाव तो प्रतिक्षण चलता है।

मुमुक्षु! भावना भाओ कि कब निज पुराण के पारायण का अपूर्व अवसर आये। जब निज को पढ़ोगे, तो बाहर में पढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जिन योगियों को शुभ भाव भी भारभूत लगता हो, उनको अशुभ भाव कैसे अच्छा लगेगा? वह तो निरंतर शुद्धोपयोग की भावना भाते हैं। ऐसे परम वीतरागी योगीश्वर, निर्ग्रन्थ मुनीश्वर। हे मुमुक्षु! जब-तक निज में न उतर पाओ, तब-तक ग्रंथों का पारायण करते रहना। ग्रंथ के लिए ग्रंथ नहीं पढ़ना, अपितु निजात्मा को समझने के लिए, निजात्मा में उतरने के लिए ग्रंथ पढ़ना।

हे मुमुक्षु! पढ़ते-पढ़ते पूरा जीवन व्यतीत कर दिया। यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ; परन्तु फिर भी पर्याय में ही लीन रहा, पर्याय -भाव में ही लीन रहा, तो आप पढ़ते-पढ़ते भी पढ़ नहीं पाये हो। हे ज्ञानी! तेरा परिणमन भी तेरी देह से भिन्न होकर चलता है। आत्मा का परिणमन आत्मा में चलता है। यही ध्रुव-सत्य है, ये ही भूतार्थ है।

मुमुक्षु! अन्य द्रव्य का परिणमन अन्य द्रव्य में होता नहीं; परन्तु निमित्त-नैमित्तिक दृष्टि से अन्य द्रव्य के परिणमन में सहकारी भाव होता है। एक द्रव्य का परिणमन दूसरे द्रव्य में प्रवेश करता नहीं। एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य में प्रवेश नहीं करती है। एक द्रव्य का ध्रुवत्व भाव दूसरे द्रव्य में प्रवेश नहीं करता है। इस स्वभाव दृष्टि पर चिंतन करना ही पड़ेगा, तब ही स्वानुभूति में प्रवेश कर पाओगे, तभी शुद्धात्मानुभूति में उतर पाओगे। निज की स्वतंत्रता पर दृष्टि करो।

हे जीव! वासना की दृष्टि के लिए परिग्रह जोड़कर रखा है। वासना की पुष्टि के लिए व्यवस्थायें बनाकर रखी हैं, क्योंकि अभी अंतरंग का राग छूट नहीं पा रहा है और कह रहा है कि कर्तव्य का पालन करना है, इसलिये परिग्रह रखा है। हे मुमुक्षु! रत्नत्रय धर्म को धारण कर लेता, गुप्ति-समिति का पालन कर लेता, तो तुझे कर्तव्य-अकर्तव्य करना ही नहीं पड़ता। हे जीव! अभी तू अकर्तव्य को कर्तव्य मानकर बैठा है। तेरी देह भी तुझसे भिन्न परिणमन कर रही है, फिर तू किसका परिणमन कर पायेगा? अभी यह भी तुझे यथार्थ निर्णय नहीं है कि तेरा कर्तव्य क्या है? यानी करनेयोग्य क्या है?

सारा विश्व पर की रक्षा को ही कर्तव्य मानकर बैठ गया है। अपने राग की पूर्ति को कर्तव्य मान रहा है, यह तेरा लौकिक कर्तव्य है। मुमुक्षु! जो मुनीश्वर षटावश्यक कर्तव्यों में भी कर्तव्यपना देखते हैं, वही शुद्धात्मा में लीन हो पाते हैं, वही परम-तत्व में लीन हो पाते हैं परन्तु हे योगीश्वर! जब- तक शुद्धोपयोग में प्रवेश नहीं कर पा रहे हो, तब तक षट्-आवश्यकों को छोड़ नहीं देना। यह पंचमकाल

है, लोग छल ग्रहण जल्दी करते हैं।

ज्ञानी! आप अभी आलंबनों में लीन हो। जाप माला, प्रभू की प्रतिमा, शास्त्र, लेखनी ये आलंबन हैं, इनके आलंबन में आप अहोरात्र व्यतीत करते हो। हे श्रमण! कभी-कभी इन आलंबनों से निज-निर्ग्रन्थों को निहारना। अभ्यास करो इसका। कुछ नहीं करना, इसका भी प्रवल- पुरुषार्थ करो, क्योंकि **समाधि के काल में ये भाव रहा कि- मेरा ग्रंथ,मेरी लेखनी, मेरी माला, तो यह भाव भी समाधि की साधना को भंग कर देगा। जो शास्त्रों में ही राग रखे रहे, वे शास्त्र में ही जाकर कीड़ा बन गये।** मुमुक्षु! समयसार है, ये जैनदर्शन की व्यवस्था है। धर्म के लिए भी कषाय करेगा, तो नियम से दुर्गति का पात्र होगा।

हे मुमुक्षु! अशुभोपयोग से बचने के लिए, प्रशस्त व्यवसाय के लिए प्रज्ञा की पवित्रता के लिए, चारित्रता के लिए, चारित्र की विशुद्धि के लिए तो शास्त्रों का अध्ययन करना, परन्तु शास्त्रों में लिप्त होने के लिए शास्त्रों को मत रखना। **जिसको जिनवाणी के वचन सुहाते हैं, उसी की समाधि सम्भव है। जिसको जिनवाणी नहीं सुहाये, उसकी समाधि संभव नहीं है।** ज्ञानी! ध्रुवसत्य समझना, कि सबके साथ रहो, सबको देखो, जानो, जाने दो। **लाभ में हर्ष नहीं करना, अलाभ में विषाद नहीं करना, समता भाव रखना, यही योगी का स्वभाव है यही साधुस्वभाव है।** मुमुक्षु!शास्त्र ज्ञान से अनुभूति भिन्न है। शास्त्रज्ञान अनुभूति नहीं है। शास्त्रज्ञान भिन्न है, आत्मज्ञान भिन्न है।

वेदों का पाण्डित्य भिन्न है, शास्त्रों का पाण्डित्य भिन्न है और आत्मा का पाण्डित्य भिन्न है। विषय को जान लेना कठिन नहीं है, विषय को स्वीकारना कठिन है। विषयों को जानकर विषयों से दूर रहना कठिन है। एक में राग करते हो, एक में द्वेष करते हो; जबकि **यथार्थ यह है कि मेरे भी मेरे नहीं हैं, तेरे भी तेरे नहीं हैं।** मात्र ज्ञायकभाव है।

मृत्यु के आने पर मरण निश्चित है। अपनी अहिंसा धर्म का पालन करो, परन्तु ज्ञायक भाव से। आप किसी को बचा नहीं सकते हो। करुणा करो, सेवा करो, पर जब कोई जाने लगे तो रोना नहीं, क्योंकि तुम रो ही पाओगे, परन्तु किसी को रोक नहीं पाओगे। जब नियत ही है कि जीने वाला जायेगा ही, तो फिर रोकर अपने परिणाम खराब क्यों कर रहे हो? यह भी निर्णय करके जीना कि मैं इस लोक को छोड़कर अवश्य जाऊँगा।

हे ज्ञानी!ध्रुव सत्य मानकर चलना कि - पुण्यात्मा हो, पापी हो, चाहे योगी हो, परन्तु जाना सबको पड़ेगा। इस पर्याय को छोड़कर जाना ही पड़ेगा। ज्ञानियो! विचार करो, कहाँ गये राम और रावण ? इस पर्याय से तो सबको जाना ही पड़ेगा, परन्तु अपने चतुष्टय से कोई भी कहीं नहीं जाता है। बात को

समझना। मैं जयपुर से आगरा आया, तब जयपुर वाले बोले कि महाराजश्री चले गये और आगरा वाले बोले महाराजश्री आ गये। मुमुक्षुओ! न मैं आया, न मैं गया। मैं जैसा हूँ, वैसा ही हूँ। मैं कहाँ गया? जहाँ से मैं गया उसको लगता है कि चले गये, जहाँ आया उन्हें लगता है कि आ गये। मैं तो अपने आप में ही हूँ। जैसा जयपुर में था, वैसा ही आगरा में हूँ। मैं तो मैं ही हूँ। जो हूँ, सो हूँ।

आया हूँ, गया हूँ, देह की अपेक्षा से, प्रदेशांतर की अपेक्षा से, क्षेत्रांतर की अपेक्षा से। मैं न आया हूँ, न गया हूँ, मैं तो अपने चतुष्टय में ही हूँ। मुमुक्षु! सत्य को समझ लो, उसके अनुसार न चल पाओ वह अलग बात है। नहीं चल पाओ, वो अलग विषय है। कम-से-कम सत्यार्थ को स्वीकार तो कर लो उसके अनुसार न चल पाओ, वह अलग बात है, अलग विषय है। कम-से-कम सत्यार्थ को स्वीकार तो करलो कि सत्य कहाँ है। मैं गोरा हूँ, मैं साँवला हूँ, यह तेरा भ्रम है। शरीर के वर्ण हैं, आत्मा तो वर्ण रहित है। शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है।

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।49/स.सा.।।

जीव रसरहित, रूपरहित, गंधरहित अव्यक्तव्य अर्थात् इंद्रियगोचर नहीं है और चेतना जिसका गुण है, शब्द रहित है, किसी चिह्न से ग्रहण न होने वाला है और जिसका कोई आकार निश्चित नहीं है, स्वदेह-प्रमाण है।

आप कभी बंदर को देखना। वह झपट-झपट कर केले खाता है और फिर एकांत में जाकर चर्बन करके आनंद लूटता है। वस्तुस्वभाव समझो। बंदर भी कितना समझदार होता है, दोनों हाथों से छील-छीलकर केले का सेवन करता है। केलों को मुख में भर लेता है फिर शांति से बैठकर एक-एक को अंदर ले जाता है। ऐसे-ही हे श्रमण! अभी तुम्हारी यौवन अवस्था है, गुरु का सान्निध्य है, अभी जिनागम से अपने मस्तिष्क को भर लो, सभी ग्रंथों का अध्ययन करलो, गाथायें कंठस्थ करलो और जब समाधि का काल आये तब शांति से आनंद लूटना। लेटे-लेटे ही तत्त्व का चिंतन करते रहना।

मुमुक्षु! प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतंत्र है। द्रव्य-गुण-पर्याय को देखो, वस्तु की स्वतंत्रता को देखो। ग्रंथ समाधि नहीं, निर्ग्रन्थ समाधि नहीं, अरिहंत समाधि नहीं। अंतरंग में जो समत्व भाव है, निजात्मा की लीनता जो है, वही समाधि है।

हे मुमुक्षु! जो जीव निज-शुद्धात्मा को आत्मभूत नहीं जानता है, वह उतने काल तक राग-द्वेष का परिणमन करता है। जब-तक निजको निजभूत निर्णय नहीं करता है, पर को पर भूत नहीं जानता है, तब-तक निज को निजभूत प्राप्त नहीं होता है अथवा पंचेन्द्रिय के विषयों में प्रवृत्ति करता है। मुमुक्षु!

जब-तक बहिरंग पंचेन्द्रिय विषयों से विपरीत नहीं है, तब-तक शुद्धात्मा की अनुभूति संभव नहीं है।

आचार्यभगवन् जयसेन स्वामी कह रहे हैं कि हे मुमुक्षु! शुद्धात्मज्ञान के लिए, शुद्धात्मध्यान के लिए, शुद्धात्म लीनता के लिए, चारित्र के पालन के लिए पंचेन्द्रिय विषयों से विपरीत सहकारी साधन हैं। **जो साधक चारित्र की निर्मल आराधना करता है, उसका चेहरा भी चमकता है।** निरतिचार व्रतपालन करने वाले साधक को गद्गद् भाव आता है।

हे मुमुक्षु!शब्दादि पंचेन्द्रिय विषयों में ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों में औदायिकादि पाँच शरीर में दर्शन-ज्ञान-चारित्र कुछ भी नहीं है। कैसे हैं? वे सभी अचेतन हैं। तो फिर चेतन आत्मा उन जड़स्वरूप विषयों कर्मों तथा शरीरों में क्या घात करता है? कुछ भी घात नहीं करता है। ज्ञानी! समझो, शब्दादि पंचेन्द्रिय विषयों की अभिलाषा रूप ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मबंध के कारणभूत और शरीरों के ममत्वरूप जो यह मिथ्यात्व रागादि परिणाम मन में रहता है, उससे छूटना ही कर्तव्य है। वे शब्दादि रागादि के बहिरंग कारण हैं, अतः त्याज्य हैं। इस प्रकार समझना।

हे श्रमण! मात्र बहिरंग क्रियाओं में लगे हैं, स्व-स्वभाव पर दृष्टि नहीं है, तो लगता है कि उसके ज्ञान-चारित्र किंचित् भी नहीं है। जो मात्र बहिरंग क्रियाओं में लगा है, उसके दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है। **मोक्षमार्ग चमक का मार्ग नहीं है, चारित्र का मार्ग है।** आप चमक को देखकर बाजार में ठगे जाते हो। पैकिंग बहुत सुंदर होती है, परन्तु वस्तु बेकार रहती है। आप खुला माल लेना पसंद नहीं करते हो, ओ हो! समझो विषय को। सील खुली तो कीमत गिरी। ज्ञानियो! संयम से च्युत हुए तो नीचगति निश्चित है।

किसी वैद्य के पास जाना, वह कहे कि लो, गोबर की राख खा लो तो ठीक हो जाओगे। आप नहीं लोगे, क्योंकि पैकिंग नहीं है। वहीं आप किसी डाक्टर के पास जाना, वह इंग्लिश में पर्चा लिखेगा और मेडिकल पर भेजेगा, वहाँ से तू पैसा देकर पैकेट खरीदेगा, तो तू प्रसन्नतापूर्वक लेकर आयेगा और सेवन करके स्वस्थ हो जायेगा। यथार्थता क्या है ये तू समझ नहीं पाया। भ्रम में जी रहे हो आप। दिखावे का जीवन जी रहे हो। पैकेट पर क्या लिखा था ? गोबर भस्म। ज्ञानी! दिखावे के जीवन से अपने को दूर रखो।

हे जीव ! गण्डे-ताबीज बाँधना, मंत्र फूँकना, तंत्र-मंत्र जादू-टोने में लिप्त होना, नारियल फूँकना, धूम-धड़ाका, इसे धर्म मत मान लेना। यदि निर्वाण चाहिए तो निर्माण कार्यों से भिन्न रहकर वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझो। रत्नत्रय, (ज्ञान-दर्शन-चारित्र) की आराधना धर्म है और उसका फल निर्वाण है।

मुमुक्षु! जो रागादि के बहिरंग कारण हैं, उनको भी छोड़ना पड़ेगा। भोग और भोग की इच्छा, ये सभी आत्मा का घात करने वाले हैं, इसलिये योगियों को उनका भी परित्याग कर देना चाहिए। यह साधना का मार्ग है, स्वर निकालने का मार्ग नहीं है। हे ज्ञानी! अपने संयम को सुरक्षित रखना है तो पंचम स्वर में गाना नहीं। **हे श्रमण! तू गाने बजाने में लग गया तो तू संयम से च्युत हो जायेगा। कारण समझना। तू गाने-गायेगा तो विपरीत लिंग तुझसे आकर्षित होंगे, फिर तुम अपने आप को सँभाल नहीं पाओगे। मुख तो मुस्कुरायेगा, परन्तु मोक्षमार्ग मुरझा जायेगा।**

गीतकारों की तरह गा रहे हो, पंचमस्वर में गा रहे हो, इसका आगम में स्पष्ट निषेध है। आगम की भाषा में कहूँ- गायक के हाथ से आहार भी नहीं ले सकते हैं। गायक मुनि को आहार देने का पात्र नहीं है। जो गीत-संगीत के द्वारा आजीविका करता है, वह आहार-दान देने का भी पात्र नहीं है। जिसकी आजीविका ही गाना-बजाना है, उससे ही पेट भर रहा है, उस द्रव्य से उससे आहार नहीं ले सकते हैं।

हे मुमुक्षु! जो खोटे व्यवहार कर रहे हैं, उनको सोचना पड़ेगा। कम-से-कम ऐसा जीवन जियो जिससे कह सको कि मेरी आजीविका क्षत्रियभूत है, जैनत्वभूत है। धन के राग में ऐसा व्यापार नहीं करना जिससे धर्म से ही दूर हो जाओ। **ऐसा व्यापार नहीं करना चाहिए जिसमें कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती हो। ईंट के भट्टे लगवाना, हलवाई की दुकान , चक्की लगाना, खाद की दुकान , कीटनाशक दवाइयों का व्यापार, एसिड, ब्यूटी पार्लर खोलकर बैठ गए, ट्रक चलवा रहें हैं। यह सभी हिंसक व्यापार हैं।** ज्ञानियो! सबसे अच्छा तो यह है कि दिगम्बर मुनि बन जाओ और दिगम्बर मुनि बनने की सामर्थ्य न हो तो कोई बात नहीं, परन्तु जिनधर्म मिला हो तो उसकी आन-बान-शान में कोई कमी न आने पावे, इतना ध्यान रखना। धन महत्त्वपूर्ण नहीं, धर्म महत्त्वपूर्ण है।

''णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स''

शब्दादि पंचेन्द्रिय विषयों की अभिलाषा रूप से, कार्यों के ममत्वरूप से अथवा ज्ञाणावर्णादि कर्मबंध के निमित्तरूप से अनन्तानुबंधी आदि राग-द्वेषरूप जो मन में मिथ्याज्ञान रहता है, उस मिथ्याज्ञान को निर्विकल्प समाधि के प्रहार से भगवान् ने नाश बताया है। मिथ्याज्ञान का नहीं, अपितु मिथ्यादर्शन का भी नाश कहा है, उसी से मिथ्याचारित्र का घात कहा है। वहाँ अचेतन शब्दादि विषय कर्म कायारूप पुद्गल द्रव्य में कोई भी घात नहीं कहा गया है। जैसे घट के आधार से रहने वाले दीपक का नाश होने पर घड़े का नाश नहीं होता है वैसे ही रागादि के निमित्तभूत शब्दादि पंचेन्द्रिय विषयों का नाश होने पर भी मन रहने वाले रागादि का नाश नहीं होता है। '**जीवस्य जे गुणा केई णत्थिते खलु परेसु दव्वेसु**' किस कारण से किसी अन्य का घात नहीं होता है, सो कहते हैं कि- जीव के जो कोई

भी सम्यक्त्वादी गुण हैं, वे परद्रव्यों में शब्दादि विषयों में स्पष्ट रुप से नहीं होते हैं। **'तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु'** इस कारण से स्वशुद्धात्मभावना से उत्पन्न सुख से तृप्त सम्यग्दृष्टि के विषयों में राग नहीं है। **'रागो दोसो मोहो जीवस्से व दु अणण्ण परिणामा'** राग-द्वेष-मोह अज्ञानी जीव के अशुद्ध निश्चय से अभिन्न परिणाम हैं। **'एदेन कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी'** इस कारण से अचेतन शब्दादि, मनोज्ञ-अमनोज्ञ पंचेन्द्रिय विषयों में यद्यपि अज्ञानी जीव भ्रांति ज्ञान से रागादि कल्पित करता है, आरोपित करता है, तथपि शब्दादि में रागादि नहीं है। ऐसा क्यों? क्योंकि शब्दादि अचेतन हैं, इसलिए सिद्ध होता है कि राग- द्वेष दोनों बहिरात्मा के तब-तक होते हैं जब-तक मन में मन-वचन-कायरूप त्रिगुप्तिरूप स्वसंवेदन ज्ञान नहीं है।

ज्ञानियो! राग-द्वेष ही संसार भ्रमण में सहायक है संसार सागर से तिरना है तो राग-द्वेष से पृथक् होकर रत्नत्रय की निर्मल आराधना करो तभी निर्वाण की प्राप्ति होगी- राग-द्वेष के सद्भाव में निर्वाण तो बहुत दूर है, परन्तु निर्मल समाधि भी संभव नहीं है।

रागद्वेष द्वयीदीर्घ, नेत्राकर्षण कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ।।

आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी ने भी कहा है कि- संसारी जीव राग-द्वेष रूपी दो लम्बी रस्सी के द्वारा कर्मों को ग्रहण करता है और अज्ञान से संसार-समुद्र में दीर्घ काल तक भ्रमण करता है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

उत्थानिका - सर्वद्रव्य स्व-स्वभाव से उत्पन्न होते हैं।

गाथा : *अण्णदविएण अण्णदवियस्स णो कीरए गुणुप्पाओ।*
तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण।।372।।

संस्कृत छाया **अन्यद्रव्येणान्यद्रव्यस्य न क्रियते गुणोत्पादः।**
तस्मात्तु सर्वद्रव्याण्युत्पद्यंते स्वभावेन।।372।।

गाथार्थ : (**अन्यद्रव्येण**) अन्य द्रव्य से (**अन्य द्रव्यस्य**) अन्य द्रव्य के (**गुणोत्पादः**) गुण की उत्पत्ति (**न क्रियते**) नहीं की जा सकती (**तस्मात् तु**) इससे यह सिद्ध हुआ कि (**सर्वद्रव्याणि**) सर्वद्रव्य (**स्वभावेन**) अपने अपने स्वभाव से (**उत्पद्यंते**) उत्पन्न होते हैं।

समयदेशना

भव्य बंधुओ! आचार्यप्रवर भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज समयसार जी में ध्रुवज्ञायक स्वभावी भगवान्-आत्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं।

अज्ञानी जीव, रागी जीव परसंबंध परवस्तु में आत्मबुद्धि से देखता है और ज्ञानीजीव स्व स्वभाव में ही देखता है। निज का राग ही पर-वस्तु से जोड़ता है और निज की इच्छा ही द्वेष का कारण है। इच्छा में ही बंध है। प्रभू की वंदना करो, परन्तु यथार्थ को समझो। इनकी वंदना भी बंध का ही कारण है। निर्बंध तभी होगा, जब बंध-निर्बंध भाव से शून्य हो जायेगा। श्रद्धावान तो चाहे महावीर हों, चाहे सीमंधरस्वामी हों, सभी को श्रद्धापूर्वक पूजता है, उनमें राग-द्वेष नहीं करता है, मात्र अनुराग करता है।

हे मुमुक्षु! अन्य द्रव्य से रागादि की उत्पत्ति नहीं होती है। यहाँ तो शुद्ध-उपादान दृष्टि से कथन चल रहा है। कर्म भी उत्पत्ति का साधन नहीं बना रहे हैं और न ही अन्य द्रव्यों को बना रहे हैं। द्रव्य में अन्य द्रव्य को गुण प्रदान करने की अयोग्यता है। अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य नहीं देते हैं। सभी द्रव्यों में अपने स्वभाव से ही उत्पाद होता है, गुणों का परभावों से उत्पाद नहीं होता है।

मुमुक्षु! सबको एकसा ज्ञान क्यों नहीं होता है ? क्योंकि जिसका जैसा, निज का क्षयोपशम होगा, वैसा ही ज्ञान होगा। सबका अपना-अपना क्षयोपशम निजयोग्यता है।

स्वावरणक्षयोपशम लक्षण योग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति। (प.मु.सू.)

आचार्यभगवन् माणिक्यनन्दि स्वामी कह रहे हैं कि अपने आवरण कर्म के क्षयोपशमरूपी योग्यता

से प्रत्यक्ष प्रमाण, यह घट है और यह घट पट है, इस प्रकार पदार्थों की जुदी-जुदी व्यवस्था करता है, अर्थात् कर्म का क्षयोपशम जैसे होता जाता है, वैसे-ही पदार्थ, ज्ञान का विषय होने लगता है। ज्ञान को रोकने वाले कर्म बहुत और भिन्न-भिन्न हैं। वस्तु के ज्ञान को रोकने वाले कर्म का क्षयोपशम हो जाता है, वह पदार्थ के ज्ञान का विषय होने लगता है। अर्थात् ज्ञान उसे ही जानने लगता है, दूसरे को नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि ज्ञान स्वावरण क्षयोपशम से पदार्थों की भिन्न भिन्न व्यवस्था करता है। इसलिये 'ज्ञान पदार्थ से उत्पन्न होता है' यह मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

हे मुमुक्षु! यदि पदार्थ से ही ज्ञान की उत्पत्ति मानोगे तो जो वस्तु नष्ट हो चुकी है, उसका ज्ञान भी नहीं होना चाहिये? किन्तु ऐसा होता नहीं है।

मित्र! कभी भी अपने अंदर हीन भावना नहीं लाना। किसी को दोष भी नहीं देना। अपना-अपना क्षयोपशम है। ईर्ष्या में झुलसकर अपने जीवन को बर्बाद नहीं करना। अपनी योग्यता का अवलोकन करना। सभी अपनी-अपनी योग्यता से ही ग्रहण कर पाते हैं।

सुव्रत सागरजी आचार्य महाराज ने डेढ़ सौ त्यागियों को अध्ययन कराया है। उनके बीच में सबकी अपनी-अपनी योग्यता थी। जिसका जैसा क्षयोपशम था वैसा ग्रहण किया। गुरुमहाराज ने तो एकसाथ पढ़ाया था। ज्ञानी! सभी कार्य पुरुषार्थसाध्य हैं योग्यता को प्रकट करने की क्षमता तुझमें ही है। **अभ्यास करने से बुद्धि का विकास होता है।** प्रमाद नहीं होना चाहिए। लगन में कमी नहीं होनी चाहिए। पुण्य-क्रिया में हीनभावना नहीं होना चाहिए।

सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, ध्यान, तप, आराधना में साधक की कमी नहीं होनी चाहिए। **बाहर में तभी प्रभावना होगी जब अंदर में साधना होगी।** अगरबत्ती जलती है, तब बाहर में सुगंध आती है। सुगंध तो सभी बिखेरना चाहते हैं, परन्तु कष्ट कोई सहन नहीं करना चाहता है। अगरबत्ती कैसे बनती है? पहले यह देखकर आओ। ऐसे-ही साधु चाहे कि मैं बाहर प्रभावना अच्छी कर लूँ, और कमरे के अंदर सामायिक न करूँ, स्वाध्याय न करूँ, प्रतिक्रमण न करूँ, संयम का पालन न करूँ, तो बाह्य में प्रभावना संभव नहीं है। **जो बीज तुमने भूमि में डाले हैं, वही पुष्पित होकर खुशबू बिखेरते हैं। जो भी अंतरंग में साधना कर रहे हो, वही बाहर में पुष्पित होकर फैलती है।** जड़ जमीन में नहीं होगी तो पानी-खाद डालने पर भी काम नहीं बनेगा। ऐसे-ही हे मुमुक्षु! तुम कितने ही ज्ञान के पानी को अपनी जड़ में डाल दो, परन्तु चारित्र की जमीन पानी की नहीं है तेरा ज्ञान कोई काम का नहीं है।

''स्वावरणक्षयोपशम लक्षण योग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यस्थापयति''

इस सूत्र को किसी भी क्षेत्र में चाहो लगा लेना। गृहस्थ अपेक्षा, साधु अपेक्षा, चारित्र अपेक्षा, यश

अपेक्षा, ज्ञान अपेक्षा कहीं भी लगाओ, सब जगह लगता है। हे ज्ञानी! कर्म के क्षयोपशम से ही व्यवस्था बनती है, पर व्यवस्था बनती नहीं है। इसलिए न रोने की आवश्यकता है न हँसने की आवश्यकता है **पुण्य के उदय में हँसना नहीं, पाप के उदय में रोओ मत। कोई शाश्वत नहीं है। दुःख भी जायेगा, सुख भी जायेगा। सुख-दुःख पुद्गल की पर्यायें हैं। इनमें विलखने की जरूरत नहीं है, हँसने की जरूरत नहीं है । ज्ञान का भ्रमण ज्ञान में कराओ, तो योग्यता अवश्य प्रकट होगी।** सभी द्रव्यों का उत्पाद स्वभाव से ही होता है। '**सर्वद्रव्याणां स्वभावेनैवोत्पादात्।**' गाथा की टीका समझो।

क्या कुम्भकार के स्वभाव से कुंभ उत्पन्न होता है? मिट्टी कुंभकार रूप परिणत होती है कि कुंभकार मिट्टी को घटरूप में परिणत करता है? मिट्टी कुंभरूप परिणत होती है, कि कुंभकार कुंभरूप परिणत होता है? ज्ञानियो! मिट्टी कुंभरूप परिणत होती है, कुंभकार कुंभरूप परिणत नहीं होता है। कुंभकार में कुंभरूप परिणत होने की योग्यता नहीं है। मिट्टी में ही कुंभरूप परिणत होने की योग्यता है। मिट्टी ही अपने से परिणत हुई है, कुंभकार तो मात्र बाह्य निमित्त है।

हे मित्र! चाहे बादाम खाओ, बादाम का हलवा खाओ, दूध-मलाई खाओ, परन्तु सत्य यह है कि क्षयोपशम होगा, तभी तंदुरुस्ती बनेगी। यदि क्षयोपशम नहीं है, तो स्वास्थ्य खराब करेगा, भूमि बिगाड़ेगा। यदि क्षयोपशम है, तो दूध-बादाम के सेवन से शरीर मस्त होता है, बुद्धि वृद्धिमान होती है और अशुद्ध भोजन करने से बुद्धि क्षीण होती है। भोजन की कुपोषणता व्यक्ति की बुद्धि को नष्ट कर देती है। निमित्त को स्वीकार करिये। नैमित्तिक प्रभावित कर रहा है, परन्तु आप में क्षयोपशम है तभी प्रभावी बनाता है। आप में क्षयोपशम है और तद्रूप भोजन नहीं मिल रहा है, तो चिड़चिड़ापन आयेगा। जितनी बुद्धि का प्रयोग कर रहे हो, उतनी तुमको खुराक नहीं मिलेगी तो तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो जायेगी।

मिट्टी अपने स्वभाव का अतिक्रमण किये बिना कुंभरूप परिणत नहीं होती। कुंभ को, मिट्टी अपने मिट्टी स्वभाव से, उत्पन्न करती है। मिट्टी अपने कुंभदृष्टि से स्वभाव का स्पर्श करती है, परन्तु कुंभकार के स्वभाव का स्पर्श नहीं करती है। मिट्टी स्वभाव से कुंभरूप ही उत्पन्न होती है। उपादान दृष्टि से, ध्यान रखना, नहीं-तो माताएँ खुश हो जायेंगी कि चलो चौकी, आटा, बेलन रखदो और रोटी तैयार हो जाये। उपादान दृष्टि से आटे की लोई ही रोटीरूप परिणत होगी, परन्तु तेरे बिना रोटी बनेगी नहीं। व्यवस्थित व्याख्या समझना। उपादान तो उपादान है और निमित्त, निमित्त है निमित्त कभी भी उपादानरूप परिणत नहीं होता है। निमित्त कभी द्रव्यभूत उत्पन्न नहीं होता है। उत्पन्नभूत तो द्रव्य का द्रव्यपना ही होगा, निमित्त तो निमित्त ही रहता है। निमित्त का निषेध नहीं है।

हे मुमुक्षु! यह द्रव्यानुयोग की व्याख्या है। यदि सही से न समझ पाये तो व्यक्ति द्रव्यानुयोग से

अर्धमूर्छित हो जाता है। दिखाई कुछ देता है और कथन कुछ हो रहा है। सँभलकर नहीं समझोगे तो विक्षिप्त हो जाओगे। यह द्रव्यानुयोग का दोष नहीं है, स्वयं की बुद्धि का ही दोष है।

मुमुक्षु! माँ ने रोटी बनाई है, परन्तु आटे में माँ के गुणों का किंचित् भी स्पर्श नहीं है। जब घट बनता है तो कुंभकार का कुछ भी नहीं लगा है। न द्रव्य लगा, न गुण लगा, न पर्याय लगी। कुछ भी नहीं लगा। इस प्रकार से निमित्त का स्पर्श भी नहीं है। बेलन तो बेलन है, आटा तो आटा है। बेलन ने किंचित् भी प्रवेश नहीं किया है। आटे का परिणमन आटे में ही चल रहा है। यह स्वतंत्र दशा है। कण-कण स्वतंत्र है।

हे मुमुक्षु! तेरे रागादि का कर्ता तेरे भीतर तू ही है, कोई दूसरा नहीं है। तेरे विकार का कर्ता तू ही है, पर नहीं है। इसलिए बुद्धि को विशुद्ध करो। पर को निज का कर्ता बनाकर जीवन व्यर्थ मत करो, क्योंकि निज का कर्ता निज ही है।

यदिह भवति राग-द्वेष प्रसूतिः कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र।
स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः।।220/अ.अ.क.।।

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयंति ये तु ते।
उत्तरंति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरांध बुद्धयः।।221/अ.अ.क.।।

आचार्यभगवन् अमृतचंद्र स्वामी कह रहे हैं कि आत्मा में जो रोग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, उसमें परद्रव्य का कोई भी दोष नहीं है। वहाँ तो स्वयं अपराधी यह अज्ञान फैलाता है और अज्ञान अस्त हो जाये, तो मैं तो ज्ञानस्वरूप ही हूँ। जो राग की उत्पत्ति में परद्रव्य का ही निमित्तत्व अथवा कारण मानते हैं, उनकी बुद्धि शुद्धज्ञान से रहित अंध है, यानि जिनकी बुद्धि शुद्धनय के विषयभूत शुद्ध आत्मस्वरूप के ज्ञान से रहित अंध है, ऐसे मोह-नदी को पार नहीं कर सकते।

अज्ञानी रागी जीव परसंबंध में परवस्तु में आत्मबुद्धि देखता है और ज्ञानीजीव स्व-स्वभाव में ही देखता है। निज की इच्छा ही राग है। इच्छा ही राग का कारण है और निज-इच्छा ही द्वेष का कारण है। इच्छा में ही बंध है। रागी राग की पूर्ति के लिए ही पुरुषार्थ करता है। राग स्वयं का ही परिणाम है। राग राग में ही होता है। राग की पूर्ति रागी परद्रव्य से करता है। अपनी राग अनुभूति लेने के लिए व्यक्ति परद्रव्य का आश्रय लेता है।

जैसे पुरुष को पुरुषत्व का सुख है। भोग स्त्री में नहीं है। यदि पुरुष की शक्ति क्षीण हो जाये, पुरुष के शरीर में वीर्य न हो, शुक्राणु न हो, नपुंसकता आ गयी हो, तो उस पुरुष को न जगत् में आनंद है न

स्वयं में आनंद, न स्त्री में आनंद है, न सुख है। पुरुष अपने पुरुषार्थ के आनंद को स्त्री के माध्यम से संतुष्ट होकरके अनुभूति ले रहा है।

क्या आनंद स्त्री में है? आनंद स्त्री में नहीं है। वह तेरे ही अंदर है। जो तुझे आनंद की, इन्द्रिय सुख की अनुभूति हो रही है, वो स्त्री में नहीं है, क्योंकि तेरे अंदर की शक्ति क्षीण होते ही फिर स्त्री की अनुभूति कहाँ विलीन हो गई? परवस्तु के राग में, परशरीरों के माध्यम से, तूने अपनी शरीर की शक्ति को क्षीण किया है। ऐसे-ही परवस्तु में राग विद्यमान नहीं है। राग तो तेरे अंदर है। परवस्तु का आलम्बन करके जब अपने भीतर के राग की पुष्टि नहीं होती तो क्लेश होता है। उदय में एक समय में एक ही कषाय होती है, परन्तु सत्ता में चारों कषायें हैं।

हे मुमुक्षु! तेरे अंदर लोभकषाय जन्म लेती है और लोभकषाय की पुष्टि होते ही उसमें आनंद आता है, मान की पुष्टि होते ही मान कषाय का आनंद आता है। **ओहो! अज्ञानी जीव कषाय की पुष्टि में ही आनंद मानता है। मान की पुष्टि न हो पाये, तो तुझे क्रोधकषाय आती है, झुंझलाहट होती है। इच्छा की पूर्ति, राग की पूर्ति के लिए परवस्तु को निहार रहा है और पूर्ति नहीं होने पर क्लेश करता है। इच्छायें असीम हो सकती हैं, परन्तु इच्छाओं की पूर्ति, पुण्य के उदय में ही संभव है।** प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि ऊँचाई की होती है। प्रत्येक को कामना के पूर्व अपने पुण्य को अवश्य निहार लेना चाहिये ।

हे मुमुक्षु! संसार में किंचित् भी दुःख नहीं है। मात्र अपने सुख का वेदन करने में ही सुख है। पर के सुख के वेदन में दुःख प्रारंभ हो जाता है। पर के सुख के वेदन में जो जीव चला जाता है, उसको दुःख प्रारंभ हो जाता है। ज्ञानी! अपने ऊपर वाले को देखोगे तो दुःख ही होगा और अपने पुण्य के अनुसार संतुष्ट रहोगे तो सुखी रहोगे।

वीतरागी दिगम्बर मुनि स्वानुभूति के समय स्व-सुख में लीन रहते हैं, उस काल में वे अरिहंत, या सिद्धों के सुख पर भी ध्यान नहीं देते हैं। शुद्धोपयोग में स्व का ही अनुभव करते हैं। यदि अरिहंत-सिद्ध को निहारेंगे तो शुद्धोपयोग में नहीं रहेंगे। सुखी होना भी एक कला है। आप चाहो तो सुखी होकर भी रह सकते हो और आप चाहो तो जीवन भर संक्लेषता में रह सकते हो। व्यक्ति को स्वयं के पुण्य की सत्ता का अवलोकन करते रहना चाहिए। पुरुषार्थ को देखना चाहिए, स्वयं के चारित्र को देखना चाहिए। अपने पुण्य-पाप को देखना चाहिए। फिर तुम अनुभव करना कि मैं दुःखी हूँ कि नहीं दुःख तो दूसरे के सुख को देखकर प्रारंभ किया है।

ज्ञानी! घर में प्रसूति हो जाये, तो अशुद्धि हो जाती है। घर में प्रसूति हो जाये, तो सूतक लग जाता

है। जब घर में किसी का जन्म हो जाये, तो पूरे परिवार का पूजन-पाठ छूट जाता है। जो सूतक-पातक को नहीं मानता है और सूतक-पातक में दान देता है, वह कुभोगभूमि में जन्म लेता है।

चक्रवर्ती, नारायण, तीर्थंकरादि महापुरुषों को सूतक-पातक नहीं लगता है, परन्तु आप चक्रवर्ती नहीं हो, महापुरुष नहीं हो, आप सामान्य पुरुष हो, आपको सूतक-पातक स्वीकारना ही पड़ेगा। मूलागम तिलोय- पण्णत्ति, मूलाचारादि में वीतरागी आचार्यों ने सूतक-पातक का विधान किया है।

ज्ञानी! आप बाहर के काययोगादि की क्रिया मात्र में लिप्त मत रहना, अपने उपयोग पर भी दृष्टि रखना। भ्रम में नहीं जीना कि पाप-प्रवृत्ति में लिप्त है और कहे कि-यह तो काययोग का परिणमन चल रहा है। अनर्थ हो जायेगा। किसी ने व्यभिचार कर लिया और कहेगा कि यह तो काययोग का परिणमन है, मेरी आत्मा ने कुछ नहीं किया है, यह तो उपयोगमयी है। हे मुमुक्षु! अनुभूति व्यभिचार की ले रहा है और कह रहा है कि मैंने कुछ नहीं किया है। **हे मुमुक्षु! अनेकांत जैनदर्शन का प्राण है।** ध्येय में रखकर ही अध्ययन-मनन करना।

मुमुक्षु! यह चिद्रूप चैतन्य ज्ञानघन पिण्ड भगवान्-आत्मा रागादिक परभावों से, स्व-शुद्धस्वभाव की दृष्टि से, अत्यंत भिन्न है। विभाव दशा में बंधदृष्टि परिणाम, ये आत्मा का ही भाव है। राग-द्वेष परकृत नहीं है, पर में भी नहीं है। स्व-कृत है, स्व में है। पर वस्तु का उपादान भिन्न-वस्तु में उपादेयभूत नहीं होता है। निज वस्तु का उपादान निज में उपादेयभूत होता है। कर्म पौद्गलिक है, वह आत्मा के परिणमन का कर्ता नहीं है। आत्मा का परिणमन आत्मा के अनुरूप ही है और कर्म का परिणमन कर्मभूत ही है। स्वभाव से ही परिणमन है। निज भाव उत्पन्न होता है।

मुमुक्षु!राग-द्वेष इन दोनों की जो उत्पत्ति है, वह तेरी आत्मा से ही है, यह आत्मा की विभावधारा है। यह राग-द्वेष किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं किये गए हैं, न उत्पन्न कराये गये हैं, इसलिए किसी दूसरे को तुम दोष देने नहीं जाना। रागी- द्वेषी जीव परमात्मा को भी दोष देने लगते हैं। कुछ काम बिगड़ गया, कुछ संकट आ गया, तू कहता है कि- हे भगवान्! आप मुझ पर रूठे हो। मधुर भाषा में दूसरे को दोष दे दिया है। रागी! तेरी सबसे बड़ी विडम्बना ये है कि तू दूसरों को दोष दे रहा है। कोई कर्म को, कोई परमात्मा को दोष दे रहा है।

अज्ञानी कहता है कि कर्मों ने ऐसा कर दिया, कर्म की वजह से कषाय आ गयी। कर्म की सत्ता होने पर कार्य होना नियत है क्या? पुण्य का उदय चल रहा है और पाँचों इन्द्रियाँ आपको मिली हैं, इन्द्रियों के विषय-सुख मिले हैं, इनका मिलना तो पुण्योदय था, परन्तु भोग करना अनिवार्य नहीं है। यदि पदार्थ के मिलने पर भोग अनिवार्य हो जायेगा, तो जगत् में कोई त्यागी नहीं हो सकेगा, कोई संयमी

नहीं हो सकेगा।

ज्ञानी! घर में भोजन होने पर भी आप उपवास कर लेते हो। यदि भोजन होने पर भोजन करना ही पड़ेगा, तो जगत् कोई उपवास कर ही नहीं पायेगा। धन्य हो उन श्रावकों को जो घर में भरपूर भोजन-सामग्री होने पर भी उपवास कर लेते हैं। ऐसी मातायें हैं कि महाराज को आहारदान दे रही हैं, परन्तु स्वयं उपवास कर रही हैं। यहाँ उनकी दृढ़ता देखना चाहिये। धन्य है जो घर में रहकर भी संयम-नियम को धारण किये हैं। ऐसे भी पुरुष हैं जो घर में सुंदर नारी के होने पर भी ब्रह्मचर्य धर्म का पालन कर रहे हैं। यह कहना कि भोगसामग्री होने पर भी भोग भोगना ही पड़ेगा, यह कोई नियत नहीं है। यदि ऐसा नियत ही है, तो फिर आप किंचित् भी संयम का पालन नहीं कर सकते हो।

कोई कहता है कि- संयम का पालन कर रहा हूँ यह नियत है। मैंने भोग छोड़ा, यह नियत है। मैंने ग्रहण किया, नियत है। हे मुमुक्षु! ये सारा विषय नियत में चला गया तो न तेरा निज का सोच है न निज का पुरुषार्थ है। ऐसी धारणा तीन सौ मिथ्यामतों/मिथ्यादर्शनों में नियतवाद, मिथ्यामत, मिथ्यादर्शन है। वस्तुस्वतंत्रता पर विचार करो। नियत मानना शुद्ध पागलपन है।

हे जीव! तेरे पुण्य से और पुरुषार्थ से कार्य हो रहा है, भगवान् किसी के कर्त्ता नहीं हैं। आपका कोई कार्य अच्छा हो गया तो आप कहते हो कि- महाराज आपकी कृपा से सब अच्छा हो गया। हे मित्र! महाराज ने कुछ नहीं किया है, अपितु यह तो व्यवहार की भाषा ही ऐसी है।

हे जिनदेव! मुझे आरोग्य की प्राप्ति हो, बोधि-समाधि की प्राप्ति हो और मेरे संघस्थ साधकों की भी उत्कृष्ट समाधि हो, परन्तु हे प्रभु! मुझे मालूम है कि- आप न समाधि देते हो, न बोधि देते हो, न ही किसी के कर्मों का क्षय करते हो। यह तो मेरी सम्यक्-भावना मात्र है। यह तो मेरी भक्ति की भाषा है। कण-कण स्वतंत्र है।

हे जीव! यदि परमात्मा को दोष दोगे, तब तुम पीड़ा की अनुभूति सत्यरूप में नहीं कर पाओगे और सुख के काल में किसी का वरदान मानकर भोग भोगोगे तो सम्यक् रूप से सुख की अनुभूति नहीं कर पाओगे। कष्ट के काल में यदि तू परमात्मा को दोष देगा, तो अपनी वेदना की स्वतंत्रता का वेदन नहीं कर पायेगा। यथार्थ समझो, यदि भगवान् कृपा करता, गुरु कृपा करते, तो सभी पर एक-सी कृपा करते। कर्म की स्वाधीनता पर दृष्टिपात करो, सबका कर्म अपना-अपना स्वतंत्र है।

हे मुमुक्षु! अरिहंत देव में अनंत शक्ति है, अनंत बल है, निज में अनंतसुख है, परन्तु तेरा कुछ करने की इच्छाशक्ति उनमें किंचित् भी नहीं है। तेरा सुख-दुःख करने की सामर्थ्य भगवान् में नहीं है। परमात्मा तो कृत्कृत्य है।

दिगम्बर आम्नाय में मात्र दो की ही पूजा है। जिनशासन में, द्वादशांग में मात्र दो की ही पूजा है। एक वो जिसने परमार्थ पद को प्राप्त कर लिया है और दूसरा वो जो परमार्थ पद प्राप्ति का पुरुषार्थ कर रहा है। एक मार्ग में लगे हैं, उनकी आराधना है। मोक्षमार्ग में तीसरे की कोई आराधना नहीं है। हे ज्ञानी! यह भूल सुधार लो कि भगवान् तेरा अच्छा-बुरा करने आयेंगे।

काले कल्प शतेऽपि च, गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात्, त्रिलोक-सम्भ्रान्तिकरण पटुः।। 133/र.श्रा.।।

हे मुमुक्षु! मुक्त जीवों के गुणों में विकार का अभाव है। यदि तीनों लोकों में खलबली पैदा करने वाला उपद्रव भी हो। तब भी सैकड़ों कल्प-कालों के बीत जाने पर भी सिद्धों में कोई विकार दृष्टिगोचर नहीं होता है।

आपके यहाँ कोई शादी का आयोजन होता है तो एक पत्तल भरकर अलग रख देते हो, मंदिर में शादी की पत्रिका रखकर आ जाते हो, यह सब आपका मंगलभाव है। इसे इतने तक ही सीमित रखना, ज्यादा बढ़ने नहीं देना। भगवान् आपका भोजन करने नहीं आयेंगे, वो तो क्षुधा-तृषादि अठारह दोषों से रहित होते हैं। जो किया जा रहा है, इसे मात्र मांगलिक कार्य मानना। मंगल भावों से आपने इतने द्रव्य का विसर्जन किया है। **दीप प्रज्जवलन भी मंगलाचरण का प्रतीक है। नास्तिकता के परिहार के लिए मंगल किया जाता है। कुछ लौकिक मंगल होते हैं। उन्हें उसी रूप में स्वीकारना चाहिए। श्रावक अपनी शांति के लिए लौकिक मंगल भी करता है।** श्रद्धावान के भावों को निहारना चाहिए। भगवान् तुम्हारे आमंत्रण पर यहाँ नहीं आयेंगे, परन्तु तू प्रभु की आराधना करके मंगलाचरणपूर्वक कार्य करता है। चाहे चावल चढ़ाओ, श्रीफल चढ़ाओ, हाथ जोड़ लो, ये सभी तुम्हारे भद्र परिणामों की अभिव्यक्ति है। प्रभु न नाराज होते हैं, न प्रसन्न होते हैं। तेरे परिणामों की परिणति जैसी होगी, वैसा तुझे फल मिलेगा।

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निंदया नाथ विवान्त-वैरे।
तथापि ते पुण्य-गुण-स्मृति र्नः पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः।।57/स.स.।।

हे प्रभु! मैं जानता हूँ कि आप वीतरागी हो, अतः आप मेरी पूजा से प्रसन्न नहीं होओगे और न किसी की निंदा से नाराज ही होते हो। मैं तो मात्र अपनी चित्त की प्रसन्नता के लिए, चित्त की पवित्रता के लिए, कर्मों के नाश के लिए आपकी पूजा कर रहा हूँ। जिसकी ऐसी निर्मल परिणति है, सम्यक्-दृष्टि तुम्हारे पास है, तो आपकी सराग आराधना भी आपको वीतरागता के प्रकटीकरण में सहकारी होगी।

हे मुमुक्षु! वीतरागी की आराधना भी सरागी होती है। वस्तु -तत्त्व को समझो, शब्दों को मत पकड़ो। पंचपरमेष्ठी की आराधना का भाव, आराध्य-आराधक भाव छटवें गुणस्थान तक चलता है, इसलिए छटवें गुणस्थान तक सराग दशा है। दो प्रकार का राग है एक पूज्य में राग, एक पुजारी में राग। पूज्य वीतरागी हैं, पूजक रागी है। पूजा सरागी है, परन्तु सराग की पूजा नहीं है।

जिस विधि से निज का विधाता प्रकट हो, उस विधि की व्याख्या का नाम अध्यात्म है। मार्गणास्थान, गुणस्थान, ये आत्मा का धर्म नहीं है। जहाँ पूज्य-पूजक भाव है, वहाँ सरागभाव है। जहाँ पूज्य-पूजक भाव का भी अभाव है, वो वीतरागी भाव है। जो आठ दोषों से रहित हो चुके हैं, जो कुछ करना था वह कर चुके, अब कुछ करना शेष नहीं है, वे ही सच्चे परमात्मा हैं। वे सच्चे परमात्मा किसी को न दुआ देने आते हैं और न ही वरदान-श्राप देते हैं। आराधना का जो भाव है, वह आराध्य से कुछ माँगने का नहीं है। मात्र आराध्यभूत होने का है। जो आराध्य के पास आकांक्षा लेकर आते हैं, वो भिखारियों का मार्ग है। यहाँ जैनदर्शन में आराध्य से कुछ माँगा नहीं जाता है।

आराध्य की आराधना आराधना मात्र के लिए नहीं की जाती है, अपितु आराध्य की आराधना आराध्य बनने के लिए की जाती है। ये स्वामी-सेवक वाला दास-दर्शन नहीं है। लोक में भी राजा की सेवा राजा की सेवा करने के लिए नहीं की जाती है। इसलिए की जाती है कि उनके जैसा बन जाऊँ। वैसे-ही परमात्मा की आराधना परमात्मा पद प्राप्ति के लिए ही करना। विश्वास, आस्था, श्रद्धा और दृढ़ता में जीना, तभी चारित्र का पालन संभव है।

आराध्य के चरणों में बैठकर माँगना ही है तो कुछ ऐसा और इतना माँग लेना कि फिर कभी माँगना ही न पड़े। सच्चा आराधक मात्र इतना ही माँगता है कि- प्रभु! दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं। दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिपूर्वक मरण हो और जिनरूपी सम्पदा की प्राप्ति हो। यह दृष्टि भी प्रशस्त भावना मात्र है। सच्चे आराध्य तो ये भी करने वाले नहीं हैं। ये भी मैं ही स्व-पुरुषार्थपूर्वक प्राप्त करूँगा।

ज्ञानियो! पुण्य की क्षीणता में सम्यक् विचार भी तुम्हें प्रभावित नहीं कर पायेंगे। पुण्य की क्षीणता में पवित्र विचार भी तुमको प्रभावित नहीं कर पायेंगे। **पाप की तीव्रता में हीनभाव ही तुमको अच्छे लगेंगे। जिसका पुण्य क्षीण हो जायेगा, वह दूसरों के उत्कृष्ट विचारों को स्वीकारता नहीं है। जिसका पुण्य क्षीण हो जाता है, उसके विचार भी विपरीत होते हैं।** उत्कृष्ट सोच-विचार, चारित्र, दर्शन, ज्ञान, ये सब पुण्य के ही पर्याय हैं, पुण्य पर आलंबित हैं।

पुण्यहीन आकांक्षा ही कर सकता है, परन्तु वस्तु प्राप्त हो ही जाये यह कोई आवश्यक नहीं है। पुण्यहीन को वस्तु मिलने पर भी वह सुखी नहीं हो पाता है। वहीं पुण्यात्मा को जंगल में भी सेवा करने वाले सज्जन मिल जाते हैं। जीवन में पुण्यशाली, बुद्धिशाली से लड़ने नहीं जाना, पहले अपने पुण्य को निहार लेना। जिसका पुण्य क्षीण है, वह आगम को जानकर भी उसके अनुसार चर्या का पालन नहीं कर पायेगा। व्यक्ति यह जानते हुए भी कि इस कार्य से चारित्र पर कलंक लग सकता है, अपयश फैल सकता है, तब भी समझाने पर भी मानेगा नहीं, क्योंकि **पुण्य क्षीण होने पर व्यक्ति के विपरीत ही विचार होते हैं।**

ज्ञानियो! आगम में स्पष्ट कथन है कि श्रमणों को विपरीतलिंगियों से दूर रहना चाहिए। यहाँ तक कि आचार्यों से कहा है कि अकेली आर्यिका को प्रायश्चित्त न दें और एकांत में अकेली आर्यिका की आलोचना भी न सुनें। गणिनी के साथ आकर आर्यिका को आलोचना करना चाहिये अथवा कम से कम दो आर्यिकाओं के साथ ही आर्यिका को प्रायश्चित्त दिया जाता है। यदि एक आर्यिका को बैठाकर आचार्य आलोचना सुनता है, प्रायश्चित्त देता है, तो प्रायश्चित्त देने वाला आचार्य भी प्रायश्चित्त लेने का अधिकारी है।

मुमुक्षु! विपुल पुण्य चाहिये दूसरे की बात को सहर्ष स्वीकारने के लिए, उससे कई गुना पुण्य की आवश्यकता होती है आगम के अनुसार चर्या करने के लिए। **साधक को अलग से कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, अपने आवश्यकों को ही निरतिचार पालन करो, तो प्रभावना स्वयं ही हो जायेगी।**

सुगत को भारत से पलायन करना क्यों पड़ गया था? क्योंकि नकल की, परन्तु अकल नहीं लगाई। व्यक्ति को नकल करने के पहले वास्तविकता को समझना चाहिए। वर्द्धमान के शासन की नकल की, गण की स्थापना की, गणनायक बने, स्त्री दीक्षा को भी स्वीकारा, पुरुष दीक्षा को भी स्वीकारा, परन्तु दोनों को एकसाथ ठहराया, परिणाम क्या हुआ परस्पर में आकर्षित होकर शील भंग कर बैठे, परिणामतः संयम से च्युत होने के कारण देश ही छोड़ना पड़ गया। जैनदर्शन में, वीतरागी परम्परा में पुरुष-स्त्री दीक्षा तो है, परन्तु निवासस्थान अत्यन्त भिन्न है। **मुमुक्षु! तुम मर्यादाओं को लांघोगे तो भले ही तुम चारित्र से च्युत न हो, परन्तु यह अवश्य है कि कलंक का टीका तो अवश्य ही लग जायेगा। व्रतों में अशुद्धि होने पर जिनशासन में प्रायश्चित्त की व्यवस्था है।**

हे साधको! मृदुल चर्या मुनिचर्या नहीं है। अपने शिथिलाचार को, मृदुलचर्या को कभी मुनिचर्या नहीं कहना। मृदुलचर्या वात्सल्य नहीं है। आर्यिकाओं की व्यवस्था भिन्न है, मुनियों की व्यवस्था भिन्न

है। बहुत से लोग चारित्र से च्युत नहीं होते हैं, परन्तु मर्यादारहित जीवन जीना प्रारंभ कर देते हैं तो फिर कलंक को तो प्राप्त कर ही लेते हैं। **शल्य रहित जो बात है, उसका नाम वात्सल्य है। जिसमें शल्य आ जाये, वह वात्सल्य नहीं, शिथिलाचार है।**

हे श्रमण! जिनशासन पर भी वात्सल्य रखना। इतनी करुणा करना कि आगम के विरुद्ध कोई चर्या नहीं करना। कोई मुनि यदि एक आर्यिका के साथ निवास करता है, एक ब्रह्मचारिणी को अपने साथ रखे है। यह तुम्हारी श्रमणपरम्परा का वात्सल्य नहीं है, क्योंकि तुम एक आर्यिका के साथ, एक ब्रह्मचारिणी के साथ विचरण करोगे तो जिनशासन की अप्रभावना होगी। यह आपका वात्सल्य नहीं है, अपितु अपने स्वार्थों का राग है। **पंचमकाल में एकल विहार का भी स्पष्ट निषेध है। एकल विहार नहीं करना चाहिए। कम-से-कम दो मुनियों का संघ होना चाहिए। आर्यिकाओं को आर्यिकाओं के साथ रहना चाहिये और मुनियों को मुनियों के साथ ही रहना चाहिये।** मुमुक्षु! यह जैन-दर्शन है, यहाँ लाग-लपेट की कोई चर्चा नहीं है। देखो मूलाचार, भगवती आराधना, आचारसार। दीक्षा लेने के पूर्व व्यवस्थित चरणानुयोग का अध्ययन होना चाहिये। साधकों को देखा-देखी चर्या का पालन नहीं करना चाहिये, अपितु आगम-अनुसार आचरण करना चाहिये। जिसने दीर्घकाल तक गुरुचरणों में रहकर आगम का अध्ययन नहीं किया, वह क्या जिनशासन की प्रभावना कर पायेगा?

मेरे मित्र! वात्सल्य संज्ञा वहीं तक है जहाँ 'संग' नहीं है। यदि किंचित् भी स्वार्थ आ गया, तो वहाँ वात्सल्य समाप्त हो चुका है। समझो आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी ने किसे वात्सल्य कहा है।

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव -सनाथापेत-कैतवा।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते।। 17/ र.क.श्रा.।।

अपने साधर्मियों के प्रति सरलता सहित, मायाचारी रहित, यथायोग्य आदर-सत्कार आदि करना वात्सल्य अंग कहा है

निश्चय से निजात्मा की लीनता ही परमवात्सल्य है। अध्यात्म दृष्टि से वे निर्ग्रन्थ वीतरागी तपोधन अपनी स्ववृत्ति में ही लीन रहते हैं। पर-परानुभूति से शून्य रहते हैं। स्व-आत्म धर्म में लीनता चल रही है, यही परम तप है।

हे मुमुक्षु! जो पर को अपने सुख-दुःख का कर्ता मानता है, वह तो व्यवहार से भी सम्यग्दृष्टि नहीं है और निश्चय से तो है ही नहीं। ज्ञानी! अपने में सम्यक्त्व का अवलोकन करो। निहारो महासती माता सीता को, अनंतमती को, जिनके जीवन में बहुत कष्ट आये, परन्तु कभी किसी को दोषी नहीं ठहराया, कभी नहीं कहा कि अमुक व्यक्ति ने मुझे पीड़ित किया है, अपितु यही कहा कि यह मेरे ही कर्म का

विपाक है।

हे मुमुक्षु! तुम तो साधक हो, तुम तीर्थंकर की मुद्रा में हो, इसलिए उपसर्ग करने वाले पर भी आक्रोश नहीं करना, परीषह करने पर भी समता भाव रखना। यही साधु की पहचान है। समता से ही समाधि होती है।

हे श्रमण! जितना आपको द्रव्यानुयोग का ज्ञान है, उतना ही करणानुयोग का भी ज्ञान होना चाहिये और साथ में चरणानुयोग का भी परिपूर्ण ज्ञान होना चाहिये, क्योंकि चलना तो आपको चरणानुयोग के अनुसार है। चरणानुयोग की भी प्रत्येक विधि का ज्ञान होना चाहिये। परिणामों की संभाल करना है तो करणानुयोग पढ़ो और **निज में स्थिरता लाना है तो द्रव्यानुयोग की गहराइयों को समझो। आत्मा की बाह्य-प्रपंचों से रक्षा करना है तो द्रव्यानुयोग पढ़ो। यदि द्रव्यानुयोग का अध्ययन नहीं किया और मात्र क्रियाओं में ही लगे रहे, तो संयम का, साधुत्व का आनंद नहीं लूट पाओगे।** आवश्यकों का पालन करो और जब तुम शुद्धोपयोग में प्रवेश करोगे, तो आवश्यकों का भी विकल्प नहीं रहेगा।

राग-द्वेष की उत्पत्ति परद्रव्य से नहीं है। जो व्यक्ति राग-द्वेष की उत्पत्ति में परद्रव्य को निमित्त मानता है, वह अज्ञानी है। ज्ञानी! आपका दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि निमित्त तो निमित्त है, निमित्त मेरा राग नहीं है, निमित्त मेरा द्वेष नहीं है। मेरा राग मेरे में है, मेरा द्वेष मेरे में है। निमित्ताधीन दृष्टि को लेकर यही हो रहा है कि जरा-सा कुछ विपरीत दिखा तो आप अपने विभाव में प्रवेश कर जाते हो। जिसे तुमने देखा था, उसको आपने निमित्त बना डाला। वो तेरा द्रव्य नहीं, वो तेरा गुण नहीं है, वो तेरी पर्याय नहीं , उसका तेरे में कुछ परिणत हुआ नहीं और तू उसमें परिणत हुआ नहीं। जो राग हुआ, वह तेरे में हुआ है और जो द्वेष हुआ है, वह भी तेरे में हुआ है। ज्ञानी!समता मेरा स्वभाव है। **सबसे बड़ी साधना है कि विपत्ति में समता से रह लेना। सुख में भावित ज्ञान दुःख के आने पर विनाश को प्राप्त हो जाता है।** सुखिया बनने के लिए मुनि नहीं बनना। सुखिया बनकर साधना नहीं करना। सुखपूर्वक सधना करते हुये भी, अपनी आत्मा को दुःख से भावित करो, क्योंकि विपरीत परिस्थितियों में कैसे जिओगे?

कभी कर्म की प्रकृतियों का प्रकोप हो गया, तुम्हारे विकारी भावों ने ही तुम्हें घेर लिया, तो अपने विशुद्ध भावों की रक्षा कैसे करोगे? तिर्यंच, देव, मनुष्य कृत उपसर्ग हो सकते हैं। विविध प्रकार के उपसर्ग- परीषह आ सकते हैं। यदि उपसर्गों-परीषहों को नहीं सहन कर पाये तो चारित्र से च्युत हो जाओगे। **जो चारित्र की निर्मल साधना करता है, उसकी साधना के प्रभाव से देव भीआ जाते हैं और ऋद्धि-सिद्धि भी सिद्ध हो जाती हैं।**

जो पर को कर्ता मानते हैं, पर को निमित्त मानते हैं, कि मेरा राग-द्वेष पर के द्वारा हो रहा है, वह मोह-वाहिनी, मोह की नदी से पार नहीं हो पायेगा। जो शुद्ध तत्त्व के बोध से अंधा है, जो राग-द्वेष का कर्ता पर को मानते हैं, वह बुद्धिहीन, अंधबुद्धि वाले हैं । जो शुद्ध बोध से आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते हैं, वे अंध- बुद्धि वाले हैं।

ज्ञानियो! मेरे राग का कर्ता पर नहीं है, मेरे द्वेष का कर्ता कोई-और नहीं है, अपितु मेरे राग-द्वेष का कर्ता मैं ही हूँ।

जब हम कुन्दकुन्द देव के आगमतत्त्व की अदृश्य-धारा में प्रवाहमान होते हैं, तब वहाँ जगत् के सम्पूर्ण बाह्य द्रव्यों से आत्मद्रव्य को भिन्न ही जानते हैं। **जहाँ परद्रव्यों से भिन्नत्व की अनुभूति है, निज अखण्ड-ध्रुव पर लक्ष्य है, वही ध्रुव समयसार है। चैतन्य-पिण्ड ज्ञान-घन आत्म-द्रव्यों को छोड़कर शेष जगत् में जो भी दृष्टिगोचर हो रहा है, वह मेरे से अत्यंत भिन्न ही है, भिन्न ही था और भिन्न ही रहेगा। राग, द्वेष, मोह विकार ये सारे निजात्मा से भिन्न हैं।** परद्रव्य से निरपेक्ष है आत्मा। अर्थात् मेरे राग का मैं ही कर्ता हूँ, मेरे द्वेष का मैं ही कर्ता हूँ। बाह्य द्रव्य पर अपने राग का कर्तृत्वभाव थोपना मिथ्या है,बाह्य द्रव्य पर अपने द्वेष का कर्तृत्व भाव थोपना मिथ्या है।

हे मित्र! जो प्रीति उत्पन्न हो रही है, आपके अंदर ही है, पर-वस्तु के अंदर कहाँ है? परन्तु अज्ञानी कहता है कि- अमुक के कारण मुझे राग उत्पन्न हुआ। हे मुमुक्षु! पर के कारण तुझे राग उत्पन्न हुआ है, कि पर में तुझे राग उत्पन्न हुआ है? परमार्थ दृष्टि से देखें तो न पर के कारण राग हुआ है न पर में तुझे राग उत्पन्न हुआ। तेरे राग भाव से तेरे में ही राग उत्पन्न हुआ है। नारी को देखकर विकार उत्पन्न हुआ है, तो तू नारी को दोष क्यों दे रहा है? हे नर! तेरा कुभाव तेरे में ही उत्पन्न हुआ है।

जो राग-द्वेष की उत्पत्ति है, जन्म है, वह भिन्न द्रव्य में नहीं है। तेरा राग भी तेरे भीतर है, तेरा द्वेष भी तेरे अंदर है; परन्तु अपने राग का कर्ता तू पर को स्वीकार रहा है। यही तेरी तत्त्व की भूल है। आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि शब्दादि इन्द्रिय-विषय हैं। शब्द को सुनकर आपके अंदर हर्ष भाव या विषादभाव उत्पन्न हो गया। यथार्थ में शब्द तो इन्द्रिय का विषय है और इन्द्रिय अचेतन है। शब्द ने आपको प्रभावित किया निज दृष्टि से।

आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञायें हैं। इस संज्ञाओं से ग्रसित हुआ जीव क्लेश को प्राप्त हो रहा है। चींटी से लेकर हाथी, यत्र-तत्र विचरण कर रहा है इन चार संज्ञाओं के राग में, फिर मनुष्य की तो व्याख्या ही विचित्र है। भैया! जितना जीवन में चल रहा है, मात्र इन चार संज्ञाओं की पूर्ति के लिये। पूर्ति हो सकेगी कि नहीं हो सकेगी, कोई नियत नहीं है; परन्तु संज्ञाओं की पूर्ति के

राग में निरंतर कर्म बंध को प्राप्त कर रहा है यह जीव।

आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञाओं को तो व्यक्ति बुद्धिपूर्वक त्याग देता है, लेकिन भैया! एक भिन्न संज्ञा है, उसका त्याग जीव अंतिम श्वास तक नहीं कर पाता है। मित्र! तुमने पर्युषण में उपवास किए और किसी ने आपका सम्मान नहीं किया, उस समय देखना अपने भावों की दशा। भोजन छोड़ दिया, स्त्री छोड़ दी, घर छोड़ दिया परन्तु नाम नहीं छूटा। ज्ञानी! राग का छूटना अत्यन्त कठिन है। जरासा किसी ने तेरा नाम नीचा कर दिया, तो तुझे खिन्नता आती है, कहता है कि मेरा नाम बदनाम कर दिया है। हे मित्र! तेरा कुछ नाम था ही नहीं। जब तू जन्मा था, तब तेरा नाम क्या था? जब तेरा कोई भी नाम नहीं था उस समय कोई भी पुरुष तुझे किसी भी नाम से कुछ कहे तब भी तुझे कोई विकल्प नहीं था। जबसे तेरा नाम माता-पिता ने रख दिया, तब से तूने उसे अपना मान लिया है और उस नाम में तू इतना लिप्त हो गया है कि कोई सम्मान से तेरा नाम ले तो तुझे प्रसन्नता होती है।

हे जीव!भोजन छोड़ने में विकल्प नहीं आता है। व्यक्ति महिनों का भोजन तो छोड़ देता है, लेकिन नाम का राग नहीं छोड़ पाता है, जबकि व्यक्ति को ज्ञात रहता है कि मेरा नाम रखा गया है, मुझे संज्ञा दी गई है। जो संज्ञा दी गई है, वह वस्तु की संज्ञा है, संज्ञा वस्तु नहीं है।

जो गुण जिस वस्तु में नहीं है, उसको वैसा कह देना, उसका नाम 'नाम-निक्षेप' है। यह नाम संज्ञा है। एक का नाम शेरसिंह है, परन्तु चूहे को देखकर डरता है, फिर भी संज्ञा नाम की अपेक्षा यह विषय ऐसा ही है। यह सब संज्ञा है।

इस नाम की महिमा तो देखो, कहीं अपने ही घर में कोई आयोजन हो रहा हो और किसी कारणवश किसी का नाम छूट जाये, फिर देखो। क्षमा माँगने पर भी भाई-भाई से नहीं बोलता है। नाम के कारण व्यक्ति अपने ही सगे-संबंधियों से नहीं बोलते हैं। क्यों नहीं बोलते हैं? क्योंकि मेरा नाम नहीं लिखा।

मेरे मित्र! जब-जब तुमको अपने का राग सताये, जबभी अपने नाम के कारण तेरी कषाय भड़के, उस समय उस समय की याद करना जब तूने माँ के गर्भ से जन्म लिया था, जब तेरा नामकरण संस्कार नहीं किया गया था। जनक-जननी ने तेरा नाम निर्धारित करके तुझे कष्ट ही दिया है, क्योंकि इस **नाम के राग में पल-पल के परिणाम निज परिणाम से पतित हो रहे हैं।**

हे जीव! जब -जब नाम का अहंकार टपके , कषाय टपके, उस समय सोचना, जड़ वस्तु (कागजों) पर लिखी जाने वाली वस्तु। जब तुझे अपने नाम को लेकर कषाय जागे, तब निष्पक्ष भावों से विचार करना कि मेरा यह नाम कितने भवों से है? मित्र! अपने ध्रौव्यत्व पर दृष्टि डालो। नाम ध्रौव्य

नहीं है, परन्तु जिसका नाम रखा गया है वह ध्रौव्य है। नाम मिट जायेगा पर्याय के साथ। नाम नहीं जायेगा, पर्यायी के साथ। ध्रुवपर्यायी पर लक्ष्यपात करो।

हे मुमुक्षु! संज्ञा के पीछे बड़े-बड़े योगी अपना संज्ञान खो देते हैं। ओ हो! मैं ज्येष्ठ मुनि था, मैं ज्येष्ठ आचार्य था, मेरा नाम बड़े अक्षरों में क्यों नहीं दिया पत्रिका में ? मेरा नाम नीचे क्यों दिया है? अज्ञानियों की बड़ी विचित्र दशा है। अभागे तीर्थवंदना को भी जाते हैं तो भगवान् की प्रतिमा को कम निहारते हैं, पहले यह देखते हैं कि प्रशस्ति मैं मेरे गुरु का और मेरी परम्परा का नाम लिखा है कि नहीं?

कागज पर नीचे नाम लिख गया, इधर तेरा गुणस्थान नीचे हो गया, क्योंकि तेरे भाव जो नीचे हो गये। भैया! अब तो बहुत दिन हो गये कोई सबसे नीचे भी नाम लिखदे तब भी कहना कि भैया! जो मैं हूँ, वह मैं हूँ। न ऊपर हूँ न मैं नीचे हूँ। मैं जो हूँ , सो हूँ। जैसा हूँ, वैसा हूँ।

देश में विचरण करो, मालूम चल जायेगा आपको। चार दिन पहले आपको सूचना दे दी कि मैं आपके कार्यक्रम में आऊँगा और जैसे-ही पम्पलेट छपा और आपने देखा कि छोटों के नाम तो सबसे ऊपर और मेरा सबसे नीचे आ गया । बोले, भाई! मैं नहीं आ पाऊँगा। भैया! ये क्या बोल दिया? बोले, जब तुमने नाम ही नीचे कर दिया तो वहाँ क्या करोगे ?

मेरे मित्र! तेरा कार्य विराट होगा, तो तू सबसे अंत की पंक्ति में क्यों न रहे, तब भी तू सबके सिर पर जाकर बैठ जायेगा, तब भी सबसे ऊपर पहुँच जायेगा। भैया! यह समयसार है। ज्ञानी! लोहा क्षेत्र घेरता है, सोना क्षेत्र नहीं घेरता। पर कीमत किसकी होती है? सोने की होती है।

ज्ञानी! पचास ग्राम रुई कितने सारे क्षेत्र को घेरती है? भाई! पचास तोला सोना उतना क्षेत्र नहीं घेर पाता है। पचास तोला सोने से ट्रक-के-ट्रक रुई के खड़े किये जा सकते हैं। भैया! साधना का जो क्षेत्र है, वह रुई-जैसा बिखरा नहीं है। साधना का जो क्षेत्र है, वह सोने जैसा घनत्व है। संघटित है। जो घनत्व है, वह सर्वमान्य है। नाम के राग में परिणाम को बिखेरो मत। आत्मप्रदेशों का घनत्व, आत्म परिणामों का घनत्व वो शक्तिमान है।

हे मुमुक्षु! ध्यानस्थ श्रमण अपने भावों का घनत्व बनाता है। ध्यानस्थ श्रमण, योगी, निर्ग्रन्थ तपोधन भावों का घनत्व बनाता है और भावों के घनत्व से आत्मप्रदेशों में वृद्धि होती है और फिर जो शरीर पूरापन है, वह विलीन हो जाता है। किंचित् न्यून सिद्ध परमात्मा, क्योंकि चरम शरीर से जो शरीर में आत्मा के प्रदेश हैं। शरीर पोला है उसका, फैले हुये प्रदेश हैं। जब निर्वाण होता है, जीव का तो सारे-के-सारे आत्मा के प्रदेश घनत्वभूत परिणत हो जाते हैं। ऐसे-ही भैया! बहुत सारी साधना अनुभव से किया करो। रागियों की चर्चा के बाद भगवान् की स्तुति की अनुभूति लेना। जो रागियों से आपने बात

की है, उससे आपके परिणाम और भाव विघटित हुये, विचलित हुये, अशान्त हुये और भगवान् की स्तुति करने पर भावों की एकता आई है, उसका वेदन करना और भगवान् की स्तुति करने के बाद स्वाध्याय करने बैठ जाना। फिर देखना भैया भावों की दशा। परिणाम संघटित होंगे, विशुद्धि बढ़ेगी। इसके बाद ध्यान में बैठ जाना, कोई नहीं होगा। कोई लेने नहीं आयेगा, कोई नहीं आयेगा। मेरे मित्र सर्वाधिक शांति और आनंद ध्यान में आयेगा। यहाँ घनत्व की वृद्धि हुई है, इसलिये नाम के राग में आकर परिणामों को बिखराओ मत। चार संज्ञाओं का त्याग कर सकते हो, तो ये तो नाम वाली संज्ञा है। इसका भी त्याग करना सीख लो। सारे जगत् में त्यागीगण चार संज्ञाओं के त्याग की बात तो कर देते हैं, पर जो वास्तविक में त्यागने योग्य नाम निक्षेप की संज्ञा है, उसका त्याग भी करना चाहिये। मनुष्यपर्याय में सर्वाधिक कठिन कोई संज्ञा है तो नाम की संज्ञा है उस पर चिन्तन ही नहीं किया। ज्ञानियो! एक माह के उपवास के बाद जीव कह रहा है कि मेरे पम्पलेट छपवा दो। एक माह के बाद जीव कह रहा है कि नेट पर मेरे समाचार भिजवा दो। एक माह के उपवास के बाद जीव कह रहा है कि मेरा जुलूस निकलवा दो। मेरे मित्र! तूने जिसे सुखाया है, वह शरीर था। तूने खाया नहीं वह पुद्गल था। पर दोनों ही तेरे नहीं थे। तूने उपवास लंघनभूत तो कर लिया, पर तुझे ध्यान में रखना चाहिये था कि वहाँ नहीं बैठ सका। **निज के पास वास, उसका नाम है उपवास।** भोजन छोड़ने के बाद तुम शरीर का नाम नहीं छोड़ पाये, तो शुद्ध ढोंग हो चुका है, लेकिन उपवास से तो फिर भी दूर ही हो। मैंने इतने उपवास किये हैं तो जुलूस तो निकलना ही चाहिये पारणा के दिन।

हे ज्ञानी! जुलूस निकल जाये तो ये समाज का, परिवार का, धर्मप्रभावना का भाव है। परन्तु तू ऐसे भाव मत ला। इसका नियंत्रण करो। ये मत सोचता कि मेरे उपवास सूखे निकल गये। उपवास तो सूखे होते ही हैं, वो सुखाने के लिये ही होते हैं।

शरीर और कषाय को जिससे सुखाया जाय, उसका नाम उपवास है। उपवास से तात्पर्य ये नहीं है कि सकला खा रहा है, फल खा रहा है, कन्द खा रहा है, ये कोई उपवास नहीं है। अभक्ष्य का खाना भी उपवास संज्ञा नहीं है। **जिसने चारों प्रकार के आहार-पानी का त्याग करके, पंचपरमेष्ठी की आराधना की, वह उपवास है। पानी भी पी लिया है तो उपवास भंग हो गया। जिसका खाद्य, स्वाद, लेह्य पेय में चारों प्रकार के भोजन का त्याग है, उसका नाम उपवास है व्यवहार से और निश्चय से निज स्वरूप में लीनता उपवास है।** निश्चय का उपवास होगा वहाँ व्यवहार का उपवास नियम से होगा।

मेरे मित्र! जब तू लीन होगा, उस समय भोजन करने का विकल्प आयेगा क्या ? और जब भोजन करने का विकल्प कर रहा है, उस समय स्व में लीन होगा क्या? इसलिये द्रव्यानुयोग के साथ छल नहीं

करना । 'मैं तो भावों से उपवास करता हूँ।' ज्ञानी! भावों से भोजन तूने किया कैसे ? उपवास होगा तो भोजन भी छूटेगा। स्वरूप में लीनता है, वहाँ नियम से भोजन छूटा है। आहार संज्ञा छटवें गुणस्थान तक होती है, सातवें गुणस्थान में आहार संज्ञा ही नहीं होती।

मुमुक्षु! करणानुयोग से बोलिये- आहार संज्ञा कहाँ तक है? छटे गुणस्थान तक। इसके आगे नहीं है। महाराज श्री! पंचमकाल में छटे गुणस्थान से ऊपर नहीं जा सकते क्या? ज्ञानी! पंचमकाल में छटवाँ, सातवाँ दोनों ही गुणस्थान हैं। सातवाँ नहीं होगा तो छट्टा नहीं होगा क्या ? दोनों गुणस्थान का काल अंतर्मुहूर्त है। योगी की दोलन गति है जैसे झूले में इधर-उधर चलता रहता है। ऐसे ही मुनिराज के परिणाम छट्टे से सातवें और सातवें से छटवें में होते हैं। छटवें में ही आहार संज्ञा है, सातवें में आहार संज्ञा नहीं है। कोई कहे कि मैं निजस्वरूप में लीन हूँ, मैं भोजन नहीं करता हूँ, मेरे मित्र! दिगम्बर योगी की वह अप्रमत्त दशा सप्तम् गुणस्थान से प्रारंभ हुई है। वहाँ स्थित होंगे तभी आहार नहीं करेंगे और आहार करते-करते कहे कि मैं अप्रमत्त हूँ, ऐसा नहीं है। अप्रमाद में भोजन नहीं होता है, प्रमाद में भोजन होता है। भोजन में अप्रमाद नहीं होता। जब भोजनकथा करना ही प्रमाद है, तो भोजन करना अप्रमाद कहाँ से हो गया? बड़े प्रेम से कह देते हैं कि आहार करते- करते सातवें गुणस्थान में चले गये। जब आहार कर रहे हैं, तब सातवें में नहीं जायेंगे। जब सप्तम् में जायेंगे उस समय आहार नहीं होगा। आप जिनागम के समय को पकड़ो। एक समय में एक उपभोग होता है । भले ही वो आहार की मुद्रा में खड़े हों, लेकिन जब सप्तम् में होंगे तो आहार नहीं कर रहे होंगे। यदि आप आहार करते-करते सप्तम् गुणस्थान बनाओ तो फिर आहार संज्ञा तो छट्वें गुणस्थान के आगे होती ही नहीं है। आहार संज्ञा ही नहीं है सप्तम् गुणस्थान में, इसलिये सप्तम् गुणस्थान में आहार नहीं है। आहार में सप्तम गुणस्थान नहीं है। जब उपयोग तुम्हारा भोजन में है, तब शुद्धोपयोग नहीं है। जब उपयोग, शुद्धोपयोग में है, तब भोजन में नहीं है।

अनशन स्वरूप का चिंतन करो और मिठाइयाँ खाओ, रस पियो, फ्रिज में रखकरके। भावना और भाव इन दोनों पर ध्यान दो। भावना आप भा सकते हो, पर भाव में स्थिरता का होना भावना से भिन्न है। भावना तो श्रावक भाता रहता है जीवनपर्यन्त। भावना का राग भाव हो गया, तो सभी वस्त्रधारी भी भावलिंगी हो जायेंगे। सुना भइया! आजकल क्या हो गया है? बोले-भावलिंग पहले होता है, द्रव्यलिंग बाद में होता है। ये हमारे ज्ञानियों की व्याख्या है। पर कब होता है भावलिंग? जब वैराग्य होता है, मुनि बनने का भाव करता है। वह भावलिंग है। दीक्षा ले लेता है। हे ज्ञानी! इस अज्ञानता को नष्ट कर दो। जो तुम घर में भाव कर रहे थे, वह भावलिंग नहीं था। वो मुनि बनने का, साधु बनने का भाव था। जो महाव्रतों का आरोपण तुम्हारे ऊपर हुआ है, लिंग को धारण किया है, वह द्रव्यलिंग है। उस द्रव्यलिंग

के हुये बिना भावलिंगी मुनि होगा नहीं। जो अनंतानुबंधी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान इन सर्वघाती प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय, उन्हीं का सर्वावस्था रूप उपशम और देशघाती प्रकृति संज्वलन कषाय के मंद उदय होने पर जो परिणामों की दशा बन रही है, वह निश्चय भावलिंग है। संज्वलन का तीव्र उदय चल रहा है, छटवें गुणस्थान के भाव बन रहे हैं, वह सराग भावलिंग है।

भैया! भावलिंग के भी आपको दो भेद करना पड़ेंगे। ये मत कहना कि कहाँ लिखा है। इतना तो आपको अपने मस्तिष्क से ही लगा लेना चाहिये। यदि आप भावलिंग के दो भेद नहीं करोगे तो छटवें गुणस्थान में कोई मुनि ही नहीं होंगे। भावलिंग के भी दो भेद कीजिये । सराग भावलिंग, दूसरा वीतराग भावलिंग । क्या करना है? इसलिये कि यहाँ सराग भाव की व्याख्या कर रहे हैं। गुणस्थान छटवाँ कह दें तो अलग से सम्यग्दर्शन कहने की आवश्यकता नहीं है। जिनागम में सम्यग्दृष्टि जीव को ही सम्यक् अपेक्षा से भााव लिंग कहा है, लेकिन सम्यक् अपेक्षा से भावलिंग जो है वह घटित होता नहीं है पूर्णरूप से सम्यक् सहित, छटवें गुणस्थान की परिणति करने वाला जीव पंचम गुणस्थान में हो सकता है कि नहीं हो सकता है? सम्यक् सहित छटवें गुणस्थान की परिणति करने वाला चौथे गुणस्थान में हो सकता है कि नहीं हो सकता? छटवें गुणस्थान जैसी परिणति करने वाला जीव प्रथम गुणस्थान में हो सकता है कि नहीं हो सकता है? ध्यान देना एक-एक शब्द पर। बहुत गम्भीर विषय सामने आया है। गुणस्थान-जैसी परिणति करना, ज्ञानी! आपको मालूम होना चाहिए कि जैसे भारत सरकार की जो मुद्रा है वैसा का वैसा नोट आपको बाजार में मिल जायेगा, लेकिन दिन में जायेगा तो पकड़ा भी जायेगा। अंतर क्या रहा भाई नकली नोट और असली नोट में?

ज्ञानी! उसके मध्य में एक तार पड़ा होता है और आगे गवर्नर के हस्ताक्षर चाहिये पड़ते हैं। नकली नोटों में आप कहाँ से सही हस्ताक्षर लेकर आओगे? ऐसे-ही मेरे मित्र भावलिंग जो है उसमें छट्टे गुणस्थान का तार पड़ा हुआ है, सम्यग्दर्शन के हस्ताक्षर होना चाहिये। यदि आपके भावलिंग नहीं है, तो जीव देशव्रती कागज मात्र है। ऐसे-ही ज्ञानी! मिथ्यात्व सहित द्रव्यक्रिया करने वाला छट्टे गुणस्थान वाला नहीं होता। छट्टे गुणस्थान वाला जीव देशव्रती नहीं होता। छटवें गुणस्थान वाला अविरति नहीं होता। छटवें गुणस्थानवर्ती जीव नियम से महाव्रती ही होता है। एक भावलिंग सराग भावलिंग। उसे सराग भावलिंग क्यों कहा है?सम्यक् की अपेक्षा से नहीं, सराग सम्यक् के पालन की अपेक्षा सम्यक् सहित सराग भाव में छटे गुणस्थानवर्ती मुनिराज और सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज को वीतरागी संज्ञा प्राप्त हो चुकी है। ज्ञानी! वीतराग भावलिंग। चतुर्थ गुणस्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि है। द्रव्यानुयोग के साथ करणानुयोग को भी समझना पड़ेगा।

भो ज्ञानी! बिना द्रव्यलिंग के भावलिंग का प्रकटीकरण होता ही नहीं है। जो द्रव्यलिंग है, जिनलिंग दृष्टि से वह जो सहचर वृत्ति है, वह तो स्नातक मुनि महाराज तक है। जो छटवें गुणस्थान का द्रव्यलिंग है, दिगम्बर मुद्रा, वह तो छटे , सातवें से प्रारंभ है और जब-तक निर्वाण नहीं होगा, तब-तक है। कोई ये सोचे कि छटे तक मुनिराज दिगम्बर, इसके बाद फिर कपड़े। नहीं, ये तो सहचर धारा है। अब चलिये परिणामों की धारा पर। दूसरा द्रव्य पिच्छी-कमण्डलु ये जो लांछन है। कब-तक है, यह जीव शुद्धोपयोग में नहीं जाता है, तब-तक छट्टे गुणस्थानरूप प्रवृत्ति रूप का सहचरपना है। सप्तम् गुणस्थान में जीव जायेगा तो पिच्छी-कमण्डलु का वहाँ उपयोग होता नहीं है ध्यान की धारा में, शुद्धोपयोग की धारा में, लेकिन छटवें-सातवें में परिणमन चल रहा है। कब जीव छटवें में गया, कब जीव सप्तम् में आया ?

जो निरतिशय अप्रमत्त दशा है, उसमें पिच्छी-कमण्डलु आ गये भैया! कोई विकल्प नहीं है। पर सातिशय अप्रमत्त दशा पिच्छी-कमण्डलु का भी विकल्प नहीं है।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति।।

जब कोई योगी स्वभाव में लीन होता है तब तक वह बोलते हुये भी बोलता नहीं है, चलते हुये भी चलता नहीं है, देखते हुये भी देखता नहीं है। कब ? जब वह अपने आत्मतत्त्व में स्थिर है। सिद्धांत कहेगा कि आहार संज्ञा छटवें गुणस्थान तक है। जब किसी मुनि ने आप से पूछा कि भैया! आपका भोजन आज हुआ कि नहीं? कह देना कि हमारे भोजन तो हो गये थे, लेकिन महाराज! आप प्रमाद में आ गये, पूछ भर लिया आपने। अब जो है सो है। भैया! कर ही क्या सकते हैं ? हाँ, प्रमाद में आ गये। आपने साढ़े ग्यारह बजे प्रत्याख्यान कर लिया है, ईर्यापथ प्रतिक्रमण कर लिया है। आप लोकाचार में आ गये, पूछा क्यों आपने ? आपको दोष लग गया है। भैया! बराबर है कि नहीं? जब मेरे मित्र! मैंने इतना पूछ लिया कि आपके भोजन हुये कि नहीं, इसमें मुझे प्रमाद ने घेर लिया और प्रायश्चित्त का भागीदार बना दिया। फिर जब में भोजन कर रहा हूँ, दाँतों से चबा रहा हूँ, कण्ठ में गुटक रहा हूँ, उस समय अप्रमाद कैसे होगा? होगा, नहीं होगा? इसलिये भैया! यथार्थ मानो, ये वो व्याख्या है कि जब आप अपने नगर से चले, सो आपके बेटे की माँ ने कहा कि- तनिक भोजन करके जाओ, सो आपने कही कि गाड़ी को समय हो रहो है, तनिक दौड़ के जा रहे खा पीके, जल्दी से। भैया! तू न दौड़ के खा रहा था, न पी रहा था। मतलब जल्दी भोजन करके आ गये। पर व्यवहार में क्या कह रहा था? कि अब चलते-चलते दो-चार पूड़ियाँ मुँह में दबायीं और चल दिया मैं तो। हाँ, जीव की सीमा जो बाँधी गई है, उस सीमा का एक विषय और पकड़ना पड़ेगा। न खाने की बात करना, न चबाने की बात करना, न मुँह में रखने की

बात करना। समय इतना सूक्ष्म है कि जिस समय शुद्धोपयोग में जायेगा, उस समय ये कुछ भी नहीं कर रहा होगा, पर दिखनेवाले को करता हुआ दिख रहा होगा। क्या हुआ, भैया! मैं एक सत्य घटना आपको बताऊँ। हमारे मुमुक्षु महाराज हैं न, जो यहाँ बैठे हैं, इनने सुन लिया कि जब-तक शुद्धोपयोग में नहीं जायेगा तब-तक छटा भी नहीं हो पायेगा, सातवें में भी नहीं जा पायेगा। ये गया श्रावक के यहाँ आहार करने और जाकर अंजुली लगाई और फिर खड़े हो गये आँखें बंद करके। भो स्वामी! खोलो अंजुली हाँ, अनुभूति ले रहा हूँ। फिर अंजुली खोली, ग्रास दबाया, मुँह की ओर ले गये स्वामी। मुँह में रखो। अनुभूति ले रहा हूँ। मालूम चला बेचारा श्रावक थक गया और आप लीन हो गये। स्पष्ट विषय होना चाहिये कि कहीं तुम ऐसा मत सोचना कि मैं खड़ा रहूँगा आहार के समय, फिर अनुभूति लूँगा, फिर ग्रास लूँगा ऐसा नहीं है। यहाँ पर क्या है? न खाते सातवाँ गुणस्थान होता है, न पीते सातवाँ गुणस्थान होता है। छटवाँ तो होता है। जब सप्तम् गुणस्थान होता है उस समय में आहार संज्ञा ही नहीं है।

तो कहाँ से खायेंगे, कहाँ से पीयेंगे? न खा रहे हैं, न पी रहे हैं। स्वरूप में लीन हो रहे हैं। उस समय उनका खाना-पीना होता ही नहीं है। एक समय में दो उपयोग नहीं होते। करणानुयोग का नियम है। आप स्थूल दृष्टि से कह दें कि मैं देख रहा हूँ, मैं खा रहा हूँ, ज्ञानी! जब तुम ध्यानस्थ रहते हो तब तुम खाते नहीं हो और जब खाते हो तो ध्यानस्थ नहीं रहते हो। उपयोग एक समय में एक ही होता है। इसलिये जिसे लोग कहते हैं कि आहार करते शुद्धोपयोग में जा रहे हैं, ज्ञानी! उस बीच में ऐसी स्थिरता आनी चाहिये जहाँ आहार होता नहीं है। भले ही खड़े हों, खड़े रहो या फिर आपको सिद्धांत बदलना पड़ेगा। किस बात का ? कि आहार संज्ञा सातवें गुणस्थान में भी होती है, जबकि होती नहीं है।

हे ज्ञानी! बिना संज्ञा के आहार कैसा ? संज्ञा कारण है, आहार कार्य है। बिना संज्ञा के, बिना कारण के कार्य होता नहीं है। इसलिये ध्यान दो, वो भी भैया एक अध्यात्म लीनता है, एक अध्यात्म भावना है। अब ये सब ज्ञानी लोग हैं। मेरे मित्र! अध्यात्म भावना प्रतिक्षण होती है, उसमें दिखाई पड़ता है। अध्यात्म लीनता में पर विषय नहीं आता, अध्यात्म भावना-अनशन स्वरूपोऽहम्, रागद्वेष रहितोऽहं, सिद्धोऽहम्, शुद्धोऽहम्। ये अध्यात्म नहीं है। भैया! आपका क्या विचार है? ये अध्यात्म भावना है। माघनंदी स्वामी ने क्या लिखा ? ये ध्यान सूत्राणि है, ये ध्यान नहीं है। अध्यात्म भावना ये तो गृहस्थों के भी होती है। द्रव्य संग्रह में प्रमाद उपवास में ब्रह्मदेव सूरि ने लिखा है। भरत, राम, पाण्डवादी गृहस्थावस्था में भी इनके अध्यात्म भावना होती थी। भावना का शुद्धोपयोग भी होता था। वो शुद्धोपयोग की भावना होती थी, न कि शुद्धोपयोग भाव। शुद्धोपयोग भाव नहीं, तो शुद्धोपयोग भाव कब होगा? **भेदाभेद रत्नत्रय से मण्डित होकर के जो आत्मा में निज में निज की धारा है, अखण्ड धारा है, वही शुद्धोपयोग की धारा है।** ज्ञान में ज्ञान की लीनता। अब देखते हुये भी नहीं देख रहे हैं। इसकी दृष्टि

पर ध्यान दो। नेत्र खुले हैं, उपयोग भीतर है। आँखें खुली होने पर भी नहीं देख पाते हैं, आप विश्वास करो भैया कि सामने आपके कौन-कौन निकल गये ? और जब आपके हाथ में लेखनी होती है, भैया! ये मुझे बहुत अच्छे से पता है, जब आप गोम्मटेश गाथा लिख रहे थे, सत्य बताना, कितनी भीड़ देख रहे थे? भैया! पण्डित जी से पूछना कि अगर ये भीड़ देख रहे होते तो इतनी सुंदर गाथा नहीं लिख पाते। हाँ, ये भीड़ को ही देख रहे थे, भीड़ को नहीं देख रहे थे। ज्ञानी! मैं क्या बोल रहा हूँ? जब ये गोम्मटेश गाथा लिख रहे थे तो ये भीड़ नहीं देख पा रहे थे। हाथ में लेखनी थी, देख रहे थे गोम्मटेश पर, पर बगल में इनके नाती घूम रहे थे उन्हें नहीं देख पा थे। जब गोम्मटेश की भीड़ देख रहे थे हाथ में कलम लेकरके, क्योंकि आपका शरीर का वो स्थान आपके कक्ष में था। इधर उपयोग आपका गोम्मटेश बाहुबली पर था। मेरे मित्र! आप प्रमेय माला ग्रन्थ के पास पहुँच जाइये-काली कोठरी में नेत्रों पर काली पट्टी बंधी हुई है, बेटे की माँ अपने माँ के घर में है और तू काली कोठरी में पड़ा हुआ है तब भी तुझे बेटे की माँ दिख रही है।

तेल फुलेल लगाके आ गये, तब भी लोगों को अच्छे नहीं लगते। ऐसे भी लोग होंगे जो सुन्दर तो नहीं हैं, पर जिसका सुभग नामकर्म का उदय है तो हर व्यक्ति को प्रीति होती है, उससे बात करने की कि मैं इससे मिलूँ, इससे बात करूँ। वह कौन-सा द्रव्य है? सुभग नाम कर्म। जिसका दुर्भग नामकर्म का उदय है, वो बेचारा बार-बार चेहरा दिखा रहा था कि मुझे भी देख ले, किंतु कोई देखता ही नहीं है। जब दुर्भग नाम कर्म का उदय ही चल रहा है, अब क्या करूँ? तू क्या सोच रहा है कि मुझे किसी ने नहीं पूछा? अरे भाई! सुरीला कण्ठ हो, जो दूसरों के मन को मोहित कर ले, ऐसी वाणी का होना, ये सुस्वर नामकर्म का उदय है। कोई बहुत अच्छे से भी बोलते हैं बेचारे फिर भी कोई पसंद नहीं कर रहा, यह दुस्वर नामकर्म का उदय चल रहा है। कोयल भी बोलती है, काली होती है। कौआ भी बोलता है, काला ही होता है। पर देख भाई! एक को तो तुम सुनना चाहते हो और एक बोले तो पत्थर मारते हो। ये बिल्ली आदि जो जीव हैं ये बोलें तो तुम नहीं सुनना चाहते हो, तुरन्त पत्थर फेंकते हो, क्योंकि ये अशुभ हो जायेगा। भैया! कोई के कहने-सुनने से अशुभ हो रहा है कि तुम्हारा अशुभ होना है सो अशुभ हो रहा है? किसी भी जीव को मत सताना। पर एक ऐसा भी जीव है जिसे कोई सुनना ही नहीं चाहता।

जो न किसी से बाधित हो और न किसी को बाधित करे, ये सूक्ष्म नामकर्म की लीला है। नहीं तो कोई दुबला-पतला हो जाये और कहने लगे कि ये मेरे सूक्ष्म नामकर्म का उदय है। अरे! तेरे सूक्ष्म नामकर्म का उदय नहीं है। जो दूसरों से छिड़े न, दूसरों को छेड़े न, वह सूक्ष्म नामकर्म है। जो दूसरों से छिड़े, दूसरों को छेड़े, बादर नामकर्म है। जिस नामकर्म के उदय से शरीर की धातु प्राप्त हों, वह स्थिर

नामकर्म है और जिस शरीर को, जरा-सी ठण्डी पड़ी जुकाम हो गया, जरा सा कुछ हुआ तो नाक फूट गयी, ये अस्थिर नामकर्म का उदय है।

कुछ लोग कितने ही डिब्बे खाली कर दें पाउडरों के, तब भी उन्हें कोई नहीं पहचान रहा। अरे भाई! तू सहज सुंदर है, क्यों पाउडर लगा रहा है? यदि आदेय नामकर्म का उदय है, तो अपने आप कांति आयेगी और आदेय नामकर्म का उदय नहीं है, तो चाहे तुम कितने ही क्रीम पाउडर लपेट लो, जीवों के कलेवर, लेकिन 'जो है, सो है'। 'कोयला होय न ऊजरो, सौ बेर साबुन लगाय।' अरे! कोयले को तुम कितना ही साबुन से धोओ, वो गोरा हो रहा है क्या ? ऐसे-ही काली-कलूटी आत्माओ! तुम क्यों ये चमड़ी के पीछे पड़े हो ? जो है, सो है। भावों को अच्छा करो।

'दो गोरे, दो साँवले।' अरे! दो तीर्थंकर भी तो साँवले थे। अच्छा हुआ कि दो भगवान् साँवले हो गये, नहीं-तो पंचम काल के लोग काले लोगों को तो बिल्कुल देखते ही नहीं। आज ध्यान किसका किया था? सांवले भगवान् का किया था न? शरीर के गोरे-कालेपन से कुछ नहीं होता, परिणाम गोरे होना चाहिए। एक व्यक्ति जरा-सा कुछ भी नहीं करे, तब भी उसके चारों ओर यश फैल रहा है। एक बेचारा करोड़ों का दान दे रहा है, तब भी कोई नाम लेने को तैयार नहीं है। अरे भाई! तुझे पता होना चाहिये कि सूर्य जब पूर्व दिशा में खिलता है। तो कोई उसको मुट्ठी में बांध सकता है क्या? सूर्य की किरणें तो बाहर निकलेंगी ही। ऐसे-ही जिसकी यश:कीर्ति है, पुण्य का उदय है उसको तुम चाहो, लेकिन दब नहीं सकता है और यश:कीर्ति नामकर्म का उदय नहीं रहेगा, तो तुम कितनी ही मेहनत कर लो, कोई नाम लेने वाला नहीं है। इस प्रकार से जिस नामकर्म के उदय से अनंत अवस्था की प्राप्ति होती है, वह तीर्थंकर नामकर्म है। गोत्र कर्म के दो भेद हैं। उच्च गोत्र कर्म , नीच गोत्र कर्म। जिस कर्म के उदय से यह जीव लोकपूज्यता को प्राप्त होता है वह गोत्र है।

अंतराय कर्म के पाँच भेद हैं। कोई दान दे रहा था, उसमें विघ्न आ गया। कोई देना चाहता है, कोई लेना चाहता है, बीच में ही विघ्न आ गया, ये क्या है? जो लाभ में अंतराय आता है, लाभान्तराय। जो भोगना चाहे, नहीं भोग पाये, भोगान्तराय। उपभोग में अंतराय आता है उपभोगान्तराय और उत्साहित होना चाहता है, फिर भी नहीं हो पा रहा है, ये वीर्यान्तराय कर्म का उदय है। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अंतराय इनका जो समय है, उसकी उत्कृष्ट स्थिति तीन कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण समझना।

सत्तर कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण मोहनीय कर्म की स्थिति है। इसलिये ज्ञानियो! बचके रहना। केवली, श्रुत, संघ आदि का अवर्णवाद नहीं करना। आप कितने ही महान् हो, पर कर्म तो अपना काम करेगा। नाम गोत्र कर्म की स्थिति बीस कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण है।

आयुकर्म की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर प्रमाण है। ये स्वर्ग और नरक से लगाना। वेदनीय कर्म की जघन्यायु बारह मुहूर्त है। नाम और गोत्रकर्म की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त है। जैसा तूने बंध किया, वैसा फल मिलेगा। कैसा? ''स यथानाम'' जिस कर्म का जैसा नाम है, उस कर्म का उस रूप काम है। ये सविपाक निर्जरा है, फल देकरके फिर कर्म निजीर्ण हो गया, कैसे? वो चकरी चल रही है बारूद की, आग लगा दी। कब तक घूम रही है ? जब तक बारूद है उसमें। बारूद जल गई, चकरी शान्त। ऐसे-ही ज्ञानी! जब-तक कर्म का उदय सत्ता में रखा था, वो पूरा खिर गया, अब तो झर ही जायेगा, शान्त हो गया, लेकिन इससे मोक्षमार्ग में कोई परिणमन सिद्ध नहीं होता। आत्मा भिन्न है, कर्म भिन्न है। ये स्वभाव दृष्टि है। बंध की दृष्टि में, दूध पानी के कितने अंश में है? सर्वांग में है। ऐसे-ही मेरे मित्र! आत्मा में कर्म जल में तेल के समान नहीं है, कि मैं तेल डाल दूँ, ऊपर-ऊपर दिखता है। तिल में तेल के समान है। तिल में कितने अंश में तेल बैठा है? सर्वांग में। ऐसे ही आत्मा के सम्पूर्ण प्रदेशों में जो पुद्गल परमाणु हैं, कर्म परमाणु वहाँ आत्म प्रदेशों में संबंध है। इनका नाम प्रदेश बंध है। सातावेदनीय, शुभनाम, शुभ गोत्र, ये पुण्यप्रकृतियाँ हैं। इसके अलावा असातावेदनीय, अशुभायु, अशुभनाम, अशुभ गोत्र ये सब पाप प्रकृतियाँ हैं। **आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञाओं का त्याग करना सरल है, पर जो नाम की संज्ञा है, जिसका आत्मा से निसंश्लेष संबंध है, उस नाम संज्ञा से अपने आप की सुरक्षा कर पाना बहुत कठिन साधना है।** यशःकीर्ति ये कर्म है। जहाँ समयसार जी की दृष्टि में द्रव्यकर्म, भावकर्म, नो कर्म से रहित दशा की प्राप्ति का लक्ष्य है, वहाँ कुन्दकुन्द देव कहेंगे-

कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव।।स.सा.।।

जब-तक इस आत्मा की ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, भावकर्म और शरीरादि नोकर्म के प्रति जो आत्म बुद्धि है, वह अबुद्धि ही है। मेरा यश हो, मेरी कीर्ति हो, सम्मान हो, ये लक्ष्य जहाँ है, वहाँ मोक्ष कहाँ?

हे जीव! जिनमुद्रा कर्मातीत होने के लिये है, जिनलिंग कर्मातीत होने के लिये है, फिर जिन- लिंग में कर्म के फल आकांक्षा कैसी ? ध्यान दो, बहुत सरलता की आवश्कता है। अन्यथा कर्म निर्जरा का भाव लेकर हम जिनदीक्षा को प्राप्त अवश्य हुए हैं, पर किंचित् भी यशादि की दृष्टि है, कर्म बन्ध के अभाव का कोई लक्ष्य नहीं है। क्रिया करने का अभ्यास हो गया है और अभ्यास से दूर होने का अभ्यास नहीं किया। मुझे सामायिक आदि क्रियायें करना चाहिये, मूलगुणों का पालन करना चाहिये-ये अभ्यासभूत है। अशुभ से बचने के लिये है या कर्मातीत होने के लिये है? अशुभ से बचने के लिये। तो अरिहंत की पूजा ही बहुत है। **हे योगी! मुनियों को आहार दे रहा था श्रावक, अरहंत की पूजा कर**

रहा था श्रावक, जिनवाणी का स्वाध्याय कर रहा था श्रावक, अशुभ से तो वह बच रहा था। पर आपके जो मूलगुण हैं, अठ्ठाईस कृति कर्म हैं, मात्र अशुभ से बचने का ही उद्देश्य नहीं है, अशुभ से तो आप बचे ही हो। यह भावना कर रहे हो, वह संवर-निर्जरा के लिये है। संवर-निर्जरा वहीं है, जहाँ समकित है। समकित नहीं है, तो मूल गुणों का पालन भी मोक्ष की प्राप्ति एवं संवर-निर्जरा का साधन नहीं बनता। भैया! बराबर? समकित रहित, व्रत-समिति का पालन करते हुए भी मोक्षमार्ग-भूत संवर-निर्जरा का कारण नहीं है। इसलिये सम्यक् के साथ जो साधना है, वही मोक्षमार्ग में कार्यकारी है। कुन्दकुन्द देव के किसी भी विषय पर भ्रम करने की आवश्यकता नहीं है। आधी गाथा का अर्थ करके छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ मूलगुण कह देते हैं। व्रत, समिति, गुप्ति का पालन तो शुभक्रिया है ज्ञानी! ये शुभक्रिया मात्र नहीं है। ये संवर-निर्जरा का कारण है, मोक्ष का कारण है। पुण्य-पाप अधिकार में कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है और उस गाथा का आधा अर्थ करके लोग भ्रम खड़ा कर देते हैं।

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति।। स.सा.।।

व्रत संयम तप से निर्वाण को प्राप्त नहीं होता, यदि ऐसा तुम अर्थ कर रहे हो, तो मेरे मित्र! निर्वाण की प्राप्ति का उपाय फिर है कौन-सा? क्या व्रत, समिति, गुप्ति को धारण किये बिना दिगम्बर की सिद्धि है? क्या बिना दिगम्बर के निर्वाण की सिद्धि है? कुन्दकुन्द महाराज ने ये लिखा है- जो जीव परमार्थ से बाहर होकरके व्रत, संयम, शील का पालन कर रहे हैं वे निर्वाण को प्राप्त नहीं करेंगे। जो परमार्थ दृष्टि ये युक्त होकरके व्रत संयम का पालन कर रहे हैं, वे निर्वाण प्राप्त करेंगे।

कुन्दकुन्द महाराज ने किंचित् भी किसी जीव को भ्रमित होने के लिये उपदेश नहीं लिखा है। ये जीव की निजी प्रज्ञा की न्यूनता हो सकती है, स्वयं की बुद्धि का लघुपना हो सकता है, पर कुन्दकुन्द की दृष्टि में किंचित् भी मोक्षमार्ग से बाहर व्याख्या नहीं है। यहाँ कह रहे हैं हे श्रमण! व्रत संयम के पालन के साथ-साथ नाम और कीर्ति में जो लक्ष्य टिका हुआ है, इस पर संयमित होने की बहुत आवश्यकता है अन्यथा पूरी सामायिक व्यर्थ है। भैया! छह प्रकार की सामायिक है। नाम सामायिक, स्थापना सामायिक, द्रव्य सामायिक, भाव सामायिक, क्षेत्र सामायिक, काल सामायिक। जिनागम में (मूलाचार जी में) छह प्रकार की सामायिक का वर्णन है। श्रमण अपने यश के लिये, नाम के लिये, तत्क्षण अपने उपयोग को ले जा रहा है तो उसकी नाम सामायिक नष्ट हो चुकी है। पर के अशुभ नाम ले रहा है तो नाम सामायिक भंग हो गई। किसी के अच्छे नाम पर तुझे राग हो रहा है तो भी नाम सामायिक भंग हो गई। किसी के शुभाशुभ नाम के आने पर भी मन में खेद नहीं करना, इसका नाम, नामसामायिक है।

दूसरी दृष्टि से परमात्मा के नाम का स्मरण करना नाम सामायिक है। स्वयं के, वर्तमान के शरीर के श्रृंगार पर दृष्टि डाले हुए है तो नाम सामायिक नष्ट हो चुकी है। सामायिक संयम है और संयम ही आपका विच्छेद हो रहा है, आगे वृद्धि आपकी अवरुद्ध हो रही है। यहाँ कहते हैं कि शब्दादि इन्द्रिय-विषय हैं।

सद्दो बंधो सुहुमो, थूलो संठाण भेद तम छाया।
उज्जोदादव सहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया।। द्र.सं.।।

पुद्गल द्रव्य की दस पर्याय हैं। जो शब्द है, वह कर्ण इन्द्रिय का विषय है। जैनदर्शन शब्द को आकाश का भेद नहीं मानता। शब्द पुद्गल की पर्याय है। जो बाधित होता है, बाधित करता है, वह मूर्तिक है। शब्द बाधित भी होता है, शब्द बाधित भी करता है। शब्द पुद्गल की पर्याय है, तो पुद्गल की पर्याय जो है, वह अचेतन है।

शब्द पुद्गल की पर्याय है। मेरे में शब्द ने राग उत्पन्न किया। किसी ने कहा-आपके इष्ट का वियोग हो गया तो आपकी आँखों से आँसू गिरना प्रारंभ हो गये। भैया! शब्द ने आपको प्रभावित किया है। भैया! इनका विचार है, व्यवहार भी यही कहेगा, कि फोन सुनते ही जीव परेशान हो गया अथवा मुस्कुरा गया, कोई इष्ट समाचार मिल गया। मेरे मित्र! अभी तक आपने ये सोचकर, सुनकर रखा था। अब ये समयसार की व्याख्या है ''सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार'' की ।इसे भी ध्यान से सुनकरके, भूतार्थ निर्णय तक पहुँचिये। हे जीव! शब्द तो पुद्गल की पर्याय है और तू चेतन है। क्या अचेतन शब्द चेतन रूप परिणत होता है? क्या चेतन जीवद्रव्य अचेतनभूत परिणत होता है? अचेतन, चेतनभूत परिणत नहीं होता, चेतन, अचेतनभूत परिणत नहीं होता, फिर शब्द ने मेरी आँख में आँसू कैसे ला दिये? शब्द ने मेरे लिये राग कैसे उत्पन्न करा दिया? शब्द ने मेरे लिये द्वेष कैसे उत्पन्न करा दिया? हे जीव! शब्द निमित्त था। निमित्त तो निमित्त ही है। जड़ में राग करने की योग्यता किसी भी काल में नहीं है। जड़ में द्वेष करने की योग्यता किसी भी क्षेत्र में नहीं है। जब राग उत्पन्न हुआ है आपको शब्द को सुनकर, जब द्वेष उत्पन्न हुआ है आपको शब्द सुनकर, शब्द ही राग बन गया है कि राग आत्मा में था? शब्द में द्वेष या विद्वेष था कि आत्मा में था? आत्मा में था। हे जीव! शब्द निमित्त था करुणा के लिये। भैया! शब्द निमित्त राग के लिये था, कि द्वेष के लिये था? जब तेरे लिये राग था ही, तो शब्द ने राग उत्पन्न कहाँ किया? जब तेरे द्वेष था ही, तो शब्द ने द्वेष कहाँ उत्पन्न किया? हे श्रमण! ये विषय क्या बोल रहा है? हे श्रमण! तुम इस विकल्प को छोड़ दो। इसने शब्द बनकर राग उत्पन्न करा दिया। एक भूल है कि रागी तू है और दूसरी भूल कर रहा है कि तू अपने राग को पर का कर्ता बना रहा है। ये बिल्कुल भी मठ्ठे की व्याख्या

नहीं चल रही, शुद्ध घृत है। यानि उपसर्ग, परीषह को सहन करने वाला साधु निराश्रय-पने से कैसे युत हो सकता है? घोर उपसर्ग होने पर भी आत्मा की आस्रव से रक्षा कैसे कर सकता है? ये उसकी व्याख्या चल रही है।

मात्र देह के नंगे की नहीं, भाव के नग्नत्व की वंदना करने आये थे। देह से आप निर्ग्रंथ दिख रहे हो, पर निर्ग्रंथपना दृष्टिगोचर नहीं हो रहा। स्वामी! क्षमा करना, तुम्हारी मुद्रा को स्वामी बोल रहा हूँ, पर तुम्हारे भावों को स्वामी नहीं बोल रहा हूँ। अब मैं अपनी वंदना अपने साथ लेकर जा रहा हूँ। मैं वंदना को बदनाम नहीं करना चाहता हूँ। आप मुझे कहें, कि आप मुनिभूत नहीं हो। स्वामी! मैं मुनिभूत ही हूँ और अनन्य मुनिभूत हूँ, पर मुनिभूत ही हूँ, मुनि भूत नहीं हूँ, क्योंकि जो मुनि है, शुभ शब्द को भी, अपने मुख से उत्पन्न शब्द को भी पौद्गलिक कह रहा है और राग-द्वेष ये पुद्गल से भिन्न नहीं है। द्वेष जीव की विभाव दशा है। यदि राग-द्वेष को पुद्गलकृत मानते हो सर्वथा, तो जब शरीर नष्ट हो जायेगा तो तेरे राग-द्वेष भी नष्ट हो जायेंगे क्या? शरीर के नष्ट होने से राग-द्वेष नष्ट नहीं होता।

जो विभाव है, वह आत्मा का ही भाव है। भावकर्म आत्मा का विभाव भाव है। भावकर्म के नियोग से द्रव्यकर्म आते हैं। भावकर्म के नियोग से नोकर्म आते हैं। यदि भावकर्म का अभाव कर देता है जीव, तो द्रव्यकर्म व नोकर्म के बंध के अभाव में भावकर्म हो सकते हैं क्या? यदि भावकर्म को द्रव्य-कर्मबंध के अभाव में स्वीकार लोगे तो अशरीरी सिद्धों को भी आपको भावकर्म मानना पड़ेगा। शुद्धात्मा में न द्रव्यकर्म होता है, न नोकर्म होता, न भावकर्म होता है। वे तो कर्म कलंक से विगलित हैं। इसलिये समयसार जी की अस्सी नंबर की गाथा को अहर्निश ध्यान में रखना।

जीवपरिणाम हेदुं, कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति।
पोग्गलकम्मणिमित्तं, तहेव जीवो वि परिणमदि।।

पुद्गल कर्म के निमित्त से (नैमित्तिक दृष्टि से) जीव भावकर्म को प्राप्त होता है। भावकर्म के निमित्त से कार्मण वर्गणायें कर्मरूप परिणत हो रही हैं। जीव ही परिणमन करता है। जब आप कहेंगे महाराज, जब अस्सी नंबर की गाथा में इन्होंने व्याख्यान कर दिया, फिर सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार में क्यों कथन चल रहा?

ज्ञानी! वहाँ आपने विषय बता दिया कि संसार की नरकादि चौरासी लाख योनियाँ हैं, ये जीव द्रव्य की विभाव ध्रौव्य व्यंजन पर्यायें हैं। ये जीवद्रव्य में हैं तो अन्य में नहीं हैं। अन्य की नहीं हैं। इसको भी आप स्वीकारें। इनसे भिन्न तू कैसे होगा ? इनमें आत्मबुद्धि बढ़ाइये। क्या कर्म, नोकर्म, भावकर्म ये आत्मा का स्वभाव है? नहीं है।

जो कहते हैं कि व्यवहारनय से सब ऐसा है, ज्ञानी! अभी तुमने व्यवहार को अच्छे से समझा नहीं है। व्यवहारनय से भी जीव कर्म, नोकर्म, भावकर्म से रहित है। जो शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है, वह शुद्ध निश्चय नय का विषय है। अन्तर कितना ? निश्चय अभेद का व्याख्यान कर रहा है और व्यवहार भेद का व्याख्यान कर रहा है। अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय से रागादिक भाव जीव के हैं, शुद्ध निश्चय नय से रागादिक भाव जीव के नहीं हैं, शुद्ध निश्चय नय से, शुद्ध से, शुद्धात्मा है, परन्तु परमशुद्ध निश्चय नय से इन विकल्पों से शून्य है। चिद्चिद्भाव। परमशुद्ध निश्चयनय से मात्र चैतन्य है।

आप चाहो कि मैं द्रव्यसंयम को पालन करने मात्र से आत्मा की राग-द्वेष से रक्षा कर लूँ, मेरे मित्र! न कभी हुई, न हो पायेगी। ये सब आपका ही विषय है। आप चाहो कि मैं राग-द्वेष से अपनी रक्षा कर लूँ, द्रव्यसंयम के पालन करने से, भैया! कभी नहीं हो पायेगी। इन्द्रिय विषय को भोगेन्द्रियों, कामेन्द्रियों दो भागों में विभक्त किया है। रसना, स्पर्शन ये दो कामेन्द्रियाँ घ्राण, चक्षु और कर्ण ये तीन भोगेन्द्रियाँ इन पाँच इन्द्रियों के विषयों से अपने आपको दूर कर लेना द्रव्य से, इतने मात्र से राग-द्वेष की हानि नहीं होती।

'शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से सभी संसारी जीव सिद्ध-समान शुद्ध हैं।' अब माना कि किसी भैया ने इस सूत्र को पढ़ लिया और पढ़ने के उपरान्त कहते हैं कि क्या आपको मालूम नहीं कि कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से मैं सिद्ध के समान शुद्धात्मा हूँ? पर मित्र! तू कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से शुद्धात्मा है, यह जान रहा है, समझ रहा है, परन्तु जब-तक तू जानता रहेगा, समझता रहेगा कि मैं शुद्धात्मा हूँ, तब-तक तू शुद्धात्मा नहीं है। नय का कथन इसलिये है ''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' हे जीव! उस नय को नहीं जानेगा, इसलिये उसे जानना अनिवार्य है। क्यों ? हे गोपिका! दूध में तू आँखें फाड़-फाड़ करके बार-बार देख, तुझे घी कहीं दिखाई देनेवाला नहीं है। परन्तु हे ग्वालिन! तू धन्य है। तू एक ग्वालिन होकरके दूध में घी जान रही है, पर देख नहीं पा रही है और नहीं जानेगी तो निकालेगी कैसे ? शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है गोपिका के लिये, जिसे दुग्ध में घृत दिखाई दे रहा है, ऐसे-ही संसार में अशुद्ध आत्मा के भीतर शुद्धआत्मा प्रकट दिखाई दे रही है। प्रकट शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। प्रकट शब्द का प्रयोग प्रत्यक्षभूत नहीं समझना। उसको प्रकट ऐसे-ही दिख रहा है। अरे भैया! एक किसान खेत की मेड़ पर कलेवा कर रहा था। कलेवा यानि भोजन कर रहा था। सामने हल खड़ा था, बैल जुते हुये थे। बीज बो दिया। एक ग्रास मुँह में रखा और रखने के बाद उसने खेत को देखा। उसमें एक भी अंकुर नहीं है, परन्तु उस किसान को लहलहाती फसल और घर में गेंहूँ के बोरे दिख रहे हैं। दिख रहे हैं कि नहीं? यदि नहीं दिखते होते, तो ये पागलपन थोड़े ही कर पाता कि मुट्ठी के दाने खेतों में फेंकता? बिना दूरदृष्टि न लोक का कार्य बनेगा, न परमार्थ का काम बनेगा। परन्तु द्रव्यदृष्टि से मुट्ठी

के बीजों में आगामी फसल न देख ले तो वह बीज बोयेगा कभी भी नहीं। ऐसे-ही संसार में शुद्धात्मा कोई द्रव्य है, ज्ञानी के प्रकटभूत नहीं है, वो मुट्ठी के अंदर ही बीज है। जब वो मिट्टी में बोयेगा, अंकुर होयेगा, तब फसल उगेगी, तब दाने आयेंगे। इस प्रकार से शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय से द्रव्य-गुण-पर्याय में जो शुद्ध हैं सभी, ये ज्ञान ज्ञेय का विषय है। भैया! एक नय और एक निश्चय, ये दो बातें करें। जो जान रहे हैं, वो तो निश्चयनय से, और जो सिद्ध हो गये हैं, वे निश्चय से।

जब तक देश के विद्वानों ने 'स्वरूप सम्बोधन' ग्रंथ नहीं देखा था तब तक ये आत्मा को अचेतन नहीं मानते थे और जब से स्वरूप सम्बोधन ग्रंथ का अध्ययन किया, तब से देश के विद्वानों ने आत्मा को अचेतन कहना शुरू कर दिया। इस आत्मा में अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व, चेतनत्व, मूर्तत्त्व, अमूर्तत्त्व आदि ये दस त्रिकाल द्रव्य के सामान्य गुण हैं। अभी तक ये रागी लोग आत्मा को अचेतन असद्भूत व्यवहारनय से मानते थे। भैया! आप आत्मा को अचेतन मानते कि नहीं ? यदि इनसे जबरदस्ती कहलवा भी दिया जावे तो ये मालूम कैसे बोलेंगे? आत्मा में बंध अपेक्षा से, कर्मबंध की दृष्टि से, आत्मा पौद्गलिक है, इसलिये अचेतन है।

मेरे मित्र! ये कर्मबंध की अपेक्षा से नहीं पूछ रहा हूँ। स्वभाव से ही आत्मा अचेतन है। ज्ञानी! अस्तित्व गुण है, प्रमेयत्व गुण है, अगुरुलघुत्व गुण है, प्रदेशत्व गुण है, ये सारे-के-सारे गुण जो आत्मा में हैं और जितने अनन्त गुण हैं उन गुणों में भी ये गुण हैं। वे सब अचेतन गुण हैं। चेतन गुण आत्मा में कोई है तो मात्र दो। जब जीव का लक्ष्य बनाते हो तब "**चेतना लक्षणो जीवः**" सर्वार्थसिद्धिकार कहते हैं जो चेतना से युक्त है, वह जीव है। स्यात् ज्ञान-दर्शन। '**उपयोगो लक्षणम्**' चार प्रकार का दर्शन, आठ प्रकार का ज्ञान। भैया! प्रत्येक प्राणी ज्ञानी है। निगोदिया जीव भी ज्ञानी है और बारहवें गुणस्थान में विराजते योगी भी अज्ञानी हैं। अब तो मान लो। स्यात् जब छद्मस्थ क्षायोपशमिक ज्ञान की व्याख्या करेंगे तो अज्ञान भाव बारहवें गुणस्थान तक है। जब ज्ञानत्व की बात करेंगे तो निगोदिया से ज्ञान प्रारंभ होता है। सम्यक्त्व का ज्ञानी कौन? मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है। जब मैं आपको ज्ञानी बोलूँ तब जीवत्व भाव की दृष्टि से मानना। हे जीवद्रव्य! तू ज्ञानी है। ज्ञानी नहीं हो? हो। ज्ञानी! सुन तू अज्ञानी है। इसे जाना किससे ? ज्ञान से। मेरे मित्र! तू ज्ञानी है, कि नहीं ? इसलिये स्यात् ज्ञानी, स्यात् अज्ञानी।

चुम्बक लोहे को पकड़ती है, पर कौन से लोहे को पकड़ती है? जंग सहित, कि जंग रहित! चुम्बक लोहे को खींचती है। यदि वही लोहा प्लास्टिक के बर्तन में रखा हुआ है तो तुम कितना ही शक्तिमान चुम्बक को लाना, प्लास्टिक के अंदर रखे लोहे को चुम्बक कुछ नहीं कर पायेगी। थाली के ऊपर रखे लोहे को नीचे से चुम्बक से घुमाना तो लोहा घूमेगा-घुमाना। कुचालक है तो चुम्बक काम नहीं करती

है उनके साथ। सुचालक है, तभी काम करती है। इसलिये आप भी तत्त्व की गवेषणा के चुम्बक हैं, जो भव्य के लिये ही कार्यकारिणी है, अभव्य के लिये कोई कार्यकारिणी नहीं है। जिसके अन्दर श्रद्धा है, उसको विशुद्धसागर गुरु दिखेंगे और जिसके अन्दर श्रद्धा नहीं है, उसे तो बच्चा ही दिखेगा। ये जिनदेव, ये जिनवाणी मात्र भव्य जीवों के लिये है कल्याणकारक। आचार्य समंतभद्र स्वामी ने 'आप्त मीमांसा' ग्रंथ में स्पष्ट कर दिया है। दो प्रकार के जीव हैं। शुद्ध शक्तिमान, अशुद्ध शक्तिमान। भैया! मस्तिष्क और बुद्धि की प्रज्ञा का दुरुपयोग मत करना और लोक में बहकरके जिनागम की भाषा को मत छोड़ देना। अध्यात्म की भाषा बोलते-बोलते ही हमारा दर्शन प्राचीन कहलाता रहेगा। यदि हमने मात्र आज की भाषा बोलना शुरू कर दी तो हमारे आगम की ऐतिहासिकता समाप्त हो जायेगी। मूर्तियों का भंजक, प्रतिमाओं का भंजक जैसे घातक है, ऐसे-ही सरलता के लिये शब्दों का बदल देना भी घातक ही है। आज समझ में नहीं आ रहा है। ये विशुद्धसागर नहीं बोल रहे हैं, ये अन्दर की वेदना बोल रही है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी क्या लिख रहे हैं? भैया! मैं कभी ये नहीं सोचता हूँ कि इन युवाओं को मेरी बात समझ में आ रही कि नहीं आ रही। मैं तो इतना जरूर सोचता हूँ कि इनको इतना समझ में आ रहा होगा कि समझ में नहीं आ रहा। इसका तात्पर्य क्या हुआ? कम से कम इतना तो सोचेंगे कि मेरे ज्ञान से दूर कोई भाषा भी आगम में है। दो शक्तियाँ हैं जीव में, एक का नाम है शुद्ध शक्ति और दूसरी का नाम है अशुद्ध शक्ति।

जैसे मूँग के अन्दर दो शक्तियाँ हैं, पाक शक्ति, अपाक शक्ति। जिसमें पाक शक्ति है, वो सीझने वाली दाल बन जाती है और जिसमें अपाक शक्ति है, वो ठुर्रा मूँग होती है, वह सीझती नहीं है। ऐसे-ही ठुर्रा मूँग की भाँति, अशुद्ध शक्तिवाले जीव हैं। ठुर्रा मूँग के समान अभव्य जीव हैं। उनको कितनी ही केवली की वाणी मिले, देव-शास्त्र मिलें, वे सीझने वाले नहीं हैं। **शुद्धशक्ति संपन्न जीव को जैसे-ही देव-शास्त्र-गुरु का नियोग मिलता है, उनकी शुद्धशक्ति प्रकट हो जाती है।**

हे मुनिश्वर! जिसको तुम अनादि से जान रहे थे, पहचान रहे थे, अब उसका निर्णय करने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है। शब्द से राग हुआ, शब्द से द्वेष हुआ, ये बहुत काल से जान कर रखा है; पर ध्रुव सत्य है कि ये तुम्हारा अज्ञानभाव था। **पर से मुझे राग, पर से मुझे द्वेष, पर से मुझे कष्ट, पर से मुझे पीड़ा, ये चिन्तन मेरा चलता रहेगा, तो मैं कभी भी ध्रुवधाम भगवान्-आत्मा को प्रकट नहीं कर सकता।** मैं पर निमित्त हो अपने ही उपादान का कर्ता बनता रहूँगा तो दृष्टि दो पर टिकी रहेगी और निमित्तों पर टिकी दृष्टि कभी भी उपादान के उपेय को प्राप्त नहीं कर सकेगी। साम्य भाव, समत्व भाव, उपशम भाव नेत्रों को देखने में ये तीन काल में नहीं आयेगा। आज ये मैं कह रहा हूँ कि अगर आप केवली के पादमूल में भी पहुँचोगे तो मेरा विश्वास है कि वे ऐसा ही कहेंगे।

श्रमण, श्रमणत्व की रक्षा निज के उपादान की प्रबुद्धता पर ही कर पायेंगे। मैं नहीं कह रहा हूँ आज कि अमुक व्यक्ति में ममकार बुद्धि है, उसे आप देखो। जब द्रव्यानुयोग से तुम भी दिख नहीं रहे हो, करणानुयोग से भी मुझे नजर नहीं आओगे। क्योंकि आँखों का, कानों का विषय मुनि का भिन्न निराला है।

भैया! यही सुनके समझना कि एक घंटे में किसी को मुनिराज बना देता हूँ भैया! अब आप कोई सागर मुनि बन गये। यहाँ के इस ज्ञानी ने आप पर पत्थर फेंक कर मार दिया। हे मुनिराज! उस काल में आपका सोच क्या होगा? कुछ लोग आपके अनन्य भक्त थे, मस्तक से रक्त बह रहा था। फिर उन्होंने पूछा, स्वामी! आप बतायें कि ये किसने किया? आप महाव्रती हो और आप बता देते हो। मित्र! आप चरणानुयोग से महाव्रती नहीं बचे। आपका तो अहिंसा महाव्रत था। देह में तुझे पीड़ा हो रही है और तू पीड़ा का वेदन कर रहा है। तुझे मालूम है कि कितनी पीड़ा होती है। तू उस पीड़ा को सहता हुआ दूसरे को पीड़ा क्यों पहुँचाता है? हे जीव! मैं करणानुयोग से पूछता हूँ कि मुनिराज है, तेरे पत्थर लगा सिर में है और तेरा भक्त पूछ रहा है कि स्वामी, बताओ अब तू कहता है कि मैंने कुछ नहीं किया और उसने मेरे साथ ऐसा कर दिया है। तब हे मुनि मुद्रा धारी! हम आपको नमोस्तु नहीं कर पायेंगे। क्योंकि मैंने मात्र आपको चरणानुयोग से ही मुनि नहीं देखा, मैं दर्शकीय दृष्टि से आपको मुनि देख रहा था मैं आपको जैनदर्शन का मुनि देख रहा था।

जो जैनदर्शन में जीने वाला होगा, वह कहेगा कि मैं प्रत्यक्ष प्रमाण की बात नहीं मानता हूँ, मैं परोक्ष प्रमाण की बात मानता हूँ। मानते कि नहीं? परोक्ष प्रमाण को नहीं मानते हो तो पुनर्भव को नहीं मानते हो, कर्मबंध की प्रक्रिया को भी नहीं मानते हो और एक भी प्रक्रिया को भी मानते हो तो तुम प्रत्यक्ष में उसके द्वारा पत्थर को मारने की प्रक्रिया को देख रहे हो। कि जो पत्थर लगा हुआ है, वह कारण नहीं है, मित्र! वो कार्य है। जो तुम पूर्व में कर चुके हो, वह कारण था, वही कार्यभूत फलित हुआ है। इसे नहीं मानते हो तो आप चार्वाक हो। अब बताइये भैया! उस दिन तो आपने पुलिस की खोज करवाई थी। यदि आत्मदृष्टि करके तू मुनि बनने की खोज करने चला जाता तो अच्छा था। तटस्थ होकर उन सब को छोड़। तू मुनिपने की खोज करना और अन्य संघों की थोड़ी-सी निंदा भी कर लेना। गहरी बात तो अभी आपको पता चलेगी। मेरे मित्र बन रहे और मेरे सामने दूसरों की निंदा कर रहे, फिर में उगल दूँगा सब बातें आपको। पर आप डायरी में नोट कर लेना कि सच्चा मुनि कौन था? ये भी मैं समझ रहा हूँ कि ये व्याख्या जो चल रही है, इसको व्यवहार में लाने के लिये आपको बहुत श्रम चाहिये। सम्यक्त्व तभी प्रकट होगा, भले ही चतुर्थ गुणस्थान में आयेगा। चतुर्थ गुणस्थान में तभी पहुँच पायेगा जब इसके भीतर से परम श्रद्धा जागेगी कि मेरे उपादान का कोई कर्ता न है, न होगा। त्रैकालिक आस्था होगी। मुनि की तो सारी व्याख्या बहुत ऊँची है। चतुर्थ गुणस्थान में जो सम्यग्दृष्टि होगा उसकी श्रद्धा भी दृढ़ होगी।

मानकषाय के काल में जीव राग में मरना पसन्द करता है कापोत लेश्या में, इसलिये बहिरंग अनेक बिन्दुओं को देखकरके अन्तरंग की पहिचान नहीं की जा सकती। जिनालय में मान कषाय के राग में जीव चीं नहीं करेगा। विश्वास रखो भैया! ऐसी तत्त्व की व्याख्या न सुनोगे, न करोगे, न समझोगे। मेरे मित्र! अब कह देना अच्छे से, कि जीवन भर पिच्छी कमण्डलु का वजन ढो पायेंगे, लेकिन पुनः आनन्द नहीं ले पायेंगे जो मुनि का आनन्द है। वह नहीं ले पायेंगे, तो फिर सामाजिक प्रपंचों में जीवन नष्ट कर देंगे। सो दुर्लभ है मुनि मुद्रा मुनिराजो। पं. दरबारीलाल जी कोठिया का नाम आप लोगों ने सुना है। अस्सी वर्ष के वृद्ध विद्वान् हम लोग उनसे 'न्याय दीपिका' पढ़ते थे। वे बेचारे धीरे-धीरे झुककरके धीरे से कहते थे कि महाराज! पैर छू लेने दो। लगता था कि ये इस जीव का परिणाम देखो। जीव समाधि की ओर है।

''**अस्मिन भूतले घटम् नास्ति**'' इस भूतल पर घट नहीं है, इसका मतलब घट तो है, पर भूतल पर नहीं है। तो भूतल के घट को देख रहे थे। उत्तर भारत में उस समय गुरु नहीं दिख रहे थे। दक्षिण में? महावीर स्वामी से लेकर आज तक ये भूमि निर्ग्रन्थों से रहित हुई नहीं। मध्यकाल में निर्ग्रन्थता में मृदुलता आ गई थी, पर भेष जीवन्त रहा है। उन जीवों से पूछो, कितनी आस्था थी निर्ग्रन्थ योगियों के प्रति। उन जीवों ने हमेशा ही अभाव में भी सद्भाव देखकरके कर्म की निर्जरा कर ली, पर ये जीव सद्भाव में अभाव को देख रहे हैं, वे बंध-ही-बंध कर रहे हैं। भैया! अभाव में सद्भाव देखना बहुत सरल है, पर सद्भाव को देख पाना बहुत कठिन है। आज क्या हो रहा है? सद्भाव में अभाव देखने वाले बहुत लोग हैं। **अभाव में सद्भाव का आनन्द लूटने वाले बड़े खुश होते हैं, पर सद्भाव में सद्भाव का आनन्द लूटना बहुत पुरुषार्थ-साध्य है।** बाहर के पुरुषार्थ सब यहाँ छोड़ दो। ये भीतर के पुरुषार्थ की व्याख्या है। इसलिये टीकाकार जयसेन स्वामी कह रहे हैं शब्दादि अचेतन इन्द्रिय-विषय हैं। मेरे रागादि निश्चय से कार्यकारी नहीं होते हैं। इस बात को ज्ञानी मुनिराजों को घोंट-घोंट कर, अपने अंग-अंग में, प्रदेश-प्रदेश में भर लेना चाहिये, अन्यथा सम्यक्त्व की रक्षा असम्भव है। मेरा पसीना गिर गया तो मैं खून कर दूँगा। ये भाषा श्रमणों की नहीं है। इस भाषा पर नियंत्रण होना चाहिये। कभी ऐसी अज्ञानता के भाव मत करना कि मेरे गुरु का शरीर और मेरा शरीर दोनों अलग लगते हैं, लेकिन हम दोनों एक आत्मा हैं। ये मिथ्या कब से सीख गये ? भैया! ये भक्ति का विवेक है, कि अज्ञानता का विवेक है?

'**स्वतंत्रतः कर्ता:**' ये जैनेन्द्र व्याकरण का सूत्र है। प्रत्येक कर्ता स्वतंत्र है। जो परमाणु संधि को प्राप्त हुआ है, भले ही स्कन्ध रूप में है, फिर भी परमाणु-परमाणु भी स्वतंत्र है। मुनि बनकर मात्र बैठे रहना नहीं है। मुनि बनकर भीतर में विहार करना चाहिये। बाहर का विहार देशान्तर-विदेशान्तर और

भीतर का विहार निज के अन्दर घूमते रहो। दोनों प्रकार से क्रिया करो। शरीर से चलते-चलते तो लोग देख भी लेते हैं कि महाराजजी जा रहे हैं पर ज्ञानी कभी शुभोपयोग में जा रहे हो, कभी शुद्धोपयोग में जा रहे हो। ये विहार चल रहा है निज का निज में ही। अन्य द्रव्य में बहिरंग द्रव्य में निमित्तभूत तो है, परभूत तो है, पर कुम्भकार घट का उपादान कर्त्ता नहीं है। जैसे मिट्टी घटरूप परिणमित हुई है, वैसे कुम्भकार घटरूप परिणमित नहीं हुआ। उपादान दृष्टि से तो मिट्टी ही घट बन गई है, मिट्टी ने ही घट को बनाया है। परन्तु उपादान दृष्टि पने से कुम्भकार ने घट को नहीं बनाया । वह कैसे ? चेतन का अचेतन, अचेतन का चेतन अथवा चेतनाचेतन द्रव्यों का विनाश नहीं होता और एक दूसरे के गुण का विनाश भी नहीं है। मिट्टी ही घट की उत्पत्ति में कर्ता है अपने उपादान कारण से। रूप से तो होता है घट। कुम्भकार बहिंरग निमित्त से घट उत्पन्न नहीं होता। कैसे ?

''**उपादान कारण सदृशं कार्य भवतीति**'' उपादान के सदृश्य ही कार्य होता है। कार्य रूप उपादान ही परिणत होता है। भिन्न कार्य रूप परिणमन नहीं करते, परंतु कारण का विनाश ही कार्य है। इस शब्द पर भी ध्यान रखना। इसे मानते हो न? कठिन हो गया निमित्त। उपादान आत्मभूत होता है। पूर्व क्षण ही उत्तर क्षण का कारण है। ज्ञानियो। लोई मिटे बिना रोटी बनेगी क्या? उपादान अंतरंग, आत्मभूत तादात्म जो कारण है, उसका विनाश ही कार्य है। जब तक कारण का परिणमन नहीं होगा, तब तक कार्य परिणत नहीं होगा। नहीं-तो लोई जैसे मिटती है वैसे बेलन मिट गया तो रोटी नहीं मिलेगी। भैयाजी! समझने के लिये बहुत समय चाहिये। तनिक में गुस्सा आ जाता है। ''**यस्मात्। तेन किं सिद्धं?**'' इससे क्या सिद्ध होता है? ''**यद्यपि पंचेन्द्रियविषयरूपेण शब्दादीनां बहिरंगनिमित्त भूतेनाज्ञानिजीवस्य रागादयो जायन्ते तथापि जीवस्वरूपा एव चेतना**''

ये जयसेन स्वामी की उभयात्मक शैली है। कोई भी भ्रम में न पड़े इसलिये निश्चय, व्यवहार दोनों को एकसाथ कह रहे हैं। यद्यपि पाँच इन्द्रिय के विषय शब्दादि निमित्तभूत अज्ञानी जीवों के राग उत्पन्न करते हैं, फिर भी जीव का स्वरूप चेतना है। ''**न पुनः शब्दादिरूपा अचेतना भवंतीति भावार्थः**'' वह शब्दादि रूप अचेतन नहीं होता, ऐसा भावार्थ समझना। चित्त की स्थिरता में रागादि को नहीं जानता और वो क्या कर रहा है ? भैया! मुझे सामायिक करना है, बाजे बज रहे हैं, मैं कैसे करूँ? प्रारम्भिक शिष्य उसको पता नहीं है कि बाजों से चित्त मेरा भ्रमित होता है कि चित्त की चंचलता से चित्त मेरा भ्रमित होता है? क्या समझ रहा है? इन बाजों से ही चित्त मेरा भ्रमित हो रहा है, परद्रव्यों से में भ्रमित हो रहा हूँ। पर ध्रुव सत्य है कि ये तो तेरे मैं प्रवेश किये नहीं, पर तू अपने में ही भ्रमित हो रहा है। जो शिष्य इस बात को नहीं जानता है, उसके लिये ये सब समझा रहे हैं। बहिरंग शब्दादि विषय जो रागादि के निमित्त हैं, वो घात करते हैं ऐसा ''**निर्विकल्प समाधि लक्षण भेद ज्ञानाभावाच्चिंतयति**'' मेरे करुण

भेद ज्ञान के अभाव से। जो ऐसी निर्विकल्प समाधि से अनभिज्ञ है, जो शिष्य यह कह रहा है कि पर के निमित्त से मेरे भाव बदल रहे हैं, उन्हीं में अपने भावों को लगा रहा हो, उसको समझा रहे हैं आचार्य महाराज कि हे जीव! व्यवहार से जो तू कथन कर रहा है, परन्तु कौन-से व्यवहार से? सद्भूत व्यवहार नय से, कि असद्भूत व्यवहार नय से? असद्भूत व्यवहार नय से। सद्भूत व्यवहार नय से भी पर के शब्दादि मेरे कष्ट को, मेरे चिन्तन को, मेरे विचारों को नष्ट करने में कारण नहीं हैं।

आत्मस्वभावं, परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

अज्ञानी की प्रवृत्ति

गाथा - *णिंदिदसंथुदवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि।*
ताणि सुणिदूण रूसदि तूसदि य पुणो अहं भणिदो ।।373।।

संस्कृत छाया - *निंदित संस्तुतवचनानि पुद्गलाः परिणमंति बहुकानि।*
तानि श्रुत्वा रुष्यति तुष्यति च पुनरहं भणितः।।

गाथार्थ - (**बहुकानि**) बहुत प्रकार के (**निन्दित-संस्तुतवचनानि**) निंदा के और स्तुति के वचनरूप में (**पुद्गलः**) पुद्गल (**परिणमंति**) परिणमित होते हैं (**तानि श्रुत्वा पुनः**) उन्हें सुनकर अज्ञानी जीव (**अहं भणितः**) मुझसे कहा है ऐसा मानकर (**रुष्यति तुष्यति च**) रोष और संतोष करता है।

जीव पुद्गल भिन्न

गाथा- *पोग्गल दव्वं सद्दत्तपरिणदं तस्स जदि गुणो अण्णो।*
तम्हा ण तुमं भणिदो किंचि वि किं रूससि अबुद्धो ।।374।।

संस्कृत छाया - *पुद्गलद्रव्यं शब्दत्वपरिणतं तस्य यदि गणोऽन्यः।*
तस्मान्न त्वं भणितः किंचिदपि किं रुष्यस्य बुद्धः।।

गाथार्थ - (**पुद्गल द्रव्यं**) पुद्गलद्रव्य (**शब्दत्वपरिणतं**) शब्दरूप से परिणमित हुआ है, (**तस्य गुणः**) उसका गुण (**यदि अन्यः**) यदि मुझसे अन्य है (**तस्मात्**) तो (**त्वं किंचित् अपि भणितः**) तुझको कुछ भी नहीं कहा है (**अबुद्धः**) तू अज्ञानी होता हुआ (**किं रुष्यसि**) क्यों रोष करता है?

समय देशना

भव्य बुन्धुओ! आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज 'समयसार' जी में ध्रुवज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं।

सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार में आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि, हे जीव! इस अन्ध दृष्टि का विसर्जन कर कि मैंने परद्रव्यों को किया और पर द्रव्यों ने मुझे किया है। पर के द्रव्य में, पर के गुण में, पर पर्याय में भिन्न कोई परिणमन कराने में कारण नहीं है।

हे मुमुक्षु! परमार्थ दृष्टि से देखना, कालद्रव्य किसी भी द्रव्य का परिणमन नहीं कराता। आप यह कहो कि कालद्रव्य से परिणमन हो रहा है, परन्तु कालद्रव्य तो अपने स्वभाव में ही परिणमनभूत है। निश्चयकाल का कार्य वर्तना है।

''वर्तना-परिणाम-क्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य'' (त.सू./22/5)

ज्ञानियो! जो काल का कार्य है, स्व-स्वभाव में ही वर्तना है, स्व-स्वभाव में ही परिणमन है। व्यवहार से कालद्रव्य द्वारा मात्र जान रहे हैं कि यह छोटा है, यह बड़ा है, इसका इतना समय हो गया है। ज्ञानियो! ज्ञान कर रहे हो, लेकिन काल का परिणमन कोई करा नहीं रहा है। काल का उत्पाद-व्यय कालभूत है और जीव का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य जीवरूप ही है।

अज्ञानी जीव कह देता है कि अमुक के निमित्त से ऐसा हो गया, परन्तु जो निमित्त हैं, वे सब अपने में ही परिणमन कर रहे हैं। एक भी निमित्त दूसरे में परिणमन नहीं करता है। क्या तेरे अंदर द्वेष नहीं है? क्या वह राग-द्वेष तेरा विभाव-भाव नहीं है? हे मुमुक्षु! यह तेरा विभाव-भाव न होकर यदि कर्म का हो गया, तो कर्म ही करेगा और कर्म ही भोगेगा।

हे ज्ञानियो! जगत् में क्या लीला चल रही है? अज्ञानी जीवों की संख्या अधिक है ज्ञानी अल्प हैं। ओ हो! क्या एक सरसों का दाना तेरे लिये सुख का कारण होगा? स्वर्णमय या रजतमय नाग बनाकर नदी में डुबो दिया, क्या यह तेरे ग्रह को उतारेगा? ज्ञानी! तुझे संकल्पी हिंसा का दोष लगेगा। **मित्र! जब आटे के मुर्गे को चढ़ाने पर अनेक भवों तक कोल्हू में जाना पड़ गया, तब आप नाग बनाकर बुद्धिपूर्वक नदी में छोड़ रहे हो, पानी में डुबो रहे हो, इसका उद्देश्य क्या है? हिंसा। संकल्पी हिंसा है।** ज्ञानियो! संकल्प के भगवान् की वंदना करके आप निर्बन्ध हो सकते हो।

हे मुमुक्षु! तत्त्व को सुनना, समझना और अज्ञानता में डूब जाना, महानिन्दक है। यहाँ विद्वत्ता ही अविद्वत्ता है। समयसार जी ग्रंथ में जिस स्वरूप की व्याख्या है वह लोक में दृष्टिगोचर होती नहीं है और लोक के बाहर स्वरूप है नहीं।

ज्ञानियो ! आपको चिंता सता रही है कि टेलीविजन के युग में बच्चे बिगड़ रहे हैं, **हे ज्ञानी! निमित्त दृष्टि से जब अचेतन-चित्रों को देखकर तुम्हारी सन्तान के चित्त विकृत हो रहे हैं, तो फिर अचेतन जिन बिम्बों को निहारकर चित्त पवित्र भी हो सकते हैं।** यह स्थापना-निक्षेप से अरिहन्त की प्रतिमा है, उपचार है। प्रतिमा सत्यार्थ नहीं है, परंतु सत्यार्थ हुए बिना उपचार किसी में होता नहीं है।

हे मुमुक्षु! महावीर हुए थे, इसलिये जिनप्रतिमा महावीर का उपचार है। यदि महावीर स्वामी नहीं होते, तो उपचार भी नहीं होता। मुख्यार्थ के अभाव में कभी उपचार नहीं होता और उपचार कभी मुख्यार्थ नहीं होता।

अन्येष्वनन्यशब्दोऽयं संवृतिर्न मृषा कथम्।
मुख्यार्थः संवृतिर्नास्ति बिना मुख्यान्न संवृतिः।।(44/आ.मी.)

मुमुक्षु विद्वानो! समाज की भलाई की दृष्टि है तो विकल्प छोड़कर स्वाध्याय की परम्परा को वृद्धिमान करो। सत्यार्थ आगम का पठन-पाठन किया जाये। **मूल आचार्यों के जो ग्रंथ हैं उनका अध्ययन कराया जाये तो समाज का बिखराव ही समाप्त हो जावे। स्वाध्याय की प्रवृत्ति से मिथ्यात्व समाप्त होने की संभावना है। मूल ग्रंथों को पढ़ाइये, अन्यथा अल्पज्ञों के साहित्य से नवीन मिथ्यात्व अवश्य प्रारंभ हो जायेगा।** नवीन मिथ्यात्व से तात्पर्य समझो कि मिथ्यात्व ऐसा प्रारंभ हुआ है कि मन की मानो। एक पक्ष को मानो, एक पक्ष को मत मानो। एक संघ को स्वीकारो, दूसरे संघ के साधुओं को मत मानो। ज्ञानी! एक भिन्न प्रकार का मिथ्यात्व और खड़ा हो जायेगा। समझो, ज्ञानियो! समय रहते संभालो। निराकरण के लिये आपको मूल ग्रंथों के स्वाध्याय की आवश्यकता है।

हे मुमुक्षुओ! आपकी पीड़ा तभी समाप्त हो सकती है जब आचार्यप्रणीत मूल ग्रंथों का व्याख्यान करोगे। हे ज्ञानी! यदि भगवान् महावीर स्वामी की पाषाण की प्रतिमा उपचार से पूज्य हो सकती है, इससे आपको सर्वज्ञता की सिद्धि हो सकती है, तो विश्वास रखना, कि पानी में बहाने पर हिंसा की सिद्धि भी हो सकती है।

हे मित्र! किसी निमित्त से मिट्टी की मूर्ति बनाकर भी यदि तुमने नष्ट की है, तो नियम से हिंसा का दोष लगेगा। ज्ञानियो! अपने पूर्वजों की याद करो, जिस चटाई पर कोई चित्र बना होता था उस पर बैठते नहीं थे। स्वाध्याय के समय सफेदी बिछाने की परम्परा क्यों चली आ रही है? क्योंकि हम चित्रों पर बैठते नहीं हैं, हम अहिंसक हैं। चटाई पर किसी जीव का चित्र, अचेतनकृत होने पर भी यदि उन पर पैर रखोगे तो हिंसा का ही दोष लगेगा।

ज्ञानियो! ध्यान दो, जो मिठाइयाँ बन रही हैं, उनमें नाना प्रकार के आकार दिये जा रहे हैं। बुन्देलखण्ड में कहते हैं गडिया-गुल्ला, हाथी-घोड़ा। मिठाई में कहीं बतक, चिड़िया, ऊँट, घोड़ादि के आकार बनाकर बच्चों को पकड़ा दिया कि लो बेटा! मिठाई खा लो। बालक माँ से कहता है कि देखो माँ! मैं ऊँट खा रहा हूँ।

हे माँ! सन्तान के मुख से ऊँट खाना निकल रहा है, तो उसने ऊँट खाने का ही संकल्प

किया है। उसको वही हिंसा का दोष लगेगा जो ऊँट खाने वाले को लगेगा। जब मिठाई खाने में संकल्पी हिंसा का दोष लग सकता है, तो ग्रहादि के निवारण के राग में, कालसर्प उतारने के राग में यदि तुम स्वर्णमय या अन्य धातुमय नागों को पानी में छोड़ रहे हो, निश्चित ही तुमको संकल्पी हिंसा का दोष लगेगा।

हे साधको! अहिंसा का भेष है, हाथ में पिच्छी-कमण्डलु है और भावहिंसा का त्याग नहीं हुआ है। **कृत्रिम आकार के विघटन में हिंसा है, तो प्राण घात में कितनी हिंसा होगी ? यदि हिंसक कार्यों में किंचित् भी अनुमोदना है, तो तुम्हारा श्रमणपना/साधुपना समाप्त है। हे साधु! किसी की पंचपरमेष्ठी में आस्था है और तुम्हारी विपरीत प्रवृत्ति से यदि किसी जीव की आस्था डगमग हो गई, तो तुम घोर हिंसक हो, क्योंकि तुम्हारे निमित्त से उसकी दुर्गति हो रही है।** एक दृष्टि, स्यात्।

हे ज्ञानियो! आकृतियों को दोष मत दो। एक युवक कहता है कि- यह आकृति नहीं होती तो मेरे विकारी भाव क्यों बनते? पर को दोष दे रहा है। आकृति तो आकृति में ही है, आकृति ने आत्मा में प्रवेश नहीं किया है। तेरी आत्मा की विभाव-दशा ने परिणमन किया है। आकृति को दोष मत दो, अपने निज के भावों को दोष दो। निमित्तों को दोष मत दो।

तू विकारी भाव से कन्या को निहार रहा है। मित्र! उस कन्या को क्या पता कि तू उसे निहार रहा है। उसे पता ही नहीं था कि तू क्या कर रहा है ? कन्या को दोष मत दो, अपनी काम-दृष्टि (खोटे कर्म) को दोष दो। उस भूमितल से तो साधु भी निकल गये थे, उनके भाव विकृत क्यों नहीं हुए? ज्ञानियो! समयसार की समीचीनता को समझना बहुत आवश्यक है, अन्यथा निमित्तों को दोष देकर उपादान को नरक में ले जाओगे।

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयंति ये तु ते।
उत्तरंति न हि मोह वाहिनीं शुद्धबोधविधुरांध बुद्धयः।। कलश/221।।

हे मुमुक्षु! निमित्त ने सबकुछ किया, परद्रव्य ने राग उत्पन्न कराया, तेरे में कुछ नहीं था, उससे आचार्य-भगवन् अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि- ये तू "**राग-जन्मनि परद्रव्यम् एव निमित्ततां कलयन्ति**" अपना कुछ भी कारणत्व नहीं मानते हैं। राग को जन्म निमित्त देता है, परद्रव्य राग कराते हैं। "**उत्तरंति न हि मोहवाहिनीं**" ऐसी परिणति है, सोच है, तो अज्ञानी मोहरूपी नदी को पार नहीं कर पायेगा अर्थात् मोह रूपी नदी से निकलने वाला नहीं है। "**ते शुद्धबोध विधुर अन्ध बुद्धयः**" वे जिनकी बुद्धिशुद्ध ज्ञान से रहित, अंध है, आत्मज्ञान से शून्य है, **मोह- वाहिनीं न हि उत्तरन्ति** वह मोह-

नदी से पार नहीं हो सकता है।

हे मुमुक्षु! भोगों को भोग रहा है, अशुभ कर्म कर रहा है और दोष परनिमित्तों को दे रहा है, क्या निमित्तों को दोष देकर अपने राग-द्वेष की हानि कर सकोगे ? तुम निमित्तों को दोष देकर अपने दोषों में संतुष्ट होना चाह रहे हो। जो निमित्तों को दोष दे रहा हो, वह अपने दोषों में संतुष्ट हो रहा है। अपने आपको निर्दोष साबित कर रहा है और निमित्तों को दोषी ठहरा रहा है।

हेज्ञानी! निमित्त दोषी नहीं है, दोषी तेरा निज का उपादान ही है। यह द्रव्यदृष्टि की व्याख्या है, परन्तु हो यही रहा है कि धर्मात्मा भी एक दूसरे को दोषी मान रहे हैं। ज्ञानी! जिसे आप धर्म कह रहे हो, वह धर्म नहीं है, धर्म तो अभी बहुत दूर है।

अहो मुमुक्षु! कोई दीपक को रखकर धर्म मानता है, कोई दीपक को हटवाकर धर्म मान रहा है। एक रखने के राग में लिप्त है और दूसरा फिकवाने के द्वेष में लिप्त है, परंतु यथार्थ में दोनों ही धर्म से दूर हैं। अज्ञानी पूजन की पद्धति के राग- द्वेष में पड़कर अपने अहं की पुष्टि में समाज को खण्डित करके स्व पर का ही घात कर रहे हैं। एकांत के आग्रह से दूषित चित्त वाले अज्ञानियों से आचार्यभगवन् समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं कि हे नाथ! एकांतवादियों के यहाँ पर, स्व और पर के शत्रुओं के यहाँ पर शुभ-अशुभ कर्म, परलोक मोक्षादि कुछ भी नहीं बन सकता है। एकांतग्रह पुरुष अपने भी शत्रु हैं और दूसरों के भी शत्रु हैं।

कुशलाकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकांतग्रहरक्तेषु नाथ स्व-पर वैरिषु।।(आ.मी./8)

हे मित्र! भूत-पिशाच, नवग्रहों के भगाने के राग में तू दुनियाँ के देवताओं को पूज रहा है। हमारे तीर्थंकरों को ग्रहों पर स्थापित कर रहा है। परन्तु नहीं सोच पा रहा कि, सबसे बड़ा ग्रह कौन-सा ? ज्ञानी! परिग्रह ही सबसे बड़ा ग्रह है। तेरा परिग्रह उतर जाये तो तेरे सारे ग्रह उतर जायें।

हे ज्ञानी! परिग्रह का उतर जाना इतना कठिन नहीं है जितना 'पंथ' का कुग्रह है। कपड़े उतार लेना सरल है, परन्तु पंथ का राग उतार पाना अत्यंत दुष्कर है। जो जीव पंचमकाल में मनुष्य बनने आया है, वह इसलिये नहीं आया है कि उसने कपड़े नहीं उतारे। यह धारना मिथ्या भ्रांति है। ज्ञानियो! वस्त्रों को तो अनेक बार उतारा, परन्तु यथार्थ यह है कि वस्त्र, वासनाओं को उतारने के साथ जो पंथ की वासनाओं का राग था उसको नहीं उतार पाये, इसलिये पंचमकाल में भटकना पड़ रहा है।

हे मुमुक्षु! आचार्यभगवन् समन्तभद्र स्वामी को लिखना पड़ गया देवागम स्तोत्र में कि "**एकांत**

ग्रह रक्तेषु'' एकांत ग्रह में रत है, ''**स्व पर वैरिषु**'' ऐसा नर स्वयं एवं दूसरों के भी बैरी हैं, शत्रु हैं।

आचार्यभगवन् भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति करते हुए कह रहे हैं कि- हे स्वामी! वे स्व-पर बैरी हैं जो स्वयं मिथ्या में चले गये और दुनियाँ को छल रहे हैं, मिथ्यात्व में डाल रहे हैं। हे ज्ञानी! जितना आगम में है, उतना ही स्वतंत्र चिन्तन का विषय बनाना। आगम में कहा है, उतना ही चर्या का विषय बनाना। पर की पुष्टि में आगम का विनाश नहीं करना।

हे मुमुक्षु! पर की पुष्टि में आगम के शब्दों का विपर्यास करके पर का पोषण तो कर पाओगे, परन्तु फिर भी पोषण कर नहीं पाओगे। मित्र! आप अपने बेटे को दुग्ध पिलाने के कर्ता हो तो सकते हो, परन्तु उस बेटे के मुख में गया दूध कितनी धातुरूप परिणत होगा ? इसका तू कर्ता नहीं है। ज्ञानी! उसके शरीर की क्षमता होगी तो धातु बनेगी, अन्यथा दूध की गरिष्ठता उसे रुग्ण कर देगी।

ज्ञानियो! तटस्थ रहकर 'समयसार' सुनना और स्व-आत्मा पर लक्ष्य रखना। हे मुमुक्षु! स्वार्थी जीवों के स्वार्थ की पुष्टि में लगना भी हिंसा है। कषाय भी हिंसा है।

यस्मात्कषायः सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानम्।
पश्चाज्जायेत न वा हिंसा प्राण्यन्तराणं तु।। (पु.सि./47)

आचार्यभगवन् अमृतचन्द्र स्वामी 'पुरुषार्थ सिद्धि उपाय' ग्रंथ में कह रहे हैं कि, जब जीव कषाय के आवेग में आता है, तब वह आत्मा को आत्मा से ही घातता है। उस समय वह जीव हिंसक ही है।

पण्डितजी!आप कहें कि मैं आपका इतना कार्य कर दूँगा और आप मेरी बात मान लो। यहाँ दो प्रकार की हिंसा हो गई, एक तो मैंने उसके मान की पुष्टि करायी, उसकी हत्या की और अपने मान के लिये किया, सो निज की हत्या की। आगम को यदि विपरीत कहा और विपरीत कथन किया, सो जिनागम की हत्या की। ऐसी तीन प्रकार की हत्या करने वाला हत्यारा जीव पवित्र कैसे हो सकता है?

हे मुमुक्षु! अपने और दूसरों की मान पुष्टि के लिये आगम के बलिदान का जिनका भाव चल रहा है, उस जीव की दुर्गति नियत है। मित्र! कम अज्ञानी बनकर रहना ठीक है, परन्तु श्रद्धाविहीन होकर नहीं जीना। परन्तु एकांत से तुम ऐसा नहीं कह सकते हो कि, मुझे किसी ने भ्रमित किया है। हे ज्ञानी! तेरे भ्रमित होने के भाव थे इसलिये वह तुम्हें भ्रमित कर सका।

ज्ञानी! स्फटिक मणि भी नीली-पीली विविध रूप दिखती है। जैसा पुष्प सामने आता है, वैसी स्फटिक हो जाती है। आप कहो कि, वह तो पुष्प के निमित्त से हुई, पुष्प न होता तो क्यों होती ? आप ठीक कह रहे हो, लेकिन यह एकांतदृष्टि है। हे ज्ञानी! यदि पुष्प ही स्फटिक को नीला-पीला कर रहा

है, तो उस पुष्प को वृक्ष के सामने रख दो, तब देखना क्या होता है? ज्ञानियो! पुष्प का अपना धर्म है, परन्तु स्फटिक में तद्रूप परिणमित होने की योग्यता न होती तो पुष्प क्या करता ?

हे मित्र! ऐसे-ही मिथ्या निमित्तों ने तुझे प्रभावित किया है, यहाँ निमित्तों को दोष मत दो, तेरा उपादान मिथ्याभूत हुआ है। निमित्त मात्र सहकारी नहीं होगा। मुमुक्षु! यह भी सत्य है कि निमित्तों को लेकर भी संयम बढ़ा है, मिथ्यात्व बढ़ा है। विश्वास रखना, आज जो एकांत से संसार में भटक चल रही है, वह निमित्ताधीन दृष्टि के कारण चल रही है। निमित्त जिसके लिये निमित्तभूत था, उतना विषय तो जाना नहीं और हमने निमित्तों को सर्वस्व कर्ता मान लिया। ज्ञानियो! निमित्त तो निमित्तभूत कर्ता है, निमित्त उपादानभूत कर्ता नहीं है। अज्ञानी जीव निमित्त को उपादानभूत कर्ता मान बैठता है, उसका परिणाम है कि एक क्षण आपको लगता है कि मैंने तो कुछ किया ही नहीं है, निमित्त ने ही किया है।

हे ज्ञानी! जब काम बनने लगता है तो कहता है कि मैंने किया है। जब काम बिगड़ने लगता है, तो लोग ईश्वर को भी नहीं छोड़ते हैं। बुरा हो जाये तो कहता है कि क्या मेरा ही घर मिला था भगवान् को? मेरे ही घर में सब कुछ होना था? भगवान् को मेरे पर करुणा नहीं आई। धिक्कार हो तेरी पुण्य की क्षीणता को, तू भगवान् को अपने दुःख का कर्ता बना रहा है। ज्ञानी! भगवान् तेरे सुख-दुःख के कर्ता नहीं हैं। मेरे **मित्र! भूख लगे तो भले ही दूसरे का भोजन कर लेना, परन्तु भूलकर भी अर्हन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरु की वंदना- अर्चना में दूसरे के द्रव्य का उपयोग नहीं करना।** ज्ञानी! यह समयसार है। जितना गहरा द्रव्यानुयोग है उतना ही इसमें चरणानुयोग भरा है।

ज्ञानी! आगे आचार्यमहाराज अलौकिक विषय प्रारंभ कर रहे हैं। यह विषय समझ में आ गया तो संकल्प-विकल्प समाप्त हो जायेंगे। आज सबने महाराज को श्रीफल चढ़ाया, परन्तु मेरा नाम क्यों नहीं लिया ? मेरे मित्र! तेरी गुरुचरणों में श्रद्धा थी तो नमन कर लेता।

'मुझे नहीं बुलाया', वह शब्द पौद्गलिक है। शब्द चेतनभूत परिवर्तित होता नहीं, चेतन शब्दरूप परिणत होता नहीं, तो फिर तेरा यहाँ अपमान कहाँ हुआ ? तेरी निन्दा कहाँ हो रही है? तुझे बुलाया भी जाता है श्रीफल चढ़ाने, तो तेरी प्रशंसा भी कहाँ हुई ? ध्रुव सत्य समझना। यहाँ किसी व्यक्ति को नहीं लाना। परम सत्य समझना। हे ज्ञानी! सत्यता यह थी कि श्रीफल चढ़ाने का भाव नहीं था, मात्र श्रेय लूटने का भाव था। जो परिणाम विकृत हो रहे थे, जो भावों में हिंसा चल रही थी, उसमें भी हिंसा का दोष लग रहा था तुझे। शुद्ध धर्म में किंचित् भी पर का अंश नहीं है।

णिंदिद संथुदवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि।
ताणि सुणिदूण रूसदि तूसदि य पुणो अहं भणिदो।।(स.सा./373)

हे मुमुक्षु! आचार्य कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि बहुत प्रकार के निंदा और स्तुति के वचन रूप से पुद्गल परिणमित होते हैं, उन्हें श्रवण कर अज्ञानी मनुष्य 'मुझसे कहा' ऐसा समझकर क्रोध या प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

ज्ञानी! श्रीफल चढ़ाने का भाव था, तो इसमें पराधीनता क्या थी? बाजार से श्रीफल लाकर चढ़ा देता। वहाँ समीप में भी जाने की आवश्यकता नहीं थी। आप मानस्तम्भ के समीप भी नहीं जाते हो, दूर से ही नमस्कार कर लेते हो, तो भी पुण्य मिलेगा। वैसे-ही विश्वास रखना, यदि मुनिराज को भी दूर से ही श्रीफल अर्पण करोगे तो भी पुण्य मिलेगा। पास में जाकर श्रीफल चढ़ाया और यदि ऐसा भाव आ रहा है कि लोग देख रहे हैं कि नहीं, तो ज्ञानी! कर्म का ही बंध होगा।

हे मुमुक्षु! आगम में अत्यंत सूक्ष्म व्याख्या है। क्षपणासार, लब्धिसार इन ग्रंथों में जीव मात्र के परिणामों का कथन है। इस समय कैसे परिणाम चल रहे हैं ? परिणाम को जिस दिन तुम ज्ञेय बनाने लग जाओगे, परिणामों को समझो, तो तुम भी अशुभ कर नहीं पाओगे। जैसे दूसरे पुरुष की देह की पर्याय को देखकर यह कहते हैं कि पाप करने जा रहा है, पापीजीव है, मेरे मित्र! वो तू आँखें खोलकर, देखकर बोलता है। हे ज्ञानी आत्मन्! आँखें बन्द करके उतना समय तू स्वयं को दे देता तो तुझे पता चल जाता कि मेरे भाव कहाँ-कहाँ जा रहे हैं।

हे मुमुक्षु! आँख खोलकर दूसरे के दोष देखना बन्द कर दो और आँख बन्द करके देखनहारे के दोषों को निहारो, निज को निहारो तो मालूम चल जायेगा कि दूसरा कितना दोषी है और जो दोष देख रहा है वह कितना दोषी है? ज्ञानी! आज तक लक्ष्य ही नहीं गया स्वयं पर। साधुओं में साधुता देखने से मुझे कोई लाभ नहीं है। जो साधुओं को देख रहा है, वह पर को निहार रहा है, पर में निहार रहा है। साधु देखनहारा निज में साधु देख ले तो तू स्वयं साधु बन जाये। साधुओं में साधु देख लेने मात्र से अश्रद्धान जन्म लेगा और साधु देखने वाले में साधु देखेगा तो तू स्वयं ही साधु बन जायेगा।

ज्ञानियो! जादू का खेल देखा क्या ? जब भीड़ एकत्रित हो जाती है तो जादूगर गोल घेरे में हो जाता है और अपने ही बच्चे को लिटा देता है, सामने छूरी रखता है, करामत है। दर्शकों से कहता है कि- जिनको घर जाना है तो अभी चले जाओ। खेल प्रारंभ होगा तब बीच में नहीं जाना, मेरे बेटे का ध्यान रखना। यदि आप बीच में चले गये तो मेरा बेटा नहीं बचेगा। सभी स्तब्ध हो जाते हैं, वह सत्य हो या न हो, वह तो जादूगर का जादू है, इन्द्रजाल है।

हे ज्ञानियो! समयसार की व्याख्या प्रारंभ करते समय मैं आपसे इतना अवश्य कहता हूँ । जैसे जादूगर ने कहा था, वैसे मैं कह रहा हूँ कि - जब समयसार सुनने बैठो तो अपने घर के लोक-व्यवहार

को पकड़ कर नहीं बैठना, क्योंकि यह परमार्थ की व्याख्या है, परमार्थ की दृष्टि है। परमार्थ दृष्टि को परमार्थ दृष्टि से सुनोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा। यहाँ घर मत खोजना।

ज्ञानियो! यह समयसार है, इसको अधूरा समझा तो अनर्थ हो जायेगा। तुम भटक जाओगे। यह अध्यात्म का गूढ़ ग्रंथ है, इसको आपने अधूरा सुन लिया तो घर में जाकर बोलोगे कि भैया! कोई किसी का नहीं है। **अधूरी बात अनर्थकारी होती है।** परमार्थ दृष्टि को समझने के लिये आपको बहुत एकाग्रता चाहिये। यहाँ जो व्याख्या चल रही है, वह मात्र निज के लिये ही चल रही है।

हे मुमुक्षु! समयसार का विपर्यास नहीं करना। आपने अमुक व्यक्ति को गाली दे दी और कहते हो, सुन ज्ञानी! शब्द तो शब्द है, वह अचेतन है, तू चेतन है। अचेतन पर तू भ्रमित होता क्यों है? प्रवचन तो यही था, लेकिन मेरे मित्र ! तू तो यह सोच कि तेरी वाणी में अशुभपना आया या नहीं आया ? यह समीक्षात्मक चिन्तन जीव को स्वयं करना चाहिये, न कि गाली देने वाले को करना चाहिये। मित्रो! गाली देने वाला दे देता है और फिर कहता है कि, पर तो पर है, निज तो निज है, तू क्यों विपरीत सोचता है?

हे मुमुक्षु! दूसरे के गाल पर चाँटा मार दिया और फिर कहता है '**आत्मस्वभावं पर भाव भिन्नं**'। ज्ञानी! प्रज्ञा मिली है, तो उसका दुरुपयोग नहीं करना। यह गहन सूत्र है। ज्ञानियो! सिंह शरीर का भक्षण कर रहा हो, तब भी वह परम योगीश्वर कह रहे हैं- 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं'। अहो सिंह! जिसे तू खा रहा है, वह मैं नहीं हूँ। जो मैं हूँ, उसे तू कभी खा नहीं सकता है। 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।'

ज्ञानियो! आपको एक मच्छर भी दंशने आ जाये तो आप यह भी नहीं सोचते कि बेचारे का क्या होगा ? इतने बड़े शरीर से एकाध बूँद रक्त निकाल भी लिया तो तेरा क्या बिगड़ता है ?आप उसके प्राणों का ही हरण कर लेते हो। ज्ञानियो! समयसार सुन रहे हो, तत्त्व को समझ रहे हो, फिर भी ये मच्छर छाप, कछुआ, आल आउट, दुनियाँ के हिंसक उपकरणों का उपयोग कर रहे हो, यह अणुव्रतों में भी दोष है।

पण्डित जी ! आप कहते हो कि, मैं यह नियम लेता हूँ, मेरा चारों प्रकार के आहार-पानी का त्याग है। मेरा पाप करने का त्याग और फिर भी कछुआ छाप लगाकर सो गये। पाँचों पापों का त्याग, परन्तु पहले ही पाप कर लिया, जाल बिछा दिया, कितने मच्छर मरेंगे? पता नहीं है। अगरबत्ती का धुआँ जहाँ तक जायेगा, उतने क्षेत्र के जीव मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे। ज्ञानियो! क्या त्याग कहने मात्र पापों का त्याग हो गया? हे ज्ञानी! तद्जन्य प्रवृत्ति भी करना पड़ेगी, भाव विशुद्धि भी बनाना पड़ेगी। व्रत ग्रहण किये हैं, तो कम से कम बहुहिंसक साधनों का प्रयोग तो मत करो।

मित्रो! अब तो ऐसा यंत्र आ गया है कि वह दूर से ही जीवों को खींचकर जला देता है। कायोत्सर्ग कर लो कि ऐसा पाप का यंत्र घर में कभी नहीं लगाऊँगा। **हे माँ! दिन में ही गृहस्थी के कार्य कर लिया करो, क्योंकि रात्रि में बहुत जीवों की विराधना होती है। रात्रि में शांति से बैठकर तत्त्वचिन्तन करना, आत्म-ध्यान करना, मंत्र जाप करना। यदि छिपकली जीवों को खा रही है, कोटि-कोटि जीव मर रहे हैं, तो यदि तुम्हें शास्त्र-स्वाध्याय भी करना है तो भी नहीं करना, चिंतवन करना, क्योंकि जीवरक्षा हमारा धर्म है।**

हे मुमुक्षु! यह जैन दर्शन है। जीव मात्र पर दया/करुणा हमारा धर्म है। आपने तो मात्र इतना सीख लिया कि मैंने किसी मनुष्य के साथ तो गलत नहीं किया, किसी पंचेन्द्रिय के साथ तो गलत नहीं किया । तुमने लाईट चालू कर छोड़ दी, पंखा चलाकर छोड़ दिया, जीवों का घात हो रहा है, छिपकली जीवों का घात कर रही है, ज्ञानी! आस्रव होगा कि नहीं होगा? नियम से कर्मास्रव होगा।

हे मित्र ! दूसरा सिगरेट पी रहा है, परंतु पास में बैठने वाले को उसकी दुर्गन्ध मात्र से कैंसर हो गया। धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के पास ज्यादा रहने से, धुँए से भी कैंसर के फोड़े होने लगते हैं। मुमुक्षु! इस बात को जिनागम अनादि से कह रहा है कि- पापियों का सहवास करने से, उनकी प्रशंसा करने से भी कर्मास्रव होगा, पाप का बंध होगा।

हे ज्ञानी! अपनी परिणति को निहार। जब कोई आयोजन हो तो दूसरे के गले में माला डालना भी तू भाग्य मानता, पुण्य मानता है, मैं नेताजी को माला पहनाऊँगा तो जो सामान्य जनता बैठी है उसमें मेरा प्रभाव बढ़ेगा, ऐसा विचार चल रहा है तो सम्भलो। जैसे बाँस की जड़ों का घुमाव होता है, उसको पकड़ सकते हो, लेकिन व्यक्ति की कौन-सी कषाय (वासना) कहाँ जा रही है, पकड़ना कठिन है। व्यक्ति के अन्दर अनन्तानुबंधी माया चलती है, उसकी बढ़ी हुई जड़ों का पता नहीं चलता है कि कहाँ से कहाँ पहुँच गई है। अनंतानुबंधी माया को, आचार्य भगवन् श्री नेमिचंद्र स्वामी ने गोम्मटसारजी ग्रंथ में, बाँस की जड़ों के समान लिखा है। बाँस की जड़ के समान ही जीव के वक्र/कुटिल परिणामों की दशा है। कुटिल भाव कहाँ तक पहुँच जायें, पता नहीं ?

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी यथार्थ में इकलौते आचार्य थे, इस विषय को समझने के लिये कितना गहरा अध्यात्म होगा आचार्य महाराज का, कितनी विशुद्धि होगी भावों में, कितनी निर्मलता होगी अन्तरंग की, जिसे लोग कभी सोच नहीं सकते हैं। समयसार की व्याख्या में भगवन् ने, जिसे जगत् धर्म मानता था उसे तो अलग ही कर दिया। जिसके समीप लोग पहुँच नहीं पाये, उस धर्म की गूढ़ व्याख्या की है।

ज्ञानियो! यह नहीं सोचना कि समयसार तो मात्र श्रमणों का ग्रंथ है। वास्तव में अध्यात्म शास्त्र श्रावकों को भी समझना चाहिये। मुनि इस ग्रंथ को पढ़ें परम वीतरागी होने के लिये और गृहस्थ श्रावक इस ग्रंथ को पढ़ें वैरागी बनने के लिये।

आचार्यमहाराज कह रहे हैं कि मेरी निंदा कर रहे हैं मेरी स्तुति कर रहे हैं, ये जो शब्द हैं वह अनेक प्रकार के पौद्गलिक हैं। एक व्यक्ति निन्दनीय वचनों को सुनकर रोष (क्रोध) कर रहा है। वहीं एक दिगम्बर वीतरागी तपोधन विचरण कर रहे हैं। उन्हें कोई गाली दे, कोई नंगा कह रहा है और कोई स्तुति कर रहा है, तब भी तपोधन सहज हैं। न दुःखी, न प्रसन्न है। मध्यस्थ है। कोई भगवान् कहेगा तो तुम प्रसन्न हो जाओगे, तब भी ''**रत्तोबंधदि कम्मं**'' वहाँ भी किसी ने नंगा कह दिया, वहाँ यदि द्वेष आ गया, तो वहाँ भी बंध है।

ज्ञानियो! देह को सँभालने की साधना अत्यन्त सरल है। अभी आप सभी अपनी देह को सँभालकर अच्छे से बैठे हो। आचार्यभगवन् उमास्वामी महाराज ने लिखा है- '**काय वाङ्मनःकर्मयोगः।**' (त.सू.)। ज्ञानियो! हँसना ध्यान नहीं है, गाना ध्यान नहीं है, नाचना ध्यान नहीं है,परन्तु लोक में लोग इन्हें ध्यान कह रहे हैं, इसे जैनदर्शन ध्यान नहीं मानता है। ये सिद्धिका किंचित् भी साधन नहीं है।

काय वाङ्-मनःकर्मयोगः।

मित्रो! जिसका शरीर ही स्थिर नहीं है, उसके वचन क्या स्थिर होंगे? जिसके वचनों को ही विराम नहीं है, उसके मन को कहाँ विराम होगा? आपने अभी तक सुन रखा है कि मन को वश में करो, वचन को वश में करो, शरीर को वश में करो। यहाँ उमास्वामी महाराज कह रहे हैं कि, मन वश में नहीं होगा, पहले शरीर को वश में करो, फिर वचन को विराम दो, तभी मन स्थिर होगा।

हे ज्ञानियो! काय-योग स्थिर नहीं है। पचास तरह के आसन लगा लेते हो। सोते समय कहीं से कहीं पहुँच जाते हो। आप कल्पना करो उस जीव की कितनी अच्छी अप्रमत्त दशा होगी ? अप्रमत्तपना है। ओ हो! इतना चंचलपना कि सोते हुए भी एक स्थान से स्थानांतरित हो रहा है। तो वह जागते समय क्या करता होगा ? जो व्यक्ति सोते-सोते रसगुल्ले खाये, उसका अवलोकन करो कि वह दिन में क्या करता होगा ? अंतरंग की लिप्तता गृद्धता को पकड़ो।

हे श्रमण! निंदा के वचन, स्तुति के वचन, इन वचनों के विकल्पों को छोड़ दो। सच्चे भावलिंगी श्रमण का चिन्तन सुनो। योगी का योग सुनो। ज्ञानियो! देह के मुनि की अनन्त बार वन्दना की है, अब भावों के मुनि की चर्चा सुनो। मुनि की पर्याय को तो नमस्कार होता है, परन्तु नमस्कार पर्याय को नहीं है, नमस्कार परिणामों को है, परिणामों का है। जिसे नमस्कार कर रहे हो, उसकी पर्याय दिखाई दे रही

है, परन्तु ध्रुव सत्य यह है कि न पर्याय को नमस्कार हो रहा है, न पर्याय नमस्कार कर रही है। वह निमित्तभूत है। परिणामी नमस्कार कर रहा है और परिणामी को नमस्कार किया जा रहा है।

मेरी देह की वंदना हो रही है, हम लोग तो यही मानते हैं कि-रत्नत्रय के धारी बैठे हुए हैं, मैं तो रत्नत्रय धर्म की वंदना कर रहा हूँ; परन्तु बिना देह के रत्नत्रय धर्म दिखाई देता है क्या? आचार्यभगवन् समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है कि-

स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता।। (र.श्रा./13)

ज्ञानियो! जो स्वभाव से अशुचित/अपवित्र है, संगत मात्र से शुद्ध पारिणामिक भी मलिनता को प्राप्त होता है, उस देह की क्या वंदना करूँ ? यहाँ देह की वंदना नहीं है, इसमें विराजी जो रत्नत्रय से मण्डित आत्मा है, उसकी वंदना है। "**रत्नत्रयपवित्रिते**" जो रत्नत्रय से पवित्र है, उस आत्मा की वंदना है।

सरोवर में शैवाल है, परन्तु फिर भी पानी स्वच्छ है, शैवाल रूप परिणमित नहीं हुआ है। ऐसे-ही निर्ग्रन्थ तपोधन कर्मों के शैवाल से आच्छादित होने पर भी अपने चैतन्य सरोवर के नीर को किंचित् मात्र भी मलीन नहीं होने देते हैं।

ज्ञानियो! वे वीतरागी तपोधन विचार करते हैं कि -जो निन्दा या स्तुतियाँ हैं, वह सभी पर के मुखारविन्द से हैं, पर के ही मुख में हैं। मेरी निन्दा या स्तुति कर सकते हो, परन्तु हे मित्र! तेरे द्वारा की गई निन्दा मेरे अन्तस् को किंचित् मात्र करने में कार्यकारी नहीं है। किसी के द्वारा की गई प्रशंसा भी मेरे उपादान को प्रभावित करने में किंचित् मात्र भी निमित्त नहीं है। मुख तेरा, बोलने के भाव तुम्हारे हैं, वचनवर्गनाएँ तेरे मुख की हैं, मेरा उसमें क्या गया? मैं स्वाधीन हूँ, तू स्वाधीन है। क्या किसी के कहने के अनुसार मेरा परिणमन हो रहा है ? क्या किसी के कहने के अनुसार ही मैं हूँ? किसी के कहने से किसी का परिणमन नहीं होता है।

हे मुमुक्षु! यदि आपके कहने के अनुसार मेरा परिणमन हो जाये तो अनर्थ हो जाये। ज्ञानियो यह भी सत्य है कि- तीर्थंकर के शासनकाल में भी तीर्थंकरों को अशुभ कहने वाले लोग थे।पृच्छना कर लो तीर्थंकर वृषभ देव से कि उनका पोता ही उनको छोड़कर भाग गया था। साधुओं को तो बार-बार समयसार पढ़ना चाहिये, समयसार समझना चाहिये। हे साधक !श्रमण! कभी किसी से बहुत जल्दी प्रभावित नहीं हो जाना। यदि कोई तुम्हें अशुभ बोलकर भी चला जाये तो किसी से कहना नहीं, क्योंकि आपने किसी से कह दिया और किसी ने आक्रोश में आकर उसको कष्ट पहुँचा दिया, तो हे महाराज!

आगम में तो लिखा है कि हे श्रमण! अजगर भी निगलने आ जाये तब भी आवाज नहीं करना। साँप डस जाये, लोग पूछने आयें कि क्या हो गया? तब भी यह नहीं बताना कि सर्प डसकर कहाँ चला गया है? क्योंकि मुझे देह की चिन्ता नहीं है, अहिंसा धर्म की चिन्ता है। हे साधु! यदि आपने कह दिया कि साँप ने डस लिया है, तो लोग तुम्हें बाद में देखेंगे, पहले साँप को खोजेंगे, श्रमण! तुम्हारे निमित्त से पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा हो जायेगी। ज्ञानियो! अभी साधुओं को भी समयसार समझने की आवश्यकता है।

हे श्रमण! आपके निमित्त से किसी जीव को कष्ट न हो, किसी जीव की हिंसा न हो जाये, किसी का घात न हो जाये। यदि आपके निमित्त से किसी का घात हुआ तो आप भी दोषी हो जाओगे और आपको भी पापास्रव होगा। ज्ञानियो! प्रायश्चित्त शास्त्रों में लिखा है कि-पागल श्वान भी काट जाये, तो भी मुनि को वहाँ मौन ले लेना चाहिए, क्योंकि आपने बोल दिया कि यहाँ पागल श्वान गया है तो मनुष्य इतना स्वार्थी जीव है कि अपनी रक्षा में कोटि-कोटि जीवों की हत्या कर देता है। **हे श्रमण! यदि आपका भाषा समिति, वचन गुप्ति पर लक्ष्य नहीं है तो तुम्हारा सारा उपदेश मृषा है। संकट सहन कर लेना, परन्तु वाणी संयम नहीं तोड़ना।**

वीतरागी श्रमण, निन्दा-स्तुति के वचनों को सुनकर विचार करते हैं कि- यह तो बहुत प्रकार के शब्द प्रत्ययों के पुद्गल की पर्याय है। इनसे मेरा क्या परिणमन ? ''**ताणि सुणिदूण रूसदि तूसदि य पुणो अहं भणिदो**' जो वचनों को सुनकर सन्तुष्ट होता है रोष करता है, शब्दरूप परिणत हुआ है, यह अज्ञानी की धारा है। शब्द को सुनकर रोष को प्राप्त हो, शब्द को सुनकर तोष को प्राप्त हो, यह अज्ञानी की धारा है, ज्ञानी की नहीं। यह मेरे से भिन्न है। पर के सुन्दर शब्द से प्रभावित होना, यहि उपादान की कमी है। पर के असुन्दर शब्द सुनकर प्रभावित होना, यह भी निज उपादान की ही कमी है।

ज्ञानियो! सुन्दर-असुन्दर शब्दों को सुनकर प्रभावित नहीं होना, क्योंकि प्रशंसा में खुश हो गया तब भी बंध होगा और निन्दा में असंतुष्ट हो गया तक भी बंध होगा। मोक्षमार्ग तो इन दोनों से भिन्न है।

अरि-मित्र-महलमसान कंचन-कांच निन्दन थुतिकरन।
अर्घावतारन असिप्रहारन में सदा समता धरन।।(छहढाला)

हे मुमुक्षु। इस पर्याय में मुनि नहीं बन सको तब भी भाव इतना अवश्य रखना कि हे नाथ ! जब भी मुनि बनूँ तब एक बार अवश्य ही मुनि मन को प्राप्त कर सकूँ। मुनि मन जल में कमल के समान होता है। अर्घ्य देने वालों के प्रति मन में राग भाव न हो, हास्य करने वालों के प्रति द्वेष भाव न हो, इसका नाम मुनिभाव है।

माँगन मरण समान है, मत माँगो कोई भीख।
माँगन से मरना भला, यही सद्गुरु की सीख ।।

ज्ञानियो। अयाचक वृत्ति के धारक निर्ग्रन्थ तपोधन यदि तुम्हारे राग में किसी सेठ से पैसा माँगते हैं, उनसे अपेक्षा करते हैं, तो समझो आपने एक योगी के भावों की हत्या कर दी है, आपने मुनिपने का घात कर दिया है। श्रावको! अपने श्रमणों को तुम न पत्रिका में उलझाना, न धर्मशाला अथवा मंदिरों में फँसाना। उन्हें तो मात्र रत्नत्रय की साधना में लगे रहने देना।

श्रावको, जब भी निर्ग्रन्थ योगियों के दर्शन करने जायें तब एक ही शब्द का प्रयोग करना कि, भो भेदाभेद रत्नत्रय धर्म के पालन मुनीश्वर! आपको नमोस्तु...। नारियल न भी हो तो भी अपने शीश को उनके चरणों में टेक देना। उनको भी लगे कि श्रावक क्या बोल रहा है, कौन-सी भाषा बोल रहा है? भाव बनाकर बैठा हो साधक कि आज अमुक व्यक्ति आयेगा और एक करोड़ दान देकर जायेगा तो उनको भी सोचना पड़ेगा कि अब मुझे भी बदलना चाहिये।

ज्ञानियो! फिर वह भी कहेंगे कि मेरा भेद रत्नत्रय पवित्र है और अभेद का पुरुषार्थ कर रहा हूँ। हे योगी। न तुम्हारे चर्म की वंदना कर रहा हूँ, न आपके आडम्बरों की वंदना कर रहा हूँ। मैं तो मात्र आपकी आत्मा में विराजा रत्नत्रय धर्म है, उसकी वंदना कर रहा हूँ।

पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणदं तस्स जदि गुणो अण्णो।
तम्हा ण तुमं भणिदो किंचि वि किं रूससि अबुद्धो।। स.सा./374।।

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि पुद्गल द्रव्य शब्दरूप से परिणमित हुआ है, उसका गुण तुझसे अन्य है, तो हे जीव! तुझसे कुछ भी नहीं कहा है, तू अज्ञानी होता हुआ क्यों रोष करता है?

अज्ञानी जीव पर के शब्दों को सुनकर रोष और तोष को प्राप्त होता है, यह अज्ञान भाव है। अध्यात्म सरोवर में विराजे योगीश्वर अपने स्वरूप में निमग्न रहते हैं तो श्रद्धावानों के मस्तक स्वयमेव झुक जाते हैं। उनकी वंदना है। जिनके अन्तस् में रत्नत्रय धर्म झलक रहा है। यथार्थ मानना, जो आनन्द निर्ग्रन्थों के परिचय से नहीं आता, वह आनन्द अपरिचित रहकर वंदना करने में आता है। अपरिचित रहोगे तो आप मात्र जिनमुद्रा को देखोगे और परिचित हो गये तो भिन्न चर्चा करके उस वीतरागी मुद्रा से दूर हो जाओगे।

ज्ञानियो! रोटी-जैसे रहो साधुओं के समीप। रोटी चूल्हे पर रहती है, परन्तु चूल्हे पर ठहरती नहीं है। चूल्हे पर रहकर भी घूमती रहती है। घूमती रहती है तो सिक जाती है, फूल जाती है। वैसे-ही पंचपरमेष्ठी के पादमूल में तुम रोटी-जैसे घूमकर आ जाना वापिस, वहाँ बैठ नहीं जाना। असमय में

अधिक बैठोगे जो अश्रद्धा में चले जाओगे। **ज्ञानियो! साधु की भक्ति करना, सेवा करना परन्तु उनसे अपेक्षा नहीं करना। यदि आपने कोई अपेक्षा कर ली, वे पूर्ण नहीं कर पाये तो तुम ईर्ष्या से, क्रोध में झुलस जाओगे।**

हे मुमुक्षु! शब्दों ने कब कहा कि में अमुक व्यक्ति का हूँ, आप मुझे स्वीकारो? श्रावको! आपने मुनिराज को आहार दिया, यदि उन्हें नहीं लेना होता है तो वे अंजुली बंद कर लेते हैं, तब क्या आप उनके मुख में रखते हो? हे मुनीश्वर! जैसे तुम्हें ग्रास नहीं लेना होता है। तो अंजुली बंद कर लेते हो, ऐसे-ही दुनियाँ तुम्हें गाली दे, प्रशंसा करे तो तुम अपने कर्णों को बंद कर लिया करो।

हे ज्ञानी! शब्द है उसका गुण अन्य है। शब्द की पर्याय अन्य है, शब्द का द्रव्य भिन्न है। '**तम्हा ण तुमं भणिदो**' उसने आपसे तो कभी नहीं कहा, '**किंचिवि**' किंचित् मात्र भी। जो रोष करता है, वह अज्ञानी ही है। हे अज्ञानी ! तू व्यर्थ में रोष कर रहा है, व्यर्थ में ही संतुष्ट हो रहा है। कोई सत्कार करे, सम्मान करे, सम्मान करे अथवा न करे, इससे क्या भला क्या बुरा?

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः।।(इष्टो./23)

हे जीव! तुम अज्ञानी के पास जाओगे तो अज्ञान ही मिलेगा और ज्ञानी के पास जाओगे तो ज्ञान मिलेगा। जिसके पास जो होगा, वह वही तो देगा। यमुना नदी के तट पर एक वृक्ष था नीबू का। शीत काल था और तुम्हें नीबू की आवश्यकता थी। ठण्डी में तुम यमुना में प्रवेश करना नहीं चाहते थे, परन्तु नीबू को प्राप्त करना चाहते थे। वृक्ष पर एक बन्दर बैठा था। आपने प्रज्ञा का प्रयोग किया और बन्दर को बचाते हुए वृक्ष पर एक पत्थर फैंका। तब वृक्ष पर बैठे बन्दर ने वृक्ष के नीबूओं को तोड़कर आपकी ओर फेंकना प्रारंभ कर दिया और आपको इच्छित वस्तु प्राप्त हो गई। अपने पत्थर मारा तो उसने आपको नींबू मारा। जिसके पास जो होता है, वह वही दे सकता है। जो है, सो है।

हे मित्र! आपको कोई गाली भी दे, अशुभ भी बोले, तो भी तुम बन्दर की तरह नींबू ही देखना। कोई कुछ भी कहे, फिर भी आप अशुभ वचनों का प्रयोग कभी नहीं करना। जिसके पास जो होगा, वह वही तो देगा। **जो अबुद्धिमान है, वह रोष करता है, परन्तु ज्ञानी रोष-तोष को छोड़ देता है।**

ज्ञानियो! अपनी सम्यक्त्व-संपत्ति की सुरक्षा करना, धन-संपत्ति के राग में सम्यक्त्व-संपत्ति को नहीं दे देना। वर्तमान की पर्याय के राग में आकर, संपत्ति के राग में आकर उन्मार्ग पर गमन नहीं करना। तुम्हारा पुण्य होगा तो उपकार होगा, पाप का उदय होगा तो अपकार होगा। दूसरा कोई यदि तुझे संपत्ति देने लग जाये, तो किया गया पुण्य व्यर्थ हो जायेगा।

मणिमंतोसहरक्खा हयगय रहओ य सयलविज्जाओ।
जीवाणं ण हि सरणं तिसु लोए मरणसमयम्हि ।।(वा.पे./8)

ज्ञानियो! बड़े-बड़े धर्मात्मा भी मृत्यु को प्राप्त हो गये। जगत् को ज्योतिष बताने वाले भी चले गये। जब ज्योतिषी का ज्योतिष भी कार्यकारी नहीं हुआ स्वयं के लिए, तो फिर वह तुम्हारे लिए क्या करेगा ? जिसका राजतिलक होना था, उन्हीं को जंगल जाना पड़ गया। वास्तु कुछ है, ज्योतिष कुछ है, परन्तु सबकुछ नहीं है। सम्प्रति समाज में वास्तु, ज्योतिष के नाम पर न जाने क्या हो रहा है? घर में, समाज में विसम्वाद हो रहा है, झगड़े हो रहे हैं। यह अच्छा नहीं हो रहा है।

ज्ञानियो! आयु पूर्ण होने पर इन्द्र भी मृत्यु से नहीं बचा पायेगा। मणि, मंत्र, तंत्र भी मरते को जीवन नहीं दे सकते हैं। मित्रो! भाव मंगल है, अर्हन्तदेव मंगल हैं, यह आप अपने आप में धारण करो। प्रपंचों में पढ़कर सम्यक्त्व की हानि मत करो, अपनी आत्मा की रक्षा करो।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

उत्थानिका : *वस्तुस्वतंत्रता स्व-स्वभाव से ही परिणमित है।*

गाथा : *असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणदि सुणसु मं ति सो चेव।*
ण य एदि विणिग्गहिदुं सोदविसयमागदं सद्दं ।।375।।

संस्कृत छाया : *अशुभः शुभो वा शब्दो न त्वां भणति श्रृणु मामिति स एव।*
न चैति विनिर्ग्रहीतुं श्रोत्रविषयमागतं शब्दम् ।।375।।

अन्वयार्थ : (अशुभः वा शुभः) अशुभ अथवा शुभ **(शब्दः)** शब्द **(त्वां न भणति इति)** तुमको ऐसा नहीं कहता कि **(मां श्रृणु)** मुझको सुन **(च)** और **(श्रोत्र विषयं आगतं)** श्रोतइंद्रिय के विषय में आये हुए **(शब्दं)** शब्द के **(विनिर्ग्रहीतुं)** ग्रहण करने को **(स एव)** वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड़ **(न एति)** प्राप्त नहीं होता।

समयदेशना

भव्य बंधुओ! आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज श्री समयसार जी में ध्रुवज्ञायक-स्वभावी भगवानात्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं।

ज्ञानियो! चिद्रूप चैतन्य-पिण्ड ज्ञानघन आत्मद्रव्य परद्रव्यों से अत्यंत भिन्न है। शब्द -वर्ण-गंध - स्पर्शादि यह अचेतन धर्म है, अचेतन धर्म का चेतन धर्म में कभी प्रवेश नहीं है। चेतन धर्म का अचेतन धर्म में कभी प्रवेश नहीं है। एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्यभूत परिणत नहीं होता है। पर-द्रव्यों के गुण परद्रव्यों में प्रवेश नहीं करते हैं।

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द देव परम योगीश्वर, निर्ग्रन्थ-तपोधन की उस ध्यानस्थ-दशा को यहाँ समझा रहे हैं कि **हे श्रमण! कर्तृत्वबुद्धि से निज की रक्षा करना, यह भी जीवन की सर्वोत्कृष्ट साधना है। श्रामण्य की जितनी भी साधना है, कर्ताबुद्धि से अपनी रक्षा करना है।** आत्माराधना से वंचित करने के जितने साधन हैं, उन सब में कर्तृत्वबुद्धि है तो साधना कहाँ ? मैं पर का कर्ता हुआ , मैं पर का कर्ता होऊँगा, मैं पर का कर्ता था। पर मेरे कर्ता थे, पर मेरे कर्ता होंगे, ऐसा स्व-पर में कर्तृत्वभाव है, यही संक्लेष भाव है। **जहाँ संक्लेष भाव है, वहाँ नियत बंधभाव है।** बंधभाव है, संसारभाव है।

हे मुमुक्षु! चाहे आप पर के अशुभ के कर्ता बनो, चाहे आप पर के शुभ के कर्ता बनो, तब भी बंध तो होगा, संसार तो बढ़ेगा। भैया! आपको पढ़ाने वाले गुरु यहाँ आकर कहने लगें कि- आप ज्ञानी हैं, साथ ही कहते हैं कि पढ़ाया तो मैंने ही है। हे ज्ञानी! यह शब्द आया क्यों? इस शब्द को अन्दर में

पचा-पाना अत्यंत कठिन है। शिष्य की प्रशंसा करना थी कि- वह ज्ञानी है, तो कर देते, परन्तु यह कहने की क्या आवश्यकता थी कि इसे मैंने ही अध्ययन कराया है। वस्तुतः आप उसके ज्ञान के कर्ता बनकर अपनी मानकषाय और ज्ञान मद को मधुर-भाषा में निकाल रहे हो। आप मात्र ज्ञानी कहते, तो लोग कैसे समझ पाते कि उसको पढ़ानेवाला इतना महान् है कि जिसका छात्र इतना विद्वान् है? **अपनी महानता को प्रकट करने के लिये जीव हीनता में प्रवेश कर जाता है। हे मुमुक्षु! जब स्वमुख से स्व परिणति से कोई व्यक्ति अपनी महानता को प्रकट करता है, तब यह जीव नियत से हीनता को प्राप्त होता है। अहं बुद्धि आये बिना, अपने मुख से अपनी महानता प्रकट करने के भाव आ ही नहीं सकते हैं।** जहाँ अपने मुख से अपनी महानता प्रकट करने के भाव आ रहे हैं, वहाँ नियम से मानकषाय विद्यमान है। कषाय का कार्य है कि आत्मा को कसे। यहाँ आपकी आत्मा कस गई मान के आते ही। मान के प्रकट होते ही आप अभिमानी हो गये। ज्ञानियो! मान-अभिमान से रिक्त होना कठिन है। विषय समझना जटिल नहीं है, इस विषय को स्वीकार करके आचरण करना कठिन है।

पण्डित जी! आप कहेंगे कि महाराज! क्या सत्य न कहूँ ? मैंने शिष्य को अध्ययन कराया है तो क्या उसे अपना शिष्य न कहूँ ? मेरे मित्र! जिसे आप सत्य बोल रहे हो, वह भी झूठा है। महाराज मैं सत्य बोल रहा हूँ, मेरा शिष्य है, मैंने अध्ययन कराया है। मेरे मित्र! आपका सत्य असत्य हो चुका है, क्योंकि जो सत्य है तेरा, वह शब्दातीत्-सत्यातीत है। जो सत्य है तेरा, वह पर कर्तृत्व शून्य है। जो सत्य है तेरा, वह निज कर्तृत्व से शून्य है। जो सत्य है, वह तो मात्र सत्य ही है।

हे मुमुक्षु! सत्य अर्थात् आत्मा। सत्व अर्थात् जीव। जो सत्य है, वह मात्र ज्ञान-दर्शन है। उस सत्य को निज के ज्ञान-दर्शन में ही लगाना सत्यता है। अपने ज्ञान-दर्शन को परज्ञेयों में लाना भी असत्य है। पर में पुरुषार्थ करना भी असत्य ही है। ज्ञानी! अक्षरों को जानने की अपेक्षा, आत्म-अक्षर को निहार लेता तो दुनियाँ के अक्षरों को जानने की क्या आवश्यकता थी?

ज्ञानी! 'समयसार' जी में लोकव्यवस्था की व्याख्या नहीं है। यह ग्रंथ जीवन चलाने के लिये नहीं है, यह ग्रंथ तो जीवों को जन्म-मरण से रहित करने के लिये है। हे मुमुक्षु। तुम इस ग्रंथ से जीवन चलाना चाहते हो, आजीविका चलाना चाहते हो, तो इसे मात्र देखो, जानो, परन्तु यथार्थ मानना, तुम जान ही पाओगे। आजीविका का ग्रंथ नहीं है, ये तो जन्म-मरण से रहित होने का ग्रंथ है। यह तो अशरीरी भगवानात्मा के स्वरूप को कहनेवाला ग्रंथ है। इसमें दुनियाँ की व्याख्या को नहीं खोजना। अक्षर को देखा, अक्षर को पहचाना और मैंने अक्षरों की पहचान दूसरों को सिखा दी। मैंने अक्षर को जाना तो मैं उसका कर्ता बन गया, दूसरों को पहचान कराई तो उसका भी कर्ता बन गया, लेकिन यह

मात्र कर्तृत्व-बुद्धि है। ज्ञानियो! तत्त्वदृष्टि से पुनः विचार करो, क्या किसी पण्डित ने दूसरे पण्डित को ज्ञानी बनाया है?

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्त मात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत्।। इष./35।।

मित्रो! अज्ञ को कोई विज्ञ नहीं बनाता, विज्ञ को कोई अज्ञ नहीं बनाता। यदि पर में अज्ञता-विज्ञता नहीं होती, तो फिर किसी पागल-पुरुष को ज्ञानी बनाकर दिखाओ यदि आप में विज्ञ बनाने की योग्यता है तो। ज्ञानी! **जिनका उपादान प्रबल है, वही ज्ञानी बनता है। उपादान की योग्यता होने पर ही आप ज्ञानी बना सकते हो। यदि आप पर का उपादान बदल सकते हो, तो फिर उन्मत्त होकर जो पुरुष बाजार में घूम रहा है उस पर करुणा करके उसको भी ज्ञानी बना दो, क्या आपके पास करुणा नहीं है?**

हे विद्वान्! यदि आप करुणाशील हैं, दयावंत हैं, जैन हैं, श्रावक हैं, सुधि हैं, तो उन जीवों पर भी करुणा करो, उनको भी तुम ज्ञानी बना दो। ज्ञानी! समझो। उन जीवों में योग्यता थी, तो आप निमित्त बन गए। उसमें योग्यता न होती, तो वह विज्ञता को प्राप्त न होता। ओहो ज्ञानी! यदि मेरी प्रज्ञा दूसरे में चली जायेगी तो मैं प्रज्ञा विहीन हो जाऊँगा। हे मुमुक्षु! मेरा गुण पर में चला गया तो मैं निर्गुण हो जाऊँगा। ज्ञानी! मैं जो उपदेश कर रहा हूँ, मैं मात्र अपने बोलने का ही कर्ता हूँ, मैं मात्र अपनी शब्दवर्गणाओं का ही प्रयोग कर रहा हूँ। मैं वचन, वर्ण से बोल रहा हूँ, भाषावर्गणा आपके कर्णों तक पहुँच रही है वचन वर्ण इन्द्रियाँ क्षयोपशम और वीर्यान्तराय कर्म क्षयोपशम के निमित्त से उच्चारण आ रहा है। वस्तुतः ज्ञान-दर्शन की दृष्टि से देखोगे तो मैं वचनातीत हूँ; लेकिन बंध की दृष्टि से शरीरादि के निमित्त से, कण्ठ औष्ठ जिह्वादि के निमित्त से शब्दवर्गणा शब्दरूप परिणत हो रही है, इनका उपादान कर्ता नहीं हूँ निमित्त कर्ता हूँ; परन्तु आप जो समझ रहे हो, जान रहे हो, उस समझने-जानने का कर्ता मैं नहीं हूँ। ज्ञानियो! आपकी स्वयं की प्रज्ञा ही आपको समझा रही है।

ज्ञानियो! आपमें प्रज्ञा न होती तो पर का उपदेश आपको समझ में आने वाला नहीं था। जो समझाने वाला है, वह निमित्त मात्र है, परन्तु समझ में उसी को आता है जिसके अंदर वास्तव में तद्रूप क्षयोपशम प्रकट हुआ है। इसलिए न हर्षित होना, न विषाद को प्राप्त होना कि मैंने इस जीव को इतना पढ़ाया तब भी कुछ नहीं समझ-सीख सका। ज्ञानी! आप मात्र सिखाने के भाव के कर्ता हो, परन्तु किसी को सिखाने के कर्ता नहीं हो। सीख लिया है, उसको आप कह रहे हो कि मैं इसका गुरु हूँ। हे गुरु! यदि तुम व्यवहार से कह रहे हो तो कह लो, परन्तु सत्यता यह है कि उसका क्षयोपशम प्रकट नहीं होता तो तुम बाहर के गुरु कुछ नहीं कर सकते थे।

आपके साथ रहनेवाला पुरुष व्यसनी हो जाये तो आप यह कभी नहीं कहेंगे कि यह मेरा मित्र है, या मित्र था; परन्तु वहीं तुम्हारा मित्र यदि महापुरुषता को प्राप्त करले, बड़ा नेता बन जाये अथवा साधु बन जाये, तो आप ही कहेंगे कि हम साथ-साथ रहते थे। ज्ञानियो! यह समयसार है। तुम समयसार से निहारोगे तो- यह मित्र की मित्रता नहीं बोल रही है, अपितु आपकी मान कषाय बोल रही है। अंतरंग में 'मैं भी महान् हूँ' का भाव चल रहा है। कितने प्रकार से जीव की मान कषाय प्रकट होती है, मान कषाय कहाँ-कहाँ स्पर्श करती है? ओहो! कषाय जीव को कहाँ भ्रमित कर रही है।

ज्ञानियो! जब सामायिक को धारण करो, तब चिंतन करना कि मैंने जीवन अपने लिए कितना जिआ और दूसरों के लिए कितना जिआ? ओहो! जीवन में पर के लिए ही जीता रहा और पर में ही जीता रहा हूँ। हे मुमुक्षु! निर्ग्रन्थों से भी मिला तो उसमें भी सोचा कि मैंने इन महाराज को आहार दिया था और आज ये पूज्यता को प्राप्त हो रहे हैं। इसमें भी अपना मान दिखाई दे रहा है। ज्ञानियो! अपनी अंतरंग कषाय को समझो।

ज्ञानियो! भव्यजीव ऐसा पुरुषार्थ करता है कि कर्म से परिपूर्ण रहित हो जाता है। अहो आत्मन्! आपको संयमी जीवन का आनंद नहीं आ रहा है, नहीं-तो हे ज्ञानी! संयमी जीवन का आनंद आने लग जाये तब माँ के आँचल का पान करने वाला शिशु भी घड़ी नहीं निहारता, क्योंकि वह दुग्ध-पान का आनंद लूट रहा है,तन्मय होकर। जो घड़ी देखकर दुग्धपान करता है, उसे दुग्धपान का आनंद नहीं आ रहा है। ऐसे-ही हे मुमुक्षु! जो जीव श्रमण बनकर साधना से उदासीन है तो समझना उसे अभी माँ जिनवाणी के आँचल का आनंद नहीं आ रहा है। वह अभी स्वानुभूति का आनंद नहीं ले रहा है, अभी श्रामण्य की अनुभूति से दूर है।

जैनदर्शन का मोक्षमार्ग, यह पलायनवाद मार्ग वाला दर्शन नहीं है। यह पलायनता का दर्शन नहीं है, यह आत्मानंद का दर्शन है। एक सज्जन कहने लगे कि जिनदीक्षा साधना का मार्ग है कि पलायन का मार्ग है? भैया! यह पलायनवाद का मार्ग नहीं है। गृहस्थ बनकर गृहस्थी नहीं चला पा रहे हो, व्यापार नहीं कर पा रहे हो, इसलिए दीक्षा ले ली। यह तो पलायन मार्ग हो गया। **जैनेश्वरी दीक्षा, यह पलायन मार्ग नहीं है, यह पापों से रिक्त होने का मार्ग है। जो निज के जीवन को भारभूत समझे, जिम्मेदारियों से बचना चाहे, वह पलायन मार्ग है। जो अकर्तृत्व भाव में जीना चाहे, वही जिनदीक्षा ले, क्योंकि यह पलायन नहीं, मोक्षमार्ग है।** जिनदीक्षा कर्तृत्व भाव से बचने के लिए है, न कि गृहस्थी के राग कर्तव्यों से पलायन करने के लिये है।

ज्ञानी! जो घर छोड़कर, घर की विडम्बना को छोड़कर मुनि बनेगा, वह जीवन भर यहाँ भी दुःखी रहेगा, क्योंकि कुछ नहीं कर सका इसलिये मुनि बन गया। आज तक जितना किया है, सब परज्ञेयों के लिए किया है, पर में किया है, निज के लिए कुछ भी नहीं किया है। मैं निज को करने के लिए निज में जा रहा हूँ, पर के लिए नहीं जा रहा हूँ, ऐसा सोच कर मुनि बनेगा तो विश्वास रखना, जगत् में क्या हो रहा है, उसे देखने के भाव कभी तू नहीं लायेगा, क्योंकि जीव के वर्तमान चेहरे को देखो, इस जीव का वर्तमान चेहरा चमक रहा है। जो वृद्ध हो गये हैं, उनका चेहरा भी युवावस्था में चमकता होगा कि नहीं ? चमकता होगा। जीव उस चमक को सुरक्षित नहीं रख पाया। तेरे बाल पहले काले थे, तेल लगाने पर भी बाल सफेद हो गये। जब अपनी पर्याय के परिणमन को रोकने में समर्थ नहीं हूँ तो पर के परिणामों को रोकने में समर्थ कैसे हो सकता हूँ? पर पर्याय को रोकने में समर्थ नहीं हो सकता हूँ।

ज्ञानी! वीतरागी तपोधन न हर्षित होते हैं, न विषाद को प्राप्त होते हैं। यही समयसार है। तुम कर्ता-बुद्धि को लेकर बैठे रहोगे तो मात्र नंगेपन में ही रहोगे, नग्नत्व में नहीं जी सकोगे। भैया! मेरे पास हर रोज कितने लोग आते हैं, अपनी बातें भी कहते हैं, महाराज! आपका गंधोदक नहीं मिला। आप समझ जाओ कि क्या कहकर चला गया ? उलाहना देकर चला गया। श्रीजी नाराज या प्रसन्न नहीं होते, यह मैं नहीं जानता, लेकिन आप अप्रसन्न जरूर हैं। स्वामी! अब आप ही कोई उपाय बता दो जिससे आप प्रसन्न हो जाओ। श्रावक अनेक प्रकार की भाषा बोलता है।

कोई-कोई वास्तव में दुःखी होता है, लेकिन मैं उसके दुःख को देखकर दुःखी हो जाऊँ तो मैं मुनि अवस्था का आनंद नहीं ले सकता। संसार में कोई तन से दुःखी है, कोई मन दुःखी है, कोई धन से दुःखी है, कोई कुटुम्ब से दुःखी है और कोई इसलिये दुःखी है कि दुनियाँ सुखी है। तो क्या यह बातें मैं गहनता से सोचूँ ? नहीं , मेरे मित्र ! इनके दुःख दूर करने का भाव होता तो इन दुःखियों को छोड़कर जाता क्यों?

श्रावको! आप समाज में रहते हो। कभी -कभी मायाचारी से गहरे दुःखी होकर भी रहते हो। नहीं करोगे तो लोक में रहना मुश्किल हो जायेगा। आप अध्यक्ष हो, समाज में किसी के घर पर वियोग हो जाने पर उसके यहाँ बैठने जाते हो, तो चेहरा बनाकर बैठते हो या मुस्कुरा कर बैठते हो ? स्वयं के घर के सुख का आनंद नहीं ले पा रहा है और दूसरे के घर में चेहरा बनाकर बैठना पड़ता है, क्योंकि लोकव्यवस्था ऐसी ही है। तू मुस्कुरायेगा तो लोग क्या सोचेंगे? इसलिए हे श्रमण! आप लौकिक लोगों से दूर रहो। यदि आप इनके अनुसार चेहरा बना लोगे तो ये खुश हो जायेंगे, लेकिन घर में जाकर कहेंगे कि देखो महाराज को हमसे राग हो गया है। साधु को कहीं स्थान नहीं है, अतः इन दोनों से दूरी बनाकर रखो। यह विधा निष्ठुरता के लिए नहीं सिखाई जा रही है। यह इसलिए सिखाई जा रही है कि आप मध्यस्थ होना सीख लो।

हे ज्ञानी! जगत् का परिणमन पुण्य-पाप की सत्ता में चल रहा है। जिसके विपाक का जैसा उदय होगा, उसका वैसा फल होगा। हम पर के सुख-दुःख में मात्र अपना भाव ही बना सकते हैं, परंतु उस जीव के सुख को दूर करने की सामर्थ्य हमारे अंदर नहीं है। भाव बनाकर मात्र अपना भव बढ़ा सकते हो। यदि भव नहीं बढ़ाना है तो दूसरे के सुख-दुःख में भाव मत बनाओ। इतना ध्यान रखो, दुःखी जीव आया है, अशीर्वाद दे दो, सांत्वना दे दो, लेकिन दूसरे के दुःख में दुःखी होकर असाता वेदनीय कर्म का आस्रव करना ज्ञानीपने की पहचान नहीं है।

हे श्रावक! एक जीव विलख रहा है तो उसको सांत्वना देकर उसका उपचार कराना ठीक था या फिर उसके दुःख को देखकर रोना उचित था ? उपचार कराना तो ठीक था, लेकिन तुम रोने लग जाओ तो उससे उसका दुःख दूर नहीं होगा। क्या इससे आप दुःखी नहीं होंगे ? वर्तमान में दुःखी हुए और भविष्य में भी दुःखी होंगे। भविष्य के लिये असाता का आस्रव कर लिया, वह स्वयं मिलेगा। इसलिये जैनदर्शन कहता है कि दुःखियों के दुःख देखकर यदि दुःख दूर करने की सामर्थ्य है तो दूर कर देना, लेकिन दुःखी को देखकर स्वयं दुःखी होकर बैठ जाना, यह जैनदर्शन की शिक्षा नहीं है।

यदि वैद्य ही रोगी को देखकर दुःखी होने लग गया, तो फिर उसका रोग कैसे ठीक करेगा? इसलिये मेरे मित्र! संवेदना रोना नहीं है, विवेक है। विवेकपूर्वक दूसरे के दुःख को दूर करना, इसका नाम संवेदना है, न कि उसी काल में स्वयं रोने लगना। यह संवेदना नहीं है, यह तो अज्ञानता है। अधीर को धैर्य बंधाना चाहिये। यदि आप रोने लग गये तो आपने उसे कष्ट में ही डाला है। आचार्य कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं कि श्रमण! शब्दों को सुनकर न स्वयं को विचलित करो न शब्द सुनकर दूसरों को व्यथित करो। आप अहिंसा महाव्रती हो। शरीर पर आये कष्टों को सहन कर लेना और कष्ट देने वाले को भी अशुभ शब्द प्रयोग करके उसके हृदय हो विदीर्ण मत कर देना। लोक में आपकी आलोचना भी कर रहा हो, आपकी दृष्टि में पूर्ण झूठी आलोचना ही क्यों न हो रही हो, फिर भी मौनपूर्वक समता से सहना।

अभी तुम वर्तमान की पर्याय को देखना जानते हो। यह जो तुम्हारी निंदा हो रही है, उसमें भूत भी निमित्त होता है या नहीं ? वर्तमान की पर्याय में अंजना ने कौन-सा दोष कर दिया था ? वर्तमान की पर्याय में सीता ने कौन-सा दोष कर दिया था? वर्तमान की पर्याय से देखो तो वे निर्दोष थे, परंतु भूत की पर्याय को भी निहार लो। यदि कोई तुम्हारी निंदा कर रहा हो, तब भी तुम उसकी निंदा मत करो। यह निंदा हो रही है, तो यह कार्य हो रहा है, भूत की पर्याय कारण बन चुकी है। ऐसा धैर्य जिसने धारण कर लिया, वह जीव चाहे जंगल में हो, चाहे भवन में हो, चाहे श्रावक हो, चाहे श्रमण हो, कभी उसके अंतस् में क्लेश नहीं हो सकता। सिर पर वजन रखकर चल लेना सरल है, परन्तु निंदा सुनकर टाल पाना कठिन है। इस परिसर में ये दो खड़े वृक्ष बड़े पुण्यात्मा जीव हैं, मगर पापी जीव भी हैं, कैसे ? इन दोनों

ने पूर्व में घोर मायाचारी की है, इसलिये तिर्यंच पर्याय को प्राप्त हुये पापीजीव, परन्तु खड़े जिनमंदिर में हैं, इसका अर्थ यह है कि इन्होंने मायाचारी धर्मक्षेत्र में की थी। इसके संस्कार से इनको धर्मक्षेत्र में स्थान मिला है। आज इनकी छाया में जिनवाणी सुनी जा रही है। पुण्यात्मा जीव हैं। पुण्य की सत्ता में पुण्य के क्षेत्र में मायाचारी की थी, उसका फल तिर्यंच तो बने, एकेन्द्रिय बने, लेकिन इनकी छाया में तीनलोक के नाथ की देशना चल रही है।

मित्र! कोई कार्य बिना हेतु के नहीं होते और जो हो रहा है वह हेतु से हो रहा है। अपने पास आज केवली नहीं है, अवधिज्ञानी नहीं हैं, नहीं तो एक-एक की सत्यकथा सुना देते। माँ! तुम्हारी थाली में जो सेव फल आ गया है, वह ऐसे ही नहीं आ गया है। उस जीव के प्रति आपने कभी उपकार किया था, वही जीव तुम्हारा पेट भरने के लिये फल बनकर आ गया है। इसलिये आज से ये मत कहना कि बेटे का उपकार कर रही हूँ, पति का उपकार कर रही हूँ। ये व्यर्थ की बातें हैं। आप उपकार ले चुके हो, उसका बदला चुका रहे हो। चिंतन करो तो सब कषाय समाप्त हो जायेगी।

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी समयसार जी में कह रहे हैं कि न शब्दों में जाओ, न वर्णों में जाओ, न स्पर्श में जाओ, न गंध में जाओ। इन सबको वेदक भाव से देखो, इनसे विदित न होकर अनुभव करो। अनुभावक होकर अनुभाव्यभूत में मत उलझो। आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी समयसार जी गाथा 375 में कह रहे हैं कि शुभ या अशुभ तुझसे नहीं कहता है कि मुझको सुनो। श्रोत्र इन्द्रिय के विषय में आये हुए शब्द के ग्रहण करने को वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड़ प्राप्त नहीं होता। हे श्रमणो! ये श्रावक एक घंटे का भी समय निकाल कर आते होंगे, कैसे काम निबटाते होंगे, कैसे घर से छुट्टी लेकर आते होंगे? आपने तत्त्वचर्चा की जगह इधर-उधर की बातों में समय निकाल दिया तो श्रावक को कितना दुःख होगा?

जब-तक अंतरंग से आह नहीं निकले, तब-तक श्रुत का आनंद नहीं है। आह्लाद, आत्म-विशुद्धि प्रसाद। यह आत्मा आह्लाद है। यह शब्द पर के हैं, वह परज्ञेय है, परन्तु शब्द में जो प्रमेय है, उसको निजभूत होकर निज के प्रमेय को निहार रहा है। पर शब्दों को आधार बनाकर मैं बोल रहा हूँ, आपका सिर हिल रहा है, मेरे बोलने से सिर नहीं हिल रहा है, सिर तो आपकी अनुभूति से हिल रहा है। यदि आपको अनुभूति न हो तो मैं कितना ही बोलूँ, सिर नहीं हिल सकता। यदि आप निर्णय करके बैठ जाओ कि मुझको हँसना नहीं है, तो कोई कितने भी चुटकुले सुनाये, आपको हँसा नहीं सकता। आप आत्मतत्त्व को आनंदित होकर तद्रूप सुनने के लिये बैठे हो तो तुम हँसने के लिये ही बैठे हो। जिनवाणी को जो जीव आत्मकल्याण की दृष्टि से सुन रहा है, उसको भिन्न आनंद आयेगा। जिनवाणी को जो जीव सीखने की दृष्टि से सुन रहा है, उसको भिन्न आनंद आयेगा। परन्तु जो जिनवाणी को मात्र इसलिये सुन

रहा है कि देखें बोलते कैसे हैं, उसको भी आनंद आयेगा, लेकिन तीनों के आनंद भिन्न-भिन्न हैं।

श्रावक एक घंटे का समय निकालकर उपदेश सुनने आता है। मन का भाव निर्मल करने के लिये वही सुनना चाहता है, जो उद्देश्य करके आया था। ऐसे-ही हे मुनीश्वर ! आप गृहस्थी से निकल कर आये हो, धन्य हो आपके पुरुषार्थ के लिये। माँ की आँखों के आँसुओं पर ध्यान नहीं दिया आपने। पिता के भीतर की सिसकियाँ नहीं सुनी तुमने। **नारी अपने दुःख को आँसू बहाकर हलका कर लेती है। नारी की पर्याय सबसे पराधीन पर्याय है। संबंध हुआ, पराये घर में बहू बनकर पहुँचती है। वहाँ की विषमताओं से समझौता करती है। पति का वियोग हो, पुत्र का वियोग हो तो कष्ट किसको होता है? नारी को। रोता कौन है? नारी। माता-पिता सास-ससुर का वियोग हो गया तो उसी को रोना है। जीवों में रोने की कोई पर्याय है तो वह नारीपर्याय है। माँ! यदि इस पर्याय की पीड़ा से विमुख होना चाहती हो तो पहले मायाचारी से विमुख होना पड़ेगा।**

मित्र! तन्मयभूत अनुभूति किसके पास है? जो जिस पर्याय में है, वह उसी पर्यायी के पास है। गृहस्थी की पीड़ा है, अभ्यासी हो, इसलिये मुस्कुरा रहे हो। लेकिन एकांत में होते हो तो चेहरा फीका ही होता है। मेरे मित्र! तुम्हें निर्ग्रन्थ बनकर ही जीना है। आप भुजाओं से सागर पार करने वाले हो। उस क्षण की याद करो जब वैराग्य में क्या ताकत थी कि माँ के आँसू नहीं दिखे, पिता की सिसकियाँ नहीं दिखीं, दिगम्बरी दीक्षा ले ली। तुमने अपने जीवन का जीवन दे दिया। यदि समयसार से बाहर चला गया तो पूरा जीवन व्यर्थ में चला गया। जब मैं यहाँ नहीं आया था, तो सोचता था कि यह नगर कैसा होगा, लोग कैसे होंगे ? ईंट-चूने के मकान सब जगह होते हैं। सब जगह की तरह यहाँ भी लोग रहते हैं। राग-द्वेष, विषय-कषाय जो सब जगह दिखती हैं, वह यहाँ भी हैं। कुछ भी नया नहीं है। **प्रदेश-प्रदेश पर मोक्षमार्ग की व्याख्या है। प्रदेश-प्रदेश पर संसारमार्ग की व्यवस्था है। जिसकी दृष्टि मोक्ष पर है, इसको हर प्रदेश में मोक्षमार्ग दिखाई देता है। जिसकी दृष्टि कषाय में है, उसको हर प्रदेश में विषय-कषाय दिखाई देता है, संसारमार्ग दिखाई देता है। इसलिये इस भ्रम में नहीं पड़ना कि अमुक प्रदेश में रहूँगा तो साधना अच्छी होगी।** ये सब व्यर्थ की बातें हैं। किसी भी प्रदेश में चले जाना, खाने-पीने की एक-सी ही व्यवस्था है। मुख से बोलने की शब्दात्मक भाषा अलग हो सकती है, पर भावात्मक भाषा पूरे संसार में एक ही है। राग-द्वेष, मोह, वैराग्य के भाव सब जगह होते हैं। यह मत सोचना कि मेरी यहाँ साधना नहीं होती, अमुक नगर में अच्छी होगी। **यदि साधना के परिणाम साध्यभूत हो रहे हैं तो सर्वत्र साधना होगी। यदि साधना के परिणाम नहीं हो रहे हैं, तो किसी भी प्रदेश में चले जाना, आपको पाँचों पाप के साधन वहाँ भी दिखाई देंगे।** यदि आप कहें कि ज्यादा पाप हो रहे हैं, यह आपकी अज्ञानता है।

ज्ञानी! सब जगह मनुष्य व तिर्यंच हैं तो वहाँ पाँचों पाप भी हो रहे हैं। आप तीर्थंकर मंगलभूमि में प्रवेश कर रहे हो तो वहाँ भी वे ही जीव हैं। वहाँ मंगल जीव वे ही हैं जिनका भावमंगल साथ दे रहा है। अन्य के लिये तो वह सामान्य है। जो तीर्थभूमियों में भोग कर संतान को जन्म दे रहे हैं उन्हें तीव्र पाप का बंध हो रहा है। इसलिये मंदिर परिसर में कभी भी सपरिवार निवास करने का भाव मत बनाना। स्थायी निवास करने का भाव हो तो पहले ब्रह्मचारी बनना।

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं, पुण्यक्षेत्रे विनष्यति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति।।

अन्य क्षेत्र में किया हुआ पाप पुण्यक्षेत्र में नष्ट हो सकता है, परन्तु पुण्यक्षेत्र में किया गया पाप वज्रलेप के समान हो जाता है। जो क्षुधा और अन्य संज्ञाओं की पीड़ा को सहन नहीं कर पाता है, वह किसी भी क्षेत्र को नहीं देखता है, वह अपनी कषाय की ही पुष्टि करता है।

मित्र! जिस क्षेत्रभूमि में तू वर्षों से तैयारी करके हर्षित होकर द्रव्य सामग्री लेकर भगवान् के दर्शन करने के लिये जाता है, यदि वहाँ रहने लग गया तो शुभ भाव समाप्त हो जायेंगे। इसलिये दूरी पर रहकर ही वंदना करना। आजकल तीर्थक्षेत्रों में सर्व भौतिक सुविधाओं से संपन्न फ्लेट बनने लगे हैं। रागी, लोभी जीवो! इतना तीव्र राग कर लिया कि तीर्थभूमियों में व्यापार करने जा पहुँचे। सम्मेदशिखर जी की पवित्रता क्यों समाप्त हो रही है? पहले लोग तीर्थयात्रा पर जाते थे तो कितनी तैयारी से जाते थे। अब तो पर्वत पर ही दुकानें लग गई हैं, लोग वहीं खाने-पीने लगे हैं। **तुम साधनों को बढ़ाकर साधना की बात कर रहे हो, पर साधन बढ़ने से कषाय ज्यादा बढ़ रही है, साधना कम हो रही है।** यदि साधना के परिणाम हैं तो तीर्थभूमियों में वी.आई.पी. व्यवस्था नहीं होना चाहिये। अन्यथा इसके वहाँ भी हीन भाव जाग्रत हो जाते हैं। विशिष्ट पुरुष आया तो कमरा खोल दिया और सामान्य लोग आये तो आपने रहने को जगह भी नहीं दी। तीर्थभूति में वंदना के लिये गया जीव बंध को प्राप्त हो गया। बंधभाव चल रहा है, तो आप वीतरागी नहीं हो, अपने परिणामों से पूछो।

आचार्यभगवन् गाथा में कह रहे हैं कि हे श्रमण! अब आप श्रावक नहीं हो, तुम योगीश्वर हो। **''असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणदि सुणसु मं ति सो चेव''** चाहे अशुभ शब्द हो, चाहे शुभ शब्द हो, 'आओ मुझे सुनो' ऐसा शुभ शब्द भी नहीं कहता और अशुभ शब्द भी नहीं कहता है। शब्द जड़ है, शब्द ने कब कहा कि आप आओ मुझे सुनो? कहीं संगीत चल रहा है, कहीं टेलीविजन चल रहा है, आवाजें चल रही हैं, वे आवाजें तो अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में परिणमन कर रही हैं, उससे तेरे में उत्पाद-व्यय कहाँ हुआ ? किसी ने आपको नंगा बोल दिया तो उसी ने बोला है, शब्दों ने यह कब कहा कि मुझे सुनो?

किसी ने आपकी प्रशंसा कर दी। जो कह रहा है, जिन शब्दों से तेरी प्रशंसा हो रही है, वे शब्द कब कह रहे हैं मुझे सुनो? **''ण य एदि विणिग्गहिदुं सोदविसयमागदं सद्दं''** उन शब्दों को ग्रहण करने के लिये आत्मा भी नहीं जाता। यहाँ मैं बैठा हूँ, दूर बैठा हूँ, दूर से किसी ने कुछ बोला तो मेरी आत्मा के प्रदेश उसके शब्दों को पकड़ने गये क्या ? नहीं गये। शब्द भी मेरे से कहने नहीं आये कि आप मुझे मत सुनो। शब्द आपके पास जाते नहीं हैं और शब्द भी श्रोत इन्द्रिय को बुलाते नहीं। इसलिये हे जीव! जो इन्द्रियाँ हैं, वह तेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है, वह सोपाधिक दशा है, कर्मसापेक्ष दशा है। आप तो शब्दातीत हो, इसलिये पर के शब्दों को सुनकर हर्ष-विषाद मत करो।

मित्र! शब्द पर इतना ध्यान इसलिये दिया जा रहा है, क्योंकि शब्द जीव को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली वस्तु है। कुछ दिया नहीं, कुछ लिया नहीं, आगबबुला हो गये। अमुक व्यक्ति ने अमुक व्यक्ति को गाली दी। वह तुम्हारे सामने ही नहीं है। अन्य पुरुष ने आकर तुमसे कहा, आप भड़क गये। पुद्गल की वर्गणाओं को देखकर तुम पुरुष पर कुपित हो रहे हो। तुम इस बात को भी भूल गये कि भूल में भगवान् को नहीं देख पा रहे हो और तुम जिनेन्द्र के भूत में भगवान् को नहीं देख पा रहे हो। आप दिगम्बर मुनि में भगवान् को नहीं देख पा रहे हो। तुम्हारी देखने की दृष्टि खोटी है। वस्तु तो जैसी है, वैसी ही है।

मित्रो! इतना ध्यान रखना कि पर के मुख से प्रकट हुये शब्दों को सुनकर शीघ्र ही अपनी कर्ण इन्द्रियों में प्रवेश कराकर हृदय-आँगन को कुटिल नहीं करना। आँगन तेरा बिगड़ेगा, बोलने वाले का क्या? जो है, सो है। लोक नहीं चाहता कि तू अपनी माँ से भी अच्छे से बोले। वो तो यही चाहते हैं कि उनके घर में भंडाफोड़ हो जैसा उनके घर में है; परन्तु भंडाफोड़ करना या न करना यह लोक के हाथ में नहीं है, तेरे हाथ में है। कभी भी शीघ्र निर्णय मत लेना। अशुभ-अशुभ शब्द भी तेरे बारे में बोले गये हों अमुक जगह, तब भी मेरे मित्र! सुनकर सीख देने मत पहुँच जाना और उसके प्रति अशुभ सोचना भी प्रारंभ मत कर देना। कहीं आपको मिल जाये तो बोलना बंद मत कर देना। आप पहले ही जैसा व्यवहार करना। बाद में पता चला कि कोई बीच में गीदड़ तो नहीं था। आपने पंचतंत्र की कथायें सुनी होंगी। सिंह और बैल की कथा- एक व्यापरी का बैल जंगल में छूट गया। वह जंगल में स्वतंत्र होकर घूमने लगा और मस्त हो गया। एक दिन आवाज लगाई तो जंगल में गूँज गई। जिस घाट पर वह पानी पीता था, उसके दूसरे घाट पर सिंह पानी पीता था। गीदड़ देख रहा था कि आवाज सुनकर सिंह पानी पिये बगैर लौट आया गीदड़ ने जाकर कहा- महाराज! आप पानी पीये बिना क्यों आ गये? सिंह बोला-मेरे समान आवाज वाला कोई और है क्या? गीदड़ बोला-आप चाहो तो मैं आपकी मित्रता करा सकता हूँ। उसने सिंह की बैल से मित्रता करा दी। सिंह तो सम्राट था, उसने बैल को मंत्री बना दिया

और उसे भोजनव्यवस्था का काम सौंप दिया। मंत्री शुद्ध शाकाहारी होता है, उसने सारे मांसाहारी जीवों का भोजन बंद कर दिया। गीदड़ रोने लगा, क्योंकि वह मांसाहारी था। वह भूखे मरने लगा। एक दिन वह सिंह के पास गया और बोला कि महाराज! आपने बैल को मंत्री बना दिया है, परन्तु अब वह आपका राज्य छीनना चाहता है। जब कोई जड़ खोद रहा हो, जमीन खोद रहा हो, तो समझना युद्ध करना चाहता है। फिर वह गीदड़ बैल के पास पहुँचा, बोला-मंत्री जी! आपको मालूम है, नीति है कि नाखून वालों से थोड़ा दूर रहना चाहिये। आज महाराज आपका शिकार करना चाहते हैं। बैल बोला-विश्वासघात तो नहीं हो सकता। बोला-मानिये। कैसे मानूँ ? जब वह नेत्र लाल कर रहे हों, लम्बी श्वास खींच रहे हों और अपने पंजों की ओर देख रहे हों, तो आप समझ जाना कि आपका शिकार करना चाहता है। इस तरह दोनों को भड़का दिया, तो दोनों लड़ पड़े, बैल के प्राण चले गये।

ऐसे-ही मित्रो! **जो गीदड़वृत्ति के लोग होते हैं, वे सज्जनों के बीच में शांति देखना पंसद नहीं करते हैं। साधुपुरुषों को एकसाथ देखना पसंद नहीं करते । ऐसे पुरुषों से सँभल कर रहना, लेकिन उनके प्रति भी अशुभ भाव मत लाना।** जिनका स्वार्थ निहित होता है, उनको हिंसा या अहिंसा से प्रयोजन नहीं होता। उनको तो लगता है कि मेरी कषाय पूर्ण होना चाहिये। **मित्रो! जैसे पानी छानकर पीते हो, ऐसे ही भावों को भी छानकर बोलो। भाषा छानकर सुनो, भावों को भी छानो। पानी छानकर पीओगे तो द्रव्यहिंसा से बचोगे? परिणाम छानकर रखोगे तो भाव हिंसा से बचोगे।** अपने भावों को विकृत मत करना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

उत्थानिका : इन्द्रियातीत आत्मा

गाथा : *असुहं सुहं व रूवं ण तं भणदि पेच्छ मं ति सो चेव।*
ण य एदि विणिग्गहिदुं चक्खुविसयमागदं रूवं ।।376।।

संस्कृत छाया: *अशुभं शुभं वा रूपं न त्वां भणति पश्य मामिति स एव।*
न चैति विनिर्ग्रहीतुं चक्षुर्विषयमागतं रूपम्।।376।।

अन्वयार्थ : (अशुभं शुभं वा) अशुभ अथवा शुभ (रूपम्) रूप (त्वां न भणति इति) तुमको ऐसा नहीं कहता कि (मां पश्य) तू मुझको देख (च) और (चक्षुर्विषयमागतं रूपं) चक्षु इन्द्रिय के विषय में आये हुए रूप के (विनिर्ग्रहीतुं) ग्रहण करने को (स एव) वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड़ (न एति) प्राप्त नहीं होता।

गाथा: *असुहो सुहो व गंधो ण तं भणदि जिग्घ मं ति सो चेव।*
ण य एदि विणिग्गहिदुं घाणविसयमागदं गंधम्।।377।।

संस्कृत छाया: *अशुभः शुभो वा गंधो न त्वां भणति जिघ्र मामिति स एव।*
न चैति विनिर्ग्रहीतुं घ्राणविषयमागतं गंधम्।।377।।

अन्वयार्थ : (अशुभः वा शुभः) अशुभ अथवा शुभ **(गंधः)** गंध **(त्वां न भणति इति)** तुमको ऐसा नहीं कहता कि **(मां जिघ्र)** तू मुझें सूंघ **(च)** और **(घ्राण विषयं आगतं गंधं)** घ्राण इन्द्रिय के विषय में आये हुए गंध को **(विनिर्ग्रहीतुं)** ग्रहण करने को **(सः एव)** वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड़ **(न एति)** प्राप्त नहीं होता।

समय देशना

भव्य बंधुओ! आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज श्री समयसार में ध्रुवज्ञायक-स्वभावी भगवानात्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। योगीजन शब्द आदि विषयों से अशब्द स्वभावी आत्मा को भिन्न देखते हैं। **जो परम अद्वैत धारा है, जिसमें पर का प्रवेश नहीं, पर में निज का प्रवेश नहीं। वह अखंड अद्वैत धारा है। जगत् में जितने द्रव्य हैं, स्वभाव दृष्टि से सभी अद्वैत हैं। अद्वैतवादी की दृष्टि में सारा विश्व ब्रह्मवत् है। यथार्थ में अद्वैत का अर्थ पर में पर का एकत्व नहीं है। पर में पर का निःसत्व नहीं है। दूध में मिश्री का घोल करना, वह अद्वैत नहीं है, वह मिश्रधारा है। मैं ईश्वर का अंश हूँ। विश्व ईश्वरमय है। यह यथार्थ में अद्वैत की परिभाषा नहीं है। अद्वैत जो है, मेरा चेतन द्रव्य मैं ही हूँ।**

धर्मद्रव्य धर्मभूत ही है। धर्मद्रव्य में अधर्मद्रव्य का मिश्रण नहीं है। आकाश द्रव्य शुद्ध आकाश द्रव्य है। आकाश में परद्रव्य का मिश्रण नहीं है। कालद्रव्य कालद्रव्यभूत है। कालद्रव्य में परद्रव्य का मिश्रण नहीं है। पुद्गल द्रव्य पुद्गलभूत है। पुद्गल द्रव्य में स्वभाव से भिन्न द्रव्य का मिश्रण नहीं है। पुद्गल द्रव्य जीव के द्वारा उत्पन्न नहीं किया गया। जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्य से निर्मित नहीं है। **प्रत्येक द्रव्य स्वभाव से अद्वैत है।** अद्वैत से तात्पर्य पर संबंध से भिन्न 'मैं एकमात्र अखंड ध्रुव ज्ञायक-स्वभावी हूँ' श्रद्धा-श्रद्धेय संबंध की दृष्टि से परमात्मा मेरे आराध्य हैं, मैं आराधक हूँ। यह द्वैत भक्ति है। परन्तु स्वभाव दृष्टि से परमात्मा मेरी आत्मा नहीं है। आत्मा परभूत परमात्मा नहीं है। मेरी आत्मा ही परमात्मा बनेगी। मेरी आत्मा ही निज स्वभाव में परमात्मा है, अद्वैत धारा। लोक का अद्वैत और जैनदर्शन का अद्वैत भिन्न है। जैनदर्शन का अद्वैत शुद्ध स्वभाव है।

ब्रह्म शब्द का प्रयोग करो तो ब्रह्म स्वभाव ही आत्मा का ध्रुव स्वभाव है। 'ब्रह्मस्वरूपोहम्' जो मेरा अखंड ब्रह्मस्वरूप है, वह भिन्न स्वरूप मेरी कल्पना का ब्रह्म नहीं। मेरा ब्रह्म अर्थात् आत्मब्रह्म। ऐसा जो आत्मब्रह्म है, वह मेरी देह से भी भिन्न है।

आप प्रश्न कर सकते हो कि कानों से सुन रहा हूँ, परन्तु सुननेवाले कान नहीं हैं। सुननेवाला कोई दूसरा है। कर्ण तो कर्ण हैं, कर्ण कर्ता नहीं हैं, सुननेवाला श्रोत इंन्द्रिय नहीं है। श्रोत इन्द्रिय के माध्यम से सुननेवाला आत्मा है। परद्रव्यों के संयोग से, पुद्गल-पुद्गल के संघटन से पुद्गल-पुद्गल के माध्यम से पुद्गल की ही पर्याय उत्पन्न करता है। पुद्गल, पुद्गल में पुद्गल पर्याय को ही जन्म देगा। पुद्गल कभी जीवपर्याय को जन्म नहीं देगा। आप ताली बजाकर कोई जीव निकालो। ताली बजाओगे तो आवाज ही आयेगी। पुद्गल से संघटन से जो उत्पन्न होगा वह पुद्गल ही होगा।

जब पुद्गल से पुद्गल प्रगट होता है, तो हे जीव! तू प्रभावित क्यों होता है? तेरा प्रभावित होने का जो कारण है, वह तेरे भीतर का राग है द्वेष है। शब्दों ने तुझे प्रभावित नहीं किया है। संगीत सुनने जाता है। पुद्गल के संघटन से पुद्गल की पर्याय प्रकट हो रही थी। तू पुद्गल की पर्याय में आनंदित होकर कर्म के बंध को प्राप्त हो रहा है। धन्य हैं वे योगीश्वर जो अपने ज्ञान में सितार, वीणा आदि की धुन को पुद्गल की पर्याय को देखते हुए यह चिंतन में ला रहे हैं कि यह तो पुद्गल द्रव्य की पर्याय का सहज परिणमन चल रहा है। इसमें मुझे हर्षित होने की क्या आवश्यकता? विषाद करने की क्या आवश्यकता ? शुभ शब्द हैं, तब भी मेरे नहीं। अशुभ शब्द है, तब भी मेरे नहीं हैं। कोई मुझे मधुर शब्दों में संबोधित करे तब भी वह मेरे नहीं हैं। अशुभ से अशुभ शब्दों में दुत्कारे, तब भी मेरे नहीं हैं। शब्दों ने मेरे में प्रवेश किया ही नहीं है। शब्दों में प्रवेश को प्राप्त हुआ ही नहीं तो शब्दों को सुनकर हर्ष-विषाद किस बात का? यह सिद्धांत द्रोपदी को पता चल गया होता तो महाभारत नहीं होता।

यहाँ तो सभी जीव प्रसन्नचित्त दिखाई देते हैं। जिसे आप सुनना चाहते हो, उसके लिये पूरी रात्रि भी निकल जाये तो थकते नहीं हो। स्वप्रशंसा में, पर की निंदा में जीव थकान नहीं महसूस करता। तनिक-सी पर प्रशंसा हो जाये तो थकने लगता है। **पर प्रशंसा सुनने के लिये तेरे पास शांति नहीं है, निज निंदा सुनने की सामर्थ्य नहीं है। जब-तक पर प्रशंसा, निज निंदा सुनने की सामर्थ्य नहीं है, तब-तक साधुस्वभाव नहीं है।** परनिंदा और आत्मप्रशंसा सुनने के लिये तो सारा जगत् खड़ा हुआ है।

साधु पुरुष और असाधु पुरुष में आप व्यवहार से अंतर देखना चाहो तो **जिसको पर प्रशंसा सुनने में घबराहट होती हो, निज निंदा सुनने में बेचेनी होती है, वह असाधु पुरुष है। अपनी प्रशंसा सुनने में जिसको आनंद आता है, पर निंदा सुनने में आनंद आता है वह असाधु पुरुष है। जिसको पर प्रशंसा में; निज की निंदा में हर्ष हो न विषाद हो, उसका नाम साधुपुरुष है।** साधुजन पाँच इन्द्रियों के विषयों के त्याग को बोलते हैं, लेकिन आप अधिकांशतः संयम देखते हो तो मात्र खाने-पीने की वस्तुओं में संयम दिखता है। वह तो होना ही चाहिए, लेकिन रसना इन्द्रिय के संयम को मात्र संयम मत समझना। रसना इन्द्रिय के असंयम से बचोगे, तो रसना इन्द्रिय का संयम ही होगा, लेकिन कर्ण इन्द्रिय का संयम नहीं होगा।

ज्ञानियो! एक जीव ने रसना इन्द्रिय पर इतना गहरा संयम कर लिया कि जीवनपर्यन्त नीरस भोजन किया, मास में 15-15 अनशन तप कर लिये, परन्तु कर्ण इन्द्रिय का संयम किंचित् भी नहीं है। जरा भी किसी ने प्रशंसनीय शब्द बोल दिया तो अहो! मेरे सिवा कोई नहीं है। महाराज! प्रशंसा पराधीन परमुखी है। उसमें दो पर हैं, एक यशःकीर्ति नामकर्म, वह पर वस्तु है, दूसरा पर मुख वह भी पर वस्तु है। यशःकीर्ति का उदय होगा तो पर के मुख से तुझे प्रशंसा सुनने को मिलेगी। यशःकीर्ति नामकर्म का उदय नहीं है तो पर के मुख से भी तेरी प्रशंसा सुनाई नहीं पड़ेगी। जैसे प्रशंसा परसापेक्ष है, ऐसे-ही निंदा भी परसापेक्ष है।

मित्र! जो निंदा मेरी हो रही है, वह भी मैं नहीं हूँ। निंदा जो कर रहा है, वह भी मैं नहीं हूँ। जिस कर्म के उदय से हो रही है , वह कर्म मैं नहीं हूँ। जो जीव कर रहा है वह भी मैं नहीं हूँ। जिन कानों से सुनाई दे रहा है, वह कान भी मैं नहीं हूँ। जिस नाम को लक्ष्य करके निंदित शब्द का प्रयोग हो रहा है, वह नाम भी मेरी ध्रुव आत्मा का नहीं है। जिसके लिये नाम दिया गया है, वह विशुद्धसागर है। जब मैं इन सबसे युक्त हूँ ही नहीं तो मेरी निंदा हुई कहाँ? कितने आनंद में जी रहा है योगी। उसे अपनी निंदा दिखाई ही नहीं दे रही है तो वह रोष क्यों करेगा? 'ठीक, निंदा नहीं तो स्तुति को स्वीकार कर लो।' नहीं। मुमुक्षु! वही स्तुति में भी लगा दीजिये कि स्तुति भी मेरी नहीं है तो स्वीकृति किस बात की ?

निंदा में रोष नहीं, प्रशंसा में तोष नहीं, यही योगी की योगधारा है।

ज्ञानी! योग से तात्पर्य अग्नि में बैठकर तपना नहीं है। **अपने मन-वचन-काय को एकाग्र कर लेना, उसका नाम योग है।** योग पर जीव नहीं पहुँच सका तो अज्ञ प्राणी ने अनेक प्रकार के बहिरंग क्रियाकांड स्थापित कर लिये। मात्र देह के शोषण को ही तपस्या मान लिया, कषाय का पोषण छोड़ा नहीं। **देह का शोषण और कषाय का पोषण जहाँ हो रहा है, वहाँ कोई तपस्या नहीं है। शरीर को सुखाने के बहुत सारे साधन हैं, शरीर मात्र सुखाना, यह न साधना है, न मोक्षमार्ग है।** कषाय को सुखाइये। कषाय को कृष कीजिये। कषाय कृष करोगे तो इच्छाओं को कृष करना पड़ेगा, इच्छाओं को कृष करोगे तो शरीर कृष होगा-ही-होगा। क्यों ? इच्छा तो बहुत अच्छा खाने की होती है। तुम बहुत अच्छा खाना नहीं दोगे तो शरीर तो सूखेगा ही । वह पचास बार खाना चाहता है, तुम एक बार दोगे और एक बार में भी प्रासुक दोगे, प्रासुक में भी नीरस में भी नीरस, नीरस में भी अल्प, तो शरीर को सूखना ही होगा। मात्र शरीर को सुखाकर बैठ जाना, यह कषायों को सुखाना नहीं है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि **हे साधक ! कषायों के पोषण से अपनी दृष्टि को मोड़ दो। निंदा-प्रशंसा से अपनी आत्मरक्षा कर लो।** रक्षा परसाक्षेप नहीं है स्वसापेक्ष है। व्यर्थ की भाषण बाजी है, बंद कर लो। 'उन्होंने ऐसा कह दिया तो मेरे भाव ऐसे हो गये' सब व्यर्थ की बात है। हवाओं के चलने से दीपक का बुझना नियत है? खुले आकाश में भी आप दीपक को हाथ की ओट करके ले जाते हो। जिस दीपक पर काँच रखा हो, उसे वायु कहाँ बुझा सकती है? नहीं बुझा सकती। हे ज्ञानियो! वायु के वेग को दूर नहीं किया जा सकता तो अपने दीपक पर काँच रख दो। संसार के शब्दों को दूर नहीं किया जा सकता, अपने हृदय पर, कर्ण इंन्द्रिय पर विवेक ज्ञान का काँच रख दो, यह मेरे भावों को नहीं बुझा सकते हैं। आप हवा को बंद करना चाहते हो, आप तूफान को बंद करना चाहते हो। वे अज्ञानी साधक हैं जो तूफान/हवा को बंद कर अपना दीपक सुरक्षित रखना चाहते हैं। जो ज्ञानी साधक होगा, वह तूफान को बंद करने नहीं जायेगा।

हे जीव! अपनी चैतन्य ज्योति को भेदज्ञान से ढक कर चलो। जगत् के शब्दों के तूफान तेरी आत्मा का कुछ भी नहीं कर पायेंगे। जो गाली दे रहा है, उसका सुख है, मेरा कुछ नहीं। वह जो पूजा करने वाले पर प्रसन्न हो रहा है या निंदा करने वाले पर नाराज हो रहा है, वह साधु ही नहीं है।

अर्घावतारन असिप्रहारन में सदा समता धरन

चाहे अर्घ्य चढ़ाये, चाहे तलवार का वार करे, सब में समता धारण करे, उसका नाम साधु है। यह सारा कथन योगी के योग में स्थित होने के लिये है।

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी गाथा 376 में कह रहे हैं कि चाहे शुभ हो, चाहे अशुभ हो, आपको इष्ट दिखाई दे रहा है, वह आपके लिये शुभ है। जो अनिष्टभूत दिखाई दे रहे हैं, वह अशुभ हैं। जगत् में नाना रूप दिखाई दे रहे हैं। रूपों में क्रूरता, शूरता दिखाई दे रही है। जगत् के सारे रूपों को देखकर अब इस राग-द्वैष को विलीन कर दो। मेरा निज का रूप बदल गया तो जगत् के रूप शाश्वत कैसे? खुली आँखों से दूसरों के रूपों को देखा। खुली आँखों से सारे जगत् को देख डाला। जहाँ आँख जाना नहीं चाहती थी, वहाँ भी तूने आँख खोलकर देख लिया। जितना तूने रसना और स्पर्श इन्द्रियों से भोग नहीं किया, उतना आँखों से भोग डाला। रसना, स्पर्श के भोगी को लोक में दुराचारी कह देते हैं, परन्तु आड़ी-तिरछी आँखों से कितने चेहरों को तूने निहार डाला? न लोक देख पा रहा है, न लोग देख पा रहे हैं, परन्तु कर्म तुझे देख रहे हैं सर्वज्ञ के ज्ञान में झलक रहा है और तू स्वयं समझ रहा है कि मैंने क्या देखा है। मंदिर आया था भगवान् को देखने के लिये, वहाँ भी नर ने परनारी को निहार लिया, नारी ने परनर को निहार लिया। हजार दो हजार की चरणपादुका खरीद कर लाये और मंदिर के दरवाजे पर रखकर आ गये। धोखा दे रहे थे प्रभु को और वहीं से देख रहे थे जूतों को कि रखे हैं या नहीं। कहाँ तुम्हारी परिणति है? मंदिर में आकर तुम किसे देख रहे थे ? इन आँखों से तुमने क्या नहीं कर डाला।

कुछ लोग मंदिर में भगवान् की भक्ति करने को आते हैं और कुछ लोग पुजारियों की जेब में से धन निकालने आते हैं और कुछ नहीं मिले तो चरणपादुका ही उठाकर ले जाते हैं। इससे ध्वनित होता है कि जीव कितने ऊँचे चारित्र का पालन कर सकता है और कितने नीचे तक गिर सकता है। ज्ञानी! रावण का घात कैसे हो गया ? देह को देखकर तुम कह देते हो कि लक्ष्मण के बाण लग गये, परन्तु सत्यता तो कुछ-और है। हे लंकेश! द्रव्यप्राणों का घात तेरा समरभूमि में हुआ है, परन्तु तेरे शील प्राणों का घात उसी दिन हो चुका था जिस दिन तूने सीता के रूप को देखा था। तू द्रव्यप्राणों से जी अवश्य रहा था, लेकिन तेरे संयम के प्राण उसी दिन नष्ट हो चुके थे। रविषेण स्वामी मिल गये तो रावण की बात पता चल गई। आपकी बात को बताने वाला कोई नहीं है, परन्तु स्वयं आपको तो पता है। आप अपनी कुल-परम्परा का ध्यान रखना।

ज्ञानी! शुभरूप हो अथवा अशुभरूप हो, आप मुझे देखो। ऐसा रूप ने कभी तेरे से नहीं कहा और मेरे नेत्र भी रूप को देखने के लिये कभी बाहर नहीं आये। मेरी आँखें, मेरी आत्मा भी किसी रूप के पास नहीं गई कि मैं इसे पकड़ लाऊँ। जब आत्मा रूप में नहीं गई, रूप आत्मा में नहीं आया, तो मेरे मित्र! तुम रूपों पर राग -द्वेष क्यों कर रहे हो? रूप भिन्न है, आँख भिन्न है। अभी स्वाध्याय करने को कहा जाये तो कहोगे आँखें दर्द कर रही हैं, नींद आ रही है। अशुभ में नींद नहीं सताती, शुभ में नींद सताती है। यह तीव्र अशुभ कर्म का उदय है।

जब संसार की पत्नि जिसे तूने चुना है वह अपने पति को अपने चारित्र से पतित देखती है तो उसे स्वीकार करना पसंद नहीं करती। यही सत्यता है। हे निर्ग्रन्थ तपोधन! जब संसार की नारी अपने दुष्चरित्र पति को अच्छी आँख से देखना पसंद नहीं करती, फिर तुम तो संयम और शील के धुरन्धर हो, मुक्तिवधू के कंत हो, तुम्हारे संयम में यदि किंचित् भी मृदुलता होगी तो मुक्तिवधू तुमको देखना पसंद नहीं करेगी।

आचार्य समंतभद्र स्वामी 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' में लिख रहे हैं-

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव सुत मिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता-जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः।।

जो कुलवंती कन्या है, शीलवंत पुरुष के गले में ही वरमाला डालती है, कुशील के गले में माला नहीं डालती। ऐसे-ही मित्र! यह मुक्तिवधू जो है, वह कुशील के गले में वरमाला नहीं डालती। वह कन्या इतनी पुनीत है कि वह अपने वर को चुनेगी तो शीलवंत को ही चुनेगी। जो अठारह हजार शील की पूर्णता को प्राप्त करते हैं, उसे वह शीघ्र ही अपना वर बना लेती है। कोई आडम्बर साथ नहीं देंगे। सम्पूर्ण आडम्बर कुशील हैं, स्वरूप लीनता ही सुशील है।

जो चक्षु का विषय है, उसको चक्षु ने जाकर देखा नहीं है, चक्षु गया नहीं रूपों के पास। आप रूपों के विषय में राग-द्वेष करना छोड़ दो। आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी गाथा 377 में कह रहे हैं कि घ्राण इन्द्रिय का विषय गंध है। किसी ने सेन्ट खरीदा, परन्तु वह कितनों को भोगी बना देता है। जो कान में इत्र का फाहा लगाये है, वह स्वयं तो सूँघ ही रहा है और अनेकों को भोगी बना रहा है। युवाओ। तुम कितने प्रकार के सुगंधित तेल लगाकर घूम रहे हो। यह पर घ्राण इन्द्रिय मात्र को प्रभावित करने के लिये नहीं है। उसे अपनी ओर आकर्षित करने की चाहत है। अनेक प्रकार के सेन्ट, तेल आदि सुगंधित द्रव्य हैं, वे शीलरूपी चिड़िया को फँसाने के जाल हैं। एक ही इन्द्रिय से अब्रह्म नहीं होता, पाँचों इन्द्रिय से अब्रह्म होता है। जब तीक्ष्ण गंध घ्राण इंद्रिय में प्रवेश करती है तो जीव के भाव उद्वेलित होने लगते हैं। मित्र! सेन्ट आदि का प्रयोग नहीं करना। इसके निर्माण में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती है।

दिगम्बर आम्नाय में वीतरागी अरहन्त की आराधना में न इत्र है, न सेन्ट है। कुछ भी नहीं है। गंध चाहे शुभ हो चाहे अशुभ हो, गंध कभी नहीं कहती आओ मुझे सूँघो। यहाँ पुष्पवाटिका में पुष्प लगे हुए हैं, इन्होंने कभी नहीं कहा आकर कि मुझे सूँघो। मेरे मित्र! पुष्पों को दोष मत दो। तेरा उपादान ही विकृत हुआ है तो तू फूल सूँघने गया। इन फूलों को मत सूँघो। फूल में छोटे-छोटे कीटाणु हैं। तुमने नाक रखकर सूँघा, वह सब तेरे अंदर चले गये। कह रहा है कि मैं रात्रिभोजन नहीं करता हूँ और रात्रि में फूल

सूँघ रहा था। आँखों में दवाई डाल रहा है, वह कंठ में उतरना ही है। रात्रि में ड्राप डाल रहा है और कह रहा है कि रात्रि भोजन का त्याग है।

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि शुभ-अशुभ गंध है, वह कभी नहीं कहती कि आओ मुझे सूँघो और यह आत्मा भी उनको ग्रहण करने के लिये घ्राण के पास नहीं जाती। उसके पास मेरा चैतन्य भी नहीं पहुँचा है। ज्ञानियो! गंध स्वभाव भी जीव का धर्म नहीं है। गंध को गंध करना आत्मा का धर्म नहीं है। आत्मा शब्द शून्य है। आत्मा रूपों से शून्य है। आत्मा गंध से शून्य है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

उत्थानिका : **आत्मा पर के प्रति उदासीन है।**

असुहो सुहो व रसो ण तं भणदि रसय मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं रसणविसय मागदं रसं ।।378।।
असुहो सुहो व फासो ण तं भणदि फुससु मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं कायविसय मागदं फासं ।।379।7
असुहो सुहो व गुणो ण तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसय मागदं तु गुणं ।।380।।
असुहं सुहं व दव्वं ण तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं दव्वं।।381।।
एयं तु जाणिऊण उवसमं णेव गच्छदे मूढो।
णिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो ।।382।।

संस्कृत छाया : *अशुभः शुभो वा रसो न त्वां भणति रसय मामिति स एव।*
न चैति विनिर्ग्रहीतुं रसनविषयमागतं तु रसम्।।378।।
अशुभः शुभो वा स्पर्शो न त्वां भणति स्पर्श मामिति स एव।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं कायविषयमागतं स्पर्शम् ।।379।।
अशुभः शुभो वा गुणो न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं तुगुणम्।।380।।
अशुभं शुभं वा द्रव्यं नत्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव।
न चैति विनिर्ग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं द्रव्यम्।381।।
एतत्तु ज्ञात्वा उपशमं नैव गच्छति मूढ़ः।
विनिर्ग्रहमनाः परस्य च स्वयं च बुद्धिं शिवामप्राप्तः ।।382।।

अन्वयार्थ : **(अशुभः वा शुभः)** अशुभ अथवा शुभ **(रसः)** रस **(त्वां न भणति इति)** तुमको ऐसा नहीं कहता कि **(मां रसय)** तू मुझे आस्वाद कर **(च)** और **(रसनविषयं आगतं तु रसं)** रसना इन्द्रिय के विषय में आये हुए रस के **(विनिर्ग्रहीतुं)** ग्रहण करने को **(स एव)** वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड़ **(न एति)** प्राप्त नहीं होता ।।378।।

(अशुभः वा शुभः स्पर्शः) अशुभ अथवा शुभ स्पर्श **(त्वां न इति भणति)** तुमको ऐसा नहीं कहता कि **(मां स्पर्श)** तू मुझे स्पर्श कर **(च)** और **(कायविषयं आगतं स्पर्शं)** स्पर्श इन्द्रिय के

विषय में आये हुए स्पर्श के **(विनिर्ग्रहीतुं)** ग्रहण करने को **(सः एव)** वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड़ **(न एति)** प्राप्त नहीं होता ।।379।।

(अशुभः वा शुभः) अशुभ अथवा शुभ **(गुणः)** गुण **(त्वां न भणति इति)** तुमको ऐसा नहीं कहता कि **(मां बुध्यस्व)** तू मुझको जान **(च)** और **(बुद्धिविषयं आगतं तु गुणं)** बुद्धि के विषय में आये हुए गुण के **(विनिर्ग्रहीतुं)** ग्रहण करने को **(सः एव)** वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड़ **(न एति)** प्राप्त नहीं होता।।380।।

(अशुभं वा शुभः) अशुभ अथवा शुभ **(द्रव्यं)** द्रव्य **(त्वां न भणति इति)** तुमको ऐसा नहीं कहता कि **(मां बुध्यस्व)** तू मुझको जान **(च)** और **(बुद्धिविषयं आगतं द्रव्यं)** बुद्धि के विषय में आये हुए द्रव्य के **(विनिर्ग्रहीतुं)** ग्रहण करने को **(सः एव)** वह आत्मा भी अपने स्वरूप को छोड़ **(न एति)** प्राप्त नहीं होता ।।381।।

(मूढ़ः) मूढ़ जीव **(एतत्तु ज्ञात्वा)** ऐसा जानकर भी **(उपशमं नैव गच्छति)** उपशम भाव को नहीं प्राप्त होता **(च)** और **(परस्य विनिर्ग्रहमनाः)** पर के ग्रहण करने का मन करता है **(च)** क्योंकि स्वयं **(शिवां बुद्धिं अप्राप्तः)** आप कल्याण रूप बुद्धि को सम्यग्ज्ञान उसको नहीं प्राप्त हुआ है।।382।।

समयदेशना

भव्य बंधुओ! आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रंथराज समयसार जी में ध्रुवज्ञायक स्वभावी भगवान्-आत्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। त्रिकाल में निज स्वभाव से परिणत चैतन्य ज्ञानघन आत्मद्रव्य स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इन द्रव्यों से भिन्न, पर कर्तृत्व से शून्य, पर के परिणमन में अपरिणामी है। निज के स्वभाव में परिणामी है। ऐसे आत्मद्रव्य में परबुद्धि से उत्पन्न हुए रागादिक भावों को किंचित् भी नहीं स्वीकारा। अपने निज भावों से परभावों में परिणमन कराने में किंचित् भी कारण नहीं बना।

एक सामान्य मेहमान के आने पर घर का वातावरण बदल जाता है। प्राचीन काल में मेहमानी बहुत होती थी। अब छोटा परिवार रहने से शुष्कता आ गई है। आपकी पत्नि खाना बना लेती है और आप बैठकर खा लेते हो। जब कभी महाराज आते हैं तो बड़े आदर होने पर वातावरण पवित्र हो जाता है। जो लड़ने के परिणाम थे, वे समाप्त हो जाते हैं। अब आप यहीं भोजन करके जाना। वह मना भी नहीं कर पाते हैं। जैसे ही वह भोजन करते हैं, उनके भाव बदल जाते हैं, झगड़ा समाप्त। जिन समाजों में लम्बे समय से साधुओं के चातुर्मास नहीं हो रहे हैं लम्बे समय से साधु नहीं पहुँच रहे हैं, वह समाज शुष्क

हो जाती है। श्रावकों को प्रतिवर्ष सरसता चाहिये तो साधुओं को अपने नगर में बुलाते रहना। साधक को भी चाहिये कि वो साधना का रस लूटे और श्रावक भक्ति का रस लूटें। महाराज तो बनो, पर ऐसे नहीं कि लोग दिन गिनने लगें कि कब जायेंगे ? व्यर्थ के कार्यक्रमों में मत उलझो। इन सबसे दूर होकर अपनी साधना करो। जहाँ प्रपंचों में लिप्त एक साधक के लिये भी लोगों को कठिनाई महसूस होती है वहीं अपने समरस में जीने वाले पचास साधु भी आ जायें तो पता नहीं चलता कि साधु हैं भी कि नहीं।

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि चाहे शुभ अथवा अशुभ रस हो, न शुभ रस कहते हैं, न अशुभ रस कहते हैं कि आओ मुझे चख जाओ। कभी किसी रस ने कहा कि आओ मुझे ग्रहण कर लो? रसना इन्द्रिय के विषय में आत्मा भी ग्रहण करने रसेन्द्रिय के साथ नहीं जाती और रस भी नहीं आते हैं। आत्मा के साथ नहीं जाती और रस भी नहीं आते हैं, जब रस आत्मा के पास नहीं आते, आत्मा रस के पास नहीं जाती, तो फिर शुभ-अशुभ को देखकर रोष करना, तोष करना यह मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है।

हे श्रमण! शुभ-अशुभ स्पर्श कभी नहीं कहता कि आप मुझे स्पर्शित करो, छुओ। हल्का-भारी, कड़ा-नरम, रूखा-चिकना, ठण्डा-गरम यह आठ प्रकार का स्पर्श है। इसने कब कहा कि मुझे स्पर्शित करो? आसन चिकना होना चाहिये, चटाई चुभना नहीं चाहिये। ज्ञानी! यह तुम्हारे मन का विकल्प है। आसन, चौकी, चटाई आदि ने कभी आपसे नहीं कहा कि आप मुझे स्पर्शित करो। वह अपने आप आकर स्पर्शित नहीं हुई। स्वभाव दृष्टि से देखो तो वह कभी स्पर्शित होगा नहीं। स्पर्श के विषय में राग-द्वेष करके बंध को ही प्राप्त हुआ, लेकिन अपने द्रव्य का स्पर्श तूने कितना किया ?

मित्र! यात्रा पर भी जाता है तो गाड़ी की सीट को देखकर प्रसन्न होता है कि कितनी मुलायम है। वहाँ भी आस्रव करके आ गया। दूसरे के शरीर की कोमलता को देख रहे हो कि कितना मुलायम शरीर है। यहाँ भी तूने बंध कर लिया। बंध यह नहीं देखता है कि तुम कौन से स्थान पर खड़े हो। उसका काम बंधना है। स्पर्श से स्पर्श तो किया, आँखों से भी स्पर्श की अनुभूति को लिया है। देख रहा था कि कितनी ऋजु वस्तु दिखाई दे रही है, कितनी कठोर वस्तु दिखाई दे रही है, कितनी नरम है,उष्ण है, शीतल है। यह सारे विकल्प मन में खड़ा करता है। यह द्रव्य तेरे अंदर नहीं आ रहे थे, परन्तु विकल्प करके तेरी आत्मा में आस्रव अवश्य हो रहा था।

श्रावक यात्रा के लिये निकलते हैं, तो स्टेशन पर खड़े रहेंगे, पर यह मन नहीं करेगा कि आँख बंद करके माला फेर लूँ। चारों तरफ देखेगा कि स्टेशन पर क्या लिखा हुआ है? कहीं कुछ देख रहा है, कहीं कुछ देख रहा है। आप विश्वास मानो आपके पास धर्म करने के लिये बहुत समय रहता है। समय इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना भाव होना महत्वपूर्ण है। एक अन्तर्मुहूर्त में दीक्षा लेकर कैवल्य

को प्राप्त करके निर्वाण जाने वाले जीव भी हैं। अन्तर्मुहूर्त में दीक्षा ली, अन्तर्मुहूर्त में ध्यान किया और जीव सिद्धत्व को प्राप्त कर लेता है।

ज्ञानी! मंदिर को मंदिर मानने वाले तो कोटि-कोटि जीव हैं, परन्तु अपने घर में मंदिर बनाकर रहने वाले जीव अंगुलियों पर गिनने लायक हैं। अपने घर को मंदिर बनाओ। **देह को साधु बनाने वाले कोटि-कोटि हैं, परन्तु अपने मन को साधु बनाने वाले जीव अंगुलियों पर गिनने लायक हैं। देह के साधु लोक में पुजते रहेंगे, परन्तु मन के साधु ही सिद्धालय में जायेंगे।** आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि शुभ-अशुभ स्पर्श वह नहीं कहता कि आप आओ और मुझे स्पर्श करो। तद्रूप होकर आत्मा भी उनको ग्रहण करने नहीं जाती है। आत्मा पर विषय का स्पर्श करने अलग से नहीं जा रही है। इसलिये हे जीव! स्पर्श इन्द्रिय से भी राग-द्वेष करना तेरा धर्म नहीं है।

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी गाथा संख्या 380 में कह रहे हैं कि हे जीव ! शुभ-अशुभ गुण परद्रव्य के हैं वह यह कभी नहीं कहते कि आप मुझे जानो, आप मुझे स्वीकारो। ऐसा किसी द्रव्य का कोई भी गुण तेरे से कहने नहीं आता है। यह बुद्धि का विषय है, उसके लिये। गुणों को ग्रहण करने के लिये आत्मा जाती नहीं है और गुण पर की आत्मा के पास जाते नहीं हैं। इसलिये मैं किसमें राग करूँ? किसमें द्वेष करूँ ? पर के गुण में, पर की पर्याय में, द्रव्य में तेरा हर्ष-विषाद करना तेरी अज्ञान-धारा ही है, ज्ञान-धारा नहीं है, क्योंकि कोई भी द्रव्य का गुण पर्याय मेरे पास कहने नहीं आता कि मुझे स्वीकार करो, अपितु अपने चित्त को भ्रमित करके जीव स्वयं ही चिन्तन करके अशुभ आस्रव कर लेता है। लोक में कितने जीव हैं? तू यहाँ बैठा हुआ है, अमुक शहर में कौन क्या कर रहा है आपके सोचने से कुछ हो जायेगा क्या ?

ज्ञानी! ज्ञान प्राप्त कर लेना तो कोई पूर्व पुण्य का नियोग है, परन्तु ज्ञान का सम्यक् प्रयोग करना वर्तमान का पुरुषार्थ है। पंडित जी को चिंता है कि अमुक सागर क्या कर रहे हैं? तू सोचने बैठ गया, लिखने बैठ गया कि मैं इनके बारे में ऐसा लिखता हूँ, तो लिख लो, परन्तु मेरे मित्र! उनके द्रव्य का, उसके गुण का, उनकी पर्याय का परिणमन उनमें ही चल रहा था। तू उनके बारे में अशुभ सोच सकता है, अशुभ बोल सकता है, अशुभ लिख सकता है और ऐसा करके अपना ही विघात कर सकता है; पर जीव विघातक तू नहीं है, परजीव का रक्षक भी तू नहीं है। यह परमार्थ दृष्टि है। अब सोचो कि अपने जीवन में किसके कहने पर, किसके निमित्त से, किस जीव के बारे में क्या सोच लिया, क्या बोल दिया। क्या लिख दिया। इससे उसका कुछ नहीं हुआ है।

ज्ञानी! यदि आपके ऊपर कोई गुस्सा भी हो जाये तो नेत्र शांत करके बैठ जाओ। वो जितना गुस्सा करना चाहेगा, करता रहे। विश्वास रखना कि एक क्षण ऐसा आयेगा जब वह स्वयं पर गुस्सा करना

प्रारंभ कर देगा। कोई देखेगा तो यही कहेगा कि सामने वाला शांति से बैठा है, तुम गुस्सा कर रहे हो, बड़बड़ा रहे हो। ठीक है। ठीक कहने के बाद भी आप कुछ प्रक्रिया नहीं करोगे तो मेरे मित्र! विश्वास रखना, वह अपने आपको कहेगा कि तू ही ठीक हो जा कि इतना बड़बड़ा रहा है, सामने वाला कितना शांत बैठा हुआ है। कमठ को अंत में पार्श्वनाथ के चरणों में झुकना ही पड़ गया। जितना करना था उसने सबकुछ कर लिया, अंत में क्या हुआ? कमठ को पार्श्वनाथ के चरणों में झुकना ही पड़ा। कषायों को क्षमा धर्म के चरणों में झुकना ही पड़ता है। जीवन में कितनी ही विपत्ति आ जाये, मौन ले लेना। अभी तो उसकी जिह्वा खराब हुई है, मुख खराब हुआ है, कम-से-कम आप अपनी जिह्वा और मुख को सुरक्षित रखना।

ज्ञानी! मकानों में खिड़कियाँ क्यों लगाई गई हैं? वायु के समय तो खुली रखते हो, तूफान, वर्षा आने पर बंद कर देते हो जिससे कि धूल, पानी आदि न आये। यही तो ज्ञान का उपयोग है। इसी तरह जैसे ही किसी दूसरे की अशुभ शब्दों की प्ररूपणा सामने आये, ज्ञान की खिड़कियों को बंद कर देना। सामने वाले का कचरा मेरे अंदर प्रवेश न कर पाये, यही ज्ञान का उपयोग है। कोई यह भी कह दे कि अमुक सज्जन तुम्हारे बारे में बहुत अशुभ बोलते रहते हैं। ठीक है, वह तो उनका मुख है, वह स्वतंत्र है, उसमें मेरा क्या जाता है? वह स्वाधीन जीव है।

पिता ने पूरी संपत्ति तुम्हारे नाम कर दी, अब पिता कुछ नहीं कर सकता है। अब तू जो कुछ करना चाहे तेरे हाथ में है। पूर्व में तूने पुण्य किया था। उस पूर्व पुण्य से तुझे वर्तमान का द्रव्य मिल चुका है। अब तेरे हाथ में उपयोग है। पुण्य के हाथ में भी नहीं है। तू अरहंत की भक्ति करके पुण्य कर रहा है या मुख से किसी को गाली देकर पुण्य क्षीण कर रहा है? वचन वर्गणा तेरे पराधीन है। जब पुण्य क्षीण हो जायेगा, तो एकेन्द्रिय बनेगा। फिर चाहेगा तो बोलने की इच्छा भी नहीं हो पायेगी, बोल भी नहीं पायेगा। पूछो इन वृक्षों से, यह कर्मफल चेतना को भोग रहे हैं। जितने भी स्थावर जीव हैं, वह सब कर्मफल चेतना को भोग रहे हैं। इसलिये ज्ञानी! ध्यान रखना, अपने मन-वचन-काय का दुरुपयोग मत कर लेना। ये वे ही हैं जिन्होंने अपने मन-वचन-काय का दुरुपयोग किया था। आज यह धूप, छाँव, बारिस, गर्मी, सर्दी, सबकुछ सहन कर रहे हैं। इधर-उधर जाने की सामर्थ्य नहीं रखते हैं। इनको कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा, यह कर्मफल चेतना है। जितने भी स्थावर एकेन्द्रिय जीव हैं, वे सब कर्मफल चेतना को भोगते हैं। त्रस कर्मफल चेतना को भोगते हैं। जो प्राणों से अतिक्रांत हो चुका है, वह ज्ञानफल चेतना को भोगता है।

उद्वेग के काल में विवेक को लेकर चलना। विवेक साथ रहेगा तो उद्वेग तुम्हारा अशुभ नहीं कर पायेगा। तुम विवेक पहले ही नष्ट कर चुके, उद्वेग आ गया तो अब तुमको बचाने वाले कोई नहीं

हैं। आचार्यभगवन् व्याख्यायें करके समझा रहे हैं कि कोई भी अशुभ या शुभ तुमको बुलाता नहीं है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, पर का गुण, पर की बुद्धि तुझे निमंत्रण नहीं देती है। न आत्मा ही उन विषय रूप परिणत हो रही है। बुद्धि के विषय में आये हुये गुण को ग्रहण को वह आत्मा अपने प्रदेश को छोड़कर प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार समझना।

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द स्वामी गाथा संख्या 381 में कथन कर रहे हैं कि जो कुछ शुभ-अशुभ द्रव्य हैं, तुझको ऐसा नहीं कहते कि तू मुझे जान। **यथार्थ में अपने स्वभाव में प्रत्येक द्रव्य किसी के लिये न शुभभूत है न अशुभभूत है। वह अपने स्वभाव में है। जिससे आकांक्षाओं की पूर्ति हो रही है, उसे वह शुभभूत दिखाई दे रहा है। जिससे आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो रही है, अशुभभूत दिखाई देता है। आपको नीम कड़वी लगती है, अतः वह आपके लिये अशुभभूत है, जबकि नीम ऊँट के लिये भोजन होने के कारण उसके लिये शुभभूत है।** आप मल के पिण्ड को देखकर नाक सिकोड़ रहे हो, वही सुअर के लिये भोजन है। शुभ है या अशुभ है? ''किम् सुन्दरम्, किम् असुन्दरं?' कौन-सी वस्तु सुंदर नहीं है? कोई द्रव्य असुंदर नहीं है। जिससे राग की पूर्ति होती है, उसके लिये वह वस्तु सुंदर दिखती है और जिससे जिसके राग की पूर्ति नहीं होती है, उसके लिये वह वस्तु गंदी दिखती है। कैसी है? वस्तु तो जो है, सो है।

आज पण्डित जी की जिससे पट रही है, सो वे अच्छे लगते हैं। जिसकी नहीं पट रही है, उसको बुरे लगते हैं। बताओ कैसे हैं? जैसे हैं, वैसे हैं। कोई अच्छा नहीं। यह तो वस्तुस्वभाव है। ध्रुव सत्य है कि जीव का राग हट जाये तो जो सत्य है, वह सत्य मात्र दिखेगा। राग-द्वेष सत्य का बोध नहीं होने देते। राग-द्वेष की गर्मी छट जाती है तो यथार्थ सत्य दिखाई देना प्रारंभ हो जाता है। कोई द्रव्य नहीं कहता आप मुझे स्वीकार करो। आत्मा भी इनको ग्रहण करने नहीं जाती। जो बुद्धि के विषय का द्रव्य है, उसको बुद्धि अनुसार आत्मा ग्रहण करने नहीं जाती। इसलिये परद्रव्य भी मेरा स्वभाव नहीं है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी गाथा संख्या 382 में कथन कर रहे हैं कि मूढ़ जीव ऐसा जानकर भी कि शुभ, अशुभ पर द्रव्य मेरे नहीं हैं। शुभ-अशुभ परद्रव्य का मैं नहीं हूँ। वे मेरे को कहने आये नहीं, मैं इनसे कहने गया नहीं, वे मेरे हुये नहीं, मैं इनका हुआ नहीं, वे मेरे थे नहीं, मैं उनका था नहीं, वे मेरे होंगे नहीं, मैं उनका होऊँगा नहीं, ऐसा समझकर मूढ़जीव/अज्ञानी उनमें उपशम भाव को प्राप्त नहीं होता।

भो ज्ञानी! आप किसी के स्वभाव को नहीं बदल सकते हो। जब आपको यह ज्ञात है, फिर क्यों शिकायत करने आते हो? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता, उपादान दृष्टि, परन्तु निमित्त बन सकता है। आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि **मूढ़ जीव परके ग्रहण करने का मन करता है, क्योंकि कल्याण रूप बुद्धि, जो सम्यग्ज्ञान है, उसको प्राप्त नहीं हुआ है। इससे मूढ़ प्राणी जानकर भी**

राग-द्वेष को नहीं छोड़ पा रहा है। जब तू पर का कर्ता नहीं है, पर तेरा कर्ता नहीं है, तेरे निमित्त से तू पर का कुछ कर नहीं पा रहा है, तो व्यर्थ में हाय-हाय करके अपने विकल्प को क्यों बढ़ा रहा है? इस संसार में कितने सारे लोग हैं जो यहाँ बैठे हैं और अमुक शहर की सोच रहे हैं। शुद्ध अज्ञानीजीव हैं। उसे अपना भान ही नहीं है। उसे इतना सोचने का कहाँ समय है कि 'मैं सुखमय हूँ'। अपना समय पर को देने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न : अंतराय कर्म अशुभ नहीं है, कैसे ?

उत्तर : कोई कर्म तेरे लिये अशुभ है ही नहीं। कर्म तो कर्म के लिये अशुभ नहीं है, तेरे लिये अशुभ है। तू भोजन करना चाहता था। तुम्हे अच्छी तरह भोजन मिल गया। तुझे आनंद आ गया। तेरे शुभ कर्म का उदय है। विघ्न आ गया तो तू कहता है कि अंतराय आ गया, तो तू दुःखी हो रहा है। अंतराय आ गया तो ज्ञानी इसमें आनंद मनायेगा। ओ हो! धन्य हैं धरती के देवता, दिगम्बर योगीश्वर। समत्व भाव ही जिनका कर्तव्य है। क्या सोच रहे हैं? अच्छा हुआ कर्म कट गया।

पण्डित जी ने किसी से एक करोड़ का ऋण ले लिया। पंडित जी सोच रहे हैं कि कैसे चुकाऊँ? घर में कुआरी कन्या बैठी हो, सिर पर कर्ज रखा हो, उस व्यक्ति से पूछना, भूख कैसी लगती है? नींद कैसी आती है? न उसे भूख लगती है, न उसे नींद आती है। जब तू लिया हुआ ऋण चुका देता है, तो हल्का महसूस करता है, आनंदित होता है कि जीते-जी भार तो उतर गया। ऐसे ही निर्ग्रन्थ तपोधन जब तुम्हारे यहाँ आहार लेने गये, उनको आ गया अंतराय। अज्ञानी रोयेगा कि जितना कमाया था सब चला गया। बेइमान होगा तो यही कहेगा। ईमानदार होगा तो यही कहेगा कि अपना भार उतर गया। अंतराय आने पर तपोधन सोचते हैं कि जो अंतराय कर्म बैठा हुआ था, आ गया, अच्छा हुआ। आज मेरी बुद्धि काम कर रही है शरीर स्वस्थ है, आज कर्म उतर गया, बहुत अच्छा हुआ। तुम्हारे घर पर अंतराय आने पर तुम्हे भी रोना नहीं चाहिये, क्योंकि दान-अंतराय का उदय था, वह भी उतर गया। ज्ञानी लोग कर्म के उदय को जानकर प्रसन्न होते हैं, दुःखी नहीं होते हैं ऐसा जानना चाहिये।

त्रिकाल में निज स्वभाव से परिणत चैतन्य ज्ञानघन आत्मद्रव्य स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, इन द्रव्यों से भिन्न, पर कर्तृत्व से शून्य, पर के परिणमन में अपरिणामी है। निज के स्वभाव में परिणामी है। ऐसे ही आत्मद्रव्य में परबुद्धि से उत्पन्न हुए रागादिक भावों को निज में किंचित् मात्र भी नहीं स्वीकारा। अपने निज भावों से परभावों में परिणमन कराने में किंचित् भी कारण नहीं बना।

आचार्यभगवन् कुन्दकुन्द देव ने दस गाथाओं के माध्यम से समझाया है कि हे जीव! तू न पर से परिणत हुआ है, न पर को परिणत किया है, न परभूत हुआ है, न पर में परिणत होने के लिये प्रवेश किया

है, न पर को परिणत कराने में पर को प्रवेश दिलाया है। ऐसा स्वतंत्र स्वपरिणामी है। इसी बात को आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी आत्मख्याति टीका में समझा रहे हैं।

जैसे बाहर में घट-पट कोई पदार्थ है। घट नाम की वस्तु है। पट नाम की कोई वस्तु है। घट शब्द का उच्चारण होते ही जिसमें पानी भरा जाता है, उसका आकार दिखने लगता है। पट शब्द के बोलते ही वस्त्र समझ में आने लगता है। आवश्यक नहीं है कि वस्तु सामने हो, तभी अनुभव हो।

घट शब्द का उच्चारण नहीं करने पर भी, मन में घट शब्द आने पर घटाकार दिखना प्रारंभ हो जाता है। ऐसे-ही परद्रव्य का चिन्तन करने मात्र से ही जीव का स्वयं का ज्ञान ही तद्रूप परिणत हुआ है। वह घटाकार ज्ञान का ही वेदन कर रहा है, घट का वेदन परभूत नहीं है।

लोक में कितने दर्शन ऐसे हैं जो ज्ञान को ज्ञान तो मान रहे हैं, परन्तु ज्ञान को परसंबंधी ही मानते हैं अर्थात् ज्ञान दूसरों को ही जानता है। यह व्याख्या सम्यक् नहीं है कि ज्ञान पर-संवेदी है। व्यवहार से ज्ञान स्व-पर संवेदी है। यथार्थ में परमार्थ से ज्ञान स्व-संवेदी है। आप कहो कि घड़ी को देखकर मैंने जाना कि घड़ी में तीन बजकर बीस मिनट होने वाले हैं। घड़ी तो भिन्न है। ज्ञान ही तेरा ज्ञेयभूत परिणत हुआ है। परज्ञेयभूत परिणत हुआ है। स्वज्ञान ही के स्वज्ञेयभूत परिणत होने पर जाना कि इतने बज गये।

घट को आत्मा जान रही है, घट का वेदन आत्मा कर रही है। आत्मा वेदन घटभूत होकर कर रही है कि अघटभूत होकर कर रही है? यदि आप यह कहना चाहते हो कि आत्मा घटभूत होकर घट को वेदन कर रही है तो घट तो जड़ है तो आत्मा जड़ हो जायेगी या फिर ज्ञान के माध्यम से घट भी चेतन हो जायेगा। घट चेतन नहीं होता है, चेतन घट होता नहीं। आत्मा घट का वेदन घट होकर नहीं कर रही है, घटाकार होकर नहीं कर रही है। घट तो निमित्त मात्र है। वास्तव में आत्मज्ञान ही आत्मज्ञान का वेदन कर रहा है। घट जड़भूत है, ऐसे ही कर्म भी जड़भूत हैं। अन्यथा आत्मा जड़ हो जायेगी अथवा जड़कर्म चेतन हो जायेंगे। जड़कर्म चेतन होते नहीं। चेतन कर्मभूत होता नहीं। आत्मा कर्म का वेदन कर रही है। जैसे आत्मा आत्मा का वेदन कर रही है, वैसे ही आत्मा कर्म का वेदन नहीं कर रही है। आत्मा आत्मा का वेदन तन्मयभूत होकर कर रहा है। आत्मा कर्म, घटादि का वेदन अतन्मयभूत होकर कर रहा है।

वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठणिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ।।(7/वृ.द्र.सं.)

आचार्य नेमिचन्द्र 'वृहद् द्रव्यसंग्रह' में लिख रहे हैं कि वर्ण, रस, गंध, स्पर्श निश्चयनय से आत्मा में नहीं हैं। आत्मा अमूर्तिक है। व्यवहार से गंधादि की दृष्टि से यह मूर्तिक है, उपचरित असद्भूत व्यवहार नय की दृष्टि से कर्म-नोकर्म चेतन स्वभावी है। उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से आत्मा भी

जड़ स्वभावी है। चेतन का उपचार कर्म में होता है तब कर्म चेतन-स्वभावी कहलाने लगते हैं और जब कर्मों का उपचार चेतनभूत आत्मा में होता है तो आत्मा भी अचेतन कहलाने लगती है।

यह वृक्ष जो दिखाई दे रहा है, यह जड़ है। इसको जड़ ही मान लोगे तो इसकी रक्षा कोई नहीं करेगा। यह जड़मय चैतन्य है। देह पौद्गलिक है, पौद्गलिक देह में चैतन्य है। जब तक पौद्गलिक देह में चैतन्य आत्मा है, तब-तक इस पुद्गल को भी चेतनभूत स्वीकारिये। देह में चेतन है, यह संश्लेष संबंध है। जीव यदि इसे नहीं स्वीकारेगा तो अहिंसा का कोई विकल्प नहीं होगा। इस जड़ के विघात पर भी चैतन्य को पीड़ा होती है, क्योंकि संश्लेष संबंध है। **आत्मा, बंध की अपेक्षा से, मूर्तिक है। निर्बन्ध की अपेक्षा से अमूर्तिक है। स्वभाव दृष्टि से आत्मा अमूर्तिक ही है।** संसारी आत्मा भी स्यात् अमूर्तिक है। आत्मा का धर्म ज्ञान-दर्शन है। मूर्तिक पुद्गल का धर्म, कर्म का धर्म स्पर्श, रस, गंध, वर्ण है। **हे तपोधन! देह का धर्म देही से भिन्न है।** ऐसा कौन-सा मौसम आयेगा जब आत्मा स्पर्श, रस-गंध-वर्ण-मयी हो जायेगा, कर्ममयी हो जायेगा? **दूध-पानी की तरह आत्मा के प्रदेश और कर्म के प्रदेश एकमेव होने पर भी कभी कर्म चैतन्यभूत नहीं हो सकेंगे और चैतन्य कर्मभूत नहीं होगा।** निज स्वभाव में निहारो। जब ध्यानस्थ अवस्था में आप होंगे तो किसका आश्रय लोगे? कर्म के मध्य में होते हुए भी कर्म से भिन्न स्वभावी, ज्ञान-दर्शन से युक्त आत्मा का आश्रय लेकर ही सिद्धत्व को प्राप्त करेगा। पंचपरमेष्ठी का आश्रय लेकर तू स्वर्ग जा सकेगा। **अशुद्ध आत्मा जब भी शुद्ध बनेगी तो निज शुद्धात्मा का आश्रय लेकर ही बनेगी।**

ज्ञानी! आत्मा एक द्रव्य है। लोगों की मानसिकता है कि द्रव्य शुद्ध होता है पर्याय अशुद्ध होती है। यह सम्यक् नहीं है। पर्याय अशुद्ध द्रव्य शुद्ध कहते-कहते नया सम्प्रदाय खड़ा हो गया जो पर्याय को तो अशुद्ध मानता है और द्रव्य को शुद्ध मानता है। **''गुण पर्ययवद् द्रव्यम्''** द्रव्य त्रैकालिक गुण एवं पर्याय से युक्त होता है। ऐसा कोई द्रव्य नहीं होता जो गुण-पर्याय से रहित होता है। एक समय में द्रव्य शुद्ध, पर्याय शुद्ध होता ही है। जहाँ द्रव्य शुद्ध होगा वहाँ नियम से उसकी शुद्ध पर्याय होगी। द्रव्यार्थिक नय के दो, पर्यायार्थिक नय के छः भेद हैं।

द्रव्यार्थिक नय है, पर्यायार्थिक नय है, लेकिन गुणार्थिक नाम का कोई नय नहीं है। **गुण का विकार ही पर्याय है।** पर्यायार्थिक नय में गुण भी आ जाता है। द्रव्य का विकार ही तो पर्याय है। चाहे द्रव्य का विकार कहो तो पर्याय, गुण का विकार कहो तो पर्याय। दोनों नय ही चलते हैं, तीसरे की व्याख्या नहीं है। जब जीव कहता है कि मैं पर्याय से अशुद्ध हूँ, द्रव्य से शुद्ध हूँ यह तत्त्व की भूल चल रही है। यदि तुम्हें ऐसा ही कहना है तो एक शब्द और जोड़ो। असमान जाति पर्याय में जब-तक हो, तब-तक अशुद्ध हो।

ज्ञानी! द्रव्य को शुद्ध कहने पर पर्याय भी शुद्ध होगी, गुण भी शुद्ध होगा। जिस समय द्रव्य शुद्ध एवं पर्याय अशुद्ध मानते हैं, उसमें गुण कौन-सा होगा ? शुद्ध द्रव्य में गुण होगा क्या ? ज्ञान-दर्शन से काम नहीं चलेगा। आठ प्रकार का ज्ञान, चार प्रकार का दर्शन है। बारह प्रकार का उपयोग है। सामान्य कथन नहीं चलेगा। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान यह जीवद्रव्य की विभाव-गुण-व्यंजन पर्याय है। अशुद्ध ज्ञान, अशुद्ध दर्शन है। अब बताओ कि आपकी पर्याय अशुद्ध है, द्रव्य शुद्ध है, तो शुद्ध द्रव्य में ज्ञानगुण कैसा है? जब मति-श्रुतज्ञान हो तो गुण अशुद्ध हो गया। पर्याय अशुद्ध है, गुण अशुद्ध है, तो द्रव्य शुद्ध कैसे होगा?

आर्यिका ऐलक क्षुल्लक से पूज्य है। क्षुल्लक कितना ही चिरदीक्षित हो, उसे आर्यिका का अभिवादन करना ही होगा, क्योंकि ऐलक व क्षुल्लक श्रावक हैं आर्यिका उपचार से महाव्रती।

मित्र! यदि द्रव्य शुद्ध है तो उसकी पर्याय भी शुद्ध होगी, गुण भी शुद्ध होगा, तब ही द्रव्य भी शुद्ध होगा। यदि द्रव्य की पर्याय अशुद्ध है, तो उसका द्रव्य भी अशुद्ध होगा, गुण भी अशुद्ध होगा। 'पंचास्तिकाय' में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी लिखते हैं-

पज्जयविजुदं दव्वं, दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति ।। 12/पंचा.।।

पर्याय से रहित द्रव्य, द्रव्य से रहित पर्याय यह कभी नहीं होती है। दोनों अन्योन्यभूत हैं। जब-तक असमान जाति पर्याय द्रव्य सापेक्षता के कारण आत्मा में अशुद्धपना है और गुण में भी अशुद्धपना है, द्रव्य में भी अशुद्धपना है। एक पक्ष। फिर भी आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है। आत्मा में त्रैकालिक-शुद्धता, शक्ति अपेक्षा से है कि मेरे में शुद्ध होने की सामर्थ्य है। कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से सभी संसारी जीव शक्ति रूप से शुद्धात्मा हैं। कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से संसारी जीव शक्तिरूप सिद्ध समान शुद्धात्मा हैं। इसके अलावा भी एक अपेक्षा है। आत्मा आज तक अशुद्ध नहीं हुई है। पर्याय अशुद्ध दिखाई दे रही है, द्रव्य शुद्ध हुआ नहीं है। आत्मा आज तक अशुद्ध नहीं हुई है, इसमें आपको पर्याय लगाने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञानी कहेगा कि स्त्री के साथ कौन रह रहा है, संतान के साथ कौन रह रहा है, गृहस्थी कौन चला रहा है? और आप कहते हो कि आवश्यकता नहीं है। फिर एक पक्ष बोलेगा कि जब आत्मा अशुद्ध हुई ही नहीं है, तो मुनि क्यों बन गया? मैं मुनि इसलिये नहीं बना हूँ कि आत्मा अशुद्ध हो गई थी, आत्मा तो अशुद्ध हुई ही नहीं है। जो पक्ष यह कहता है कि आत्मा त्रैकालिक शुद्ध है, वह उसको व्यवस्थित नहीं कह पाता है, इसलिये भ्रम खड़ा हो जाता है और दूसरा पक्ष आत्मा को अशुद्ध मान लेता है, वह भी सम्यक् रूप से जानता नहीं है। इसलिये ऐसा कह देता है।

मेरे मित्र! आत्मा आज तक अशुद्ध हुई ही नहीं है और कभी होगी भी नहीं। यह भ्रम फैलाना

नहीं , निवारण चल रहा है। मैं आत्मा को शुद्ध बनाने के लिये मुनि नहीं हूँ। जो आत्मा में अशुद्धि आ चुकी है, उसके निकालने के लिये मुनि बना हूँ। स्यात्, आत्मा अशुद्ध हुई है, लेकिन आत्मा ने अशुद्धि में प्रवेश नहीं किया है और न अशुद्धि ने आत्मा में प्रवेश किया है। नाली में सोना पड़ा हुआ है, वह शुद्ध है या अशुद्ध ? जो अशुद्धि मान रहे हो सोने की, वह सोने में है या कीचड़ में ? कीचड़ में है। स्वर्ण के कितने अंश कीचड़ में प्रवेश कर गये ? कीचड़ ने सोने में प्रवेश किया नहीं। सोने ने कीचड़ में प्रवेश किया नहीं। आँखों से देखा तो कीचड़ में सोना पड़ा हुआ है, ध्रुव सत्य है। फिर भी सोना तो सोना ही है, कीचड़ तो कीचड़ ही है। ऐसे-ही कर्मों के मध्य में पड़ी हुई आत्मा ज्ञान-दर्शन स्वभावी ही है। वह स्पर्श-रस-गंध-वर्ण-स्वभावी नहीं है, इसलिये आत्मा स्वभावदृष्टि से त्रैकालिक शुद्ध ही है। द्रव्यदृष्टि अलग विषय है, स्वभाव अलग विषय है। द्रव्य स्वभाव से तात्पर्य है कि मेरी आत्मा का ज्ञान-दर्शन कभी भी नष्ट नहीं हुआ है, न होगा। आत्मद्रव्य पुद्गलमय न हुआ, न है, न होगा। चेतन कभी अचेतन नहीं होगा। चेतन दृष्टि से, आत्मा दृष्टि से आत्मा त्रैकालिक चेतनभूत शुद्ध है।

अशुद्धभूत शुद्धात्मा का आश्रय लेकर शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करती है। मैं कर्म की 148 प्रकृतियों से बंधा हूँ। बंध की अपेक्षा से मैं अशुद्ध हूँ। आत्मा और कर्म का संश्लेष संबंध है, इस दृष्टि से अशुद्ध हूँ, अशुद्धात्मा हूँ। जब-तक यह जीव 84 लाख योनियों में 4 जातियों में है, तब-तक अशुद्ध है। पर्याय से अशुद्ध है। इनमें द्रव्यभूत है, इसलिये भी अशुद्ध है।

मैं मुनि हूँ, संसारी हूँ, अशुद्धात्मा हूँ, कर्मबन्ध से अशुद्ध हूँ, परन्तु जब परमेश्वर का आश्रय लेता हूँ, तो शुभोपयोगी बनता हूँ। वह परम्परा से मोक्ष का साधन है, न कि साक्षात् साधन। जब मैं परमेष्ठी की आराधना करता हूँ तो द्वैत भक्ति में जाता हूँ। जब आत्मा आत्मा का आश्रय लेती है तो अद्वैत भक्ति हो जाती है। जब शुद्धात्मा का आश्रय लूँगा, तो मेरा निर्वाण होगा।

जब अशुद्धात्मा शुद्धात्मा का आश्रय लेकर सिद्धात्मा बन रही है तब शुद्धात्मा सिद्धात्मा थी नहीं, तो अशुद्धात्मा ने निज शुद्धात्मा का आश्रय कैसे ले लिया ? यही विषय उपादेयभूत है। परमेष्ठी का आश्रय लेने से तो स्वर्ग जा सकते हो। परमेष्ठी का आश्रय नहीं, अन्य पर का भी आश्रय नहीं, निज अशुद्धात्मा का भी आश्रय नहीं, तब भी परमात्मा नहीं बन पाओगे। मैं अशुद्धात्मा होने पर भी निज शुद्धात्मा का आश्रय ले रहा हूँ। कैसे निज शुद्धात्मा? नाली में पानी देखने पर गंदा दिखाई देता है, परन्तु गंदापन पानी में है या मिट्टी में है ? मिट्टी के संयोग से पानी गंदा कहला रहा है। यथार्थ में जो कालापन पानी में दिखाई दे रहा है, वह पानी का है या मिट्टी का? मिट्टी का है। मिट्टी में फिटकरी डाल दो तो मिट्टी जम जाती है, पानी दिखाई देता है। पर्याय दृष्टि से देखेगा तो कहेगा कि पानी साफ हुआ है। वस्तु स्वभाव से देखेगा तो जो पानी स्वच्छ दिखाई दे रहा है, वह पानी स्वच्छ ही था, मिट्टी के संयोग से पानी

में मैलापन था । पानी तो अपने स्वभाव से शुद्ध था। ऐसे-ही जो जीव मिट्टी मिश्रित पानी में स्वच्छ पानी देखना जानता है, वही तो फिटकरी डालेगा। जिसे यह बोध ही नहीं है कि फिटकरी डालने से पानी स्वच्छता को प्राप्त हो जायेगा, तो कैसे फिटकरी डालेगा ? और फिर पानी कैसे स्वच्छता को प्राप्त हो जायेगा? ऐसे-ही दिगम्बर वीतरागी तपोधन मिट्टी के समान कर्म से मिश्रित आत्मा को वर्तमान में निहार रहे हैं। कर्म की मिट्टी से युक्त आत्मा गंदा दिखाई दे रहा है, अशुद्ध दिखाई दे रहा है, परन्तु उन्हें यह मालूम है कि जो, अस्वच्छता है यह पानी में नहीं है, मिट्टी के कारण है। यह मिट्टी जम जायेगी तो स्वच्छ हो जायेगा। इसलिये वह ध्यानस्थ होकर मिट्टी का आश्रय ले रहे हैं, मिट्टी के अंदर के स्वच्छ पानी का आश्रय ले रहे हैं।

अशुद्धात्मा निज शुद्धात्मा का आश्रय ले रही है। निज शुद्धात्मा निज शुद्धात्मा का जो आश्रयभूत कथन है, वह फिटकरी। इसको डालकर धीरे-से कषायों को उपशमित कर दिया और 12-वें गुणस्थान (क्षीण मोह) में संपूर्ण मिट्टी को उठाकर धीरे-से हटा दिया, अब पानी स्वच्छ रह गया। मोह का अभाव कर लिया। जैसे-ही मोह का अभाव हुआ, कैवल्य सूर्य प्रकट हो गया। 12-वें गुणस्थान के अंतर्मुहूर्त के बाद 13-वें गुणस्थान में कैवल्य सूर्य प्रगट हो गया, मोह का क्षय हो गया। अंतराय कर्म का क्षय हो गया। ज्ञानावरणी कर्म का क्षय हो गया, मोहनीय कर्म का क्षय हो गया, कैवल्य हो गया। निज शुद्धात्मा के आश्रय से कैवल्य प्रकट हो गया। जो शक्तिरूप शुद्धात्मा थी, उसने परोक्षभूत आश्रय नहीं लिया, प्रत्यक्ष आश्रय लिया।

मित्र! सप्तम गुणस्थान में विराजे योगी किसका आश्रय लेते हैं? न देव, न शास्त्र, न गुरु। सिर्फ निज शुद्धात्मा का। सप्तम गुणस्थान में निर्विकल्प ध्यान होगा, यही स्वानुभूति है, यही निश्चय सम्यक्त्व है, यही स्वसंवेदन है, यही स्वरूपाचरण है। वही निश्चय अभेद रत्नत्रय धर्म है। शुद्धोपयोग की धारा है। **जब प्रपंच से दूर होकर निज में बैठेगा, तभी अनंत को प्राप्त कर सकेगा।** जो ध्यान, ध्याता, ध्येय की व्याख्या है, वहाँ पर ध्यान, ध्याता, ध्येय का विकल्प नहीं है। इस दृष्टि से निर्विकल्प है।

चिन्तन मत करो, चेष्टा मत करो, जप मत करो, प्रयत्न मत करो। केवल आत्मा को आत्मा से स्थिर करके लगा दो, यही निर्विकल्प ध्यान है। छहढालाकार की भाषा में-

जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प वचभेद न जहाँ।

जहाँ ध्यान, ध्याता, ध्येय का विकल्प समाप्त हो चुका है वह निश्चय ध्यान है। यह वीतरागी दिगम्बर योगी को ही संभव है। गृहस्थ नाना प्रपंचों में उलझा रहता है, वहाँ यह श्रद्धा का विषय है, ज्ञान का विषय है, परन्तु अनुभूति का विषय तो योगीगम्य ही है। इस योगीगम्य रहस्य को

जब श्रावक सुनेगा, श्रद्धा में लायेगा, उस आनंद की प्राप्ति का लक्ष्य बनायेगा, तो निर्ग्रन्थ होने का पुरुषार्थ कर पायेगा।

ज्ञानी! जब तू स्कूल कॉलेज में दाखिला लेने जाता है, तब अलग-अलग पोशाक होती है, उसी को पहनकर जाना होता है। ऐसे-ही मेरे मित्र! **स्वानुभूति की अनुभूति में प्रवेश करना है तो दिगम्बर मुद्रा को धारण करना पड़ेगा। दिगम्बर मुद्रा को धारण किये बिना स्वानुभूति की अनुभूति संभव नहीं है।**

लोक में ऐसा कोई जीव नहीं है जो संवेदी न हो। निगोदिया भी संवेदी है, स्वचेतन की अनुभूति लेता है। वैशेषिक दर्शन आत्मा को परसंवेदी मानता है। जैनदर्शन आत्मा को स्व-पर संवेदी मानता है। 'इष्टोपदेश' में आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं-

स्वसंवेदन सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यंत सौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकनः।।21।।

आत्मा स्व-पर संवेदी है, प्रदीपवत्। दीपक जैसे स्वयं को दिखाता है और पर को भी दिखाता है।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने अध्यात्म विद्या को न्याय के साथ संकलित किया है, वह वंदनीय है। **जितने अध्यात्म से विचलित हुए हैं, भ्रमित हुये हैं, उन्हें न्याय का ज्ञान नहीं था, इसलिये भ्रमित हो गये।** 'पंचास्तिकाय' में कुन्दकुन्द स्वामी लिखते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में नहीं मिलता इस दृष्टि से शुद्ध है। वास्तव में एक द्रव्य में मिले होने पर भी द्रव्य दूसरे द्रव्यभूत नहीं होता, इसलिये शुद्ध है।

ज्ञानी! दूध में पानी मिलते हुये दिखाई देता है। आत्मा में कर्मप्रदेशबंध की परिभाषा देखो।

नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात् सूक्ष्मैक-क्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशोष्वनन्तानन्त-प्रदेशाः।।24/8त.सूत्र।।

आत्मा के प्रदेश से अवगाहनत्व रूप से अनन्तानन्त कर्मप्रदेश बैठे हुए हैं। एक दूसरे में मिले हुये हैं। आत्मप्रदेश से कर्मप्रदेशों का एकमेक हो जाना, इसका नाम प्रदेश बंध होने पर प्रदेश स्वतंत्र है। आत्मा के एक प्रदेश में कर्मवर्गणा अवस्थित है। कर्म पुद्गलभूत है, आत्मा के प्रदेश चैतन्यभूत हैं। **एक दूसरे में मिलने पर भी एक-दूसरे-भूत नहीं होना, इसका नाम द्रव्य की त्रैकालिक स्वतंत्रता है।** एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में अन्योन्यभूत मिलने पर भी अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता, इसलिये स्वभाव की दृष्टि से द्रव्य अपने में स्वतंत्र है, शुद्ध है।

यहाँ अन्योंयाभाव की व्याख्या चल रही है। दूध में बूरा, इलायची, केशर डाल दिया और कह रहा है केशर का दूध पी लो। सब मिले अवश्य हैं, परन्तु केशर, बूरा, इलायची आदि के परमाणु स्वतंत्र हैं, दूध के परमाणु स्वतंत्र हैं। मिले अवश्य हैं एक दूसरे में, फिर भी मिले नहीं हैं। ऐसे ही ध्यान में बैठा योगी, जिसमें जिसकी अनुभूति लेना चाहता है ले लेता है। कभी ज्ञानगुण की अनुभूति लेता है, कभी चारित्रगुण की अनुभूति लेता है, कभी दर्शनगुण की अनुभूति लेता है। सम्पूर्ण द्रव्य अनुभूति का वेदन कर रहा है। गुण के साथ है। दृष्टि से एकभूत है। नयदृष्टि से भिन्न-भिन्न देखता है।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी नय और न्याय का आश्रय लेकर टीका लिख रहे हैं। 'यथेह बहिरर्थो घटपटादि, परन्तु व्याख्यान में अध्यात्म और सिद्धांत भरते हैं। पूड़ी,पराठे बनाते समय घी लगाते हैं, लेकिन घी का नाम नहीं लेते हैं। ऐसे-ही तत्त्व के व्याख्यान के काल में तत्त्व का नाम तो आ रहा है, परन्तु नय और न्याय की व्याख्या अलग से नहीं हो रही है। जबकि घी के बिना पराठा बनता नहीं है। ऐसे-ही बिना न्याय, तर्क के सिद्धांत और द्रव्यानुयोग की व्याख्या होती नहीं है।

जैसे देवदत्त के द्वारा यज्ञदत्त ने घट-पट को ग्रहण किया। क्या ऐसे ही स्पर्श, रस, गंध, वर्ण किसी को दिये जाते हैं? नहीं। जिस प्रकार देवदत्त यज्ञदत्त का हाथ पकड़कर उससे कार्य करा लेता है, उस प्रकार घट-पटादि तो बाह्य पदार्थ हैं वे दीपक से नहीं कहते कि तू हमें प्रकाशित कर। दीपक अपने प्रकाश में प्रकाशमान है। घट-पटादि प्रकाशित हो रहे हैं, दीपक उनको प्रकाशित नहीं कर रहा है। दीपक तो दीपक भूत है। घट तो घटभूत है। पट तो पटभूत है। ऐसे-ही आत्मा आत्माभूत है। स्पर्श, रस, गंध, वर्णभूत है, वह मेरे में नहीं है। मैं उनमें नही हूँ। घट-पटादि स्वयं प्रकाशित होने के लिये दीपक से प्रार्थना नहीं करते। वैसे दीपक भी किसी को प्रकाशित करने अपनी ओर खींचता नहीं है। जैसे चुम्बक के निमित्त से सुई थाली में घूम रही है, ऐसे दीपक परद्रव्यों को प्रकाशित करने के लिये सुई के समान अपना स्थान छोड़कर परद्रव्यों के पास नहीं जाता। ऐसे-ही मुमुक्षु! ज्ञान-दर्शन परज्ञेयों के पास नहीं जाता और परज्ञेय ज्ञान के पास नहीं जाते। आत्मा कभी ज्ञेयों के पास नहीं जाता है और ज्ञेय आत्मा के पास नहीं जाते हैं। ज्ञान ज्ञानभूत है। ज्ञेय अपने स्वभाव में है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पदार्थ यह कभी आत्मा के पास नहीं पहुँचते और आत्मा उनके पास नहीं पहुँचता। जैसे दीपक अपने स्थान को छोड़कर प्रकाशित करने नहीं जाता।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं कि वस्तुस्वभाव पर को उत्पन्न करने में असमर्थ है। माँ! आप रोटी बना रही हो, आप आटे का उपयोग मात्र रोटी बनाने में कर रही हो, लेकिन आप गेहूँभूत , आटाभूत बन सकती हो क्या ? कुंभकार घट को बना रहा है, क्या कुंभकार मिट्टी बनकर कुंभ बना रहा है? क्या मिट्टी कुंभकार होकर बन रही है? कुंभ का उपादान भूत कर्ता कोई है तो मिट्टी ही है। मिट्टी ही कुंभ

आकार परिणत हुई है। कुंभकार कुंभरूप परिणत नहीं हुआ। ऐसे-ही प्रत्येक द्रव्य अपने ही स्व-स्वभाव से परिणत होता है, पर स्वभाव से परिणत किसी को करता नहीं। पर स्वभाव से परिणत कोई होता नहीं। मिट्टी कुंभकारभूत नहीं हुई, कुंभकार मिट्टीभूत नहीं हुआ। देह आत्माभूत नहीं हुआ आत्मा देहभूत नहीं हुई।

हे मुमुक्षु! ''तुसमास घोसंतो'' का बोध होते ही शिवभूति मुनिराज एक अंतर्मुहूर्त में कैवल्य को प्राप्त हो गये। किसके बल पर? जीव जुदा, शरीर जुदा, यह तत्त्व का सार है। शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है, यही तो तत्त्व का सार है।

जीवोन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किन्चित् सोस्तु तस्यैव विस्तरः।।50।।

जीव भिन्न है, पुद्गल भिन्न है। उसी को समझने के लिये इतनी पोथी चल रही है।

ज्ञानी! पर के उपादान के लिये परवस्तु अशक्य है। चाहे परवस्तु का संग्रह हो, चाहे परवस्तु का संग्रह न हो। परवस्तु उपस्थित हो अथवा न हो, परन्तु दीपक तो स्वप्रकाश से प्रकाशमान है। चाहे वहाँ घट, पट रहे तो दीपक से प्रकाशित हो सकता है, न रहे तो भी दीपक से प्रकाशमान है ही। चाहे परज्ञेय हो या परज्ञेय न हो, परज्ञेयों से मेरा ज्ञान नहीं होता। ज्ञान तो मेरा निज धर्म है। परज्ञेय आ रहा है वह भी जाना जा सकता है। नहीं आ रहा है तो नहीं जाना जा सकता है। मेरा ज्ञान बराबर है।

मेरे मित्र! परज्ञेयों से ज्ञान नहीं होता, ज्ञान तो आत्मा का स्वधर्म है। स्वरूप से प्रकाशमान है, यह वस्तुस्वभाव है। आत्मा के ज्ञानगुण के लिये मनोज्ञ अमनोज्ञ पदार्थ की आवश्यकता नहीं है। चाहे सुन्दर हो चाहे असुन्दर हो, उससे आत्मा प्रभावित नहीं होती। जैसे देवदत्त को कोई वस्तु उठाकर दी तो यज्ञदत्त ने देवदत्त के हाथ से ले ली। वैसे-ही शुद्ध रूप, गंध, रस, वर्ण और गुण-द्रव्य यज्ञदत्त का हाथ पकड़कर देवदत्त की तरह आत्मा से नहीं कहते कि तू मुझे सुन, मुझे सूँघ, मुझे चख, मुझे स्पर्श कर, मुझे जान। उन द्रव्यों में आत्मा का भी प्रयोजन नहीं है। आत्मा चुम्बक और सुई की भांति भी नहीं है। जैसे चुम्बक के माध्यम से सुई अपने स्थान से च्युत हो जाती है और घूमने लग जाती है, ऐसे ही आत्मा परद्रव्य से चलायमान नहीं होती है और परद्रव्य भी आत्मा से कभी चलायमान नहीं होंगे। यह है स्वतंत्र दशा।

वस्तुस्वभाव को उत्पन्न करने में परद्रव्य अशक्य है। पर में उत्पन्न नहीं हो सकते और पर में उत्पन्न होने में भी अशक्य है। बाहरी पदार्थ के सन्निधान होने पर, उसके सन्निधान न होने पर भी ज्ञान तो अपने निज रूप से ही जानता है, अपने स्वरूप से ही जानता है। यह तो वस्तुस्वभाव है। यह तो अपने स्वपरिणाम की अनुभूति करता है। पदार्थ चाहे सुन्दर हो, चाहे असुन्दर हो, स्वरूप से जानने वाले आत्मा

में कोई विकार पैदा नहीं करते। आत्मा दीपक के समान नित्य उदासीन है। जैसे दीपक किसी को प्रकाशमान नहीं करता, पर से प्रकाशित होता नहीं अपने प्रकाश में ही प्रकाशमान है। जिसे प्रकाशित होना है तो होता रहे, नहीं होना है तो नहीं हो। ऐसे-ही आत्मा अपने ज्ञान में नित्य परद्रव्यों से उदासीन है। ऐसी ही वस्तु स्थिति है। ऐसा कथन सुनने के बाद भी यह भाव आता है कि मैंने किया है, मैंने कराया है। हे अज्ञानी जीव! तेरे राग-द्वेष की जो दशा चल रही है, यह अज्ञान है।

चिद्रूप, चैतन्य, चिद्पिण्ड, ज्ञानघन, भगवानात्मा निज स्वभाव से अच्युत है। अपने स्वभाव से कभी च्युत हुआ नहीं था। अज्ञानी जीव उस अच्युत स्वभाव को न समझता हुआ परद्रव्यों में अपना संबंध देख रहा है, जबकि आत्मद्रव्यों का परद्रव्यों से परस्पर में अत्यन्ताभाव है। जीव को सत्य तत्त्व पर श्रद्धान हो जाये, एक समय काल प्रमाण सम्यक्त्व मात्र प्रकट हो जाये तो अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन काल के भीतर नियम से उसका मोक्ष होना है।

मैं कभी अपने अच्युतपने से च्युत होता नहीं हूँ। मैं अपने ध्रुवधाम से कभी च्युत नहीं होऊँगा। **मैं अपने ज्ञायकभाव से कभी च्युत नहीं होऊँगा। पर प्रमेय मेरे प्रमेय नहीं, पर मेरे प्रमाता नहीं, पर मेरे ज्ञप्ति नहीं। पर में मैं प्रमेय नहीं। पर में मैं प्रमिति नहीं। पर मेरा प्रमाता नहीं। मैं ही प्रमेय हूँ, मैं ही प्रमाता हूँ, मैं ही प्रमिति हूँ। मैं ही ज्ञेय हूँ, मैं ही ज्ञाता हूँ, मैं ही ज्ञप्ति हूँ।** परज्ञेय, परज्ञाता, परज्ञप्ति, पर भाव हैं। निजज्ञाता, निजज्ञेय, निजज्ञप्ति अन्तर भाव है। जो जीव निज के ज्ञेय को निज ज्ञाता के अवलोकन में लगा रहा है, देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धान करते हुये भी अपनी स्वतंत्रता पर निहित हो रहा है अन्तः तत्त्व, यह शुद्ध समयसार है। ऐसा समयसार जो है वह बाहरी भावों की व्याख्या नहीं करता है।

औपशमिक आदि जो भाव हैं, वे कर्मसापेक्ष हैं। जो कर्मसापेक्षता है, वह जीव की अशुद्ध दशा है। **जो अशुद्ध दशा है, वह आत्मा की त्रैकालिक दशा नहीं है। त्रैकालिक दशा है, वह मतिज्ञान नहीं, श्रुतज्ञान नहीं, अवधिज्ञान नहीं, मनःपर्यय ज्ञान नहीं, यहाँ तक कि केवलज्ञान भी नहीं। ये मेरी आत्मा का त्रैकालिक धर्म नहीं है। जो उत्पन्न होता है, नष्ट होता है, वह त्रैकालिक कैसा ?** जो पाँच ज्ञान हैं, वे ज्ञान गुण की पर्याय हैं और पर्याय नष्ट होती है उत्पन्न होती है। इसलिये आलम्बन पर्याय का नहीं लेना है। आलम्बन ध्रुव धर्म का लेना है। निर्ग्रन्थ योगी परमेष्ठी का आलम्बन छोड़ देते हैं, नाना प्रकार के ज्ञान की पर्याय का आलम्बन भी छोड़ देते हैं। उस समय ज्ञायकभाव मात्र का आलम्बन लेते हैं। ज्ञान सामान्य त्रैकालिक है, 'ज्ञायकस्वरूपोऽहम्' निश्चय से आत्मा में ज्ञान है, आत्मा में दर्शन है, आत्मा में चारित्र है, आत्मा में संवर है, आत्मा में योग है। यह सारी दशा जो है, आत्मा की है। सबको जाना, परन्तु जिससे जग को जान रहे थे, उसे जानो। जगत् में लोगों ने या तो भगवान् की खोज की या मंदिरों की खोज की, लेकिन भगवान् जिससे बना है, उसकी खोज नहीं की। विश्वास के साथ कहता

हूँ कि भगवान् कभी भगवान् नहीं बनता। जैसे रोटी से रोटी नहीं बनती। सिद्ध को भी सिद्ध नहीं करना पड़ता, असिद्ध को सिद्ध करना पड़ता है।

ज्ञानी! अरिहन्त के पादमूल में आने से उनका परिणमन तेरे में नहीं हो रहा है, तेरा परिणमन उनमें नहीं हो रहा है। उनको देखकर तेरा परिणमन, तेरे द्वारा, तेरे में हो रहा है। तेरा निज का परिणमन ही परमात्मा बनायेगा। परमात्मा का परिणमन तुझे परमात्मा बनानेवाला नहीं है। जगत् के अन्य दर्शन कहते हैं कि परमात्मा तो परमात्मा रहता है, आत्मा-आत्मा रहती है। मात्र जैनदर्शन में आत्मा को परमात्मा बनाने की सिद्धि होती है। प्रभू के पादमूल में प्रभू से मिलने नहीं जाना। प्रभु! आप परमात्मा कैसे बन गये हो, इसको जानने के लिये जाना । वे जीव अज्ञानी हैं जो जीवनभर भगवान् मात्र का दर्शन कर रहे हैं वह जीव ज्ञानी हैं जो भगवान् के दर्शन के बाद निज का दर्शन कर रहा है। जब-तक निज दर्शन न हो जाये, तब-तक जिन दर्शन मत छोड़ देना। यह हुण्डावसर्पिणी काल है, इस काल के प्रभाव से तीर्थंकर के शासनकाल में ही द्रव्य मिथ्यात्व प्रारंभ हो जाता है।

आज दो प्रकार के मिथ्यादृष्टियों की संख्या बढ़ रही है। एक पर को अपना धर्म मान रहे हैं, दूसरे पर में अपना धर्म मान रहे हैं। एक को स्व का बोध नहीं है और परमेष्ठी को छोड़कर बैठ गये। पंचपरमेष्ठी तो परमेष्ठीभूत हैं, इसलिये हमारे पूज्य हैं। यह तुम्हारा शुभ-व्यवहार-धर्म है। लेकिन तेरा धर्म फिर भी नहीं है, क्योंकि मैं स्वतंत्र द्रव्य हूँ, परमेष्ठी मेरे से भिन्न स्वतंत्र द्रव्य हैं। एक द्रव्य का धर्म दूसरे द्रव्य में नहीं होता है। उनके धर्म को स्मरण करना, उनके गुणों का स्मरण करना, यह तुम्हारा व्यवहार धर्म है। व्यवहार भक्ति है। द्वैत भक्ति है। अपने भीतर के धर्म में लीन होना, इसका नाम अद्वैत भक्ति है, अभेद भक्ति है, वह निश्चय धर्म है। मंदिर जाने के लिये मंदिर गया है, वह तो अज्ञानी है। अन्दर जाने के लिये जो मंदिर जाये, वह ज्ञानी है। कभी मंदिर न जाना पड़े, इसलिये जो मंदिर जाये, वह परम ज्ञानी।

पूर्णैकाच्युत शुद्धबोधमहिमा बोधो न बोध्यादयं।
यायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीपः प्रकाश्यादिव।
तद्वस्तुस्थिति बोधवन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो।
रागद्वेषमयी भवन्ति सहजां मुञ्चन्तियुदासीनताम्।।222 कलश।।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी इस कलश में कह रहे हैं कि मेरा निज आत्म द्रव्य पूर्ण, भरा कलश है, किंचित् भी खाली नहीं है। ज्ञायकभाव से भरा है, जो शुद्ध बोध, अच्युत, विकार से रहित, ज्ञानस्वरूप जिसकी महिमा है। जगत् ने अनेक महिमा गाई, लेकिन गानेवाले की महिमा नहीं आयी। कब तक दूसरे की प्रशंसा करते रहोगे ? ज्ञानी विपरीत विकार को प्राप्त नहीं होता है। ऐसा जीव परभावों की प्रक्रिया

को प्राप्त नहीं होता है। दीपक में परद्रव्यों के होने से कोई विकार नहीं होता है। जो प्रकाशमान द्रव्य है, उन द्रव्यों के होने से दीपक में प्रकाश नहीं हो रहा है। दीपक अपने स्वभाव में ही है। अपने स्वभाव से कभी च्युत नहीं होता। दीपक के समान प्रकाशमान होती है आत्मा। जिसकी बुद्धि वस्तु की मर्यादा के ज्ञान से रहित है, वस्तु के सम्यक् बोध से जिसकी बुद्धि दूर हो रही है, ऐसा अज्ञानी जीव अपनी स्वाभाविक उदासीनता को क्यों छोड़ता है? जब तुझे मालूम है कि मैं परभावों से भिन्न हूँ, मैं अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता हूँ, तब भी जीव पराधीनता को क्यों नहीं छोड़ता?

मैं तो पूर्ण उदास हूँ। उदास का अर्थ क्या लगा लिया उदासीन। आजकल तो उदासीन आश्रम बन रहे हैं। **साधु बन गये और चेहरा लटका कर बैठ गये। उदासीनता का अर्थ यह नहीं है कि किसी दूसरे को देखकर चेहरा लटका लेना। उदासीनता का अर्थ है परभावों से निजभावों को भिन्न निहारना, परभावों में मग्न नहीं होना। जो स्वरूप की प्राप्ति है, वह उपेक्षा भाव से है, न कि धर्मात्माओं को देखकर चेहरा लटका ने से कोई आपत्ति आ जाये, चेहरा लटका कर बैठ गये, यह उदासीनता नहीं है। सबकुछ होने के बाद भी स्वयं में अपना कुछ नहीं स्वीकारना, इसका नाम उदासीनता है। आश्रम में रहना उदासीनता नहीं है। ईंट चूने के आश्रमों में रहना उदासीनता नहीं है। आत्मआश्रम में ब्रह्मस्वभाव में लीन होना, इसका नाम उदासीनता है।**

सर्वार्थसिद्धिकार स्वयं कह रहे हैं, हे योगीश्वर! गुरुओं के मध्य में रहना, ब्रह्मचर्य में निवास करना, इसका नाम है आश्रमवास। इस आश्रम का मंडन किया गया है। ईंट-चूने का आश्रम बनाकर रहने से कोटि-कोटि द्रव्यहिंसा होगी। निर्ग्रन्थों से कहा है कि हे योगीश्वर! तुम षट्काय के जीवों की हिंसा के त्यागी हो, इन आश्रमों से रक्षा करो यदि आत्म-आश्रम में जाना है तो।

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि स्वरूप को प्रकट करो। हे जीव! उदासीनता को क्यों छोड़ते हो? राग-द्वेष में क्यों जाते हो? अज्ञानी जीव अपने स्वभाव को छोड़कर परभावों में लिप्त हो रहा है।

आचार्य जयसेन स्वामी टीका में कह रहे हैं कि निंदा या स्तुति के जो वचन हैं, यह पुद्गल रूप परिणमन है, इसे अपना कैसे मान लेते हो ? कोई मेरी निंदा भी कर रहा है, इसके मुख से वचन पौद्गलिक ही निकल रहे हैं, परन्तु मैं मान करके हर्ष-विषाद को प्राप्त हो लेता हूँ, जबकि मेरा होता नहीं। यथार्थ मानो, कितना सारा मेरा विवेक, जीवन के आयु के निषेक, ज्ञान का क्षयोपशम व्यर्थ में नष्ट हो रहा है। कितना तनाव है ? **पर में अपेक्षा आते ही शांति भंग हो जाती है। ज्ञानी! अहर्निश प्रसन्न रहना चाहते हो तो किसी से अपेक्षा मत रखो। अपेक्षा रखोगे तो नियम से उपेक्षित हो जाओगे।**

निन्दा और स्तुति, यह पुद्गल हैं, फिर तू रोष-तोष को क्यों प्राप्त हो रहा है? किसी ने तेरी निंदा

कर दी तो रोष को प्राप्त हो रहा है, किसी ने दूसरे की प्रशंसा कर दी तो रोष को प्राप्त हो रहा है। अपनी निंदा में तो रोष को प्राप्त हो ही रहा है, परन्तु पर की प्रशंसा में भी रोष को प्राप्त हो रहा है। जगत् में कितना अज्ञान छाया है। किसी को मालूम नहीं कोई मेरे बारे में क्या सोच रहा है? परन्तु तू सोचकर कर्म का बंध अवश्य ही कर रहा है। स्वयं में दुःखी हो रहा है। सबको अपने-अपने भाग्य से मिलता है। यदि परोसने में छोटा लड्डू भी मिल जाये तो विकल्प मत करना। ठीक है, 'जो है, सो है', क्योंकि इतना ही क्षयोपशम था।

ज्ञानी! आप राग-द्वेष मात्र को जन्म दे सकते हो, परन्तु वस्तु की प्राप्ति पुण्य से होगी, राग-द्वेष से नहीं होगी। वे वचन तो नहीं कहते कि तेरी निंदा-स्तुति करता हूँ, तो क्यों रोष को प्राप्त हो रहा है? अज्ञानी बहिरात्मा ? इस प्रकार से वह अज्ञानी जीव व्यवहार निश्चय दोनों ही कारण समयसार से रहित है।

शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, मनोज्ञ, अमनोज्ञ, चाहे अच्छे हों या बुरे हों , सुन्दर हों असुन्दर हों, यह पाँच इन्द्रियों के विषय हैं। तू इनका कर्ता नहीं है। वे तेरे भी कर्ता नहीं हैं। वे तेरे से कभी नहीं कहते हैं कि तू मेरा कर्ता है। यह कहता है कि महाराज जी! यह मेरी दुकान है। इस अज्ञानी से पूछना कि दुकान ने कब कहा कि तू मेरा है? जो वस्तु इन्हें कभी नहीं स्वीकारती, कभी स्वीकारा ही नहीं है फिर भी यह उसको अपना कह रहे हैं। परवस्तु को अपना मानना चोरी है या नहीं है? जो मानता है, वह चोर है या नहीं ?

संबोधन में भो, हे, अरे बोलते ही व्यक्ति का हृदय प्रसन्न हो जाता है। हे देवदत्त! शब्द ने कब कहा कि भो ज्ञानी! मुझे सुनो? इस वृक्ष को देखा? इस वृक्ष ने कब कहा कि भो ज्ञानी! मुझे देख। इतने सारे चित्र देख रहे हो, इन्होंने कब कहा कि मुझे देखो? किसी ने कभी नहीं कहा। अरे अज्ञानी रागी! तू ही देख रहा है। इन द्रव्यों ने कब कहा कि मुझे देख। अरे! तू ही देखने गया था। पूरा समय बर्बाद कर दिया, आँखें खराब कर लीं। अशुभ देखा तो चित्त खराब कर लिया। चारित्र खराब हुआ तो दुर्गति हो गई।

कोई वस्तु नहीं कह रही है कि मुझे देखो। कोई वस्तु नहीं कह रही कि मुझे सूँघो। उन पुष्पों ने कब कहा कि मुझे सूँघो ? आगरे के पैठा ने कब कहा कि मुझे खाओ? तुम स्वयं ही चाहते हो। वस्तु कभी नहीं कहती कि मेरा स्वाद लो, मुझे छुओ। किसी ने कहा क्या ? पुनः अज्ञानी कहता है कि यह शब्दादि कर्ता है, आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि मूढ़! किसी वस्तु ने कभी नहीं कहा कि मुझे सूँघ, मुझे चख, मुझे स्पर्श कर, मुझे देख और तू कह रहा है कि यदि नहीं होते तो मैं ऐसा क्यों करता। आचार्य महाराज उसके लिये कह रहे हैं कि मूढ़! क्या कह रहा है ? यह आते नहीं हैं। उनको ग्रहण करने के

लिये शब्दादि पाँच इंन्द्रिय के विषय हैं, वे तुझे बुलाते नहीं हैं। कोई वस्तु किसी के पास जाती नहीं। कोई किसी वस्तु के पास आता नहीं। व्यर्थ में राग-द्वेष क्यों कर रहा है?

जो परम तत्त्वज्ञानी जीव है, पूर्व में कहे गये व्यवहार और निश्चय कारण समयसार में अंतरंग व बाह्य रत्नत्रय के लक्षण के द्वारा सहित होते हुए मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन शब्दों के विषयों में आये हुए विषयों में न राग करता है न द्वेष करता है, किन्तु स्वभाव से शुद्ध जो स्वरूप का वेदन करता है। जैसे पंचेन्द्रिय विषयों में मनोज्ञ अमनोज्ञ इन्द्रिय विषय उनमें संकल्प होने से अज्ञानीजीव राग-द्वेष करता है। जो राग-द्वेष कर रहे हैं, वे सब अज्ञानी हैं। जो राग-द्वेष नहीं कर रहे हैं, वे ज्ञानी हैं। अब निहारना कि आप क्या हो?

ज्ञानी पर के गुण, रूप एवं परद्रव्य की पर्याय के विषय में राग-द्वेष नहीं करता। पर के मन के विषय में, पर के गुण में, पर की पर्याय में अज्ञानी राग-द्वेष करता है। मैं तो अपना चिन्तन कर रहा हूँ, मैं अपने में मग्न हूँ, अब तू मेरे बारे में सोचने लग जाये तो वह तेरी दुर्बुद्धि तू जाने । मैं तो जो हूँ, सो हूँ। तेरा स्वद्रव्य स्वतंत्र है। हे मुमुक्षु! तू निज की सोच, अपनी सोच बिगाड़ कर दुर्गति को प्राप्त हो जायेगा, परन्तु अपनी सोच को पवित्र बनायेगा तो सुगति को प्राप्त हो जायेगा। वस्तुव्यवस्था तो व्यवस्थित है।

आचार्यभगवन् अज्ञानी जीव को पुनः संबोधित करके कह रहे हैं कि अरे! तू जान कि कोई मेरे द्वारा उत्पन्न नहीं किया गया है। किसी ने मुझे उत्पन्न नहीं किया है। मैंने किसी को उत्पन्न नहीं किया है। तू क्यों दुर्बुद्धि को प्राप्त हो रहा है? क्यों चिल्ला रहा है कि मैंने किया, मैंने किया? यही सबसे बड़ा दुःख है। 'मैं नहीं होता तो ऐसा हो जाता।' अरे! तू एकबार नहीं होकर तो देख कि कुछ होता है कि नहीं?

अज्ञानी कहता है कि मेरे मन में पर के ज्ञेय अथवा गुण उनके ज्ञान का संकल्प, वह मेरे ज्ञान में प्रतिभासित होता है। अज्ञानी ऐसा कहता है कि दूसरे का द्रव्य-गुण-पर्याय मेरे ज्ञान में प्रतिभासित हो रहे हैं। तो उसका उत्तर देते हैं। वह पर का गुण, पर का द्रव्य, मन की बुद्धि के विषय को प्राप्त हुआ, वह तेरे से कहने नहीं आता कि मुझे ग्रहण कर लो, न तेरी बुद्धि जाती है उसको पकड़ने के लिये। कैसे? ज्ञेय-ज्ञायक संबंध से। मात्र ज्ञेय-ज्ञायक भाव है, परन्तु ग्रहण बाह्य ग्रहणी भाव पर का नहीं है।

परवस्तु को देखकर अपने ही परिणाम में हर्ष-विषाद कर सकते हो, परन्तु वस्तु की स्वतंत्रता का लोप नहीं कर सकते हो। जो राग-द्वेष का कारण है, वह अज्ञान है। **क्षीण पुण्य वाला जीव प्रशस्त शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकता। जिनका जैसा स्तर होगा, उनका वैसा भोजन, वैसी भाषा होगी।**

मित्र! पूर्वोत्तर व्यवहार कारण समयसार और निश्चय कारण समयसार को जानने वाला ज्ञानी होता है, वह वहाँ हर्ष-विवाद नहीं करता। इस प्रकारजानने योग्य पंचेंद्रिय के विषय भले और बुरे शब्दादि तथा मन के विषय, जो पर के गुण और द्रव्य, उन मन और इन्द्रियों के विषय को जानकर भी अज्ञानी जीव उपशम भाव को प्राप्त नहीं होता है, शांत नहीं रहता है। स्वयं शुद्धता के संवेदन स्वरूप निर्दोष बुद्धि को प्राप्त नहीं हो रहा है। शिव शब्द के द्वारा कहे जाने योग्य वीतराग और सहज परमानंद स्वरूप सुख को नहीं पा रहा है।

जैसे चुम्बक के द्वारा खींची गई सुई अपने स्थान से च्युत होकर चुम्बक के पास पहुँच जाती है, वैसे-ही शब्द आदि इस जीव के चित्त को विकृत बनाने जीव के पास नहीं जाते हैं तथा जीव भी उनके पास नहीं जाता है। वह अपने स्थान में अपने रूप ही रहता है। ऐसा वस्तु का स्वभाव है। फिर भी यह अज्ञानी जीव अपने उदासीन भाव को छोड़कर राग-द्वेष करने लगता है। यह उसका अज्ञानभाव है। इस प्रकार निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग स्वरूप जो निश्चय कारण समयसार और व्यवहार कारण समयसार है, उन दोनों को नहीं जानता हुआ अज्ञानी जीव अपनी बुद्धि के दोष से रागादि के रूप में परिणमन करता है। परपदार्थ रूप जो शब्दादि हैं , उनका इसमें कोई दोष नहीं है।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं, अहो! खेद है इस बात का कि अपने निज स्वभाव की अच्युति नहीं समझ रहे हैं। अज्ञानी जीव परभावों में अपनी दृष्टि को ले जा रहे हैं, लेकिन में पूर्ण अच्युत स्वभाव का हूँ। निजस्वभाव से च्युत नहीं होऊँगा, होता नहीं, कभी नहीं। ऐसा अच्युत-स्वभावी हूँ।

दीपक निज प्रकाश के स्वभाव से युक्त है। लोग देख रहे हैं कि दीपक से दिखाई दे रहा है, परंतु दीपक किसी को दिखा नहीं रहा है। दीपक किसी से दिखाई दे रहा नहीं, फिर भी दीपक से युक्त आप दिख रहे हो। दीपक निज स्वभाव में ही है। दीपक में ज्योति है। दीपक अपने ज्योतिर्मय भाव से युक्त है। उस ज्योति से भिन्न पदार्थ प्रदर्शित हो रहे हैं। ज्योति निज प्रकाशमान है। अज्ञानी कह रहा है कि दीपक से देख रहा हूँ, परंतु दीपक किसी को भी न देख रहा है, न किसी को दिखा रहा है। अपने स्वभाव में प्रकाशमयी है। दीपक ज्योतिर्मय होते हुए अपने प्रकाश धर्म से युक्त स्व-पर को प्रकाशमान कर रहा है, परन्तु ध्रुव स्वभाव में देखो तो उसके अंदर न पर को प्रकाशित करने का विकल्प आ रहा है, न स्व को प्रकाशित करने का विकल्प आ रहा है। वह तो मात्र अपने धर्म में है। ऐसे-ही शुद्धात्मा न किसी को जानने का विचार कर रही है। उसके कैवल्य में परद्रव्य झलकें सो झलक रहे हैं। उन्हें झलकाने का भी विकल्प शुद्ध आत्मा नहीं कर रही है।

ऐसा अच्युत स्वभावी मेरा आत्मा है। एक क्षणमात्र को अपने अच्युत स्वभाव पर दृष्टि चली जाये जीव की तो न राग है न द्वेष है। संतोष भी नहीं है, असंतोष भी नहीं है। जिसको संतोष है वह रागी है,

जिसको असंतोष है वह द्वेषी है। अब संतुष्ट हो गया महाराज। ज्ञानी! यह तेरा राग बोल रहा है। असंतुष्टि हो गई, थक गया, तात्पर्य यह हुआ। भोगते-भोगते थक गया है और असंतोष शब्द का प्रयोग कर रहा है। ज्ञानी को संसार से कभी असंतोष नहीं होता है। **ज्ञानी को संसार से वैराग्य होता है। अज्ञानी को असंतोष होता है।** असंतोष और वैराग्य में अंतर है।

थक चुका है अथवा इच्छित सामग्री नहीं मिल रही है सो असंतोष हो गया है। **सामग्री के होने पर भी, शरीर में बल होने पर भी जो विरक्त हो चुका है, उसका नाम वैराग्य है। आसक्ति का अभाव वैराग्य है।** शक्ति की क्षीणता, शक्ति की अल्पता, इसका नाम असंतोष है। वैराग्य असंतोष नहीं है। असंतोष भाव है, वह द्वेष से भरा हुआ है। असंतोष भाव है, वह इच्छा की आपूर्ति है। वैराग्य तो विषय-कषाय से विरक्ति है।असंतोष नहीं होना चाहिये।

तू उदास हो गया। उदास हो गये कि उदासता हो गई है? जो वैरागी है, वह उदास हो जाता है। जो रागी है, इच्छाओं की पूर्ति की सामर्थ्य नहीं बची, उसको उदासी आ जाती है। जिनसे आकांक्षायें थीं, उनसे आकांक्षाओं की पूर्ति होना बंद हो गई, सो आपके अंदर उदासता आ गई है। कोई अपना नहीं है। यह वैराग्य नहीं है। कोई पूछता नहीं है शरीर की सामर्थ्य समाप्त हो गई, हाथ में पैसा था वो भी नहीं बचा आपके पास, यह विरक्ति नहीं है। यह थकान है, हीन भावना का उदय है। चलो छोड़ो घर, कुछ नहीं रखा है इसमें। क्योंकि परिवारजनों ने पूछना बंद कर दिया है।

जब अशुभ उदय आता है तो पूजने वाले भी नहीं पूछते हैं और जब शुभ के दिन आते हैं तो मुँह मोड़ने वाले भी आरती उतारते हैं। अज्ञानी कहेगा मैं पुज नहीं रहा हूँ, ज्ञानी कहेगा कि जो पूज रहा था, वह पुण्य था, जो नहीं पुज रहा है, वह पाप है। मैं न पुण्य हूँ, न पाप। इन दोनों से भिन्न हूँ। में अच्युत-स्वभावी हूँ। मेरा कुछ भी गया नहीं है, कुछ भी आया नहीं है। मैं तो ज्ञायकस्वभावी हूँ। पूज्यता में राग, अपूज्यता में द्वेष, यह पलायनवाद है, वैराग्य नहीं है। घर से भगाया जाये, फिर उदासता आ जाये, यह मोक्ष का मार्ग नहीं है। घर में ही घर से भगाया जाये, यह वैराग्य नहीं है। **विषमताओं से घर छोड़कर चले जाना, यह वैराग्य नहीं है। समता के काल में समत्व को प्राप्त कर लेना, इसका नाम वैराग्य है।**

विषमता से छोड़ा गया घर समता को जन्म दे सकता है, परंतु विषमता से घर छोड़कर और विषमता में ही जी रहे हो तो गृहत्यागी नहीं कहलाओगे, गृहभोगी ही कहलाओगे। तुमको घर से भगाया गया है या घर से भागकर आये हो?

हे जीव ! निज बोध से बोध, निज ज्ञान से ज्ञान। किंचित् भी पर से मेरे में विक्रिया नहीं है।

विक्रिया का तात्पर्य है परिणमन। सामने घड़ी लगी हुई है, यह घड़ी किसका परिणमन कर रही है? ज्ञानी! यह तेरा परिणमन करा रही है क्या? इतने जीव यहाँ बैठे हैं, यह इनका परिणमन करा रही है क्या ? घड़ी को देखकर कोई कहता है सामायिक का समय हो गया, कोई कह रहा है भोजन का समय हो गया है, कोई कह रहा है आफिस जाने का समय हो गया। नाना प्रकार के विकल्प यह जीव घड़ी को देखकर कर रहा है, परन्तु घड़ी किंचित् भी तेरा परिणमन नहीं कर रही है। यह तो अपने आप में मध्यस्थ है। काँटे का परिणमन काँटे में चल रहा है, घड़ी तेरे परिणमन में किंचित् भी निमित्त नहीं है।

मेरे मित्र! घड़ी कह रही है कि मैं तो अपने स्वभाव में परिणमन कर रही हूँ। नियत समय पर मैं अपनी धुरी पर चल रही हूँ। मेरे पीछे तुम नहीं देख रहे हो, मेरे आगे तुम देख रहे हो। जितने लोग भ्रमित हैं, वे सब घड़ी को आगे देखकर भ्रमित हैं। घड़ी चल रही है, काँटे चल रहे हैं, इन चलते काँटों को देखकर तुम यह तो कह रहे हो कि इतने बज गये, परन्तु काँटे किसके माध्यम से चल रहे हैं? इस पर विचार नहीं कर रहे हो। चलते काँटे आगे देखे जाते हैं, परन्तु चलानेवाला तो पीछे है, चलानेवाली बैटरी पीछे है। हर समय जो सुख-दुःख का वेदन करते हुए तुम दिखाई दे रहे हो यह तो घड़ी के काँटे चलते हुए दिखाई दे रहे हैं, परंतु यह चल किस पर रहे हैं? तेरे भीतर पीछे छिपा कर्म का बंध है, कषाय के परिणाम हैं। वह तुम्हें चला रहे हैं। दुनियाँ काँटे मात्र देख रही है। जिससे काँटे चल रहे हैं, उस पर ध्यान नहीं है। घड़ी के सेल निकाल दो तो काँटों का चलना बंद हो जायेगा। अपने भीतर कषाय की जो सेल है, उसे निकाल दो तो अभी तेरा संसार बंद होता है। मोह के सेल से तो हट नहीं रहा है, कषाय के सेल से तो नहीं हट रहा है और कह रहा है कि संसार के काँटे चलना बंद हो जायें। ज्ञानी! तीर्थंकर भी आ जायें तो वो भी बंद नहीं करा पायेंगे।

जैसे घड़ी अपने स्वभाव में परिणमन कर रही है। तीनों काँटे अपने समय पर चल रहे हैं। आप रोओ या हँसो, तब भी काँटे चलेंगे। सुख-दुःख में बंद नहीं होंगे। इसी तरह तुम हँसो या रोओ, कर्म का बंध बंद नहीं हो रहा है, अविरल चल रहा है। तुम परिवार छोड़कर आये, यहाँ शिष्यों की भीड़ लग गई। यह तो लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम था। जब घर में थे तो धन बढ़ रहा था, यहाँ पर शिष्य बढ़ने लग गये यश बढ़ने लग गया। यह वस्तुस्वरूप नहीं है। यह कर्म का फल अपने आप वृद्धि कर रहा है।

जैसे धुरी का आश्रय लेकर काँटे घूम रहे हैं, पर दोनों स्वतंत्र ही हैं। ऐसे-ही मेरी आत्मा स्वतंत्र ही है। यह तो पुण्य-पाप के काँटे हैं जो आपको दिखाई दे रहे हैं। सब धुरी के चारों ओर घूमते अवश्य दिखाई दे रहे हैं, लेकिन धुरी नहीं है। वे चारों ओर घूम रहे हैं, बिल्कुल भी धुरी से बाहर नहीं जा रहे हैं, लेकिन फिर भी धुरी नहीं है। ऐसे-ही मेरे साथ घूमनेवाले लोग भी मेरे नहीं हैं। मैं ही हूँ। तेरे साथ घूमने वाले लोग तेरे नहीं हैं। तू नहीं है। धुरी तो स्वतंत्र ही है। ऐसे-ही ध्रुव आत्मा तो स्वतंत्र ही है। एक

काँटे के टूटने पर धुरी नहीं रोयेगी। ऐसे-ही शिष्यों के जाने पर ध्रुव आत्मा भी नहीं रोयेगी, क्योंकि उस ध्रुव को मालूम है कि वे मेरे आश्रय से घूम रहे थे, परन्तु मेरे ध्रुव नहीं थे।

ध्रुव समांतर नहीं, निरंतर है। जो समान्तर है, वह ध्रुव नहीं है। जो मेरा है, वह निरंतर स्वभाव है। जिसे तू सजा रहा है, वह समान्तर है। कहाँ तुम सांतर को देखने में लग गये हो? निरंतर को देखो। जिसे तू धोती कुर्ता पहना रहा है, वह सांतर है। पर्याय सांतर है। ध्रुव आत्मा निरंतर है। ध्रुवज्ञायकस्वभाव निरंतर है। जिसमें अंतर पड़ता ही है, उसमें दृष्टि ले जाना, च्युत स्वभाव है। ज्ञानियो! जिस पर तेरा राग है, वह च्युत स्वभावी है। जिस पर तेरा ध्यान नहीं जा रहा है वह अच्युत स्वभावी है।

वह जीव वर्तमान जीवन या तो भविष्य के अरमानों में या भूत के अवसादों में नष्ट कर रहा है। वर्तमान को देखनेवाले बहुत कम लोग हैं। इष्ट का वियोग हो गया हो तो उसकी याद में रोयेंगे। भविष्य में पुनः ऐसा सुख मिल जाये। अपने समय को, आयुकर्म को, ऐसे-ही क्षीण कर रहा है। भूत च्युत हो गया, वर्तमान च्युत हो जायेगा, भविष्य के आने से पहले देखोगे तो वह भी नष्ट हो जायेगा।

मैं अच्युत स्वभावी भगवानात्मा भूत में ऐसा ही था, वर्तमान में ऐसा ही हूँ, भविष्य में ऐसा ही रहूँगा। मैं ज्ञान-दर्शन स्वभावी हूँ। मेरे मित्र! जितना भी दुःख होगा, हुआ है, हो रहा है, यह सब समान्तर के कारण है, निरंतर के कारण नहीं है।

वीतरागी श्रमण निर्ग्रन्थ मुनि प्रतिक्षण अपने आप को आनंदित रखते हैं, तो उनके पास एक ही बल अच्युत को निहारते हैं, च्युत को नहीं निहारते। ध्यान दो वैराग्य के लिये च्युत को देखना और स्वभाव के लिये अच्युत को देखना। वैराग्य के लिये नष्ट होने वाली पर्याय को देखना कि जल्दी करो, विलम्ब मत करो, नष्ट हो जायेगी। साधुमार्ग पर आ जाओ तो दृढ़ता के साथ च्युत को देखना कि यह पर्याय नष्ट हो भी जाये तो कुछ नहीं है, मैं तो नष्ट होता नहीं हूँ। पर्याय दृष्टि च्युत स्वभावी, द्रव्य दृष्टि अच्युत स्वभावी। इतना सबकुछ जानने के बाद भी राग-द्वेष को छोड़कर उदासीनता को क्यों नहीं स्वीकार करता है?

कभी-कभी आदमी सहज बैठा होता है, फिर भी अपने आपको दुःखी महसूस कर रहा है। तेरे अशुभ कर्म की सत्ता उदय में आ गई है सो तू दुःखी महसूस कर रहा है। यदि अंदर सुखी महसूस कर रहा है तो पुण्यप्रकृति की सत्ता धक्का मार रही है। इन वृक्षों से पूछो, यह वायु के झकोरों को भी सहन करते हैं, बारिश की बूंदों को भी सहन करते हैं। मित्र! जब कर्मफल चेतना को भोगने का अवसर आएगा तो क्या ऐसे नहीं खड़े होंगे ? तीर्थंकर महावीर को ऐसा होना पड़ गया अकौआ की पर्याय में और कितनी पर्यायें धारण की हैं।

मित्र ! ज्ञान का स्वरूप स्वभाव को जानने का ही है। ज्ञेय को जानने मात्र से ज्ञान में विकार नहीं होता। जो ज्ञेय जानकर भला-बुरा मानता है, आत्मा में रागी-द्वेषी होता है, विकार उत्पन्न करता है वह अज्ञानी है। आचार्य महाराज विचारते हैं। परन्तु यह जीव राग-द्वेष करके अज्ञानी रूप परिणाम क्यों करता है? अपनी स्वाभाविक अवस्था में क्यों नहीं करता है? उदासीन रूप में क्यों रहता है? आचार्य महाराज की यह सोच सही है, क्योंकि जीवों की अज्ञानता पर करुणा तो उत्पन्न होती ही है।

आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कलश संख्या 223 में कह रहे हैं कि

रागद्वेष विभाव मुक्त महसो नित्यं स्वभावस्पृशः
पूर्वागामि समस्त-कर्म-विकला भिन्नास्तदात्वोदयात्
दूरारूढ चरित्र वैभव बलाच्चंचच्चिदर्चिमयीं
विंदन्ति स्वरसाभिषिक्तभुवनां ज्ञानस्य संचेतनाम् ।।223।।

ज्ञानी राग-द्वेष रूप विभाव से रहित तेज वाले हैं। वे सदैव अपने चैतन्य चमत्कार मात्र स्वभाव को स्पर्श करने वाले हैं। पूर्व में किए गये समस्त कर्म और भविष्य में होने वाले सभी कर्मों से रहित हैं। वर्तमान में जो भी कर्म उदय में आ रहे हैं, वे उनसे भी भिन्न हैं। ऐसा ज्ञानी समस्त परद्रव्य का ज्ञान करके, उसके बल से सम्यक्चेतना का अनुभव करता है वह ज्ञानचेतना चैतन्यरूप ज्योतिर्मय है। वह ज्ञान चेतना अपने ज्ञानरूपी रस से तीनों लोक को सिंचती है।

मित्र! जिसका रागद्वेष चला जाता है तथा अपने चैतन्य भाव को स्वीकार कर लेता है, अंगीकार कर लेता है, भूत में हुए कर्म का ममत्व छोड़ देता है, भविष्य में आने वाले कर्म ममत्व को भी छोड़ देता है, वर्तमान के कर्म का ममत्व में भी नहीं पड़ता है, ऐसा ज्ञानी समस्त परद्रव्य से पृथक् होकर चारित्र को अंगीकार करता है उसी के बल से कर्मचेतना और कर्मफल चेतना से रहित होकर ज्ञानचेतना का अनुभव होता है। यह ज्ञानचेतना का जैसा देशविरत और प्रमत्त गुणस्थान में श्रद्धान करता है तथा अप्रमत्त दशा में अपने स्वरूप का ध्यान करता है। उसी समय ज्ञानचेतना का जैसा श्रद्धान किया था, उसी में लीन होता है। ऐसा जानना चाहिये।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

संदर्भ ग्रंथ सूची

अ.अ.क.	अध्यात्म अमृत कलश	आचार्यभगवन् श्री अमृतचन्द्र स्वामी
आ.प.	आलाप पद्धति	आचार्यभगवन् श्री देवसेन स्वामी
आ.मी.	आप्त मीमांसा	आचार्यभगवन् श्री समंतभद्र स्वामी
इष.	इष्टोपदेश	आचार्यभगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी
का.अ.	कार्तिकेयानुप्रेक्षा	आचार्यभगवन् श्री कार्तिकेय स्वामी
त.सू.	तत्त्वार्थसूत्र	आचार्यभगवन् श्री उमा स्वामी
प.मु.सू.	परीक्षामुख सूत्र	आचार्यभगवन् श्री माणिक्यनंदि स्वामी
पंचा.	पंचास्तिकाय	आचार्यभगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी
प्र.सा.	प्रवचनसार	आचार्यभगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी
स.सा.	समयसार	आचार्यभगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी
वा.पे.	वारसाणुपेक्खा	आचार्यभगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी
र. सा.	रयणसार	आचार्यभगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी
सू.पा.	सूत्र पाहुड	आचार्यभगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी
स. भ.	समाधि भक्ति	आचार्यभगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी
द्वा.	द्वात्रिंशतिका	आचार्यभगवन् श्री अमितगति स्वामी
र. श्रा.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	आचार्यभगवन् श्री समंतभद्र स्वामी
यु.शा.	युक्त्यनुशासन	आचार्यभगवन् श्री समंतभद्र स्वामी
स्व .स्तो .	स्वयम्भू स्तोत्र	आचार्यभगवन् श्री समंतभद्र स्वामी
द्र.सं.	द्रव्यसंग्रह	आचार्यभगवन् श्री नेमिचंद्र स्वामी

श्रमणसंस्कृति सेवासमिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री महावीरजी पाटनी, भिलाई
श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री माँगीलालजी किशोरजी पहाड़िया, हैदराबाद

परम संरक्षक

श्री नेमीचंदजी बड़कुल, इंदौर,
श्री राजेशजी जैन, (लॉरेल), इंदौर
श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर,
श्री संतोषकुमारजी जैन, (पटनावाले), सागर
श्री टी.के. वेद जी, इंदौर
श्री विजयकुमारजी रामनारायण जी, नागपुर
श्री हेमचंद मीना जैन (सिरमोर), इंदौर

संरक्षक

श्री सचिनकुमारजी जैन, (उद्योगरत्न), इंदौर
श्री अनिलकुमारजी जैन, (जैनको), इंदौर
श्री चक्रेशकुमार जी जैन, (बड़कुल) इंदौर,
श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर
डॉ. जैनेन्द्रजी जैन, इंदौर
श्री मानिकचंदजी नायक परिवार, इंदौर,
श्री पी.सी. जैन सा. (बैंकवाले), इंदौर
श्री प्रमोदकुमार जी जैन, (बारदाना) सागर
श्री भागचंदजी कंछेदीलालजी जैन, सागर
श्री संतोषकुमारजी सोनू मोना जैन, सिहोरा
श्री जैन राजेशजी कानूगो, इंदौर
श्री पंकलकुमारजी कमलाकर, भोपाल
श्रीमती कुसुमजी प्रकाशजी, सुखलिया, इदौर
श्री कमलेशकुमारजी पहाड़िया, इंदौर
इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल
श्री राकेशकुमारजी पाटनी, नागपुर
श्री निर्मलकुमारजी जैन, गोदिया
श्री राकेशजी सिंघई (पत्रकार), भोपाल
श्री मनोजाजी प्रधान, भोपाल
श्री अजयजी (ज्योतिषी), भोपाल
श्री राजेन्द्रजी आम्रपाली, भोपाल
श्री संदीपजी (हर्ष सेनीटेशन), भोपाल
श्री मनोहरलालजी टोंग्या, भोपाल
श्री हरीशकुमार प्रियंकजी अजमेरा, भोपाल
श्री संजीवजी संदीपजी (गेहूँ वाले), भोपाल
श्री जितेन्द्रजी जैन, भोपाल
डॉ. सुभाषजी जैन (लखारिया), भोपाल
श्री प्रमोद नील चौधरी, लालघाटी, भोपाल
श्री शैलेन्द्रजी बांझल, विदिशा
श्री शैलेन्द्रजी जैन (शिल्पा), अजीराजपुर
श्री स्वप्निलजी मेघाजी (बड़जात्या मार्बल), इंदौर
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री केतनकुमारजी राजेन्द्रकुमारजी जैन, झाँसी
श्री राजकुमारजी स्नेहलताजी चंदौरिया, भिलाई

श्री सनतकुमारजी अरविन्द सतभैया परिवार
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी लुहाड़िया, भिलाई
श्री अरुण मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री पवन-अल्काजी, अपूर्व भावीनजी कोठारी, भीलवाड़ा
श्री शशिकान्त धीरजकुमारजी अजमेरा, भीलवाड़ा
श्री प्रदीपजी मनोजजी वेद, भीलवाड़ा
श्री सुगनचंदजी विजयजी झांझरी, भीलवाड़ा
श्री सोहनलालजी गंगवाल, भीलवाड़ा
श्री पी.के. जैन कावाखेड़ा, भीलवाड़ा
श्री संजय राजू जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री किशोर अमित जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री वेदप्रकाश भाईजी, मरोरमागंज, सागर
श्री धनकुमार संजय गंगवाल, वैशाली नगर, भिलाई
श्री मनोज, अनिल, जयकुमार जैन, राजिम (छत्तीसगढ़)

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री रिषभ जैन शाहगढ़ (भोपाल)
श्री वीरेन्द्र कुमार जी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीड़ी वाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्रीमती पुष्पाजी निर्मलजीकाला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग
श्री अनिलजी कासलीवाल, भिलाई
श्री वीरेन्द्र कुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री रज्जीलाल मोदी (सुपारी वाले), सागर
श्री प्रवीणकुमारजी जैन (वर्द्धमान), दिल्ली
श्री पन्नालाल जी जैन, कलकत्ता
श्री अरुणजी जैन, दिल्ली
श्री शैलेन्द्र कुमारजी जैन, बुंदी
श्री दिनेश-सीमा जैन, कोटा
श्री विशाल-नीतू जैन, मुलतान वाले, जयपुर
मुनि विश्वनाथसागर चातुर्मास समिति, भीलवाड़ा
दिगम्बर जैन समाज, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इन्दौर
श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो.श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमार जी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)
श्री संतोष गरुजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशकुमारजी तरूणकुमारजी (आरौन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)
श्रीमती गुणमालाजी ए.के. बड़जात्या, इन्दौर
श्री प्रदीप कुमारजी नेमीचन्दजी जैन, इन्दौर
स्व. श्री महेन्द्र कुमारजी बड़जात्या, इन्दौर

श्री सनत कुमारजी, अरविन्दजी (सतभैया), इन्दौर
श्रीमती इंदिराजी सेठी, इन्दौर
श्री विकासजी राजीवजी जैन, इन्दौर
श्रीमती सीमा एस.सी. जैन, इन्दौर
श्री डॉ. राजेशजी जैन, इन्झौर
श्री अरविन्द जैन, इन्दौर
श्री राकेश कुमार, इन्दौर
श्री संतोष जैन गुरुजी, इन्दौर
श्री जे.के. चौधरी, सुदामा नगर, इन्दौर
श्री संजीव जैन, मेगनम टॉवर, इन्दौर
श्री मनोजजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री प्रसन्नकुमारजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री अरविन्दजी जैन, सुदामानगर, इन्दौर

उज्जैन...
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री राकेश कुमारजी किशनचंदजी जैन, उज्जैन
श्री विद्युतजी करणमलजी डोसी, उज्जैन
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया), उज्जैन
श्री कैलाशचंद रवीन्द्रकुमारजी जैन, उज्जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी, उज्जैन
श्री महावीरप्रसादजी जैन, उज्जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन, उज्जैन
श्रीमती वीणाजी जैन, उज्जैन
श्री विमल कुमारजी राजमलजी जैन, उज्जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन
श्री विद्युतकुमारजी करणमलजी डोसी
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया)
श्री कैलाशचंदजी रवीन्द्रकुमारजी जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी
श्री महावीरप्रसादजी जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन
श्रीमती सुधादेवी इंदरचंदजी जैन
श्रीमती वीणाजी जैन
श्री विमलकुमारजी राजमलजी जैन

ललितपुर...
श्री रामप्रकाशजी जैन
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमार जी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसाद जी जैन
श्री नरेन्द्र कुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर...
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (ढाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरूपचंदजी सिंघई
श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड लाईन्स)

श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमार जी जैन

छतरपुर...
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईटइंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंद बजाज
श्री श्रीपालजी बड़कुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

भीलवाड़ा...
श्री सुरेन्द्र कुमारजी वीरोमलजी
श्री पवन अल्काजी, अपूर्व भावीन कोठारी
श्री शशिकान्तजी धीरज कुमारजी (अजमेरा)
श्री प्रदीपजी (वेद परिवार)
श्री सुगनचंदजी विजयकुमारजी झांझरी
श्री सोहनलालजी गंगवाल (पाटीदार)
श्री पी.के. जी जैन (कावाखेड़)

अन्य शहर....
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन (नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली
श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)
श्री निर्मल कुमारजी जैन, दिल्ली
श्री अनुरागजी मोदी (मोदी टेडर्स), तेंदूखेड़ा
श्रीमती विमलाजी सिंघई, लालघाटी, भोपाल
श्री पीयूषजी जैन, सोनीपत (हरियाणा)
डॉ. त्रिशलादेवी जैन, कानपुर
श्रीमती सुमनजी जैन (अरोरा), बरेली
श्रीमती सुनीता भरतकुमार जैन, चौक, भोपाल
श्रीमती अर्मलशीलकुमार, हरियाणा
श्री मनोज कुमार, हरियाणा
श्री मनोज जैन, भोपाल
श्री गोतम जैन, इन्दौर
श्री निर्मलकुमार जैन, नोयडा
श्रीमती देवी राजकुमार जैन, दुर्ग
श्री संजय जैन, दिल्ली
श्री बाबूलालजी ईश्वरलालजी पाटोदी, छिन्दवाड़ा
श्री भूपेन्द्रकुमारजी इन्द्रमलजी जैन, गाजियाबाद
श्री सुशील कुमार जी शोभितजी जैन, व्यासपुर
श्रीमती सुनीताजी भरतकुमारजी जैन, भोपाल
श्रीमती स्नेहलताजी एस.के. जैन, सोनीपत
श्रीमती ममताजी जैन, पानीपत
श्रीमती मालादेवीजी जैन, करोली
श्री जेठालालजी कुबेरदासजी शाह, मुंबई
श्री प्रदीप प्रभाकरजी जैन, मुंबई
श्री विशालजी नीतूजी जैन, जयपुर
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी (लुहाडिया) भिलाई
श्री अरुणजी मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री रतनलाल जी जैन, अलवर (राज.)
श्री जेठालाल कुबेरदास शाह, मुंबई
श्री आकाश जैन, शांतिविहार, दिल्ली
श्री सुनीलकुमार दिलीपकुमार जैन, भोपाल
श्री वीरेन्द्र शशि जैन, हिसार
श्री व्ही.एस. जैन द्वारा आर.के. जैन, मुजफ्फर नगर
श्री बाबूलालजी पाटोदी परिवार, छिन्दवाड़ा
श्री संजय कुमार सिंघई, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)
श्री अनिमेष जैन, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)
श्री वैभव चौधरी पुत्र श्री सुभाष चौधरी, नवापारा राजिम
श्रीमती कुसुम जैन धर्मपत्नी श्री निर्मल कुमार चौधरी, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)